G. K. V.
HARDWAR

AVISHKAR 1992 Jan-Jun

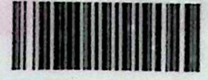
ISSN 0970-660?

079666

आविष्कार

जनभाषा में रुचिकर विज्ञान की सशक्त अभिव्यक्ति

जनवरी 1992

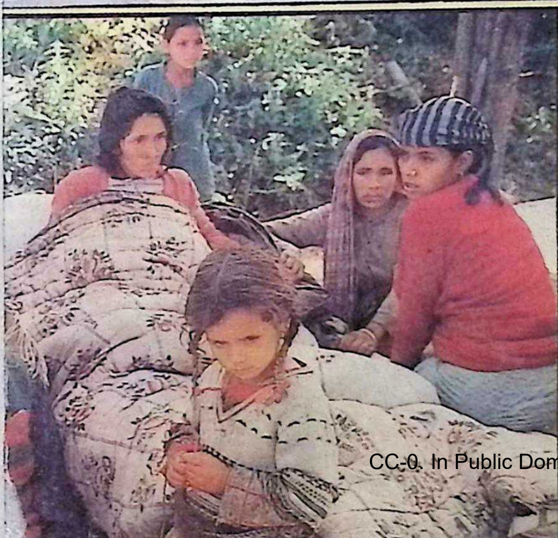


1992
JAN-JUN



क्या मनुष्य अफ्रीकी ...धनारी की संतान है ?

...ों का हाल : ...दमी बेहाल



- गणित में मनोरंजन
- आओ दूरदर्शी बनाएं

ग्राहक फार्म

उत्पादन अधिकारी
नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन
20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र,
कैलाश कालोनी एक्सटेंशन
नई दिल्ली-110048

महोदय,

कृपया मुझे आविष्कार का एक/दो/तीन वर्ष के लिए मास .... 199 से ग्राहक बना लीजिए. मैं नया/पुराना ग्राहक हूं. पत्रिका का चदा .... रुपए मनीआर्डर/डिमांड ड्राफ्ट द्वारा भेज रहा हूं. कृपया प्राप्ति स्वीकार करें.

नाम ....

ग्राहक संख्या (यदि कोई हो) ....

पूरा पता ....

....

....

भवदीय

1/92

....
(हस्ताक्षर)

- **रियायती मूल्य : एक वर्ष : 50 रुपए**
- **पत्रिका का शुल्क मनीआर्डर द्वारा 'नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन' को उपरोक्त पते पर भेजिए. मनीआर्डर कूपन पर पत्रिका का नाम, शुल्क की राशि, अवधि (एक साल, दो साल, तीन साल) स्पष्ट लिखें. मनीआर्डर फार्म के पीछे दिए गए स्थान पर "भेजने वाले का नाम और पता" के अंतर्गत बड़े अक्षरों में पूरा नाम और पता साफ साफ लिखें.**
- **शुल्क का नवीकरण कराते समय या पत्र व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक संख्या का उल्लेख अवश्य कीजिए. नवीकरण काफी समय पहले कराइए ताकि पत्रिका मिलने में रुकावट न आए.**
- **शुल्क अदा करने के बाद पत्रिका की प्रथम प्रति प्राप्त करने के लिए कम से कम छः सप्ताह तक इंतजार कीजिए.**

एन.आर.डी.सी.
NRDC

आविष्कार

जनवरी 1992

वर्ष 22, अंक 1

■ 'आविष्कार' नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन (एन आर डी सी) द्वारा प्रकाशित विज्ञान और प्रौद्योगिकी की लोकप्रिय मासिक पत्रिका है.

एक प्रति : 5 रुपए
वार्षिक मूल्य : 50 रुपए

फोन: 6418615, 6419929, 6419945, 6419947, टेलेक्स: 031-71358
टेलीग्राम : 'अनुसंधान विकास'
फैक्स : 091-11-6449401

इस अंक में

पाठकों के लिए सूचना

कागज, छपाई, डाक आदि खर्चों में अत्यधिक वृद्धि के कारण विवश होकर हमें पत्रिका की दर में वृद्धि करनी पड़ रही है. आशा है पाठकों का सहयोग मिलेगा.

जनवरी 1992 से आविष्कार की एक प्रति 5 रुपए व वार्षिक शुल्क 50 रुपए होगा.

विज्ञान प्रदर्शनी/मेलों में भाग लेने वाली शिक्षण संस्थाएं/विद्यार्थी कृपया ध्यान दें

राष्ट्रीय, राज्य, जिला और क्षेत्रीय स्तरों पर आयोजित विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों की विज्ञान प्रदर्शनियों/मेलों में पुरस्कृत मॉडलों, युक्तियों आदि पर 'आविष्कार' में प्रकाशन के लिए विचारार्थ प्रलेख आमंत्रित हैं.

प्रलेख पुरस्कार प्राप्त विद्यार्थी द्वारा स्वयं लिखा होना चाहिए और संबद्ध शिक्षण संस्था के प्राचार्य/प्रधानाचार्य द्वारा अग्रसारित किया जाना चाहिए. साथ में 'पुरस्कार प्रमाण पत्र' की फोटो प्रति भी भेजी जानी चाहिए.

प्रलेख में पुरस्कृत मॉडल, युक्ति आदि को बनाने की संपूर्ण जानकारी का तरतीबवार विवरण होना चाहिए और यह भी बताया जाना चाहिए कि उक्त माडल, युक्ति आदि को बनाने का विचार विद्यार्थी के मस्तिष्क में कैसे उपजा और उसे बनाने के लिए विद्यार्थी ने तकनीकी जानकारी कैसे जुटाई.

प्रलेख की दो प्रतियां भेजें जो कागज के एक ओर हाशिया छोड़कर टाइप की गई हों अथवा साफ-साफ लिखी हों. चित्र सफेद ड्राइंग कागज पर साफ-साफ बने होने चाहिएं. चित्रों की भी दो प्रतियां भेजें.

जिस लिफाफे में प्रलेख भेजा जाए उसके बाईं ओर मोटे अक्षरों में 'विज्ञान प्रदर्शनी/मेले में पुरस्कृत मॉडल' लिखें.

जिन प्रलेखों को प्रकाशन के लिए स्वीकार किया जाएगा उनकी सूचना संबद्ध शिक्षण संस्था/विद्यार्थी को उपयुक्त समय पर कार्यालय द्वारा स्वयं भेज दी जाएगी. अस्वीकृत रचनाओं के बारे में किसी प्रकार का पत्र व्यवहार नहीं किया जाएगा.

प्रलेख वरिष्ठ सम्पादक, 'आविष्कार', नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन, 20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र, कैलाश कालोनी एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110048 को भेजा जाना चाहिए.

□ हर अंक पठनीय और संग्रहणीय: 'आविष्कार' का हर अंक पहले से अधिक पठनीय और संग्रहणीय होता है. यह अत्यंत सराहनीय है. इस समय निश्चय ही 'आविष्कार' भारतीय भाषाओं में विज्ञान की शीर्षस्थ लोकप्रिय पत्रिका बन गई है. यदि आप उचित समझें तो सी० एस० आई० आर० की स्वर्णजयन्ती पर एक विशेषांक निकालें.

हार्दिक बधाइयों और शुभकामनाओं सहित. **[डा० रमेशदत्त शर्मा, प्रधान संपादक (हिन्दी), भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, प्रकाशन और सूचना संभाग, कृषि अनुसंधान भवन, पूसा, नई दिल्ली-110012]**

□ 'आविष्कार' का नवम्बर 1991 अंक देखने का सुअवसर मिला. सभी स्तंभ रुचिकर लगे. उत्कृष्ट प्रस्तुति के लिए साधुवाद.

'आविष्कार' विज्ञान की एक मृदुल शैली की एक उच्चस्तरीय पत्रिका है. यूं तो मुझे 'आविष्कार' के सारे स्तंभ रोचक एवं ज्ञानवर्धक लगते हैं परन्तु सर्वाधिक प्रिय है 'आविष्कार मंच'. नवंबर अंक में हमें 'भारत में पुरावनस्पति विज्ञान के जन्मदाता: बीरबल साहनी' शीर्षक लेख पढ़ने को मिला. लेख ज्ञानवर्धक और दिलचस्प लगा. इसके अलावा 'व्योमविहार' तथा 'प्रकाश का वैज्ञानिक सफरनामा' शीर्षक लेख भी काफी रोचक रहे.

आपसे अनुरोध है कि प्रायोजित प्रतियोगिता में पूछे गए सभी प्रश्नों का उत्तर भी प्रकाशित करें. **[अर्द्धेन्दु शेखर झा सुपुत्र श्री शोभा कान्त झा, टी एन बी कोलेजिएट स्कूल, नया बाजार, भागलपुर-812002].**

□ नए आविष्कार करने की प्रेरणा: मैं 'आविष्कार' का अत्यन्त आभारी हूं जिसे पढ़ कर नए-नए आविष्कार करने की प्रेरणा मिलती है. यदि ऐसी वैज्ञानिक पत्रिकाएं देश का प्रत्येक नागरिक पढ़ने लगे तो इस देश की उन्नति में कोई बाधा नहीं होगी.



मैंने 'आविष्कार' में प्रकाशित सभी युक्तियां बनाई हैं जैसे—ताली बजाने पर ऑन ऑफ होने वाला स्विच, सायरन, हारमोनियम, हाथ के इशारों पर सुर बदलने वाला हारमोनियम, संगीतमय घंटी, हेड फोन, क्रिस्टल सेट, वर्षा सूचक, सूर्योदय होने पर स्वतः बंद होने वाला बल्ब आदि. **[शोएब-उर-रहमान (संजू) सुपुत्र श्री एच० आर० रिजवी, मुहल्ला सोथा, बदायूं-243601 (उ० प्र०)]**

□ मैं 'आविष्कार' का 3 साल पुराना पाठक हूं. वैसे तो 'आविष्कार' का हर अंक अच्छा तथा ज्ञानवर्धक रहता है किन्तु सबसे अच्छा स्तंभ 'खेल-खेल में विज्ञान' तथा 'व्योमविहार' लगता है. 'आविष्कार मंच' भी अच्छा लगता है. 'आविष्कार' वास्तव में एक सस्ता, सुलभ तथा ज्ञानवर्धक साधन है. जब से मैंने 'आविष्कार' पढ़ना शुरू किया है तब से मेरे मन में भी आविष्कार करने की इच्छा हुई है. **[रूपेश वर्मा द्वारा श्री जे० पी० वर्मा, एडवोकेट, आधार बाल थाने के बाजू, मकान नं. जी/62, जबलपुर म० प्र०]**

□ डा० बीरबल साहनी: नवम्बर 1991 के 'आविष्कार' में आपने 'सूर्य के प्रकाश से चलने वाला रेडियो' और 'स्वयं बनाएं अपना एंटीना' दो युक्तियां बतलाई जो लाभप्रद रहीं. डा० बीरबल साहनी पर प्रकाशित लेख बहुत अच्छा लगा. 'विज्ञान साहित्य चर्चा' और 'व्योम विहार' सराहनीय थे. कृपया 'अपना वैज्ञानिक ज्ञान परखिए' में रसायन के प्रश्नों की संख्या बढ़ाने पर विचार करें. **[बिनोद कुमार सिंह, ग्राम-रामनगर, पो० जमालपुर, मुंगेर (बिहार)-811214]**

□ व्योमविहार: मैं 'आविष्कार' नियमित रूप से पढ़ता आ रहा हूं. 'आविष्कार' के हर लेख में रोमांच एवं ज्ञान भरा रहता है, इसका प्रत्येक अंक संग्रहणीय होता है.

'आविष्कार' में 'व्योमविहार' मुझे अधिक प्रिय लगता है. अंतरिक्ष विज्ञान निरंतर इतनी तीव्र गति से बढ़ रहा है कि आने वाले कुछ ही वर्षों में मनुष्य मंगल व अन्य दूसरे ग्रहों तक पहुंच जाएगा. आप किसी ऐसे लेख की व्यवस्था करें जिसमें अन्य ग्रहों संबंधी रोचक जानकारियां हो. आप कोई सरल दूरबीन बनाने का तरीका बताएं जिससे मैं तारे देख सकूं.

मैंने नवम्बर 1991 का ताजा अंक पढ़ा. पढ़कर बेहद खुशी हुई. मुझे इसमें 'व्योमविहार', 'आविष्कार मंच', 'अंतरिक्ष में भी लगेंगे उद्योग' व 'हम सुझाएं आप बनाएं' बेहद पसंद आया. परन्तु 'आविष्कार मंच' में मैं एक सुझाव देना चाहूंगा कि इसमें जो मानव-चालित जेनरेटर का सर्किट बताया गया है अगर इसमें साइकिल का पहिया एवं नाल चुंबक हटाकर सीधे 12 वोल्ट की बैटरी लगा दी जाए तो न तो मनुष्य को पहिया घुमाने की आवश्यकता पड़ेगी वरन बैटरी नाल चुम्बक के स्थान पर अच्छा कार्य करेगी.

मैं इलेक्ट्रोनिक में काफी रुचि रखता हूं और अब तक 'आविष्कार मंच' व 'हम सुझाएं आप बनाएं' में से काफी सर्किट बना चुका हूं. आपसे अनुरोध है कि कृपया ऐसे सर्किट छापा करें जिसके घटक आसानी से प्राप्त हो सकें. **[विनीत शर्मा, बी-93, राजनगर, सैक्टर-23, गाजियाबाद]**

□ **धुआं, आवाज तथा ईंधन-रहित मानव चालित जेनरेटर :** 'आविष्कार' का नवंबर 1991 अंक आशानुरूप पाया. 'प्रकाश का वैज्ञानिक सफरनामा' एवं 'अंकों-संख्याओं की आंग्ल संस्कृति' काफी प्रभावशाली व ज्ञानवर्धक रहे. इस पत्रिका का 'आविष्कार मंच' इस पत्रिका के नाम को सार्थक बनाता है तथा इस स्थायी स्तम्भ को महत्वपूर्ण स्थान भी प्राप्त है. परन्तु, खेद है कि पिछले कुछ अंकों में तथाकथित 'नए आविष्कारकों' के जो आविष्कार छपे हैं ऐसा लगता है कि अन्य पत्रिकाओं से उठा लिए गए हैं जैसे 'घरेलू सामानों से बनाइए हेडफोन' एवं 'स्वयं बनाएं अपना टेलीफोन एंटिना'. इस पत्रिका के स्तर को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि ऐसे लेखकों को प्रोत्साहन न दिया जाए.

इसी अंक के इसी स्तंभ में छपा प्रलेख 'धुआं-आवाज तथा ईंधन-रहित मानव-चालित जेनरेटर' बेबुनियाद लगता है. लेखक ने खोज से ज्यादा कल्पना की है. इसके आधार पर किसी प्रकार की वोल्टता प्राप्त करना असंभव है. लेखक के मतानुसार 12 वोल्ट डी सी उत्पन्न करने के लिए आर्मेचर को एक सेकंड में तीन बार घुमाना चाहिए. यह तभी संभव है जब इसके लिए उसी डायनेमो का उपयोग हुआ हो जो 50 चक्कर प्रति सेकंड की दर से घुमाने पर 240 वोल्ट का विभवान्तर उत्पन्न करता हो. पर लेख के दूसरे पैरा से स्पष्ट होता है कि इसमें प्रयुक्त डायनेमो 50 हट्र्ज, 240 वोल्ट की तुलना में काफी छोटा है अर्थात् दुपहिए गाड़ी में प्रयुक्त होने वाला डायनेमो, द्विध्रुवीय है. इस डायनेमो का चुम्बकीय क्षेत्र 240 वोल्ट के डायनेमो की तुलना में 20 गुना कम, आर्मेचर क्वायल में तार के लपेटनों की संख्या 20 गुन कम तथा स्वभावतः आर्मेचर क्वायल का क्षेत्रफल 20 गुना कम है.

इस प्रकार लेखक के डायनेमो से डी सी वोल्टता नहीं प्राप्त की जा सकती क्योंकि यहां 'कम्प्यूटर' की जगह 'स्लिप रिंगों' का उपयोग हुआ है. इसी अंक में 'आविष्कार मंच' स्तंभ में 'ईंधन रहित जेनरेटर सेटों के दो माडलों का संक्षिप्त विवरण' प्रस्तुत है जो वास्तव में ग्रामीण क्षेत्रों में लोकप्रिय हो गए हैं. शुरू में इस जेनरेटर सेट को दूरदर्शन कार्यक्रमों को देखने के लिए तैयार किया गया था, जो मानव-चालित था पर बाद में आवश्यक परिवर्तन करके पशु-शक्ति चालित बना दिया गया है. यह घरेलू आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए काफी है. लागत कम रखने के लिए दो-तीन परिवार मिलकर इसका उपयोग कर रहे हैं तथा वे लोग इसके लिए आविष्कार के आभारी हैं. **[रवि कान्त सुपुत्र श्री लालबहादुर शर्मा, तिनेरी, नदौल, मसौढ़ी, पटना (बिहार)]**

—'आविष्कार मंच'. क्योंकि आविष्कारकों का अपना स्तंभ है सावधानी रखने पर भी कभी-कभी इसमें ऐसे पत्रों का समावेश हो जाता है जिनमें पत्र लेखक अन्य पत्रिकाओं में प्रकाशित सामग्री का सहारा ले लेते हैं. इस प्रवृत्ति पर रोक लगाने के लिए एक जागरुक पाठक वर्ग का होना आवश्यक है जो फौरन इसका प्रतिवाद कर सके. आपका पत्र इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है. अपनी ओर से हम 'मंच' में भाग लेने वाले सभी आविष्कारकों से यह अनुरोध करना चाहेंगे कि वे कृपया हमें केवल ऐसे ही विचारों पर आधारित पत्र भेजें जिन्हें उन्होंने स्वयं विकसित किया है. इस स्तंभ का उद्देश्य समाज के नवोदित आविष्कारकों के आविष्कारों, नए विचारों, नई युक्तियों और प्रस्तावों को व्यावहारिक दृष्टि से और अधिक विकसित करने में व्यापक आविष्कारक समुदाय की वैचारिक प्रेरणा उपलब्ध कराने की चेष्टा करना है. अतः कृपया इसके स्वरूप को बनाए रखने में हमारी सहायता करें.

—वरिष्ठ संपादक

□ **वन्य जीव संरक्षण :** 'आविष्कार' के अक्तूबर 1991 के अंक में प्रकाशित 'वन्य जीव संरक्षणः विश्व की सांझी विरासत' का संरक्षण जैसे उत्कृष्ट लेख पर हार्दिक बधाई. आपने विलुप्त हो रहे जीव-जंतुओं पर व्यापक ध्यान दिया एवं जनसाधारण तक इस ज्ञान को पहुंचाया.

आपने लिखा है (पृष्ठ 453) कि पहाड़ी तीतर अंग्रेज शिकारियों की हविश का शिकार होकर विलुप्त हो गया. मैं प्रयोगात्मक रूप से जानता हूं कि यह खूबसूरत पक्षी विलुप्त नहीं हुआ है. इनकी संख्या कुमाऊं (कुमायूं) क्षेत्र में (अल्मोड़ा, पिथौरागढ़, नैनीताल) इतनी बढ़ गई है कि बिना प्रयास किए आसानी से देखा जा सकता है. मैं इसे लुप्तप्रायः भी नहीं मानता.

रोडोडैण्ड्रोन की कुछ जातियां लुप्त हो चुकी हैं. रोडोडैण्ड्रोन आरबोरियम कुमायूं से बहुत जल्दी विलुप्त होने वाला है. समय रहते यदि जलावनी लकड़ी की वैकल्पिक व्यवस्था न की गई तो दस साल बाद यह खूबसूरत फूलों वाला वृक्ष फिर कभी नहीं दिखाई देगा.

भारतीय साहित्य में महिला की खूबसूरती की तुलना जिस चकोर पक्षी से की जाती रही है यदि उसका अवैध शिकार न रोका गया तो वह बहुत जल्दी लुप्त हो जाएगा. अब यह बहुत प्रयास करने के बाद दिखाई देता है. **[ओम प्रकार जोशी, ग्राम-अमस्यारी, भिलकोट, अल्मोड़ा (उ० प्र०) 263635]**

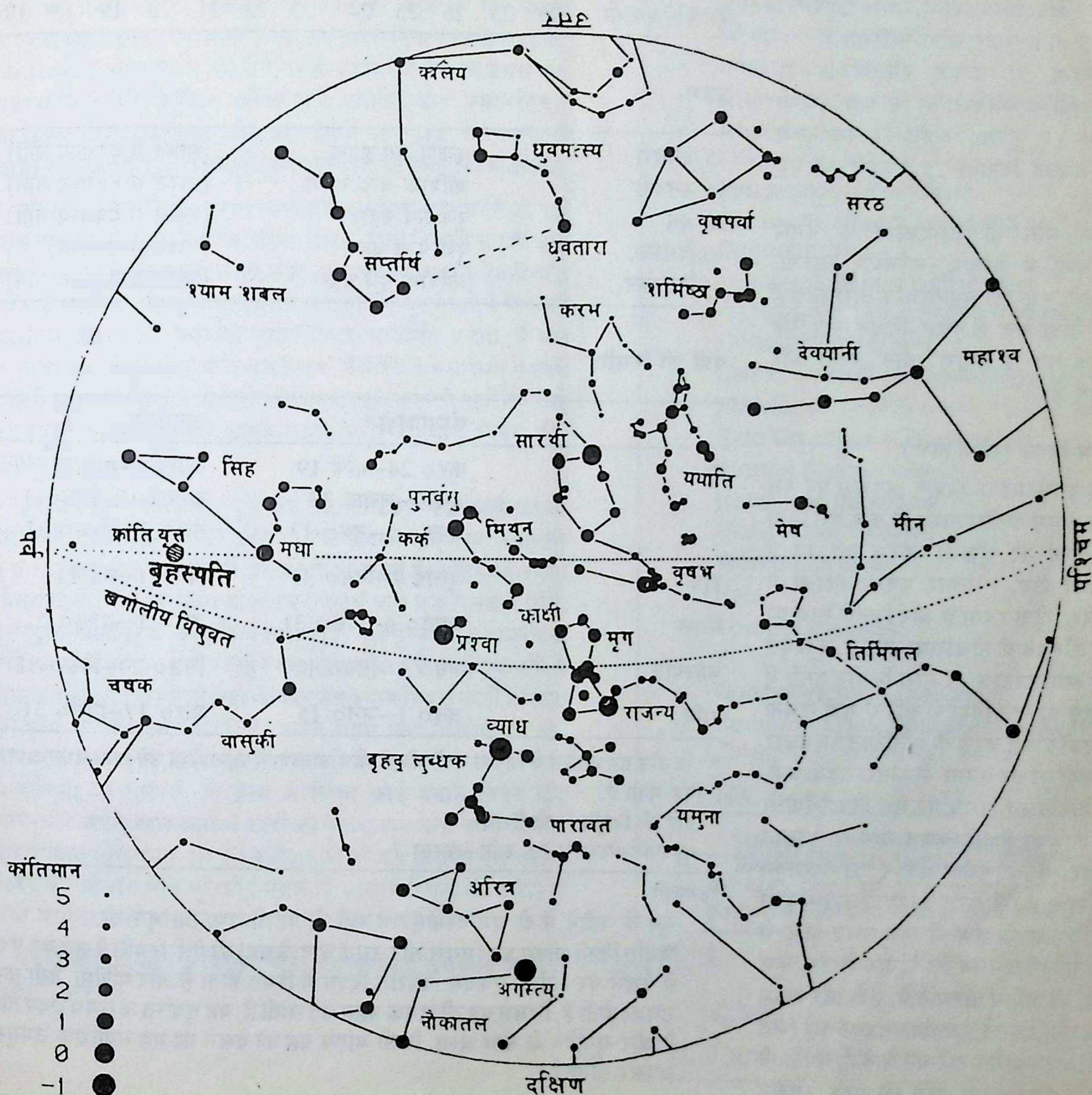
मैं 'आविष्कार' पढ़कर पत्रिका के प्रति इतना कृतज्ञ हो उठी कि एक कविता बना डाली, जो यों है:

लो, प्रतियोगिता में कूद पड़ी
आलस्य की निद्रा को तजकर
कस कमर और चुनौती स्वीकार
बढ़ चली अपनी 'आविष्कार'!
आंधी-तूफानों से लड़कर
आती हर कस्बा, ग्राम-नगर
स्तरीय सामग्री से पूरा भर
मन के कर ले जाती हर.
नई उमंगें दिल में भरकर
मंजिल पाना होगा सुखकर,
'आविष्कार' हो साथ अगर
मासिक मेरी प्रगति-पथ पर.

[सुनीता कुमारी सिंह, द्वारा श्री नीरज कुमार, ब्राह्मण टोली बगुसरा, पो० सेमरांव, जिला-भोजपुर (आरा)].

□ पीयूष पाण्डेय

नए वर्ष के इस प्रथम अंक में यहां वर्ष 1992 में होने वाली प्रमुख खगोलीय घटनाओं का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है ताकि व्योमविहारी पहले से ही इन्हें देखने का कार्यक्रम बना सकें. इस अंक में हम बहुचर्चित 'श्यामविवर' (ब्लैकहोल) नामक खगोलीय पिंडों की चर्चा की पहली कड़ी भी प्रस्तुत कर रहे हैं. हमेशा की तरह मानचित्र तो आपके मार्गदर्शन के लिए है ही.



□ संध्याकाश के हमारे मानचित्र की परिधि के अंदर केवल एक ग्रह है—बृहस्पति, सिंह राशि में पूर्वी क्षितिज के ऊपर उदय होता हुआ. दिनांक 24 फरवरी के बाद बुध ग्रह भी संध्याकाश में पश्चिमी क्षितिज पर दिखाई देना प्रारंभ होगा, तब वह मीन राशि में, मीन-कुंभ की सीमा के समीप स्थित होगा.

शेष सभी ग्रह उषाकाश में हैं. महीने के मध्य में आप उन्हें क्रमशः इस प्रकार पायेंगे—शुक्र धनु राशि में; मंगल धनु राशि में तथा शनि मकर राशि में स्थित हैं.

चन्द्रमा की कलाएं इस प्रकार हैं, अमावस्या 4 फरवरी, शुक्ल पक्ष अष्टमी दिनांक 11, पूर्णिमा दिनांक 18 तथा कृष्ण पक्ष अष्टमी दिनांक 25 फरवरी को पड़ रही है.

इस मास के संध्याकाश के प्रमुख आकर्षणों में सप्तर्षि, शर्मिष्ठा, सारथी, महाश्व, मृग तथा बृहल्लुब्धक तारामंडल हैं और राशि चक्र में वृषभ, मिथुन तथा सिंह विशेष रूप से हमारा ध्यान अपनी ओर खींचते हैं.

श्याम विवर (ब्लैक होल)

कुछ पाठकों के विशेष अनुरोध पर इस मास से हम खगोलशास्त्र के कुछ ऐसे पिंडों की चर्चा की श्रृंखला आरंभ कर रहे हैं जिनका प्रायः समाचार पत्र-पत्रिकाओं में उल्लेख होता रहता है और जिनके नाम को बड़े कौतुहल के साथ लिया जाता है. कुछ ऐसे जैसे खगोलशास्त्र का सारा निचोड़ इन्हीं में निहित हो. इन पिंडों के बारे में सही सूचना आपको प्रेषित करने के अतिरिक्त इस प्रकार के भ्रमों को दूर करना भी हमारा उद्देश्य है.

मेरा समय-समय पर ऐसे विद्यार्थियों से संपर्क हुआ है जो केवल नाम से आकृष्ट होकर केवल श्याम विवर का अध्ययन करना चाहते हैं, परंतु इन पिंडों को हमें तारों के विकास के क्रम में एक समग्र दृष्टि से देखना चाहिए. क्योंकि 'श्याम विवर' कुछ तारों की अंतिम परिणति है. सभी तारे श्याम विवर नहीं बनते. मृत्योपरांत कुछ तारे (जैसे सूर्य) श्वेत वामन तारे बन जाते हैं, सूर्य से भी कहीं अधिक भारी तारों की मृत्यु 'न्यूट्रॉन

वर्ष 1992 की प्रमुख खगोलीय घटनाएं

चन्द्रमा* की कलाएं

माह	जन०	फर०	मार्च	अप्रैल	मई	जून	जुलाई	अग०	सित०	अक्तू०	नव०	दिस०
अमावस्या	5	4	4	3	2	1,30	30	28	26	26	24	24
शु०प० अष्टमी	13	11	12	10	9	8	7	5	4	3	2	2
पूर्णिमा	20	18	18	17	16	15	15	13	12	11	10	10
कृ०प० अष्टमी	26	25	26	25	24	23	23	21	20	19	17	17

ग्रहण

5 जनवरी	कंकण सूर्य ग्रहण	(भारत में दृश्यव्य नहीं)
15 जनवरी	आंशिक चन्द्र ग्रहण	(भारत में दृश्यव्य नहीं)
30 जून	पूर्ण सूर्य ग्रहण	(भारत में दृश्यव्य नहीं)
10 दिसम्बर	पूर्ण चन्द्र ग्रहण	(भारत में दृश्यव्य)
24 दिसम्बर	आंशिक सूर्य ग्रहण	(भारत में दृश्यव्य नहीं)

ग्रहों की स्थिति

	संध्याकाश*	उषाकाश
बुध	फर० 24—मार्च 19 जून 9—जुलाई 20 अक्तू० 5—नव० 13	अप्रैल 4—मई 17 अगस्त 10—सित० 3 नव० 26—दिस० 31
शुक्र	जुलाई 7—दिस० 31	जन० 1—मई 11
मंगल	अक्तू० 6—दिस० 31	जन० 1—अक्तू० 5
बृहस्पति	जन० 1—सित० 1	सित० 29—दिस० 31
शनि	जन० 1—जन० 15	फर० 17—दिस० 31

* यदि कोई ग्रह सूर्यास्त के बाद से अर्ध रात्रि के बीच आकाश में प्रकट हो तो उसे हमने संध्याकाश का पिंड माना है.

ग्रहों की वियुति (अपोज़ीशन)

बृहस्पति→फरवरी 29; शनि→अगस्त 7

टिप्पणी

1. जून के महीने में दो अमावस्याएं पड़ रही हैं, पहली तथा 30 जून को.
2. वियुति किसी बाह्य ग्रह (मंगल और उसके बाद के ग्रह) की ऐसी स्थिति है जब वह पृथ्वी से देखने पर सूर्य के एकदम विपरीत दिशा में स्थित होता है और पूर्णिमा जैसी कला उसकी होती है, जिससे ग्रह की चमक बहुत बढ़ जाती है, वह सूर्यास्त के समय उदय होता है और सूर्योदय के साथ अस्त. किसी बाह्य ग्रह को देखने का यह सर्वाधिक उपयुक्त अवसर होता है.

तारों' के रूप में होती है तो एक सीमा से अधिक भारी तारों की मृत्यु के बाद की अंतिम अवस्था 'श्याम विवर' होती है.

अतः श्याम विवर के बारे में जानने से पूर्व यह जानना अधिक आवश्यक है कि तारे किस प्रकार जन्म लेते हैं, उनमें समय के साथ क्या-क्या परिवर्तन आते हैं, 'मृत्यु' से क्या तात्पर्य है तथा उसके बाद विविध तारे क्या बनते हैं और क्यों बनते हैं?

परंतु आपकी उत्सुकता शांत करने के लिए इस कड़ी में हम सीधे 'श्याम विवर' नामक पिंडों के कुछ गुणों की चर्चा करेंगे. यह तो हम कह ही चुके हैं कि ये कुछ तारों की मृत्यु के बाद की अवस्था है. इस अवस्था में तारे का पदार्थ इतना घनीभूत या सघन हो जाता है कि उसका गुरुत्वाकर्षण इतना बढ़ जाता है कि उस तारेसे निकल रहे प्रकाश की किरणें भी वापस मुड़कर उस तारे पर ही जा गिरती हैं यानि उससे एक प्रकाश किरण भी उत्सर्जित नहीं हो पाती. इसीलिए इन्हें 'श्याम विवर' या 'ब्लैक होल' कहा गया—जैसे कोई इतना गहरा कुआं कि उसमें जो डालो वह समा जाए. निश्चय ही किसी ऐसे पिंड को देखा नहीं जा सकता.

तो क्या 'श्याम विवर' मात्र एक सैद्धांतिक परिकल्पना भर है जी नहीं अब तक लगभग आधा दर्जन 'श्याम विवर' खोज निकाले गए हैं. इन्हें अप्रत्यक्ष रूप से ही पहचाना जा सका. कल्पना कीजिए कि किसी तारा युग्म में से एक तारा यदि श्याम विवर बन जाए तो दूसरे तारे से निकलने वाली तारा-वायु के कणों को श्याम विवर आकर्षित करेगा. वे कण अत्यंत तीव्र त्वरण के साथ 'श्याम विवर' में गिरेंगे. इस प्रक्रिया में एक्स किरणें निकलती हैं, ऐसे ही एक्स-किरण उत्सर्जित करने वाले तारों को खोजकर अप्रत्यक्ष रूपसे उनके साथी अदृश्य श्याम विवर की उपस्थिति पता चली.

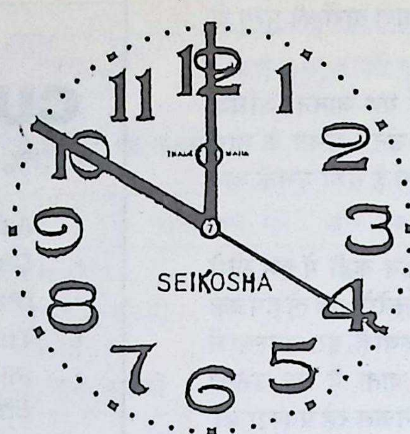
श्याम विवरों के विविध गुण जब सैद्धांतिक रूप से निकाले गए तो आरंभ में उन सिद्धांतों को ही संदेह की दृष्टि से देखा जाने लगा. सैद्धांतिक रूप से श्याम विवर किसी भी आकार के हो सकते हैं. अतिसूक्ष्म श्याम विवर जिसमें एक पूरे पर्वत के बराबर पदार्थ मात्र एक मूलकण (गैसे इलैक्ट्रॉन, प्रोटॉन) की आकृति में समा जाए. यदि पृथ्वी जैसी आकृति के पिंड को संपीड़ित कर श्याम विवर बनाया जाए तो पूरी पृथ्वी एक कंचे में समाहित हो जाएगी. इनसे बड़ा आकार उन श्याम विवरों का है जो तारों की मृत्यु के फलस्वरूप बनते हैं, उनके व्यास कुछ किलोमीटरों के आकार के रह जाते हैं, इनसे भी बड़े श्याम विवर संभव हैं जैसे यदि किसी मन्दाकिनी या गैलेक्सी के केन्द्र में स्थित कोई श्याम विवर यदि धीरे-धीरे अपने आस-पास के तारों का भक्षण कर उन्हें अपने में लील करता जाए तोलगभग 10-20 करोड़ तारों के भार के तुल्य ऐसे श्याम विवर का आकार मात्र पूरे सौर मंडल के आकार (प्लूटो की कक्षा) में समा जाएगा इन्हें अतिगुरु श्याम विवर कहा जाता है.

इनके बारे में अधिक विस्तृत चर्चा हम क्रमबद्ध तरीके से आगामी अंकों में करेंगे.

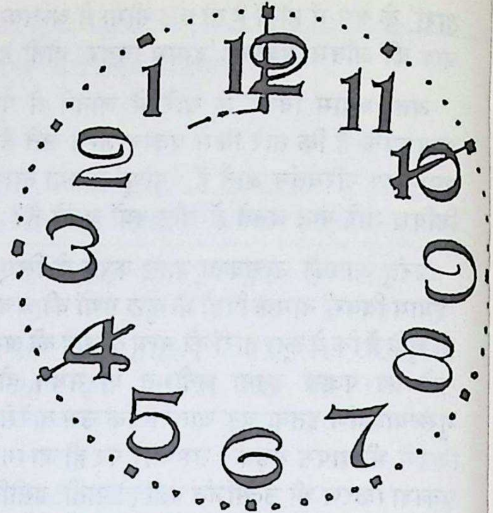
□

सामने और पीछे समय बताने वाली घड़ी

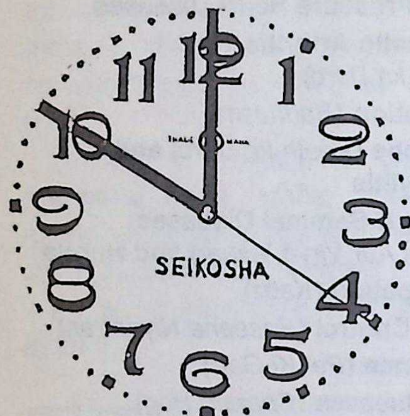
□ चाबी दी जाने वाली घड़ियों का स्थान इलेक्ट्रानिक घड़ियां लेती जा रही हैं. इनमें संख्या बदलने वाली तथा डायल पर सुइयों से समय दर्शाने वाली घड़ियां हैं. ये हाथ, मेज और दीवार घड़ी विभिन्न साइजों व डिजाइनों में उपलब्ध हैं. दीवार घड़ी को ही ले लीजिए इसकी प्लास्टिक की डिबिया 5x5x2 सेंटीमीटर की तरह की मशीन का भार सेल सहित लगभग 50 ग्राम है.



चित्र-3(क)



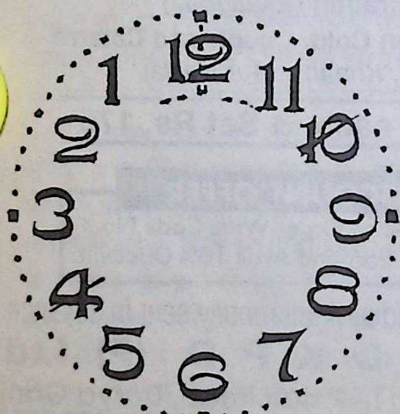
चित्र-3(ख)



चित्र-1

मैंने एक ऐसी घड़ी तैयार की है जो सामने और पीछे दोनों ओर से समय बताती है. ऐसी घड़ी बनाने के लिए 4 इंच व्यास का दक्षिणावर्त डायल और 4 इंच व 8 इंच भीतरी व बाहरी व्यासों का वामावर्त डायल बना लें, जैसा चित्र 1 व 2 में दिखाया गया है. आठ-आठ इंच व्यास के दो पारदर्शी शीशे लें और दोनों पर अलग-अलग उपरोक्त डायलों को चिपका दें. फिर दक्षिणावर्त डायल के बीच में सुराख करके उस पर घड़ी की मशीन कस दें. घंटे, मिनट और सेकेंड की सुइयों की लंबाई लगभग बराबर लें और इतनी रखें कि, की वामावर्त डायल की बाहर की परिधि तक आ जाए. घंटे की सुई को लाल और मिनट की सुई को काले रंग से रंग दें. फिर इन्हें दक्षिणावर्त डायल पर मशीन के ऊपर फिट कर दें. वामावर्त डायल को दक्षिणावर्त डायल के आमने-सामने किन्तु एक-दूसरे की प्रत्येक संख्या आपस में मिलाते हुए, इनके बीच में इतनी जगह रखें कि सुइयां आसानी से घूम सकें, किनारों के बीच में गुटके रख कर कस दें और चकोर डिबिया की तरह मशीन पर मोटे सफेद कागज की गोल चकती चिपका दें. यदि घड़ी टांगनी है तो ऊपर वाले गुटके पर हुक लगा दें. यदि [illegible] आदि पर रखनी है तो नीचे वाले गुटके का एक स्टैंड पर फिट कर दें. गुटकों पर पतली शीट मढ़ दें. घड़ी चित्र-3 की तरह दोनों ओर से दिखेगी. जिसे आप रेलवे प्लेट फार्म पर शैड के नीचे लटका सकते हैं और फ्रिज या कम ऊंची दीवार पर रख सकते हैं. इस तरह बनी यह घड़ी अपने एक ओर वामावर्त दिशा में और दूसरी ओर दक्षिणावर्त दिशा में समय दर्शाती है और दो घड़ियों की आवश्यकता को पूरी करती है.

सुलतान सिंह जैन
बी-36, शांति नगर, रुड़की (उ० प्र०)



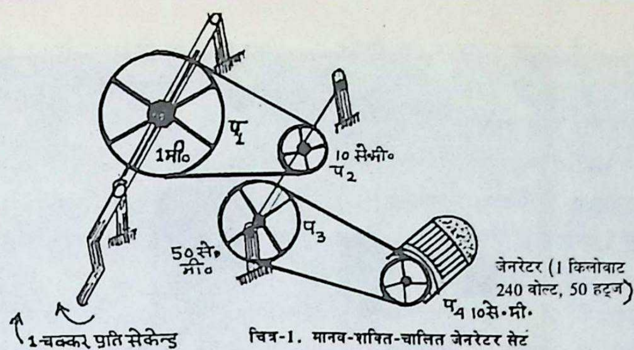
चित्र-2

ईंधन-रहित जेनरेटर सेट

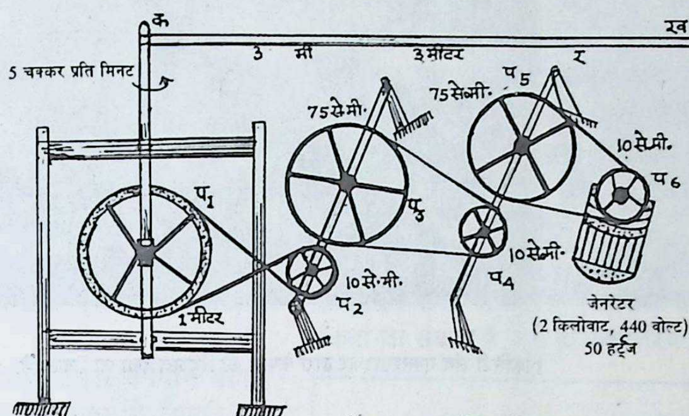
□ ग्रामीण क्षेत्रों में दूरदर्शन कार्यक्रमों को देखने तथा अन्य घरेलू उपयोग के लिए छोटे पैमाने पर विद्युत उत्पादन करने में सक्षम एक ईंधन रहित जेनरेटर सेट का विकास किया गया है. इसके दो माडल काफी लोकप्रिय हो गए हैं. पहला माडल मानव-शक्ति चालित है जो अल्प-अवधि के लिए हैं जबकि दूसरा माडल पशु-शक्ति चालित है जिससे लगातार 8-10 घंटे तक बिजली प्राप्त की जा सकती है.

मानव-शक्ति-चालित जेनरेटर सेट

इस सेट में $प_1$, $प_2$, $प_3$ तथा $प_4$ चार शैफ्टों का उपयोग हुआ है जो बेल्टों के अनुसार जुड़े हैं (चित्र-1). $प_1$, $प_2$, $प_3$ तथा $प_4$ का व्यास क्रमशः एक मीटर, 10 सेंटीमीटर, 50 सेंटीमीटर तथा 10 सेंटीमीटर है. $प_1$ के बदले चारा काटने के लिए प्रयुक्त होने वाली



चित्र-1. मानव-शक्ति-चालित जेनरेटर सेट



चित्र-2 पशु-शक्ति-चालित जेनरेटर सेट

मशीन के चक्के का भी उपयोग किया जा सकता है जो प्रायः हर ग्रामीण के पास होता हैं. सभी शैफ्ट क्षैतिज घूर्णन अक्षों पर जुड़े हुए हैं जिसमें $प_4$, डायनेमो के आर्मेचर से जुड़ा है. $प_2$ एवं $प_3$ एक ही क्षैतिज अक्ष से जुड़े हैं.

जब $प_1$ को एक चक्कर प्रति सेकंड घुमाया जाता है तब $प_4$ तथा इससे जुड़ा आर्मेचर 50 चक्कर प्रति सेकंड की रफ्तार से घूमता है. इसमें एक किलोवाट, 240 वोल्ट, 50 हर्ट्ज डायनेमो का उपयोग करना चाहिए तथा मेन्स के साथ स्टेबिलाईजर लगाना चाहिए.

पशु-शक्ति-चालित जेनरेटर सेट

इस सेट में 6 शैफ्टों का उपयोग किया गया है जिसमें $प_1$ का व्यास 1 मीटर, $प_3$ तथा $प_5$ का व्यास 75 सेंटीमीटर एवं $प_2$, $प_4$ तथा $प_6$ सभी का व्यास 10 सेंटीमीटर रखा गया है. शैफ्ट $प_1$ उर्ध्वाधर घूर्णन अक्ष पर कसा गया है तथा इस अक्ष से एक उत्तोलक क-ख जुड़ा है. यह तीन मीटर लम्बा लकड़ी का 10 सेंटीमीटर व्यास वाला खम्भा है. $प_3$ एवं $प_4$ एक ही क्षैतिज घूर्णन अक्ष पर जुड़े हैं तथा $प_4$ एवं $प_5$ दूसरे क्षैतिज घूर्णन अक्ष पर एक साथ जुड़े हैं. ख—सिरे पर पशु को जोत दिया जाता है जो $प_1$ को 5 चक्कर प्रति मिनट की रफ्तार से घुमाता है. इससे जुड़ा शैफ्ट $प_6$ अर्थात् डायनेमो का आर्मेचर एक मिनट में करीब 2900 चक्कर लगा लेता है. इसमें 2 किलोवाट, 240 वोल्ट, 50 हर्ट्ज डायनेमो का उपयोग सुविधाजनक रहता है (चित्र-2)

ये दोनों ही माडल काफी सस्ते तथा वैज्ञानिक हैं. वैज्ञानिक इस मायने में कि यह शोर रहित, ईंधन रहित एवं प्रदूषण रहित हैं. इसके द्वारा बेकार जा रही पशु-शक्ति का अच्छा उपयोग हो जाता है.

रविकान्त
द्वारा डा० अखिलेश कुमार,
बिहार राज्य विद्युत बोर्ड कालोनी,
हुडको एफ-50, शास्त्री नगर,
पटना, बिहार-800023.

'आविष्कार मंच' में आपका भी स्वागत है

क्या आपके मन में कोई आविष्कार कौंध रहा है ? ... या आपको अपने किसी नए विचार को साकार करने अथवा पूर्ण रूप देने में किसी अन्य के दिमागी सहयोग की जरूरत है ? कोई प्रौद्योगिक/तकनीकी जानकारी आपने विकसित की है जिसे आप दूसरों को देना चाहते हैं ? ... अथवा आप 'आविष्कार' के पाठक वर्ग से ऐसी ही कोई जानकारी चाहते हैं या अपनी तकनीकी उलझन सुलझवाने की अपेक्षा रखते हैं ? ... तो आइए 'आविष्कार मंच' में आपका स्वागत है.

इस स्तंभ के माध्यम से हम अपने पाठकों को एक ऐसा मंच प्रदान करते हैं जहां वे अपने द्वारा विकसित नए आविष्कारों, नई युक्तियों, नए विचारों और प्रस्तावों को और अधिक विकसित करने के उद्देश्य से उन्हें पत्रिका के व्यापक आविष्कारक पाठक समुदाय के समक्ष रख कर उनके विचारों और सुझावों का लाभ उठा सकते हैं. इस मंच के माध्यम से आप अन्य प्रबुद्ध लोगों को अपने आविष्कार से परिचित भी करा सकते हैं.

इस स्तंभ में प्रकाशित रचनाओं में वर्णित आविष्कार/विचार आदि के लिए आपके पास कोई सुधार/सुझाव हो तो उसे भी आप 'आविष्कार मंच' में भेज सकते हैं.

प्रकाशनार्थ भेजे जाने वाले प्रलेख संक्षिप्त होने चाहिएं. रेखाचित्र सफेद ड्राइंग कागज पर काली स्याही से साफ साफ बने हों. प्रलेख और रेखाचित्र की दो-दो प्रतियां भेजें. यह स्तंभ क्योंकि वास्तव में पाठकों के बीच वार्तालाप का माध्यम है, अतः इस स्तंभ में प्रकाशित रचनाओं पर पारिश्रमिक देने का प्रावधान नहीं है.

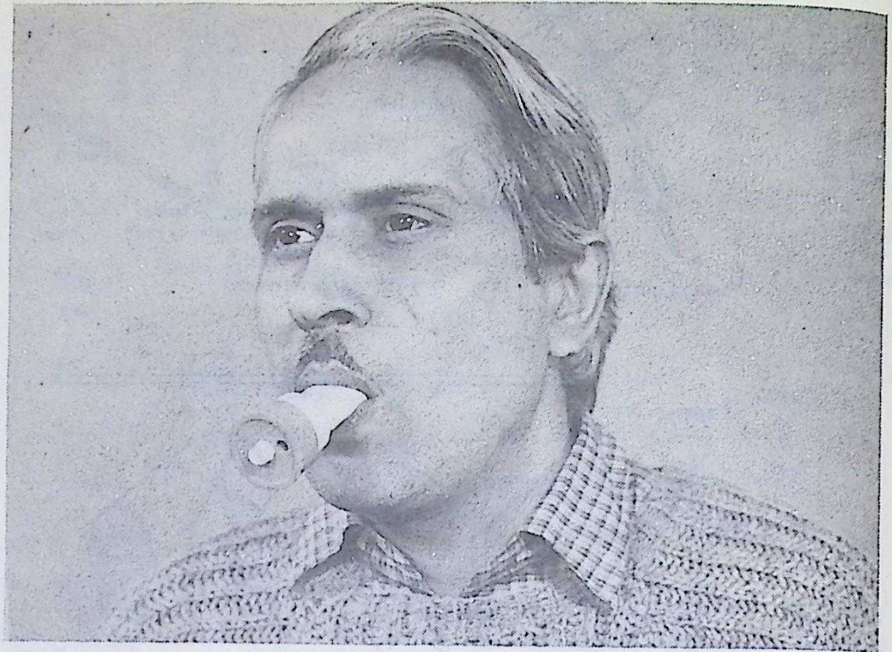
—वरिष्ठ सम्पादक

फेफड़े की कसरत के लिए एक उपयोगी यंत्र

जयपुर के सवाई मान सिंह अस्पताल के डा० वीरेन्द्र सिंह ने सांस लेने में होने वाली कठिनाइयों को दूर करने के लिए योग के प्राणायाम के सिद्धांतों के आधार पर एक यंत्र तैयार किया है. इसे 'पिंकसिटी लंग एक्सरसाइजर' नाम दिया गया है.

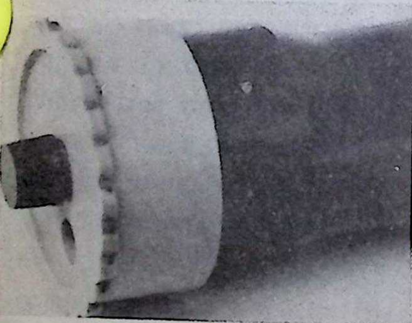
इस यंत्र द्वारा सांस बाहर निकलने की प्रक्रिया में लगने वाला समय सांस अंदर लेने में लगने वाले समय से ठीक दुगना रहता है. इसके इस्तेमाल से दमे तथा धूम्रपान से होने वाली सांस की बीमारी में मरीज अपने फेफड़ों की क्षमता बढ़ा सकते हैं.

डा० वीरेन्द्र सिंह के अनुसार इस यंत्र को तैयार करते समय प्राणायाम के सिद्धांतों को पूर्णतः ध्यान में रखा गया है. इसके इस्तेमाल से सांस लेने में काम आने वाली मांसपेशियों की क्षमता बढ़ने के अलावा श्वसन प्रक्रिया भी नियमित होने लगती है, जिससे रोगी को आराम मिलता है और धीरे-धीरे उसकी सांस की तकलीफ कम होने लगती है. दमे के उन रोगियों जिन्हें सांस की तकलीफ देर रात या प्रातः होती है, यदि इस यंत्र का उपयोग करें तो उन्हें बलगम निकालने में सुविधा होगी, जिससे रोगी पुनः सांस लेने की स्वस्थ प्रक्रिया की तरफ बढ़ सकेगा. स्वस्थ व्यक्ति भी इसका इस्तेमाल करके अपने फेफड़ों को मजबूत तथा स्वस्थ रख सकते हैं और भविष्य के लिए उसके फेफड़े पूर्ण स्वस्थ रहते हुए किसी भी सांस की बीमारी को नकारा करने के लिए सदैव तैयार रहेंगे. इस यंत्र के नित्य काम में लेने से पूरे श्वसन तंत्र की एक व्यवस्थित कसरत हो जाएगी तथा प्राणायाम से होने वाले सभी लाभ प्राप्त होंगे.



पिंकसिटी लंग एक्सरसाइजर द्वारा फेफड़ों को तंदुरुस्त रखा जा सकता है.

पिंकसिटी लंग एक्सरसाइजर



इस यंत्र से सुबह तथा शाम को भोजन से पहले करीब पन्द्रह मिनट कसरत करना पर्याप्त है. शुरू-शुरू में रोगी को कसरत करने में कठिनाई आ सकती है, परन्तु बाद में धीरे-धीरे उसके फेफड़े मजबूत होते चले जाएंगे और बलगम निकलने पर ज्यादा कसरत हो सकेगी.

यह तंत्र प्लास्टिक के एक खोखले पाइप का टुकड़ा है, जिसका एक सिरा बन्द रहता है. रोगी को इसे मुंह में डाल कर मुंह से ही सांस लेना पड़ता है. इस यंत्र के दूसरे छोर पर एक छोटा-सा छेद होता है. छेद छोटा होने से सांस जोर से खींच कर लेनी पड़ती है और दबा कर छोड़नी पड़ती है जिससे फेफड़ों पर दबाव पड़ता है. इस क्रिया से बंद हो गए फेफड़े धीमे-धीमे खुलने लगते हैं. यंत्र के दूसरे छोर पर प्लास्टिक की एक चकरी सी लगी होती है, जिसमें 7 विभिन्न नापों के छेद होते हैं. इसमें सबसे बड़े छेद बारह लीटर हवा प्रति सेकेंड और सबसे छोटे छेद से 02 लीटर हवा प्रति सेकेंड निकल सकती है. रोगी सबसे पहले बड़े छेद से सांस खींचता/छोड़ता है. धीरे-धीरे छेद को छोटा करता चला जाता है जिससे उसके फेफड़ों पर जोर बढ़ता है और वे मजबूत हो जाते हैं.

धूम्रपान से होने वाली फेफड़ों की बीमारियों में रोगियों तथा लकड़ी के चूल्हों पर काम करने वाली महिलाओं को इससे काफी राहत मिलेगी.

खेत में ही मिट्टी की जांच के लिए पी-एच मापक

केंद्रीय वैज्ञानिक उपकरण संगठन, चंडीगढ़ के वैज्ञानिकों ने मिट्टी की लवणता की जांच के लिए एक यंत्र विकसित किया है जिसकी सहायता से वैज्ञानिक तथा किसान खेत में ही मिट्टी के पी-एच का मापन कर सकते हैं.

यह पी-एच मापक अंकीय (डिजिटल) है. इसका इस्तेमाल किफायती तथा सरल है और बनावट मजबूत है. इसे आसानी से इधर-उधर लाया-ले जाया सकता है और इसे चलाने के लिए बिजली की जरूरत नहीं पड़ती है.

यह यंत्र 3 से 11 के बीच के पी-एच मान माप सकता है. इसमें विभिन्न मानों को दर्शाने के लिए अलग-अलग रंगों के सूचक लगे हुए हैं. लाल रंग 0-5.0 पी-एच को, पीला 5.0-6.5 पी-एच को, हरा रंग 6.5-8.5 पी-एच को और गुलाबी 8.5-14.0 पी-एच को दर्शाता है.

केन्द्रीय वैज्ञानिक उपकरण संगठन के वैज्ञानिकों के अनुसार इस यंत्र से दो तरह से मिट्टी का पी-एच मापा जा सकता है. एक विधि में मिट्टी के नमूने को पात्र में रख कर धीरे-धीरे पानी डालकर ऐसी लेई बनाई जाती है जो एक घंटे तक गीली रह सके. इसके बाद पी-एच मापने के लिए इसमें साफ किया गया धात्विक इलेक्ट्रोड डुबाते हैं.

पी-एच मापने की दूसरी विधि में यंत्र के निचले भाग को खेत की इष्टतम नमी वाली मिट्टी में घुसा कर पी-एच का पता लगाया जाता है.

इस युक्ति के दो प्रमुख उपयोग बताए जाते हैं. इसकी सहायता से मिट्टी की अम्लीय या क्षारीय प्रकृति का निर्धारण कर सकते हैं ताकि उसी अनुसार मिट्टी को उपचारित करके बदला जा सके. इसके अलावा यह युक्ति व्यर्थ भूमि को कृषि योग्य बनाने में भी उपयोगी है.

धान के कोढ़े का तेल-डीजल इंजन का ईंधन

देश में पेट्रोल, डीजल, पेट्रो-उत्पादों आदि की खपत बढ़ती जा रही है. इनके आयात में विदेशी मुद्रा का एक बहुत बड़ा हिस्सा खर्च हो जाता है. ऐसे में किसी परंपरागत ईंधन के किसी नए विकल्प का विकास या खोज महत्वपूर्ण है.

भारतीय प्रौद्योगिक संस्थान, मद्रास के वैज्ञानिकों ने धान के कोढ़े के तेल (राइस ब्रान आयल) और इसके एस्टर व्युत्पन्नों (डेरिवेटिब्ज) को डीजल इंजन के ईंधन के रूप में उपयोगी पाया है. धान के कोढ़े के तेल के उत्पादन में भारत का विश्व में दूसरा स्थान है. भारत का औसत वार्षिक उत्पादन 1,50,000 टन है जिसमें 15,000 टन खाद्य श्रेणी का बताया जाता है.

इन वैज्ञानिकों के अनुसार डीजल इंजनों की उष्मीय दक्षता और दहन की अवधि व धुआं छोड़ने जैसे दहन प्राचल अन्य वनस्पति तेलों के तुलनीय होते हैं. वैज्ञानिकों ने धान के कोढ़े के तेल के मेथिल एस्टर इस तेल से भी ज्यादा दक्षता का पाया है.

तेल की विस्कासिता हमेशा डीजल तेल से ज्यादा होती है. इसके कारण इसे डीजल इंजन की अंतक्षेपण प्रणाली में पंप करने में कई समस्याएं सामने आती हैं. तेल के उच्च आण्विक भार के कारण कार्बन-अवशेष की मात्रा ज्यादा होती है और धुआं भी ज्यादा उत्सर्जित होता है. इस तेल की सीटेन संख्या डीजल इंजन के लिए आवश्यक सीटेन संख्या से कम है.

धान के कोढ़े के तेल में आवश्यक परिवर्तन करके उपरोक्त समस्याओं को दूर किया जा सकता है. ऐसे ही एक परिवर्तन में तेल को 20 से 100 डिग्री सेल्सियस के तापमान में गर्म करते हैं जिससे यह हल्के तेलों में विघटित हो जाता है. तेल को मेथेनाल के साथ उबालने से मेथिल एस्टरों के तीन अणु प्राप्त होते हैं.

एस्टरों के कार्बन अवशेषों की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है जिससे धुआं भी कम मात्रा में उत्सर्जित होता है. एस्टरीकरण के बाद तेल की ऊष्णीय दक्षता डीजल तेल से ज्यादा हो जाती है.

जीवाणुओं से दीवारों का संरक्षण

फ्रांस के वैज्ञानिकों का अपने अनुसंधानों के आधार पर कहना है कि कुछ सूक्ष्म जीवों का मकानों की दीवारों को खराब होने से बचाने के काम में उपयोग किया जा सकता है.

एन आर डी सी द्वारा कैडिला को प्रौद्योगिकी हस्तांतरित

नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन (एन आर डी सी) द्वारा मैसर्स कैडिला लैबोरेटरीज लिमिटेड, अहमदाबाद को 'साइक्लोस्पोरिन-ए' के उत्पादन की प्रौद्योगिकी हस्तांतरित की गई है. इसके उत्पादन की प्रौद्योगिकी भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् की पांडिचेरि स्थित संघटक प्रयोगशाला-वेक्टर कंट्रोल रिसर्च सेंटर ने विकसित की है. साइक्लोस्पोरिन-ए शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को अस्थाई तौर पर निष्क्रिय करने वाली औषधि है जो अंग-प्रत्यारोपण में रोगी को दी जाती है.

यह एक महंगी औषधि है और अभी स्विट्जरलैंड की सैंडोज कम्पनी द्वारा एकाधिकार आधार पर उत्पादित की जाती है और देश में इसकी जरूरत पूर्णतया आयात द्वारा पूरी की जाती है. देश में गुर्दे आदि अंगों के सफल प्रत्यारोपण के मामलों की बढ़ती संख्या को देखते हुए देश में ही साइक्लोस्पोरिन-ए का उत्पादन उपयोगी व सामयिक लगता है.

अंग प्रत्यारोपण में शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को कुछ समय के लिए सुन्न करना पड़ता है ताकि शरीर बाहरी अंग यानी प्रत्यारोपित किए जाने वाले अंग को अस्वीकार न कर सके.

प्रौद्योगिकी हस्तांतरण संबंधी समझौते पर एन आर डी सी के प्रबंध निदेशक श्री एन० के० शर्मा और कैडिला के चीफ इग्जिक्यूटिव डा० टी० पी० गांधी ने हस्ताक्षर किए. इस अवसर पर डा० एस० पी० त्रिपाठी, महानिदेशक, भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद; श्री अशोक पार्थसारथी, अपर सचिव, वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान विभाग और डा० बी० धांडा, निदेशक वेक्टर कंट्रोल रिसर्च सेंटर भी उपस्थित थे.

पेरिस विश्वविद्यालय के भू-सूक्ष्मजीव प्रयोगशाला में किए गए अनुसंधानों से एक ऐसा खड़िया सदृश पदार्थ का उत्पादन संभव हुआ है जो इस काम के लिए उपयोगी पाया गया है. यह पदार्थ उपयुक्त पोषक माध्यम में प्राकृतिक उपज से निष्कर्षित जीवाणुओं को उगाकर प्राप्त किया गया है.

फ्रांसीसी ऐतिहासिक स्मारक अनुसंधान प्रयोगशाला के सहयोग से एक ऐतिहासिक स्मारक की दीवारों को इस पदार्थ से उपचारित करने पर आशाजनक परिणाम प्राप्त हुए हैं. इस पदार्थ के इस्तेमाल करने की प्रक्रिया में प्रथम चरण में पहले से धुली दीवार पर सर्वप्रथम निर्जर्म पोषक घोल का छिड़काव किया जाता है. इसके बाद कैल्सीकारक जीवाणुओं-बेसिलस स्यूडोमोनोस के वृद्धि माध्यम को दीवारों पर पोता जाता है. ये जीवाणु मृदा सूक्ष्म वनस्पतिजात में उत्पन्न होते हैं और मनुष्य में कोई रोग उत्पन्न नहीं करते हैं.

प्रक्रिया का दूसरा चरण रख-रखाव का है. इसमें दस दिन तक रोजाना दीवारों पर पोषक द्रव्य छिड़का जाता है.

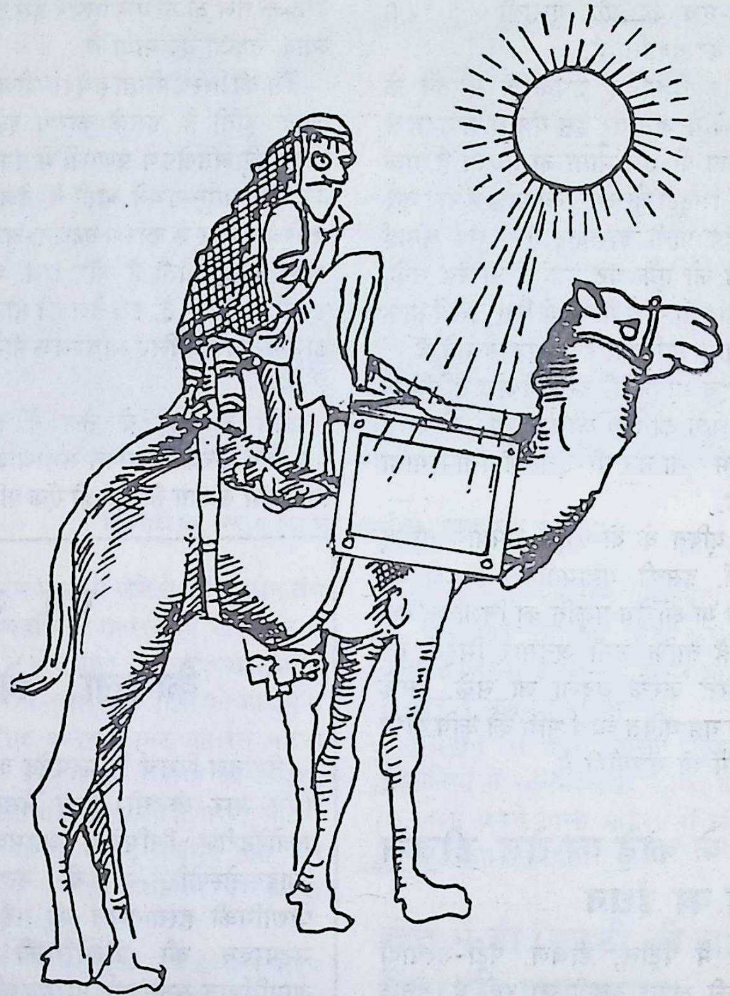
इस द्वि-चरणी प्रक्रिया के बाद कैल्सीकारक जीवाणुओं की वजह से दीवारों की सतह की अवशोषण क्षमता में पांच गुना तक की कमी पाई गई है.

वैज्ञानिकों के अनुसार इस प्रक्रिया को सिलिकन और रेजिन जैसी रासायनिक प्रक्रियाओं जितनी दक्षता का बना दिया गया है किन्तु फिर भी यह बात महत्वपूर्ण है कि इससे पत्थर को क्षति नहीं पहुंचती.

कैल्सीकारक जीवाणु पत्थर की सतह को फिर से खनिनीकृत करके और उसकी रन्धता कम करके पत्थर पर एक पतली सी जैव धातुमय झिल्ली चढ़ा देते हैं तथा पत्थर को प्रत्याकर्षी (वाटर रिपलेंट) बनाकर मूल माध्यम के संतुलन की रक्षा करता है.

यह तकनीक भवन निर्माण और भवन सामग्री के क्षेत्रों में इस्तेमाल की जा सकती है और इस प्रकार की दीवारों को खराब होने से बचाने और मजबूती प्रदान करने में उपयोगी है.

ऊंट फ्रिज



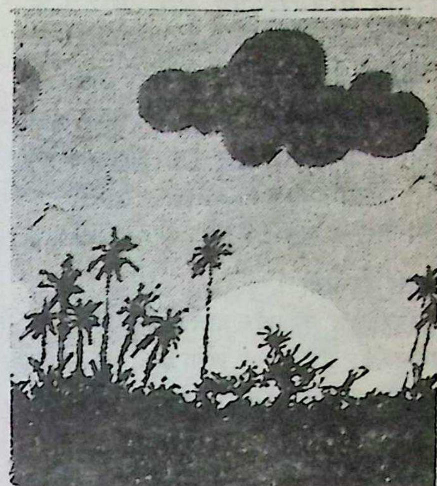
राजस्थान के दूर दराज के रेतीले इलाकों में चलने वाले—ऊंट पर सवार डाकघरों के बारे में तो आपने सुना ही होगा. अब नैप्स नामक एक स्कैन्डिनेवियाई कम्पनी ने एक ऐसा सौर-चालित फ्रिज विकसित किया है जिसे ऊंट की पीठ पर लाद कर आसानी से इधर-उधर लाया-ले जाया जा सकता है. दूर-दराज के रेगिस्तानी इलाकों में टीके व जीवन रक्षा दवाइयों को सुरक्षित पहुंचाने के लिए यह काफी उपयोगी हो सकता है.

विज्ञान–91

विज्ञान के झरोखे से गुजरा साल

□ डा० जगदीप सक्सेना

□ वर्तमान शताब्दी के अन्तिम दशक की शुरुआत अच्छी नहीं हुई. पश्चिम एशिया में ईराक और बहुराष्ट्रीय सेनाओं के बीच हुए भीषण खाड़ी युद्ध ने केवल जान-माल का ही नुक्सान नहीं किया, बल्कि धरती के पर्यावरण पर भी आघात किया. राष्ट्रीय स्तर पर साल की शुरुआत में हुई जनगणना ने बड़ी निराशाजनक तस्वीर प्रस्तुत की. प्राकृतिक आपदाएं भी साल भर कहर ढाती रहीं. कभी ज्वालामुखी विस्फोट, कभी समुद्री तूफान तो कभी भूकम्प. दुनियाभर में एड्स का कहर भी निर्बाध रूप से फैलता रहा. इन सब के बावजूद विज्ञान ने मानव को बहुत कुछ ऐसा दिया जो उसे रोगों, पीड़ाओं से राहत दिलाएगा. धरती के पर्यावरण को बचाने के लिए भी बहुत कुछ किया गया. कई सन्धियां हुईं, योजनाएं बनाई गईं और अभियान छेड़े गए. तेजी से बढ़ती आबादी पर काबू पाने के लिए भी प्रयास किए गए. भारत ने अंतरिक्ष में एक और दूर-संवेदी उपग्रह स्थापित किया. साथ ही एक नए ग्रह की खोज का भी दावा किया गया है. साल के लगभग अन्त में परमाणु ऊर्जा के एक सुरक्षित और सस्ते रूपकी खोज ने ऊर्जा संकट से ग्रस्त दुनिया को काफी राहत दी है. साल भर की सारी वैज्ञानिक उपलब्धियों को यहां समेटना संभव नहीं है, फिर भी कुछ प्रमुख वैज्ञानिक घटनाओं, उपलब्धियों आदि का ब्यौरा प्रस्तुत किया जा रहा है.



विज्ञान की दृष्टि से सन् 1991 का साल महत्वपूर्ण रहा. इस दौरान कई ऐसी घटनाएं घटीं, जिन्होंने विज्ञान की शक्ति पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया जैसे—खाड़ी युद्ध के दौरान पर्यावरण पर हमला, उत्तरकाशी के भूकम्प के बावजूद टिहरी बांध का निर्माण आदि. अमेरिका द्वारा उठाए गए पेटेन्ट के मसले ने वैज्ञानिक जगत में खलबली मचा दी है. इस साल देश में हुई जनगणना से कई चौंकाने वाले नतीजे मिले हैं. इन सबके बावजूद हमेशा की तरह विज्ञान ने इस साल भी कई मानव कल्याणकारी खोजें कीं हैं. उस जीन को पहचान लिया गया है जो लोगों में नशे की आदत डालता है. धरती को बचाने के लिए एक विशेष अभियान छेड़ा गया. अंतरिक्ष के क्षेत्र में कई उपलब्धियां हासिल हुईं.

पर्यावरण पर कहर

खाड़ी युद्ध के दौरान ईराक ने पर्यावरण को भी निशाना बनाया दो तरह से. एक तो फारस की खाड़ी में लाखों गैलन तेल बहा कर, और दूसरे कुवैत के लगभग साढ़े तीन सौ तेल कुओं में आग लगा कर. तेल बहाने से सागर में कोई 56 किलोमीटर लबा और 16 किलोमीटर चौड़ा तेल का दरिया बन गया. यह धीरे-धीरे हजारों वर्ग किलोमीटर तक फैल गया. इससे बहुत से समुद्री जीव-जन्तु तड़प-तड़प कर मरने लगे. अनेक खाड़ी देशों में पीने के पानी का अकाल पड़ गया. दुनिया के कई वन्य-जीवन संगठनों ने समुद्री पक्षियों को बचाने की कोशिश की, फिर भी सैकड़ों पक्षी तेल की भेंट चढ़ गए. इस वजह से हुए समुद्री जीवन के नुकसान को अभी तक आंका नहीं जा सका है.

ईराक ने युद्ध के दौरान कुवैत के तेल कुओं में आग लगा कर सारे आसमान को काले धुएं से भर दिया. अनुमान है कि इससे हर दिन कोई 30 लाख बैरेल तेल जला, जिससे हर महीने 5 लाख टन धुआं हवा में फैल गया. खाड़ी के आस-पास के क्षेत्रों में अंधेरा छा गया. इससे एशिया के मानसून के प्रभावित होने की आशंका हो गई. हालांकि देश के वैज्ञानिकों ने इसका खंडन किया. पर यह एक सच्चाई है कि खाड़ी से दो हजार किलोमीटर दूर कश्मीर में हिमालय पर काली बर्फ गिरी. कई जगहों पर तेल युक्त काली बर्फ की दो इंच मोटी पर्त पाई गई. मौसम पर इसका असर पड़ने की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता. मौसम वैज्ञानिकों के एक दल को इसका अध्ययन करने की जिम्मेदारी सौंपी गई थी. पर शायद अभी तक इसके कुल नतीजे सामने नहीं आए हैं.

युद्ध के दौरान पर्यावरण को निशाना बनाने की यह पहल एक खतरनाक चेतावनी है क्योंकि पर्यावरण देश की सीमाओं से बहुत परे भी प्रभावित होता है. इससे धरती का प्राकृतिक सन्तुलन गड़बड़ा जाता है. यह स्थिति भयावह हो सकती हैं. दुनिया के नेताओं और वैज्ञानिकों को एक साथ मिलकर इस बारे में सोचना होगा.

नया ऊर्जा स्रोत

खाड़ी युद्ध ने सारी दुनिया को महसूस करा दिया कि तेल अनंत नहीं है. ऊर्जा का यह स्रोत हमें कभी दगा दे सकता है. इसलिए सारी दुनिया में ऊर्जा के नए स्रोत को तलाशने की कोशिश और भी जोर-शोर से शुरू हो गई. नवम्बर के महीने में इस दिशा में एक क्रांतिकारी खोज हुई. यूरोपीय वैज्ञानिकों के एक दल ने परमाणु नाभिकों के संलयन से ऊर्जा प्राप्त कर दिखाई है. इस दल के अध्यक्ष हैं डा० पौल हेनरी रेबट. 'जेट' नाम से मशहूर इस परियोजना के अन्तर्गत एक रिएक्टर में सूरज से 20 गुना ज्यादा

तापमान परड्यूटीरियम और ट्रीटियम के नाभिकों के संलयन से ऊर्जा प्राप्त की गई.

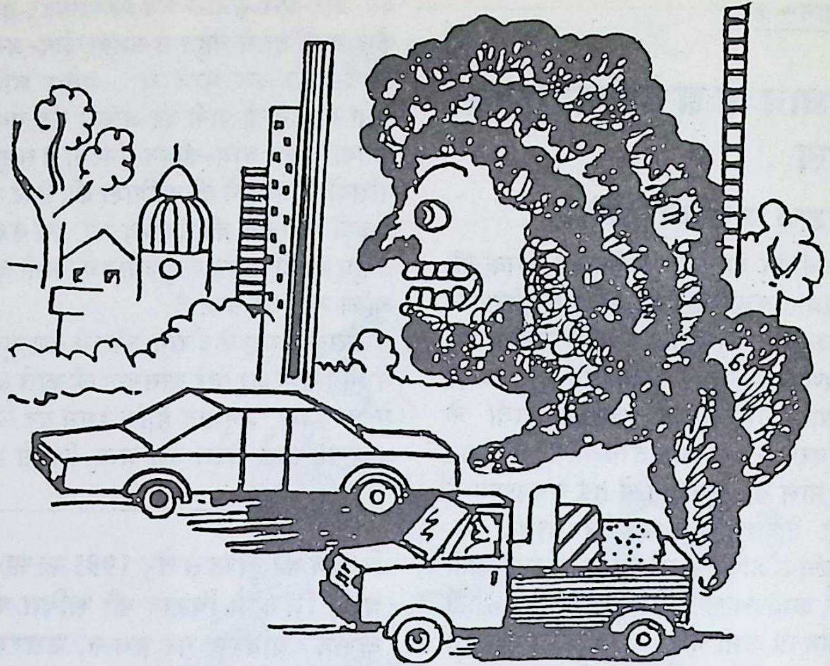
वैज्ञानिकों की राय में परमाणु ऊर्जा का यह रूप नाभिकों के विखंडन से प्राप्त होने वाली ऊर्जा की तुलना में सस्ता और संरक्षित है. पर इसे व्यावसायिक स्तर पर लाने में अभी कम से कम 50 साल और लगेंगे.

बढ़ती आबादी

इस साल की शुरुआत में ही भारत की जनगणना हुई. पता लगा कि इस समय हमारी आबादी 84 करोड़ से ऊपर है. तमाम प्रयासों के बावजूद पिछले दशक और वर्तमान जनगणना के बीच आबादी बढ़ने की दर में कोई खास अन्तर नहीं पाया गया. यह एक निराशाजनक तथ्य है, जो हमारे प्रयासों की कमियों को उजागर करती है. इस जनगणना से यह भी पता लगा कि देश में महिलाओं की तादाद तेजी से घटती जा रही है. कुछ विद्वानों की राय में इसके पीछे 'एम्नियोसेंटोसिस' (गर्भ में ही भ्रूण का लिंग पता करने की तकनीक) और दहेज-दाह का हाथ है. इस विषय पर विद्वानों के बीच मतभेद बना रहा.

आबादी की बाढ़ को थामने के लिए ग्यारह से ज्यादा देशों के वैज्ञानिक मिलकर गर्भ निरोधक टीकों का मूल्यांकन कर रहे हैं. उल्लेखनीय है कि इसमें दो टीके हमारे देश द्वारा विकसित किए गए हैं. इस साल हमारे देश में 'सेंटक्रोमन' नामक वनस्पति उत्पाद से गर्भ निरोधक गोली तैयार की गई है. इसे सप्ताह में केवल बार खाना पड़ता है. इसके इतर प्रभाव भी नहीं के बराबर हैं. आशा है 'सहेली' नाम से बाजार में बिकने वाली गोली लोकप्रिय होकर हमारी आबादी की समस्या को हल करने में मददगार होगी.





बढ़ती आबादी के साथ ही जुड़ी है शहरीकरण की समस्या. नगरों की आबादी तेजी से बढ़ती जा रही है. इस साल नई दिल्ली में हुए एक अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन में बताया गया कि इस शताब्दी के अन्त तक दुनिया की आधी आबादी शहरों में होगी इनमें से तेईस की आबादी एक करोड़ से ऊपर होगी और इनमें से तीन हमारे देश में होंगे. इस स्थिति पर रोक लगाना जरूरी है.

प्रदूषण पर रोक

विश्वव्यापी प्रदूषण की समस्या और बढ़ती आबादी के बीच गहरा रिश्ता है. साथ ही आधुनिकीकरण भी इसका दोषी है. इस साल भी दुनिया भर के वैज्ञानिक ग्रीनहाउस प्रभाव को लेकर चिन्तित रहे. दुनिया के कई हिस्सों में इस पर विचार-विमर्श हुआ और इसे रोकने पर सन्धियां हुईं. धरती के पर्यावरण की देखभाल के लिए 'केयरिंग फार द अर्थ' नाम से एक विशाल कार्य योजना शुरू की गई है. इसे 21 अक्तूबर, 1991 को एक साथ दुनिया के 60 से ज्यादा देशों में लागू किया गया. हमारा देश भी इसमें शामिल है. इसे तीन अंतरराष्ट्रीय संगठनो के सहयोग से तैयार किया गया है – 'वर्ल्ड वाइड फंड फार नेचर', विश्व प्रकृति संरक्षण संघ (आई०यू०सी०एन०) और संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यू०एन०आई०पी०) इस योजना में मानव के विकास और प्रकृति संरक्षण के बीच सन्तुलन कायम किया गया है.

संयुक्त राष्ट्र द्वारा एशिया के पर्यावरण सुधार के लिए एक 25 वर्षीय कार्य योजना तैयार की गई है. इसे 1 जून, 1992 को ब्राजील में होने वाले संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (विश्व पर्यावरण और विकास) में प्रस्तुत किया जाएगा.

इस साल एक ऐतिहासिक संधि भी हुई. अंटार्कटिका संधि के 26 देश इस बात पर सहमत हुए कि अंटार्कटिका में तेल और खनिजों की खोज पर पूर्ण प्रतिबंध रहेगा. कूड़ा-कचरा फेंकने और समुद्री प्रदूषण को फैलाने पर भी रोक लगाई गई. यह समझौता अगले पचास सालों तक लागू रहेगा. अंटार्कटिका के भविष्य को लेकर चिन्तित पर्यावरण वैज्ञानिकों को इससे भारी राहत मिली है.

हर साल मनाए जाने वाले दो अन्तरराष्ट्रीय दिवसों में इस बार पर्यावरण की चिन्ता दिखाई दी. विश्व स्वास्थ्य दिवस

पर आपदाओं को मुख्य विषय के रूप में चुना गया तो वृक्ष विश्व खाद्य दिवस के मुख्य विषय थे. इन दोनों ही मौकों पर दुनिया भर का ध्यान बिगड़ते पर्यावरण की ओर खींचा गया.

रोगों से लड़ाई

यह साल भी एड्स की भेंट चढ़ गया. एड्स पर काबू पाने की कोई कारगर तकनीक नहीं खोजी जा सकी. न ही कोई दवा बन सकी. अप्रैल 1991 में विश्व स्वास्थ्य संगठन के पास दुनिया के 162 देशों से 3,45,000 एड्स के रोगियों की खबर थी पर संगठन का विश्वास है कि रोगियों की असली तादाद 10 लाख से ऊपर है. संगठन का अनुमान है कि दुनिया के 5 लाख बच्चे भी एड्स से त्रस्त हैं.

एड्स के फैलाव में इंजेक्शन लगाने वाली सुई भी मददगार होती है. इस पर रोक लगाने के लिए 'डिस्पोजेबल सिरिंज' बनाई गई. पर हमारे जैसे गरीब देशों में हमेशा यह संभावना बनी रहती है कि यह सिरिंज भी कहीं दुबारा इस्तेमाल न की जाए. इस संभावना को खत्म करने के लिए पूर्वी इंग्लैंड में गन्बाय स्थित बेट्स मेडिकल रिसर्च कम्पनी के प्रमुख श्री बिल बेट्स ने 'डिस्पोजेबल सिरिंज' में लगी 'टेपर' व 'साकेट' प्रणाली की जगह एक 'पिस्टन' लगाया है. इस नई डिजाइन में एक बार सुई लगाने के बाद 'टेपर' निकाल दिया जाता है और सिरिंज इस लायक नहीं रहती कि इसे दुबारा सुई लगाने के लिए इस्तेमाल किया जा सके.

जल्दी ही मधुमेह के रोगियों के लिए इंसुलिन का इंजेक्शन लेना जरूरी नहीं रह जाएगा. ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा और इटली में मधुमेह के मरीजों में इंसुलिन पैदा करने वाली कोशिकाओं के सफल रोपण में कामयाबी मिली है. इन कोशिकाओं के रोपण से मधुमेह पीड़ित बच्चों को रोज इंसुलिन लेने की जरूरत नहीं पड़ेगी. इससे उन्हें बाद में होने वाले अंधेपन और गुर्दे की बीमारियों से भी बचाया जा सकेगा, पर पार्किन्सन रोग के मामले में 5 साल पहले मिली इस प्रकार की सफलता को इस साल वैज्ञानिकों ने नकार दिया. उनका मानना है कि आपरेशन के जोखिम को देखते हुए मिलने वाली सफलता की गारन्टी बहुत कम है.

सारी दुनिया में गुर्दे का प्रत्यारोपण जोर-शोर से जारी है. प्रत्यारोपण के बाद मरीज को 'साइक्लोस्पोरिन-ए' नामक दवा खानी पड़ती है. यह एक विदेशी दवा है, जिस पर 50 हजार रुपए से ज्यादा का खर्च बैठता है. हाल ही में हमारे देश के 'रोग वाहक नियंत्रण अनुसंधान केन्द्र' के वैज्ञानिकों ने इस दवा को बनाने की तकनीक विकसित कर ली है. इसे एक दवा बनाने वाली निजी कम्पनी को सौंप दिया गया है. उम्मीद है एक डेढ़ साल के अन्दर देशी दवा बाजार में होगी.

इसी तरह देश में ही हृदय का वाल्व बनाने की तकनीक विकसित कर ली गई है. इसे तिरुअनंतपुरम के श्री चित्रा तिरुनल संस्थान के वैज्ञानिकों ने विकसित किया है. मरीजों पर इसका परीक्षण किया जा रहा है. आशा है कि सन् 1992 के अन्त तक इस देशी वाल्व का व्यावसायिक उत्पादन शुरू हो जाएगा.

पर देश के लाखों नागरिकों को मलेरिया से बचाने के लिए हमें शायद मलेरिया का टीका बनाने की तकनीक विदेश से उधार लेनी पड़ेगी. बोगोटा के प्रतिरक्षा संस्थान के निदेशक डा० मैनुएल पट्टारोयो द्वारा विकसित दुनिया का पहला टीका सुरक्षित और कारगर पाया गया है. डा० मैनुएल इस तकनीक को भारत को मुफ्त देने के लिए तैयार हैं. एक आदमी को टीका देने का खर्च केवल 7 रुपए पड़ेगा. पांच किलोग्राम टीका दस लाख लोगों के लिए काफी रहेगा.

मच्छरों से फैलने वाला मलेरिया तो शायद काबू में आ जाए पर सैन्ड फ्लाई से फैलने वाले काला आजार रोग का क्या होगा? बिहार में तीस जिले इस रोग की चपेट में हैं. दस जिलों में तो यह रोग महामारी का रूप ले चुका है. अगस्त, 1991 तक बिहार में तीस हजार से ज्यादा लोग इस रोग की चपेट में थे, जिनमें से कोई 450 मौत की भेंट चढ़ गए. इस रोग पर काबू पाने के लिए विशेषज्ञों की एक समिति का गठन किया गया है. देखें क्या नतीजा निकलता है?



गर्भवती महिलाओं के लिए विज्ञान ने एक क्रांतिकारी खोज की है. पता चला है कि अगर गर्भवती महिलाएं नियमित रूप से फॉलिक ऐसिड विटामिन लें तो शिशु को शारीरिक विकृतियों से बचाया जा सकता है. कृत्रिम तौर पर लेने के अलावा फॉलिक ऐसिड का मुख्य स्रोत हरी सब्जियां हैं. पर ध्यान देने की बात यह है कि इन सब्जियों को जरूरत से ज्यादा न तो पकाया जाए और न ही बार-बार गरम किया जाए, क्योंकि ऐसा करने से उनमें मौजूद फॉलिक ऐसिड नष्ट हो जाता है.

अब गंजे लोगों के लिए खुशखबरी. पूर्वी इंग्लैंड में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने सिर के बालों के रोमकूपों को अलग करके उन्हें परखनली में उगाने की तकनीक विकसित की है. कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में इस अनुसंधान दल का नेतृत्व कर रहे डॉक्टर टेरेंस कीली के अनुसार, 'इस नई तकनीक से सिर पर बालों को उगाने के साथ बालों का झड़ना भी रोका जा सकता है.' परखनली में उगाए गए इन बालों की विकास दर 0.3 मिमी. प्रतिदिन

देखी गई. यह मानव सिर पर उगने वाले बालों की विकास दर के बराबर ही हैं.

एक खुशखबरी नेत्रहीनों के लिए भी है. अब वे कम्प्यूटर पर भी काम कर सकेंगे. नई दिल्ली के भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान और अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान के वैज्ञानिकों ने ऐसी तकनीक विकसित की है, जो पाठ्य सामग्री को कम्प्यूटर-स्क्रीन पर ब्रेल लिपि में बदल देती है. इसे नेत्रहीन एक युक्ति द्वारा पढ़ सकते हैं. इसकी कीमत भी कम है.

आनुवंशिकी के चमत्कार

आनुवंशिक इंजीनियरी की नई विधा लगातार मानव जीवन को बेहतर बनाने में लगी है. अमेरिका के दो वैज्ञानिक दलों ने अलग-अलग प्रयोग कर वह जीन खोज लिया है, जो मस्तिष्क में कोकेन संवेदी प्रोटीन से जुड़ा है. इससे यह समझा जा सकता है कि मस्तिष्क में कोकेन किस तरह असर करती है. वैज्ञानिकों की राय में यह खोज नशेड़ियों की लत छुड़ाने में मदद करेगी. इस खोज का श्रेय 'नेशनल इंस्टीट्यूट ऑन ड्रग एब्यूस' और 'ओरिगन हेल्थ साइंसेस यूनिवर्सिटी' के वैज्ञानिकों को है.

हमारे देश में जीन से जुड़ी एक ऐसी खोज हुई है, जो शायद देश की प्रोटीन कुपोषण की समस्या को हल करने में मददगार होगी. नई दिल्ली के भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों ने आनुवंशिक इंजीनियरी के उपयोग से खेसारी दाल की ऐसी किस्में तैयार की हैं, जिनमें तंत्रिका विष बी. ओ. ए. ए. की मात्रा मात्र 0.02 से 0.05 प्रतिशत है. वैज्ञानिकों की राय में विष की यह सूक्ष्म मात्रा हमारी सेहत पर कोई बुरा असर नहीं डालेगी. उल्लेखनीय है कि खेसारी दाल की आम किस्मों में इस विष की मात्रा 0.6 से 1 प्रतिशत तक होती है. इसका सेवन पैरों में लकवा पैदा करता है. इस दाल की खेती पर कानूनी प्रतिबन्ध है, फिर भी मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र के कुछ हिस्सों में इसकी खेती हो रही है.

आनुवंशिक इंजीनियरी की सफलता के कारण मानव कुदरत के साथ भी छेड़छाड़ करने लगा है. उसकी आकांक्षाएं बढ़ती जा रही हैं. इस साल इंग्लैंड में चूहों के साथ ऐसी ही छेड़छाड़ की गई. लंदन के 'नेशनल इंस्टीट्यूट आफ मेडिकल रिसर्च' के वैज्ञानिक डा. रोबिन लावेल-बैज ने चूहे के मादा भ्रूण में एक जीन डाल कर उसे नर चूहे में बदल दिया. पर यह नर नपुंसक है. वैज्ञानिकों की राय में वह दिन भी दूर नहीं जब सन्तानोत्पत्ति योग्य नर चूहा भी प्रयोगशाला में तैयार किया जा सकेगा. इस खोज के बड़े दूरगामी और खतरनाक परिणाम हो सकते हैं.

एक अन्य प्रयोग में चूहे के शरीर में कैंसर पैदा करने वाले जीन डालकर एक किस्म का नया चूहा ही तैयार कर दिया गया है. इसे वैज्ञानिक 'आन्कोमाउस' यानी कैंसरमूषक कह रहे हैं. इसका पेटेन्ट भी करा लिया गया है. इसे महंगे दामों पर बेचा जाएगा. कैंसर पर खोज कर रहे वैज्ञानिकों के लिए यह चूहा

सन् '91 के नोबेल पुरस्कार

इस साल के विज्ञान से जुड़े नोबेल पुरस्कारों में आश्चर्यजनक रूप से अमेरिका का आधिपत्य दिखाई नहीं पड़ा. चिकित्सा विज्ञान का पुरस्कार जर्मनी के वैज्ञानिकों को मिला तो रसायन विज्ञान का स्विट्जरलैंड के वैज्ञानिक को. भौतिक विज्ञान का पुरस्कार फ्रांस के वैज्ञानिक को दिया गया.

चिकित्सा विज्ञान के नोबेल पुरस्कार में 49 वर्षीय डा० बर्ट साकमैन और 47 वर्षीय डा० इर्विन नेहर ने साझेदारी की. डा० साकमैन हीडेलबर्ग स्थित 'मैक्स प्लैंक इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल रिसर्च' में कोशिका कार्यिकी विभाग के निदेशक हैं जबकि डा० नेहर गोटेंजेन स्थित 'मैक्स प्लैंक इंस्टीट्यूट फॉर बायोफिज़िकल केमिस्ट्री, में झिल्ली जैवभौतिकी विभाग के अध्यक्ष हैं. ये दोनों वैज्ञानिक पहले एक साथ काम कर चुके हैं.

डा० साकमैन और डा० नेहर ने शरीर में आयनों के प्रवाह पर मौलिक खोज की है. इन्होंने एक अत्यंत संवेदी तकनीक विकसित की है, जो एकतरफा या एकल आयन प्रवाह की प्रक्रिया को समझने और इस पर नियंत्रण पाने में सफल हो सकती है. इन वैज्ञानिकों ने एसिटिलकोलीन द्वारा नियंत्रित होने वाले प्रवाह की कार्य पद्धति स्पष्ट की. यही वह अणु है, जो तंत्रिका संदेशों को पूरे शरीर में फैलाता है. इस प्रक्रिया की मानव शरीर की क्रियाविधि को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका होगी.

रसायन विज्ञान का नोबेल पुरस्कार 58 वर्षीय रिचर्ड आर० अर्नस्ट को दिया गया है. डा० अर्नस्ट ने 'न्यूक्लियर मैग्नेटिक रेसोनेंस' (एन० एम० आर०) तकनीक को परिष्कृत करके कई गुना अधिक शक्तिशाली बना दिया है. उल्लेखनीय है कि एन० एम० आर० की खोज भी स्विट्जरलैंड के ही वैज्ञानिकों ने की थी और सन् 1952 में नोबेल पुरस्कार भी जीता था. अर्नस्ट ने इस दिशा में दो महत्वपूर्ण खोजें की हैं. पहली को फूरियर ट्रांसफार्म एन० एम० आर० कहा जाता है. इसकी मदद से अब मिनटों में विश्लेषण संभव है. दूसरी खोज द्विआयामी (2-डी) एन० एम० आर० की है, इनकी मदद से एन० एम० आर० एक बेहद शक्तिशाली भौतिक-रासायनिक तकनीक बन गई है.

भौतिक विज्ञान का नोबेल पुरस्कार 58 वर्षीय पियरे-जिलेस दे 'जीनेस को मिला है. प्रो० दे 'जीनेस ने भौतिक विज्ञान के कई पहलुओं पर उल्लेखनीय काम किया है और ढेर सारे पुरस्कार-सम्मान प्राप्त किए हैं. डा० दे 'जीनेस को नोबेल पुरस्कार द्रव क्रिस्टल और पॉलीमर संरचना पर खोज करने के लिए मिला है. इन्हीं की खोज के कारण इलेक्ट्रानिक घड़ियां, कैलकुलेटरों आदि में चमकते हुए अंक दिखाई देते हैं.

बड़े काम का है.

इसी साल अमेरिका ने दावा किया है कि अगर उनके वैज्ञानिकों द्वारा विकसित की गई प्रक्रिया को आधार बना कर कोई और तकनीक विकसित की जाती है तो अमेरिका को रायल्टी देनी होगी यानी अगर हमारे वैज्ञानिक किसी अन्य प्राणी में भी चूहों वाले उपरोक्त प्रयोग करने में सफल होते हैं तो भी उन्हें रायल्टी का भुगतान करना होगा और यह खोज मौलिक रूप से उनकी नहीं मानी जाएगी. यह दावा वैज्ञानिक और तकनीकी विकास में एक बड़ी बाधा बन सकता है. वैज्ञानिक जगत में इसे लेकर काफी चिन्ता है.

अन्तरिक्ष की ऊंचाइयां

इंग्लैंड के खगोल वैज्ञानिकों के एक दल ने एक नए ग्रह की खोज करके सारी दुनिया को चकित कर दिया है. मैनचेस्टर यूनिवर्सिटी के ये वैज्ञानिक हैं—एन्ड्र लिने, मैथ्यू बेल्स और सेटनम शिमार. यह ग्रह हमसे 25 हजार प्रकाश वर्ष दूर स्थित तारे की परिक्रमा कर रहा है. यह तारा हमारे सूर्य जैसा नहीं है. यह एक न्यूट्रान तारा है, जिसे पलसार कहा जाता है. ग्रह का द्रव्यमान धरती की तुलना में 10-15 गुना ज्यादा है. यह दस करोड़ किलोमीटर की दूरी पर तारे की परिक्रमा कर रहा है. नया ग्रह अपने तारे का एक चक्कर छह महीने में पूरा कर लेता है.

इस साल ग्यारह जुलाई को हुआ पूर्ण सूर्य ग्रहण भी एक उल्लेखनीय वैज्ञानिक घटना थी. हालांकि इसे भारत में नहीं देखा जा सका, इसके दौरान सूरज 6 मिनट 58 सेकंड के लिए पूरी तरह छिप गया. इतना लम्बा सूर्य ग्रहण अब सन् 2132 से पहले नहीं दिखाई देने वाला. इसलिए इस सूर्य ग्रहण में खगोल वैज्ञानिकों ने भारी दिलचस्पी दिखाई. इस अद्भुत घटना का नजारा देखने के लिए मैक्सिकों में एक लाख से ज्यादा लोग इकट्ठे हुए.

इस साल 29 अगस्त को भारत ने अपना दूसरा दूर संवेदी उपग्रह 'आई० आर० एस-1 बी' अन्तरिक्ष में स्थापित किया. इसे सोवियत रूस के बाइकानूर अन्तरिक्ष अड्डे से 'वॉस्टॉक' राकेट के जरिए छोड़ा गया है. पृथ्वी से 904 किलोमीटर की ऊंचाई पर स्थापित यह उपग्रह हर रोज धरती की 14 बार परिक्रमा करेगा. इसका वजन 970 किलोग्राम है. 'आई० आर० एस-1 बी' की डिजाइन और निर्माण का काम पूरी तरह से भारतीय वैज्ञानिकों ने किया है. आशा है कि अगला दूर संवेदी उपग्रह भारतीय भूमि से ही छोड़ा जाएगा. भारतीय अन्तरिक्ष कार्यक्रम को इस साल एक दुखद घटना भी झेलनी पड़ी. ए० एस० एल० वी० का एक महत्वपूर्ण घटक गायब हो गया और बाद में अचानक मिल भी गया. यह एक गम्भीर घटना है. इसकी जांच के लिए कमेटी बैठा दी गई है.

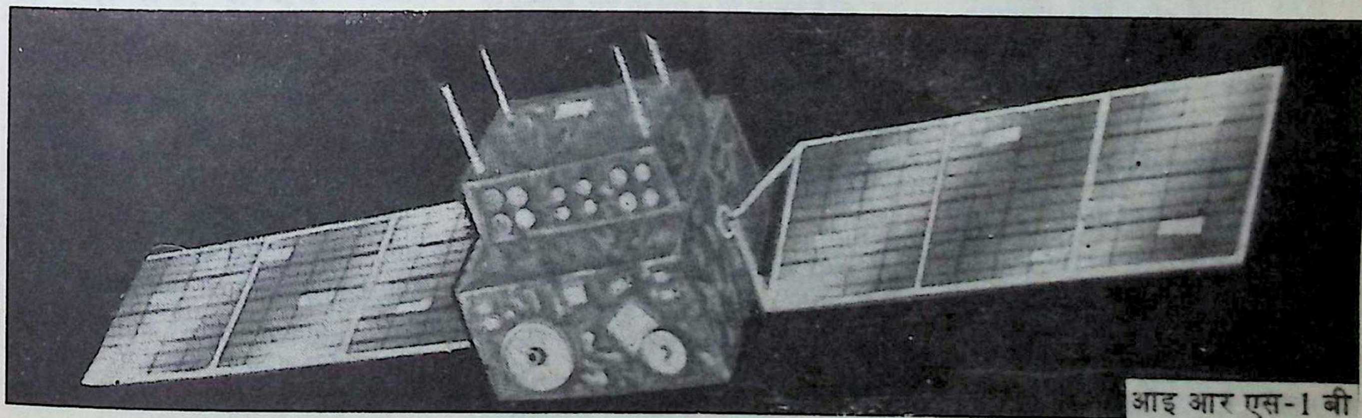
यूरोपीय अन्तरिक्ष संगठन (ई० एस० ए०) के वैज्ञानिकों ने इस साल एक अभूतपूर्व काम कर दिखाया. संगठन के सबसे बड़े दूरसंचार उपग्रह 'ओलिम्पस' को लगभग मृत घोषित कर दिया गया था. यह नियंत्रण से बाहर था और इसके कई पुर्जों ने काम करना बन्द कर दिया था. वैज्ञानिकों ने लगातार चौसठ दिनों तक हजारों आदेश (कमांड) प्रसारित करके इसे फिर से जीवन दिया. दूसरी ओर अमेरिकी अन्तरिक्ष शटल 'अंटलांटिस' को कुछ खराबी के कारण निर्धारित समय से पहले ही धरती पर वापस बुलाना पड़ा.

प्राकृतिक आपदाएं

इस साल प्राकृतिक आपदाओं ने भी कहर ढाया, खास तौर से ज्वालामुखी ने. दुनिया के कई हिस्सों में ज्वालामुखी विस्फोट हुए. नौ जून, 1991 को फिलीपीन के 'माउंट पिनातुवो' का विस्फोट सबसे ज्यादा उग्र रहा. इससे करोड़ों रुपयों का नुकसान हुआ. दो दिन बाद ही जापान का उंजेन ज्वालामुखी शिमाबारा की घाटी तक लावा फेंकने लगा. इसके बाद हमारे देश के अंडमान स्थित दो ज्वालामुखियों में से एक आग फेंकने लगा. बैरन द्वीप का यह ज्वालामुखी 188 साल बाद सक्रिय हुआ है. इससे जान-माल का तो कोई नुकसान नहीं हुआ, पर अंडमान के पर्यावरण को खतरा पैदा हो गया है.

अक्तूबर के महीने में फिलीपीन को समुद्री तूफान ने भयंकर रूप से घेर लिया. इसमें कम से कम छः हजार लोगों की जान गई. आर्थिक तबाही अलग से हुई. पूर्व चेतावनी के साथ कारगर उपाय करके इसे कम किया जा सकता था.

बीस अक्तूबर को तड़के 2 बजकर 53 मिनट तक उत्तरकाशी में आए भूकम्प की काली छाया अभी गढ़वाल क्षेत्र में मंडरा रही है.. इसमें कम से कम 1500 लोगों की जानें गईं और हजारों बेघर हो गए. भूकम्प के


आइ आर एस-1 बी

तुरन्त बाद टिहरी बांध के निर्माण का मसला फिर उठ खड़ा हुआ. वैज्ञानिकों ने एक बार फिर बांध न बनाने की जोरदार अपील की है, पर सरकार इससे सहमत नहीं दिखाई देती. फिर भी विचार-विमर्श चल रहा है और साथ ही टिहरी बांध का निर्माण भी.

उल्लेखनीय है कि संयुक्त राष्ट्र द्वारा वर्तमान दशक को 'प्राकृतिक आपदा घटाओ दशक' घोषित किया गया है.

खास बातें

इस साल भारत के हिस्से में तीन विशेष अन्तरराष्ट्रीय पुरस्कार-सम्मान आए. टाटा आधारभूत अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिक प्रोफेसर गोविन्द स्वरूप को लंदन की रॉयल सोसायटी ने फैलो चुना. डा. स्वरूप यह सम्मान पाने वाले तीसरे भारतीय खगोल वैज्ञानिक हैं. विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के लिए राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद के निदेशक डा. नरेन्द्र के० सहगल को कलिंग पुरस्कार से सम्मानित किया गया. इसमें रोमानिया के एक वैज्ञानिक ने साझेदारी की है. यूनेस्को द्वारा दिया जाने वाला यह पुरस्कार पूरे 28 साल बाद किसी भारतीय को दिया गया है. इससे पहले सन् 1963 में डा० जगजीत सिंह ने यह पुरस्कार जीता था. नई दिल्ली के 'नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ इम्यूनोलॉजी' के निदेशक डॉ० जी० पी० तलवार को फ्रांसीसी सरकार का सर्वोच्च पुरस्कार प्रदान किया गया. यह पुरस्कार पहली बार किसी भारतीय वैज्ञानिक को मिला है.

इसी साल भारत में पुरावनस्पति विज्ञान के जनक डा० बीरबल साहनी की जन्म शताब्दी थी. इस महत्वपूर्ण घटना को संचार माध्यमों में पर्याप्त जगह नहीं दी गई. विज्ञान पत्रिकाओं के अलावा इक्का-दुक्का पत्र-पत्रिकाओं ने ही डा० साहनी की सुध ली. विज्ञान पत्रिकाओं में सबसे उल्लेखनीय रही विज्ञान परिषद्, प्रयाग द्वारा प्रकाशित होने वाली 'विज्ञान' पत्रिका. इसने पूरा एक अंक डा० साहनी को समर्पित किया. रेडियो पर कुछ कार्यक्रम हुए, पर दूरदर्शन खामोश रहा. यह स्थिति चिंताजनक है.

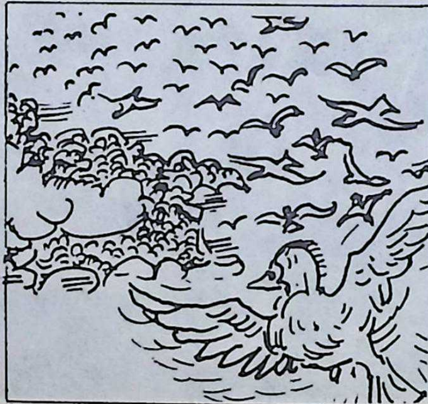
इसी साल बिजली के आविष्कारक कहे जाने वाले वैज्ञानिक माइकेल फैराडे की दूसरी जन्म शताब्दी थी. इसे भी केवल विज्ञान पत्रिकाओं में ही जगह मिल पाई.

इस साल की शुरुआत में ही दो नोबेल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिकों का निधन हो गया. 3 जनवरी को जॉन बार्डीन ने विदा ली और 7 फरवरी को साल्वाडोर ई० लूरिया चल बसे. डा० बार्डीन को ट्रांजिस्टर की खोज के लिए जाना जाता है. उन्हें भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में दो बार नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था. डा० लूरिया को चिकित्सा विज्ञान के लिए नोबेल पुरस्कार मिला था.

इस तरह खट्टे-मीठे अनुभवों को समेटे सन् 1991 ने विदा ली. आम आदमी आशा भरी निगाहों से सन् 1992 की ओर देख रहा है. देखें इस वर्ष में विज्ञान उसके लिए क्या कर पाता है. □

पक्षी प्रवास-एक दिलचस्प घटना

□ **दिव्या श्रीवास्तव**



□ इन्सान हो, जीव जन्तु हो या पक्षी, सभी दिल बहलाने के लिए यात्राएं करते हैं. किन्तु पक्षी प्रवास को मनुष्य ने सदा आश्चर्य से देखा है. कैसे पहुंच जाते हैं यह छोटे-छोटे पक्षी उड़कर प्रतिकूल परिस्थितियों में भी एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप जितनी दूरियों तक. और फिर परिस्थितियां ठीक हो जाने पर वापस भी आ जाते हैं.

बहुत-सी चिड़ियां जैसे वुड कॉक, बुश चॉट, आदि गर्मियों में मैदानी भागों से उड़कर हिमालय के ढलानों पर चली जाती हैं और सर्दियों में पुनः मैदानी भागों में लौट आती हैं. इसके विपरीत साउथ पैटगोनिया जैसी चिड़िएं गर्मियों में पहाड़ों से मैदानों में और सर्दियों में पुनः मैदानों में चली आती हैं. यद्यपि चिड़ियों के उड़ने की सीमा सभी प्रजातियों के अनुसार अलग-अलग होती है परन्तु किसी निश्चित वर्ग के पक्षी के लिए यह सीमा करीब-करीब एक सी होती है. सभी प्रवासी पक्षी एक निर्धारित रास्ते से होते हुए जाते हैं.

अधिकतर चिड़ियां मौसम बदलने के साथ ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाती हैं. रास्ते में पड़ने वाले पहाड़, नदियां, घाटियां उन्हें रास्ता पहचानने में सहायक होते हैं. इन पक्षियों के भ्रमण में एक निश्चित प्रारूप देखने को मिलता है. अधिकतर वयस्क पक्षी पहले और छोटे बाद में जाते हैं. लेकिन लौटते समय स्थिति ठीक इसके विपरीत होती है, पहले बच्चे बाद में वयस्क लौटते हैं. इस काफिले में नर चिड़ियां आगे उसके पीछे मादा और फिर अन्य होते हैं. सबसे आखिर में कमजोर पक्षी होते हैं. यह अधिकतर अपनी यात्रा की शुरुआत रात में करते हैं. मौसम खराब होने के बाद भी सफर का यह सिलसिला हर वर्ष उसी मार्ग से होता है. अफ्रीका की बुलबुल तेज बारवलर यूरोप और पश्चिम एशिया के बहुत बड़े क्षेत्र में 40 अक्षांश उत्तर से 70 अक्षांश उत्तर के बीच गर्मियों में अंडे देती है और फिर वहां से होकर पतझड़ के मौसम में दक्षिण और जाड़ों में सहारा के दक्षिण में अफ्रीका पहुंच जाती है. अगले बसन्त में वापस आकर यूरोप और पश्चिम एशिया में जाकर अण्डे देती है.

पक्षियों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना बहुत ही दिलचस्प घटना है. चांदनी रात में भी प्रवासी पक्षी जाते दिखाई देते हैं. रेडार के द्वारा भी उनकी उड़ानों का मार्ग पता लगाया जाता है. प्रवास पर जाने वाले पक्षियों का पता लगाने के लिए उन पर कुछ

ऐसी निशानी लगा दी जाती है जिससे बाद में यह पता चल सके कि वे कहां से आए हैं. इसके लिए उनके पैरों में छल्ले बांध दिए जाते हैं. पक्षी विज्ञान का ब्रिटिश ट्रस्ट हर साल लगभग साढ़े सात लाख चिड़ियों को छल्ले बांधकर उड़ाता है जिनमें करीब 15 हजार वापिस मिली है. इतने लम्बे सफर के लिए ऊर्जा की आवश्यकता तो होती ही है इसके लिए इनके शरीर में पर्याप्त मात्रा में चर्बी जमा हो जाती है. सारस जैसे बड़े-बड़े पक्षी फालतू चर्बी नहीं जमा कर पाते इसलिए वे तरंगों के माध्यम से बहुत ऊंचाई तक चढ़ जाते हैं. ये वायु तरंगें जमीन पर गर्मी की घट-बढ़ से पैदा होती हैं. ऊपर उठती हुई हवा के इस भंवर में ये पक्षी बहुत ऊंचाई तक पहुंच जाते हैं और उसके बाद नीचे की ओर ग्लाइड करते हुए अगली तरंग के निचले छोर तक पहुंच जाते हैं.

सबसे महत्वपूर्ण बात इन पक्षियों में यह पाई जाती है कि इन पक्षियों में दिशा ज्ञान, वापस लौटने का समय आदि समझने की क्षमता होती है. रात्रि के समय ये पक्षी चांद तारों की मदद से अपनी दिशा ज्ञात कर लेते हैं: इनमें रास्ता पहचानने का विशेष गुण होता है. इस पूरी प्रक्रिया को समझने के लिए अभी वैज्ञानिकों को कुछ और प्रमाण की आवश्यकता है.

अब प्रश्न यह उठता है कि ये पक्षी भ्रमण क्यों करते हैं? इनमें कुछ जैविकीय परिवर्तन होते हैं और प्रजनन के लिए वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं. सिर्फ यही नहीं मौसम के अनुरूप अपनी जीवन रक्षा के लिए भी ये भ्रमण करते हैं. रोवन (1922) का कहना है कि इनकी टेस्टीज और ओवरी से इस प्रकार के हार्मोन स्त्रवित होते हैं कि ये पक्षी स्थान परिवर्तन करते हैं. सूखा, गर्मी, ठंडक, खाने की कमी आदि ऐसी स्थितियों में भी ये स्थान परिवर्तन करते हैं.

पक्षी प्रवास का महत्व इस बात में है कि इससे इन पक्षियों की खराब मौसम से बचत होती है, भोजन की कमी पूरी होती है एवं अंडे देने की अनुकूल जगह मिलती है, परन्तु कभी-कभी भ्रमण की यह प्रक्रिया इन जीवों के लिए हानिकारक भी हो जाती है. इतना लम्बा सफर बिना आराम किए वह भी इतने छोटे पक्षी के लिए कठिन कार्य है. इसमें कुछ चिड़ियां मर भी जाती हैं. तेज वारिश, तूफान, बर्फ आदि भी इनके लिए जानलेवा हो सकते हैं. टेलीग्राफ के तार और लाइट हाउस से भी बहुत पक्षी मर जाते हैं.

इतना सब होने के बावजूद स्वच्छन्द विचरण करने वाले यह पक्षी अपनी यात्राएं हर बरस करते हैं. यह एक दिलचस्प और आश्चर्य में डालने वाली प्रक्रिया है. वैज्ञानिक अपने अनुसंधान में लगे हैं. शायद भविष्य में कोई नया तत्य प्रकाश में आए. □

पदार्थों की चौथी अवस्था और हमारा जीवन

□ त्रिभुवन नाथ उपाध्याय

□ विद्यालयों में विज्ञान पढ़ते समय सबसे पहले हमें यह बताया जाता है कि हमारे आस-पास पाए जाने वाले सभी पदार्थ ठोस, तरल और गैस नामक तीन भौतिक अवस्थाओं में पाए जाते हैं. लेकिन यह जानकारी सही नहीं है क्योंकि वैज्ञानिकों को यह काफी पहले से ज्ञात है कि ठोस और तरल अवस्था के मध्य पदार्थों की एक और अवस्था भी होती है जिसे वे तरल रवा का नाम दिए हैं. इसे ही पदार्थों की चौथी अवस्था कहते हैं. हजारों कार्बनिक रसायन इस श्रेणी में आते हैं. यह तो हम सभी जानते हैं कि जब किसी ठोस पदार्थ को गर्म किया जाता है तो वह एक निश्चित तापक्रम (गलनांक) पर पिघलना शुरू होकर तरल अवस्था में बदल जाता है. लेकिन जब इन रसायनों को गर्म करते हैं तब वे सीधे तरल अवस्था में न जाकर बीच की एक अन्य प्रावस्था (मीज़ोफ्रेज) से गुजरते हैं जिसमें ठोस और तरल दोनों अवस्थाओं के गुण धर्म पाए जाते हैं. इसे ही तरल रवा की अवस्था कहते हैं.

तरल रवों के खोज की कहानी काफी दिलचस्प है. उन्नीसवीं शताब्दी में वैज्ञानिक चिकित्सा जगत में कोशिकाओं के सूक्ष्म संरचनात्मक अध्ययनों के लिए सूक्ष्मदर्शियों का उपयोग प्रारम्भ कर चुके थे. सन् 1853 में जर्मन डा० रूडोल्फ विरवाव ने यह खोज की कि तंत्रिका कोशिकाएं मायेलिन के आवरण से ढकी रहती हैं. सन् 1855 में एक अन्य जर्मन मेम चिकित्सक सी० मेटेनहीमर ने मायेलिन को ध्रुवण मापी यंत्र से युक्त सूक्ष्मदर्शी में देखकर उसका अध्ययन किया. उन्होंने यह देखा की मायेलिन तरल पदार्थों की तरह सूक्ष्मदर्शक की प्लेट पर तैर रही है लेकिन रवों की भांति उसका रंग काफी चटख भी है. वैसे उस समय तक उपरोक्त वैज्ञानिकों को यह आभास नहीं था कि वे पदार्थों की एक नवीन अवस्था पर शोधकार्य कर रहे हैं. काफी दिनों बाद वे समझ सके कि मायेलिन तरल रवों का पहला उदाहरण है और वे इसे खोजने का श्रेय ले चुके हैं. उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में जर्मन भौतिकविद् ओटो लीमैंन ठोस पदार्थों के रवों के पिघलने के तापक्रम (गलनांक) का अध्ययन कर रहे थे. सन् 1885 तक वे पदार्थों के रवाकरण सम्बन्धी प्रयोगों के लिए ख्याति प्राप्त कर चुके थे. उसी समय आस्ट्रिया के वनस्पति वैज्ञानिक फ्रेडिच री इनित्जर कोलेस्ट्राल बेन्जोएट के रवों का अध्ययन कर रहे थे. इस पदार्थ के रवों का गलनांक ज्ञात करने के लिए वे एक ऐसे सूक्ष्मदर्शी यंत्र का उपयोग कर रहे थे, जिनके नीचे ग्लास प्लेट पर रख कर रवों को गर्म करके पिघलाया जा सके. इन रवों का गलनांक ज्ञात करते समय उन्हें एक ऐसी असामान्य स्थिति का सामना करना पड़ा जिसकी वे कल्पना नहीं कर सकते थे. अन्य रवों के विपरीत वे रवे दो बार पिघलते थे. उन्होंने यह देखा कि कोलेस्टेराल बेन्जोएट के सफेद रंग के रवे पहले 145.5° सेल्सियस पर पिघलकर एक बादली तरल के रूप में परिवर्तित हो गए और अधिक गर्म करने पर 178° सेल्सियस पर उस बादली तरल के बादल छंट गए. अपने अवलोकनों की सत्यता को जांचने के लिए उन्होंने कुछ रवे ओटो लीमैन के पास भेजे ताकि वे इस प्रावस्था के विषय में विस्तृत अध्ययन करके

उन्हें अपने नतीजों से अवगत करा सकें. ओटो लीमैन ने इन रवों की प्रावस्था का काफी गहन अध्ययन किया. उन्होंने देखा कि ध्रुवणमापी यंत्र में यह पदार्थ बहुत ही चटख रंग के तरह-तरह के डिजाइन बनाता है. उन्हें यह विचित्र लगा क्योंकि इस यंत्र में किसी भी तरह पदार्थ को देखने पर वह काले रंग का दिखलाई देता है और तेज चटख रंग के पैटर्न रवों के गुणधर्म होते हैं जो कि उनकी आन्तरिक संरचना पर निर्भर करता है. मार्च और अप्रैल के दोनों महीने उन वैज्ञानिकों के लिए काफी उत्तेजनापूर्ण थे जब वे मिलकर काम करते थे और अपने निष्कर्षों के बारे में चर्चा किया करते थे. इसके बावजूद वे किसी विशेष निश्चिय पर नहीं पहुंच सके. ओटो लीमैन का यह निष्कर्ष था कि यह पदार्थ बहुत ही अजीबोगरीब है. उनका यह भी निर्णय था कि वे एक बहुत ही नाजुक रवे पर कार्य कर रहे हैं. उन्होंने ही उसका नाम तरल रवा रखा जो आज भी उसी नाम से जाना जाता है.

सन् 1924 में हैली विश्वविद्यालय के डेनियल वोरलैण्डर ने यह बताया कि पदार्थों की तरल रवे की स्थिति में उनके अणु का आकार डंडे के रूप में होता है जबकि ठोस रवे वृत्ताकार अणुओं से निर्मित होते हैं. वृत्ताकार अणुओं से निर्मित रवों में अणु एक-दूसरे के साथ बहुत मजबूती से जुड़े होते हैं जिसके कारण अणुओं में 'पोजीशनल आर्डर' होता है. डंडाकार अणुओं में भी पोजीशनल आर्डर होता है लेकिन उसमें सभी अणु एक निश्चित दिशा की तरफ निर्देशित होते हैं. इस कारण उनमें 'ओरियंटेशनल आर्डर' भी होता है. जब भी किसी सामान्य रवे को गर्म किया जाता है तब तापीय ऊर्जा अणुओं की आन्तरिक शक्तियों पर विजय प्राप्त कर लेता है, जिसके कारण रवों की आन्तरिक संरचना अव्यवस्थित हो जाती है और अणु किसी भी दिशा में विचरण करने के लिए स्वतंत्र हो जाते हैं. इसके विपरीत डंडाकार अणुओं से निर्मित तरल रवों को गर्म करने पर ऐसा देखा जाता है कि एक निश्चित तापक्रम पर तापीय ऊर्जा अणुओं के पोजीशनल आर्डर को छिन्न-भिन्न करने के लिए पूरी पड़ जाती है लेकिन ओरियंटेशनल व्यवस्था को ठीक रखने वाली आन्तरिक शक्तियों को क्षीण करने में पूरी नहीं पड़ती है और पदार्थ ठोस और तरल के बीच की प्रावस्था में रह जाते हैं. पोजीशनल आर्डर की अनुपस्थिति के कारण हुई रवों की कमी से रवों के कुछ अन्य भौतिक गुण जैसे कि उनका वर्तनांक अस्थिर रहता है और हमेशा परिवर्तित रहता है.

वैज्ञानिकों का यह विचार है कि पदार्थों की तरल रवों की अवस्था हमारे लिए इतनी महत्वपूर्ण है कि इसके बिना जीवन के अस्तित्व की कल्पना ही नहीं की जा सकती क्योंकि एक कोशिकीय सूक्ष्म जीवधारियों की कोशिकाभित्तियां भी तरल रवों से बनती है. यही भित्तियां इन जीवधारियों की आन्तरिक संरचनाओं को बाहरी वातावरण के थपेड़ों से रक्षा करती हैं. हमारे जैसे अत्यन्त विकसित जीवधारियों में तरल रवीय कोशिका झिल्लियों का उपयोग शरीर 'नर्व इम्पल्सेज' को गंतव्य अंगों तक पहुंचाने तथा वसा वर्गीय खाद्य पदार्थों के पाचन से सम्बन्धित महत्वपूर्ण क्रियाओं में करता है. सभी सजीव कोशिका झिल्लियों की संरचना काफी जटिल होती है. वे एक ही समय में ठोस और तरल दोनों प्रकार से व्यवहार करती हैं, क्योंकि उनका निर्माण तरल रवों से होता है. पिछले कुछ वर्षों से सजीव कोशिकाओं की तरल रवीय संरचना, उनके भौतिक व्यवहार और जीव रासायनिक क्रियाओं पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन हो रहा है.

तापक्रम के बदलने पर तरल रवों का रंग बहुत तेजी से बदलता है. इस तरह ताप के छोटे-छोटे परिवर्तनों को भी काफी हद तक सही मापा जा सकता है. इनका उपयोग शरीर के किसी भाग में बन रही रसौलियों का पता लगाने के लिए किया जा रहा है क्योंकि रसौलियों के आसपास का तापक्रम शरीर के सामान्य तापक्रम से अधिक होता है.

सरल रवों का उपयोग करके अब ऐसे वस्त्रों का निर्माण होने लगा है जो शरीर के आसपास के ताप में थोड़े उतार चढ़ाव से प्रभावित होकर अपना रंग बदला करेंगे, सुबह सवेरे कुछ, दिन में कुछ, शाम को कुछ, और रात में कुछ पानी बोर होने की कोई गुंजाइश ही नहीं.

इलेक्ट्रानिक उद्योग में भी तरल रवों का खूब उपयोग हो रहा है और सही तौर पर देखा जाए तो सामान्य लोगों का तरल रवों से परिचय अंकीय घड़ियों के माध्यम से ही हुआ है. वर्षों पहले भौतिक वैज्ञानिकों ने यह सुझाव दिया था कि तरल रवों का उपयोग ऐसी इलेक्ट्रोनीय प्रदर्श प्रणालियों के निर्माण में किया जा सकता है जिन्हें इस्तेमाल करने के लिए कैथोड किरण ट्यूबों की तुलना में कम पावर खर्च करनी पड़ेगी. हालांकि ऐसी प्रणालियों को बनाने के वैज्ञानिकों के प्राथमिक प्रयासों को सफलता नहीं मिली क्योंकि उस समय तक उपलब्ध तरल रवे गर्मी और प्रकाश के सम्पर्क में आते ही विघटित हो जाते थे. लेकिन यूनिवर्सिटी आफ हल के जार्ज ग्रे ने 'एल्काइलसायनोबाई-फेनिल' परिवार के अति स्थाई तरल रवों का पता लगाया और इनका उपयोग करके काफी अच्छी प्रदर्श प्रणालियों का निर्माण किया. आज तरल रवों पर आधारित इलेक्ट्रानिक उद्योग फल-फूल रहा है.

तरल रवों का उपयोग अनुसंधान कार्यों में प्रयुक्त अनेक यंत्रों के निर्माण तथा विकास में भी हो रहा है. विषमदैशिक तरल विलायकों (एनिसोट्रापिक लिक्विड साल्वेंट्स) का उपयोग न्यूक्लीय चुम्बकीय अनुनाद (एन एम आर) तथा इलेक्ट्रान स्पिन अनुनाद (ई एस आर) मापियों में होता है. बच्चों के खिलौनों से लेकर ड्राइंग रूम के लिए सजावटी सामानों और घड़ी की तरह दीवारों पर टंग सकने लायक टेलीविजनों के निर्माण में भी तरल रवों का उपयोग धड़ल्ले से हो रहा है. विश्वास किया जाता है कि आगामी वर्षों में हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में तरल रवे और प्रतिबद्धता के साथ अपनी दखलन्दाजी देंगे. □

हारमोन करते हैं करिश्में

□ राजेन्द्र कुमार राय

□ शरीर को सुचारू रूप से कार्यरत रखने के लिए हमारे शरीर में अनेक अत्यन्त सक्षम तथा आश्चर्यजनक अवयव व संस्थान हैं. इनमें से हर एक अपने आप में एक अनोखी प्राकृतिक रचना है. प्रत्येक संस्थान अपने-अपने को सुचारू रूप से चलाने में सक्षम है, फिर भी एक ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता होती है जो शरीर के सभी नाजुक अंगों के कार्य का संतुलन बनाए रख सकें. इन सभी विभिन्न कार्य प्रणालियों का सही संतुलन 'हारमोन' करते हैं.

हरमोन हमारे शरीर में अंतःस्रावी (ऐंडोक्राइन) ग्रंथियों द्वारा बनाए जाते हैं. इन ग्रंथियों द्वारा किया गया रिसाव कोशिकाओं की कार्य पद्धति को प्रभावित करता है और शरीर के अन्दर इसी रिसाव को हारमोन कहा जाता है. 'हारमोन' शब्द ग्रीक भाषा के शब्द 'हारमोओ' से लिया गया है जिसका अर्थ है—'मैं उत्तेजित हूं.' ग्रंथियों से निर्मित हारमोन सीधे रक्त में मिल जाते हैं फिर रक्त के साथ ही उन कोशिकाओं तक पहुंच जाते हैं जहां इनकी आवश्यकता होती है.

हारमोन वास्तव में रासायनिक संदेशवाहक की तरह कार्य करते हैं. अंतःस्त्रावी ग्रंथियां शरीर के विभिन्न भागों में स्थित होती हैं. पिटच्यूटरी नामक एक महत्वपूर्ण ग्रंथि सिर की हड्डी में स्थित होती है. यह मस्तिष्क से जुड़ी होती है. रक्त में हारमोन की मात्रा तथा एक-दूसरे के साथ तालमेल का संदेश प्रत्येक क्षण इस ग्रंथि को मिलता रहता है और फिर यह ग्रंथि यह निर्धारित करती है कि किस ग्रंथि को कितनी मात्रा में हारमोन का निर्माण करना चाहिए. यह ठीक उसी तरह है जैसे क्रिकेट टीम का कप्तान अपने फील्डरों को निर्देश देता है. यह ग्रंथि कप्तान की तरह अन्य सभी ग्रंथियों को संचालित करती है. शरीर के विकास के कार्य का संचालन पिटच्यूटरी स्वयं करती है.

स्वस्थ अवस्था में प्रत्येक अवयव अपने लिए जरूरी हारमोनों का ही निर्माण करता है. इससे शारीरिक क्रियाओं का संतुलन बना रहता है और हर अंग एक-दूसरे पर नजर रखता है. अवयव अपनी आवश्यकतानुसार अपने उत्पादन को कम या ज्यादा कर लेते हैं. किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व इन एंडोक्राइन ग्रंथियों की ही देन है.

प्रत्येक ग्रंथि के दो भाग होते हैं. अगला यानी बाहरी भाग, जिसे 'कोस्ट' कहते हैं और पिछला यानी अंदरूनी भाग, जिसे 'गेडच्यूला' कहते हैं. मटर के दाने के आकार के बराबर पिटच्यूटरी नाम की ग्रंथि आंखों के पीछे सिर के मध्य स्थित होती है. अगला भाग उन हारमोनों का निर्माण करता है जो एंडोक्राइन ग्रंथियों पर नियंत्रण रखने के साथ ही शरीर के विकास पर भी अंकुश रखते हैं. थायरोक्सीन और मोनेडोट्रोपिन नामक हारमोन इसी ग्रंथि से उत्पन्न होते हैं जो महिलाओं के मासिक धर्म को नियमित रखते हैं. इस ग्रंथि का पिछला भाग उन हारमोनो का निर्माण करता है जो गर्भाशय के फैलने और सिकुड़ने पर (विशेष रूप से बच्चे के जन्म के दौरान) नियंत्रण रखता है.

शरीर में बनने वाले कुछ महत्वपूर्ण हारमोन हैं—एड्रिनल, थायराइड, पैराथायराइड, यौन अवयवों संबंधी, अन्न नली के हारमोन और आमाशय के हारमोन. शरीर पर पड़ने वाले किसी भी तनाव का असर ग्रंथियों पर पड़ता है. ये ग्रंथियां अपनी सक्रियता में तेजी लाकर शरीर में शक्ति प्रदान करती हैं. एड्रिनल ग्रंथि से उत्पन्न होने वाले दो महत्वपूर्ण हारमोन—कोर्टिसन व हाइड्रोकोर्टिसन तनाव या डर के क्षणों में तेजी से प्रभावित होते हैं और तनाव कम करने में सहायक होते हैं. तनाव की स्थिति से बाहर निकलने के बाद यह हारमोन भी सामान्य हो जाते हैं. एड्रिनल दो छोटी फली के आकार की ग्रंथियां होती हैं. ये दोनों गुर्दे के ठीक ऊपर टोपी की तरह स्थित होती हैं. इनकी रक्त आपूर्ति की अपनी व्यवस्था होती है.

थायराइड ग्रंथि शरीर के विकास और परिवर्तन तथा चयापचय की क्रिया का संचालित करती है. इसके दो भाग होते हैं और यह वायुनलिका के दोनों तरफ स्थित होती है. टाइरोक्सीन (आयोडीन युक्त हारमोन) नामक हारमोन की सहायता से यह ग्रंथि अपना कार्य करती है. अगर इस ग्रंथि से कम मात्रा में हारमोन का रिसाव होता है तो बड़े व्यक्तियों में हाइ पोथायरोइडिज्म या माइक्सोडिया नामक बीमारी हो जाती है. इस बीमारी से चयापचय प्रक्रिया धीमी हो जाती है, व्यक्ति का वजन बढ़ने लगता है और त्वचा रूखी हो जाती है, चलना-फिरना भी कम हो जाता है. नाड़ी की गति धीमी तथा शरीर का तापमान असामान्य हो जाता है. अगर हारमोन का अधिक मात्रा में रिसाव होता है तो चयापचय प्रक्रिया बढ़ जाती है. ऐसे में रोगी नर्वस, गर्मी के प्रति संवेदनशील हो जाता है और उसका वजन कम हो जाता है.

पैराथायराइड हारमोन शरीर की शक्ति को बनाए रखने में अहम् भूमिका निभाते हैं और ये कैल्शियम तथा फासफेट को शरीर द्वारा उपयोग पर नियंत्रण रखते हैं. इसके अलावा ये नाड़ी संस्थान की गतिविधियों की जिम्मेदारी भी सम्भालते हैं. पैराथायराइड ग्रंथि विटामिन 'डी' पर भी अंकुश रखती है. यह छोटे अंडे के आकार के बराबर दो जोड़ों में विभक्त होती है.

पुरुषों और महिलाओं के यौन अवयवों के हारमोन बहुत महत्वपूर्ण हैं. इनके द्वारा उत्पादित हारमोन पूरे शरीर को प्रभावित करते हैं. टेस्टिकल और अंडाशय की कुछ मिश्रित कोशिकाएं स्टेरायड नामक हारमोन पैदा करती हैं. ये शुक्राणु और अंडे को उत्तेजित करती हैं. एस्ट्रोजन नामक हारमोन महिलाओं की यौन इंद्रियों को तेज करते हैं. महिलाओं में बच्चे के जन्म के बाद स्तनों में दूध आने वाली प्रक्रिया का कारण होता है—प्रोजेक्टीन नामक हारमोन. यह मासिक धर्म को भी प्रभावित करता है और इसी हारमोन के कारण बच्चे के जन्म के तुरन्त बाद महिलाएं गर्भधारण नहीं करतीं. महिलाएं जब तक बच्चे को दूध पिलाती हैं तब तक गर्भधारण करने की सम्भावना भी कम रहती हैं, क्योंकि हारमोन उनमें अंडे बनने की प्रक्रिया और मासिक धर्म को

(शेष पृष्ठ 30 पर)

सर्दी का हाल : आदमी बेहाल

□ डा० विजय कुमार श्रीवास्तव



सर्दियां शुरू होते ही आदमी की मुसीबतें शुरू हो जाती हैं. जिनके पास सर्दियों से बचने के लिए कपड़े तथा अन्य साधन नहीं होते उनके लिए सर्दियां मुसीबतों के पहाड़ जैसी होती हैं. और यदि सिर छिपाने के लिए घर भी न हो तो सर्दियों की मार मार ही डालती है. सर्दियों से लोगों की मौत कैसे होती है और साधन विहीन सर्दियों से अपनी प्राण रक्षा किस प्रकार कर सकते हैं. वैज्ञानिक इन प्रश्नों का उत्तर खोजने में लगे हैं.

□ सर्दियां शुरू होते ही मनुष्य शरीर पर कपड़ों का बोझ बढ़ना शुरू हो जाता है. जैसे-जैसे सर्दियां बढ़ती हैं वैसे ही वैसे यह बोझ भी बढ़ता है. जिन बेचारों के पास अपने शरीर पर कपड़ों का बोझ बढ़ाने की सामर्थ्य नहीं होती वे अपने शरीर को गरमाने और सर्दी से बचने के लिए आग का सहारा लेते हैं. जिन्हें आग की सुरक्षा भी नहीं मिल पाती वे सर्दियों में ठिठुर-ठिठुर कर अपनी जान गंवा देते हैं.

सर्दी के मौसम में अकड़कर जान दे देने वाले दुर्भाग्यशाली भारत में ही नहीं दुनिया के हर कोने में होते हैं. हां, भारत जैसे विकासशील तथा अल्प साधन सम्पन्न देश में ऐसे व्यक्तियों की संख्या विकसित और साधन सम्पन्न देशों की अपेक्षा अधिक होती हैं. इनमें भी बूढ़ों की संख्या युवकों और बच्चों से कहीं अधिक होती है. इस तरह मरने वालों में ऐसे दुर्भाग्यशालियों की संख्या काफी होती है जो अचानक या अनजाने में सर्द हवाओं की गिरफ्त में फंस जाते हैं और ऊपर से यदि वे पानी में भीग जाएं तो मरना और भी निश्चित हो जाता है. कुछ वर्ष पूर्व अमेरिका जैसे अति साधन सम्पन्न देश में अचानक ही सर्दी का प्रकोप इतना अधिक हो गया था कि उसमें फंस कर बहुत से लोगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा था. वहां बचाव के लिए दूरदर्शन तथा अन्य संचार माध्यमों से बूढ़ों को लगातार कई दिनों तक अपने घरों से बाहर न निकलने की हिदायतें दी जाती रहीं थीं.

भारत जैसे शीतोष्ण जलवायु वाले देश में जहां गर्मियों की चिलचिलाती धूप में लोग त्राहि-त्राहि कर उठते हैं वहां भी दिसम्बर और जनवरी महीने की ठंडक शरीर को कंपकपाने वाली होती है. देश के उत्तरी हिस्से में सर्दी का प्रकोप और भी अधिक होता है. इन दिनों देश का यह हिस्सा बहुत दिनों तक शीत लहरों के बर्फीले थपेड़ों की मार खा-खाकर ठिठुरता रहता है और जब तक शीत लहरों के थपेड़े शान्त होते हैं तब तक वे हजारों व्यक्तियों को मौत के साये में सुला चुके होते हैं.

ठंडक में मानव जीवन की जहां इतनी हानि होती है वहीं दूसरे जीव जन्तु नंगे शरीर रहकर बरसात और बर्फ के फाहों के बीच भी न केवल जीवित रहते हैं बल्कि सामान्य रूप से अपनी गतिविधियों में भी लीन रहते हैं. वे न तो सर्दियों से बचाव के प्रयास करते हैं और न उनके पास इसके साधन ही होते हैं. मनुष्य और दूसरे प्राणियों की शारीरिक क्षमताओं के बीच इतना विरोधाभास क्यों है? इस प्रश्न के उत्तर जानने के लिए हमें मनुष्य की शारीरिक रचना और उसकी शारीरिक प्रक्रियाओं की जानकारी होना जरूरी है. हमें शरीर की कुछ मौलिक विशेषताओं और सर्दी में ठिठुर कर मरने वालों के रहन-सहन पर भी वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करना होगा.

शरीर का तापमान

सामान्य अवस्था में मनुष्य के शरीर का तापमान 97° फारेनहाइट से 99° फारेनहाइट (औसत 98.4° का अथवा 37° सेल्सियस) के बीच होता है. बगल का तापमान शरीर के भीतर के तापमान से 1° फारेनहाइट कम होता है. दिन भर के परिश्रम के बाद शरीर का तापमान शाम को सबसे अधिक और रात भर के आराम के बाद सुबह सबसे कम होता है. तापक्रम में यह उतार-चढ़ाव 1° से 1.5° फारेनहाइट के बीच होता है.

रात को काम करने वालों के शरीर का तापमान प्रातः सबसे अधिक होता है. शिशुओं में शरीर के तापक्रम पर नियंत्रण रखने की प्रक्रिया अपूर्ण होती है. इसलिए तापक्रम में अधिक विभिन्नता होती है. शिशु

में थोड़ी देर तक रोने के दौर के बाद शरीर का तापमान बढ़ सकता है और उसे ठंडे पानी से नहलाने के बाद तापमान कम हो सकता है. बूढ़े व्यक्ति में शरीर का तापमान सामान्य से कम होता है.

महिलाओं में शरीर का तापक्रम थोड़ा कम हो सकता है. कारण! उनके शरीर के आकार और भार का अनुपात कम होना और चर्बी की मात्रा अधिक होना. मासिक चक्र के दौरान भी महिलाओं का तापक्रम कम हो जाता है (0.3° फारेनहाइट). मासिक चक्र समाप्त होते ही तापमान बढ़ने लगता है और अगले मासिक चक्र के प्रारम्भ से पहले यह अधिकतम हो जाता है. भोजन में प्रोटीन की मात्रा अधिक होने पर भी शरीर का तापक्रम बढ़ जाता है. खाना खाने की प्रक्रिया के दौरान भी शरीर का तापमान बढ़ता है. यही वजह है कि गर्मियों में भोजन करते समय गरमी लगती है और पसीना छूटता है.

शरीर में ऊष्मा का उत्पादन

व्यायाम या परिश्रम करने से शरीर का तापमान बढ़ता है. खाली बैठे रहने पर भी हमारे शरीर के भीतर चलते रहने वाली रासायनिक प्रक्रियाओं के दौरान गरमी अर्थात ऊर्जा पैदा होती है. अधिकांश रासायनिक प्रक्रियाएं मांस पेशियों और यकृत में होती हैं. इसलिए शरीर में मांसपेशियां और यकृत ऊर्जा उत्पन्न करने का प्रमुख केन्द्र होती हैं. मांसपेशियों में भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में ऊष्मा अथवा ऊर्जा उत्पन्न करने की दर भिन्न-भिन्न होती है. आराम करते समय मांसपेशियों में ऊर्जा उत्पन्न करने की दर काफी कम होती है और कोई काम करने के दौरान और काम करने के बाद ऊर्जा उत्पन्न करने की दर सबसे अधिक होती है. यदि हम निष्क्रिय बैठे रहें तो हमारा शरीर एक घंटे में 70 किलो कैलोरी ऊर्जा उत्पन्न करता है. चहल कदमी करने पर एक घन्टे में 140 किलो कैलोरी ऊर्जा, ऊंचाई या पहाड़ी पर चढ़ते समय एक घंटे में 240 किलो कैलोरी ऊर्जा, हाकी या फुटबाल खेलते समय एक घण्टे में 400 किलो कैलोरी ऊर्जा तथा और अधिक कठिन शारीरिक श्रम करने पर शरीर में 500 किलो कैलोरी तक ऊर्जा पैदा होती है.

किसी भी कार्य के दौरान शरीर में जितनी भी ऊर्जा उत्पन्न होती है उसका अधिक से अधिक केवल 25 प्रतिशत ही उस कार्य को अंजाम देने में खर्च होता है. बाकी गरमी अथवा ऊष्मा में बदल जाती है. यदि आवश्यकता हुई तो यह ऊष्मा शरीर को गरम करने में भी खर्च होती है और बाकी त्वचा के रास्ते शरीर से वातावरण में उड़ जाती है. शरीर पर्याप्त मात्रा में ऊर्जा उत्पन्न कर सके इसके लिए उसका स्वस्थ और सक्रिय होना आवश्यक होता है. पर्याप्त और पौष्टिक आहार न पाने वाले और शारीरिक रूप से बेकार पड़े रहने वाले लोगों का शरीर काफी ऊर्जा नहीं उत्पन्न कर पाता और यदि ऐसे लोगों के पास शरीर की ऊष्मा को बाहर जाने से रोकने के पर्याप्त साधन न हुए तो ये ही ठंडक का अधिक शिकार होते हैं.

शरीर के भीतर चलने वाली चयापचयी (मेटाबोलिक) प्रक्रियाओं को बेरोकटोक चलाते रहने के लिए भी ऊर्जा आवश्यक होती है. ये प्रक्रियाएं हैं भोजन का पाचन, श्वसन के दौरान प्राप्त आक्सीजन की उपस्थिति में पचे हुए भोजन से ऊर्जा की उत्पत्ति. इनके दौरान भी ऊर्जा उत्पन्न होती है. शरीर के हिलने-डुलने मात्र से अतिरिक्त ऊर्जा पैदा होती है. इसीलिए कसरत करने पर सर्दी का अहसास नहीं होता.

एंटीफ्रीज प्रोटीनो

आदमी बर्फीले प्रदेशों में बिना किसी अतिरिक्त व्यवस्था के अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकता, परन्तु बर्फीले समुद्र जल में अनेक प्रकार की मछलियां तथा अन्य जीव जन्तु आराम से रहते हैं. कनाडा के बर्फीले प्रदेशों में मेढ़कों की भी कुछ ऐसी प्रजातियां पाई जाती हैं जो बर्फ में जम जाने के बाद भी जीवित रहती हैं.

बर्फ में भी आसानी से जीवित रहने की इन जन्तुओं की क्षमता ने वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित किया और फलस्वरूप वैज्ञानिक इनमें अनुकूलन का कारण जानने की दिशा में प्रयत्नशील हो गए. इन्हीं प्रयासों के परिणाम स्वरूप वैज्ञानिकों ने बर्फीले प्रदेशों में रहने वाली मछलियों और कनाडा के बर्फीले प्रान्तों के मेढ़कों के शरीर में एक प्रकार की एंटीफ्रीज अथवा जमावरोधी प्रोटीन ढूंढ निकाली है जो इनके रक्त को जमने से बचाती है.

हमें पता है कि जन्तुओं के शरीर का आधे से अधिक हिस्सा पानी ही होता है. जब तापमान जमाव बिन्दु या इससे भी नीचे चला जाता है तो नंगे शरीर वाले जन्तुओं के शरीर का पानी भी जमने लगता है. इस प्रक्रिया में पहले शरीर के भीतर बर्फ के छोटे-छोटे क्रिस्टल बनते हैं. बाद में इनका आकार बढ़ता जाता है और एक समय ऐसा आ सकता है जब शरीर में मौजूद सारा पानी तथा अन्य द्रव जमकर बर्फ बन जाएं. यदि ऐसा हो जाए तो शरीर की सारी कोशिकाओं के मरने से जीव की निश्चित मौत हो जाएगी. परन्तु एंटीफ्रीज प्रोटीन ऐसा नहीं होने देती.

डी० एस० सी० यांग०, एम० सैक्स, ए० चक्रवर्ती और सी० एल० ह्यू नाम के अमेरिकी वैज्ञानिकों ने उत्तरी ध्रुव के निकट समुद्र में पाई जाने वाली मछलियों में कुछ प्रकार की एंटीफ्रीज प्रोटीन ढूंढ़ने में सफलता पाई है. ये प्रोटीन है—एक ग्लाइकोप्रोटीन और तीन प्रकार की पालीपैप्टाइड. उन्होंने इन सबकी संरचना भी ज्ञात कर ली है साथ ही यह भी पता लगा लिया है कि किन परिस्थितियों में इनका निर्माण प्रेरित होता है और किस प्रकार ये मछलियों को जमकर मरने से बचाती हैं. इन वैज्ञानिकों के अनुसार मछलियों के शरीर का पानी जमना शुरू होते ही इनका निर्माण प्रारम्भ हो जाता है. शरीर में बर्फ क्रिस्टल का जैसे ही एक छोटा अणु तैयार होता है, ये प्रोटीन उसे अपने घेरे में ले लेती हैं जिससे उस क्रिस्टल का आकार बढ़ने ही नहीं पाता. परिणामस्वरूप, वह अपने आसपास की

की खोज

कोशिकाओं को क्षति नहीं पहुंचा पाता. इन प्रोटीनों की उपस्थिति में शरीर द्रवों का जमाव बिन्दु और अधिक कम हो जाता है इसलिए भी वह जमने नहीं पाता.

मेढ़कों में हिमरोधी प्रोटीन की खोज का श्रेय जाता है कनाडा के वैज्ञानिक केन स्टोरी, जेनेत स्टोरी और उनके सहयोगियों को. उन्हें अपने अनुसंधान की प्रेरणा उन मेढ़कों से प्राप्त हुई जो वहां शून्य से भी 8° सेल्सियस कम तापक्रम पर बर्फ में दबे रहते हैं और गर्मियां आते ही फिर से फुदकना प्रारम्भ कर देते हैं. इन वैज्ञानिकों ने यह पता लगाया है कि प्रथम हिमपात के साथ ही इन मेढ़कों के रक्त में ग्लूकोज की मात्रा बढ़नी प्रारम्भ हो जाती है जो तापक्रम में गिरावट के साथ-साथ बढ़ती रहती है. ग्लूकोज की यह मात्रा कभी-कभी तो 550 गुना तक बढ़ जाती है. बढ़ा हुआ ग्लूकोज रक्त कोशिकाओं के चारों तरफ जमा हो जाता है. इसकी उपस्थिति में रक्त जमने नहीं पाता बस गाढ़ा भर हो जाता है. बाहर गर्म मौसम का आभास मिलते ही रक्त से बढ़ी हुई ग्लूकोज की मात्रा एकाएक गायब हो जाती है और वे फिर उछलने लगते हैं.

ग्लूकोज की उपस्थिति में रक्त न जमने की खोज का लाभ प्रत्यारोपण के लिए मानव अंगों को सुरक्षित रखने में हो सकता है. यह भी पता चला है कि कम तापमान पर ग्लूकोज में डूबे अंग अधिक समय तक सुरक्षित रखे जा सकते हैं.

एंटीफ्रीज प्रोटीन मानव शरीर में अभी तक तो नहीं देखी गई हैं परन्तु वैज्ञानिक दवा के रूप में मानव कल्याण के लिए इनके उपयोग की सम्भावना का पता लगा रहे हैं. एक परिकल्पना के अनुसार इन प्रोटीनों के निर्माण को प्रेरित करने वाली जीन का पता लगाकर और प्रयोगशाला में बड़े पैमाने पर इन्हें तैयार करके यदि बर्फीले प्रदेशों की यात्रा करने वालों को इनका टीका लगाया जाए तो हो सकता है कि हम शून्य से कम तापमान पर कम कपड़ों में भी खुले आसमान में आसानी से कई दिनों तक जीवित रह सकें. यदि ऐसा सम्भव हो सका तो अंटार्कटिका और अंर्टाटिक क्षेत्रों में और बर्फ के पहाड़ों पर मानव यात्राएं काफी आसान और निरापद हो जाएंगी.

—डा० विजय कुमार श्रीवास्तव

शरीर से ऊष्मा की क्षति

शरीर से ऊर्जा अथवा ऊष्मा का ह्रास त्वचा, फेफड़ों और मल-मूत्र द्वारा होता है. फेफड़ों से ऊर्जा की हानि निःश्वास में निकले हुए वाष्प कणों के माध्यम से और निःश्वास में निकली वायु को गरम करने में लगभग 3 प्रतिशत होती है. मूल-मूत्र के साथ 2 प्रतिशत ऊष्मा की हानि होती है, बाकी 95 प्रतिशत ऊष्मा त्वचा के रास्ते से बाहर निकलती है. त्वचा से 50 प्रतिशत ऊष्मा विकिरण द्वारा शरीर से बाहर निकलती है. इसके अतिरिक्त 15 प्रतिशत ऊष्मा संचालन और संवहन प्रक्रियाओं के माध्यम से शरीर से बाहर निकलती है. इन प्रक्रियाओं द्वारा ऊष्मा का शरीर से ह्रास शरीर के तापमान और उसके चारों ओर के वातावरण पर निर्भर करता है. बची 30 प्रतिशत ऊष्मा शरीर से वाष्पित होकर पसीने और रक्त नलियों से त्वचा में तरल पदार्थों के आदान-प्रदान के माध्यम से बाहर निकलती है.

शरीर के तापक्रम पर नियंत्रण

इस प्रकार स्पष्ट है कि शरीर में लगातार काफी अधिक मात्रा में ऊष्मा पैदा होती रहती है और शरीर से बाहर निकलती भी रहती है. लेकिन इसके बावजूद शरीर का तापक्रम सर्दी और गरमी हर मौसम में एक-सा रहता है. न गर्मी में बढ़ता है और न सर्दियों में घटता है. इससे यह साबित होता है कि हमारे शरीर में तापमान को नियंत्रित रखने की पक्की व्यवस्था है जो सदैव शरीर में ऊष्मा के उत्पादन और शरीर से ऊष्मा के निष्कासन के बीच संतुलन बनाए रखकर शरीर का तापमान स्थिर रखती है.

वैज्ञानिकों के अनुसार विकास की प्रक्रिया के दौरान मनुष्य में शरीर के तापक्रम पर नियंत्रण रखने की प्रक्रिया का धीरे-धीरे और क्रमिक विकास हुआ है. सरीसृपों (सांप, घड़ियाल वर्ग के प्राणी) और अभयचरों (मेंढक वर्ग के जमीन और पानी दोनों में रहने वाले प्राणी) में इस प्रक्रिया का पूरी तरह अभाव होता है. इन वर्गों के जन्तुओं के शरीर का तापक्रम वातावरण के तापक्रम के अनुसार घटता बढ़ता रहता है. इसलिए इन जन्तुओं को ठण्डे खून वाला प्राणी कहते हैं. सर्दियों में शरीर से ऊष्मा हानि रोकने के लिए ये जन्तु बिलों और गड्ढों में छिपकर रहते हैं, परन्तु स्तनधारियों और पक्षियों में ऊष्मा को नियंत्रित करने की प्रक्रिया पूरी तरह विकसित होती है. इसलिए सर्दी और गर्मियों में इनके शरीर का तापक्रम एक समान ही रहता है. इसीलिए इन्हें गर्म खून वाला प्राणी कहते हैं.

लगाम मस्तिष्क के पास

जिस तरह शरीर की सारी प्रक्रियाओं की लगाम हमारे मस्तिष्क के पास होती है उसी तरह शरीर के तापमान को 37° सेल्सियस पर बनाए रखने की प्रक्रिया का नियंत्रण भी मस्तिष्क से ही होता है. मस्तिष्क के इस कार्य को अन्तःस्रावी ग्रंथियों से भी मदद मिलती है.

मानव मस्तिष्क में शरीर के तापमान को नियंत्रित रखने का केन्द्र हाइपोथैलेमस में होता है. हाइपोथैलेमस का अग्र भाग गर्मी की सूचना पाकर सक्रिय हो जाता है और रक्त नलिकाओं में अधिक रक्त के प्रवाह और अधिक मात्रा में पसीने का निर्माण करके अतिरिक्त गर्मी को शरीर से बाहर निकालने में मदद करता है. हाइपोथैलेमस के इस हिस्से के क्षतिग्रस्त हो जाने पर शरीर अतिरिक्त ऊष्मा को बाहर नहीं निकाल पाता और गर्मी का शिकार हो जाता है. हाइपोथैलेमस का पिछला हिस्सा वातावरण के तापक्रम गिरने पर सक्रिय होता है. शरीर को कांपने की प्रेरणा देने वाला केन्द्र भी हाइपोथैलेमस के इसी हिस्से में स्थित होता

है. वातावरण का तापमान कम होने की सूचना पाकर मस्तिष्क इस केन्द्र के माध्यम से शरीर को कंपकपाने का आदेश देता है और कंपकपी के दौरान उत्पन्न ऊष्मा शरीर को गर्म रखती है. त्वचा भर में फैली हुई सूक्ष्म तंत्रिकाओं के जाल के माध्यम से हाइपोथैलेमस को वातावरण के तापक्रम में परिवर्तन की सूचना तुरन्त मिल जाती है और जैसे ही हाइपोथैलेमस को वातावरण का तापमान काफी कम हो जाने की सूचना मिलती है वह शरीर की मांसपेशियों को फैलने और सिकुड़ने का आदेश देता है. मांसपेशियों के फैलने और सिकुड़ने की इस प्रक्रिया को ही कंपकपी छूटना कहते हैं. इस प्रक्रिया के दौरान मांसपेशियों के आपस में रगड़ने से शरीर में गर्मी पैदा होती है. इस क्रिया के दौरान कभी-कभी तो एक घंटे के भीतर 600 किलो कैलोरी तक ऊर्जा उत्पन्न हो जाती है. तंत्रिका तंत्र को थायरायड, पिट्यूटरी और एड्रिनल अन्तः स्रावी ग्रंथियों से शरीर के तापक्रम को नियंत्रित रखने में मदद मिलती है.

शरीर में सर्दी की सहन शक्ति

जीवों में ठंडक को सहने की प्रक्रिया काफी जटिल होती है और विभिन्न प्रजाति के जीवों में इसमें काफी विभिन्नता होती है. जहां आर्कटिक प्रदेशों के बर्फीले इलाकों में रहने वाले जीवों में बहुत अधिक सर्दी को सहने की अद्भुत क्षमता होती है वहीं मनुष्य के शरीर में यह क्षमता काफी कम होती है. सर्दी को सहने में सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण भूमिका शरीर से होने वाली ऊष्मा के क्षय की होती है. शरीर से ऊष्मा के क्षय में वायु की गति की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है.

सर्दी को सह पाने में अपनी असमर्थता के लिए मनुष्य स्वयं जिम्मेदार है. सृष्टि के प्रारम्भ से मनुष्य ने अपने को सर्दी-गर्मी से बचाने के लिए उपयुक्त आवास का निर्माण करके और पहनने के लिए मौसम के अनुसार कपड़े बनाकर मौसम में होने वाले हर प्रकार के परिवर्तनों से अपने को सुरक्षित रखने का प्रयास किया है. इसीलिए मनुष्य के शरीर में सर्दी और गर्मी को सहने की शक्ति विकसित नहीं हो पाई. ध्रुव प्रदेशों में रहने वाले एस्किमो इसके सबसे उपयुक्त उदाहरण हैं. उनके कपड़े बारहसिंगे की खाल की दो पर्तों से मिलकर बने होते हैं जिनकी मोटाई 2 से 2.5 इंच तक होती है. बहुत कम शारीरिक श्रम करते हुए भी एस्किमों—इन कपड़ों को पहन कर बिना किसी विशेष कठिनाई के शून्य से 40-50° सेल्सियस तापक्रम पर भी आराम से रहते हैं.

अलग-अलग व्यक्तियों में सर्दी को सहने की क्षमता अलग-अलग होती है. शरीर से होने वाली ऊष्मा क्षय में शरीर के आकार और उसकी बनावट की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है. प्रति इकाई शारीरिक भार के अनुरूप शरीर का नियत तापमान बनाए रखने के लिए एक बच्चे को वयस्क व्यक्ति की तुलना में अधिक गर्मी की आवश्यकता होगी क्योंकि शरीर का आकार छोटा होने पर प्रति इकाई शारीरिक भार के अनुसार वातावरण के सम्पर्क में आने वाली शरीर की सतह का क्षेत्रफल अधिक होगा. और सभी घटक समान होने पर सर्दी को सहने में शरीर के आकार की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है. शरीर का वजन एक होने पर कम लम्बाई के व्यक्ति के शरीर से ऊष्मा की क्षति लम्बे व्यक्ति की तुलना में अधिक होगी क्योंकि ऐसे व्यक्ति के शरीर की अधिक सतह वातावरण के सम्पर्क में आएगी.

सर्दी को सहन करने में शरीर की वसा (चर्बी) बहुत महत्वपूर्ण होती है. चूंकि वसा ऊष्मा की खराब संचालक होती है और वसा में रक्त नलिकाओं की संख्या भी न के बराबर होती है इसलिए वसा से होकर ऊष्मा का आदान-प्रदान काफी कम होता है. शरीर में वसा की मात्रा जितनी अधिक होगी शरीर से ऊष्मा का क्षय उतना ही कम होगा. प्रयोगों से प्रमाणित है वातावरण का तापक्रम 70° फारनेहाइट तक गिर जाने पर वसा की मोटाई की भूमिका महत्वपूर्ण नहीं रहती. लेकिन वातावरण का तापक्रम 60° या 50° फारेनहाइट तक होने पर वसा की भूमिका महत्वपूर्ण होती है. इतने कम तापक्रम पर त्वचा का तापक्रम काफी कम हो जाता है लेकिन वसा के कारण शरीर का तापक्रम गिरने नहीं पाता. यही कारण है कि सर्दियों दुबले-पतले लोगों को कंपकंपी ज प्रारम्भ होती है. महिलाओं के शरीर पुरुषों की अपेक्षा वसा अधिक होने के का उन्हें सर्दी कम लगती है. शरीर में वसा मोटाई 2.25 मिलीमीटर होने पर आद 60° फारेनहाइट तापक्रम पर 40 मिनट और 50° फारेनहाइट तापक्रम पर 20 मि में ही कांपने लगेगा. लेकिन वसा की मोट 11 मिलीमीटर होने पर 50° फारेनहा तापक्रम पर कंपकंपाहट 60° मिनट प्रारम्भ होती है. इन सबसे अन्त में निष्कर्ष निकलता है कि एक दुबला-पत व्यक्ति 87.5° फारेनहाइट तापक्रम पर कांपने लगता है जबकि मोटे व्यक्ति कंपकपाहट 70° फारेनहाइट तापक्रम प्रारम्भ होती है.

सर्दी को सहन करने में शारीरिक स्वास्थ्य की भूमिका से भी इन्कार नहीं किया सकता. नियमित रूप से व्यायाम करने वा व्यक्ति की मांसपेशियों और हृदय आकार सामान्य रहता है जिससे उनकी रक्त की आपूर्ति बढ़ जाती है. फलस्वरूप, अं की कार्य क्षमता भी बढ़ जाती है जो सर्दियों अधिक ऊष्मा के उत्पादन से शरीर अधिक सर्दी बर्दाश्त करने की शक्ति देती है वैज्ञानिक अध्ययनों से अब यह भी प्रमाणि हो गया है कि सर्दियों में अथवा अत्यन्त ठं प्रदेशों में दैनिक आहार में विटामिन सी अतिरिकत मात्रा लोगों को ठंडक का सामन करने की अतिरिक्त शक्ति देती है. इन वैज्ञानिक अध्ययनों के आधार पर संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा ने बर्फीले प्रदेश में तैनात अपनी सेना के जवानों को राशन प्रतिदिन लगभग 500 मिलीग्राम अतिरिक्त विटामिन सी देना प्रारम्भ किया है.

शरीर की सर्दी से लड़ाई

वैज्ञानिकों के अनुसार खाना और कपड़े ठंडक से शरीर की रक्षा करते ही हैं, परन्तु शरीर स्वयं बहुत ही आसानी से ठंडक के आगे हथियार डाल कर चुपचाप अपने मरने की प्रतीक्षा नहीं करता. बल्कि मरने से पू वह ठंडक से अपनी शक्ति भर पूरी लड़ाई

ड़ता है और अन्त में हारकर ही मौत को ले लगाता है. शरीर सर्वप्रथम त्वचा की त्रिकाओं से वातावरण का तापमान कम होने की सूचना पाकर कंपकंपाहट द्वारा गर्मी दा करके शरीर को गर्म रखने का प्रयास रता है. जब तापक्रम और कम हो जाता है और शरीर इस क्रिया द्वारा उत्पन्न ऊष्मा से पने को गर्म रखने में कामयाब नहीं होता तो सर्दी से शरीर की रक्षा करने की अगली कार्यवाही प्रारम्भ होती है. यहां यह बता देना आवश्यक है कि वातावरण का तापमान चाहे जो कुछ भी रहे लेकिन शरीर के भीतरी भाग का तापक्रम जब तक 37° से 39° सेल्सियस के बीच बना रहता है तब तक शरीर की सारी गतिविधियां सुचारू रूप से चलती रहती है. शरीर के भीतरी भाग के तापक्रम में इससे कमी और अधिकता शरीर के लिए घातक सिद्ध होती है. इस तापमान में 10° सेल्सियस तक की कमी या अधिकता जानलेवा साबित हो सकती है. इसीलिए शरीर हर कीमत पर सर्दियों में शरीर के भीतरी भाग के तापमान को कम होने से रोकने का प्रयास करता है.

शरीर के अन्दर का तापमान 30-32° सेल्सियस तक गिर जाने पर कंपकंपी बन्द हो जाती है जो इस बात की सूचक होती है कि इतने कम तापक्रम पर मांसपेशियों की आपसी रगड़ से अतिरिक्त ऊष्मा के उत्पादन की शरीर की क्षमता खर्च हो चुकी होती है और वे कठोर हो चुकी होती है.

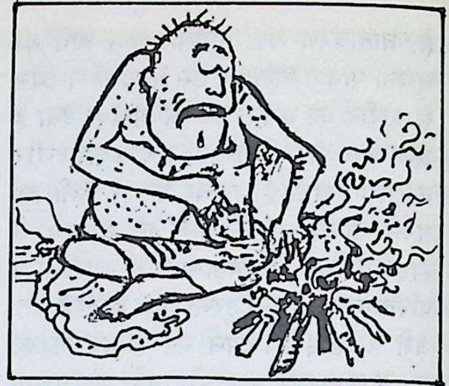
शरीर को गर्म रखने की अगली कार्यवाही के रूप में त्वचा को रक्त पहुंचाने वाली रक्त वाहिकाएं संकुचित हो जाती हैं जिससे त्वचा की ओर गर्म रक्त का बहाव कम हो जाता है और त्वचा से होकर खून के माध्यम से होने वाला ऊष्मा का क्षय रुक जाता है.

जब इससे भी काम नहीं चलता तब दिल, गुर्दे, मांसपेशियां और फेफड़े अपनी-अपनी कार्य प्रणाली में बदलाव लाते हैं. साथ ही शरीर की थायरायड और एड्रिनल ग्रंथियां अधिक मात्रा में हार्मोन उत्पन्न करने लगती हैं. हार्मोनों की मात्रा अधिक हो जाने पर शरीर की कोशिकाओं में चयापचयी गतिविधियां तेज हो जाती हैं जिससे अधिक मात्रा में ऊष्मा उत्पन्न होती है जो शरीर को हाइपोथर्मिया का शिकार होने से बचाती है.

शरीर के भीतरी अंगों का तापमान गिरने की स्थिति को 'हाइपोथर्मिया' कहते हैं. हाइपो का अर्थ होता है कम और थर्मिया का अर्थ होता है तापमान. तामान 35° सेल्सियस से नीचे गिरने पर हाइपोथर्मिया की स्थिति प्रारम्भ हो जाती है. इसमें कंपकंपाहट के साथ-साथ शरीर का रंग पीला पड़ जाता है और विभिन्न अंगों की गतिविधियों में आपसी तालमेल बिगड़ जाता है. साथ ही दिमाग सुस्त और अस्त व्यस्त हो जाता है. इसके बाद की स्थिति में सांस और नाड़ी की गति धीमी हो जाती है, तापमान 30° सेल्सियस तक पहुंचते-पहुंचते व्यक्ति बेहोश होने लगता है.

लेकिन बेहोशी से पहले अक्सर एक विचित्र-सी स्थिति देखने को मिलती है. जब रक्त वाहिकाओं के सिकुड़ने से ऊष्मा के क्षय में होने वाली कमी भी शरीर के तापमान में गिरावट को नहीं रोक पाती तो अगली स्थिति में त्वचा को रक्त ले जाने वाली रक्त वाहिकाएं एकाएक अत्यधिक फैल जाती हैं जिससे त्वचा को रक्त का बहाव एकाएक काफी तेज हो जाता है. त्वचा की ओर रक्त के तेजी से बहाव के कारण व्यक्ति एकाएक तेज गर्मी महसूस करता है और वह अपने कपड़े उतार-उतार कर फेंकने लगता है. साथ ही बावलों की तरह आंखें फाड़-फाड़कर देखने लगता है.

तापक्रम और अधिक गिरने पर आदमी बेहोश होने लगता है; ऐसी स्थिति में दिल का धड़कना बहुत ही अनियमित हो जाता है. शरीर का तापमान 28° सेल्सियस से नीचे गिरना बहुत खतरनाक होता है. ऐसी स्थिति में व्यक्ति 'वेन्ट्रिकुलर फाइब्रिलेशन' नामक स्थिति का शिकार हो जाता है. इस समय दिल की मांसपेशियां आपस में बिना तालमेल के सिकुड़ने और फैलने लगती हैं. इस समय दिल को देखकर ऐसा लगता है कि जैसे छोटी-सी थैली में बन्द बहुत सारे कीड़े कुलबुला रहे हों. इस अवस्था में शरीर में खून का प्रवाह रुक जाता है और व्यक्ति कुछ ही देर में मौत का शिकार हो जाता है.



वैज्ञानिकों का मानना है कि यदि व्यक्ति पहले से ही किसी ऐसी स्थिति का शिकार हो जिसमें उसकी थायरायड ग्रंथियां कम सक्रिय हों अथवा किसी प्रकार की असमर्थता के कारण वह चलने-फिरने में असमर्थ हो तो उसके हाइपोथर्मिया का शिकार होने की संभावना बढ़ जाती है. शराब पिये होने अथवा किसी अन्य नशे की स्थिति में व्यक्ति को हाइपोथर्मिया का शिकार होने का खतरा और भी अधिक बढ़ जाता है.

इतना सब होने के बावजूद लन्दन हास्पिटल मेडिकल सेन्टर के शरीर क्रिया वैज्ञानिक प्रोफेसर बिलकीटिंग का मानना है कि ठंडक में अकड़कर मरने वालों में अधिकांश की मौत 'हाइपोथर्मिया' से पहले ही दिल के आघात या दिल की धड़कने बन्द हो जाने अथवा श्वसन प्रणाली के काम न करने के ही कारण हो जाती हैं.

दिल के आघात और दिल के दौरे का प्रमुख कारण होता है दिल को खून पहुंचाने वाली धमनियों में खून की गाठे बन जाना. इससे धमनियों में रक्त का प्रवाह कम हो जाने से दिल की मांसपेशियों को रक्त की आपूर्ति कम हो जाती है, फलस्वरूप पोषक पदार्थों और आक्सीजन के अभाव में उनके निष्क्रिय हो जाने से दिल काम करना बन्द कर देता है. बिलकीटिंग और उनके सहयोगियों ने यह जानने के लिए कि वास्तव में धमनियों में रक्त प्रवाह अधिक सर्दी के कारण ही कम होता है, कुछ प्रयोग किए. इन प्रयोगों में उन्होंने देखा की पूरी तरह स्वस्थ व्यक्तियों के शरीर में अधिक ठंडक में रक्तचाप बढ़ गया व दिल की धड़कने कम

हो गई. लेकिन इससे भी अधिक महत्वपूर्ण था रक्त में प्लेटलेटों की संख्या और उनके आकार में वृद्धि से रक्त का अधिक गाढ़ा हो जाना. प्लेटलेट कोशिकाएं ही रक्त को जमाने के लिए जिम्मेदार होती हैं.

ठंडक का असर पानी की मौजूदगी में और भी तेज होता है क्योंकि पानी में ऊष्मा का बहाव हवा की तुलना में 25 गुना अधिक तेजी से होता है. इसलिए 15° सेल्सियस तापमान के पानी में भी एक सामान्य और पूरी तरह स्वस्थ व्यक्ति के लिए भी अपने शरीर के भीतर का तापमान सामान्य रख पाना कठिन होता है और यदि पानी का तापमान 10° सेल्सियस से भी कम हो जाए तो कोई भी व्यक्ति थोड़ी ही देर में ठंडक का शिकार हो जाता है. इतने ठंडे पानी के प्रभाव में पहले तो त्वचा तथा हाथ-पैरों कीं उंगलियों को खून ले जाने वाली नलियों में खून का प्रवाह पूरी तरह रुक जाता है, लेकिन खून की ये नलियां अधिक देर तक संकुचित नहीं रह सकती. इसलिए जैसे ही वे सामान्य अवस्था में आती हैं उनमें तेज रक्त प्रवाह के कारण शरीर की ऊष्मा का ह्रास बहुत तेजी से होता है और व्यक्ति हाइपोथर्मिया का शिकार हो जाता है.

लेकिन ठंडे पानी में डूब जाने पर प्रारम्भ में ठंडे पानी का असर भिन्न प्रकार से होता है. अमेरिका में मिनिसोटा विश्वविद्यालय में मानव शरीर पर ठंडक के प्रभाव का अध्ययन कर रहे वैज्ञानिक विट्टमर्स के अनुसार हमारा चेहरा जैसे ही अचानक ठंडे पानी को छूता है हम तुरन्त ही प्रतिक्रिया वश सांस रोक लेते हैं. बाद में दिल की धड़कनें कम हो जाती हैं और शरीर के बाह्य अंगों का रक्त प्रवाह कम हो जाता है. परन्तु इतना सब होते हुए भी इस दशा में हाइपोथर्मिया के कारण मृत्यु शीघ्र नहीं होती.

मिनिसोटा विश्वविद्यालय के ही एक अन्य वैज्ञानिक पोजोस इसका कारण बताते हुए कहते हैं कि ऐसा सम्भवतः फेफड़ों में ठंडा पानी भर जाने के कारण सम्भव होता है पोजोस के अनुसार फेफड़ों में पानी भर जाने के बाद भी थोड़ी देर तक फेफड़ों में आक्सीजन प्राप्त करने के लिए रक्त का जाना जारी रहता है. फेफड़ों में पहुंचने वाला यह रक्त वहां ठंडे पानी के सम्पर्क में आकार ठंडा हो जाता है और फेफड़ों से सारे शरीर में जाकर सारे अंगों को ठंडा कर देता है जिससे सारे अंगों की आक्सीजन की आवश्यकता कम हो जाती है. परिणामस्वरूप कम आक्सीजन में भी शरीर जीवित रहता है.

बूढ़े व्यक्ति, युवाओं और बच्चों की तुलना में ठंडक का शिकार अधिक आसानी से और जल्दी होते हैं, क्योंकि उनका शरीर वयस्कों और बच्चों जितनी सक्षमता से अपने शरीर को गरम नहीं रख पाता. स्कूल आफ मेडिसिन, यूनीवर्सिटी कालेज तथा सेण्ट पैंक्रास, हास्पिटल लंदन के वैज्ञानिक केनेथ कोलिन्स, नारमन एक्स्टानस्मिथ और उनके सहयोगियों ने अनेक अध्ययनों के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि ठंडक में बूढ़े व्यक्तियों की रक्त वाहिनियां सिकुड़ने में औसतन 7 मिनट का समय लेती हैं जबकि युवकों में इस कार्य में एक मिनट का ही समय लगता है. इसी तरह कंपकंपी के दौरान बूढ़े व्यक्ति एक युवक की तुलना में आधी गर्मी ही पैदा कर पाते हैं. इन सबके साथ बुढ़ापे के कारण उनकी कम क्रियाशीलता उन्हें जल्दी ही मौत की गोद में ढकेल देती है.

कई बार ठंडक के प्रभाव में मरे हुए मान लिए गए व्यक्तियों को बाद में जीवित करने में भी सफलता मिली है. इस प्रकार की एक घटना 1757 में स्वीडन में घटी थी जब ठंडक में मरे हुए मान लिए गए एक व्यक्ति को दफनाने के लिए ले जाते समय उसके पेट में गर्मी का अहसास हुआ. बाद में उपचार करने पर पता चला कि वह जीवित था. सन् 1974 में नार्वे में एक 5 वर्ष के बच्चे वेगार्ड स्लेटमोएन को भी मरा मान लेने के बाद भला चंगा कर लेने में सफलता मिली थी.

इन घटनाओं से चिकित्सा विज्ञान में एक अहम् सवाल उठा खड़ा है. शरीर का तापमान 37° सेल्सियस होने पर हमारे मस्तिष्क को प्रति मिनट 49 मिलीलिटर आक्सीजन की जरूरत होती है और यदि दिल काम न करे तो आक्सीजन के अभाव में मस्तिष्क 4 मिनट में ही मरने लगता है. इसलिए काफी अधिक देर तक सांस न लेने के बावजूद कोई व्यक्ति कैसे जीवित रह सकत है?

अनेक अध्ययनों के बाद वैज्ञानिक इसक दो प्रकार से जवाब देते हैं. एक परिकल्पना अनुसार ठंडक के प्रभाव में दिल के धड़क की रफ्तार कम हो जाती है. ऐसी स्थिति रक्त शरीर के उन हिस्सों में अधिक भेज जाता है जहां उसकी सबसे अधि आवश्यकता होती है जैसे दिमाग और दिल और शरीर के कम महत्वपूर्ण अंग कु समय तक शरीर में जमा आक्सीजन भण्डार से ही काम चला लेते हैं.

दूसरी परिकल्पना के अनुसार दिमा जैसे-जैसे ठंडा होता जाता है उसे क आक्सीजन की जरूरत पड़ती है. और य वह बाकी शरीर के मुकाबले अधिक तेजी और शीघ्र ठंडा हो जाए और इस दौरान उ थोड़ा-बहुत खून पहुंचता रहे तो वह सां लेना रुक जाने के बाद भी काफी देर त आक्सीजन के अभाव में भी जीवित र सकता है.

विट्टमर्स का यह मानना है वि हाइपोथर्मिया की अन्तिम अवस्था में शरी के मुर्दा लगने के बाद भी आन्तरिक अंग कु देर तक जीवित रहते हैं. इस अवस्था शरीर की सारी आन्तरिक गतिविधियां यथ सम्भव धीमी हो जाती है. दिल की धड़कन घट कर 2 से 3 प्रति मिनट रह जाती है, औ इतनी धीमी कि उसका पता ही न चले. सा ही नाड़ी की गति और श्वसन इतना कमजो हो जाता है कि उसका पता नहीं चलता विट्टमर्स ने अपने कार्यालय के दरवाजे प यह लिखकर टांग रखा है "तब तक मृत नह है जब तक आपका शरीर गर्म होते हुए मुर्द न हो". उनका कहना है कि हाइपोथर्मिया के शिकार व्यक्ति को तब मरा हुआ नही मानना चाहिए जब उसके शरीर को गर्म पहुंचाने के बाद भी शरीर में जीवन के लक्षण दिखाई न दें.

त्वचा का तापमान गिरने के साथ मनुष्य को दर्द की भी अनुभूति होती है जो तापमान गिरावट में वृद्धि के साथ-साथ बढ़ती जाती है. रक्त वाहिनियों के सिकुड़ने पर दर्द और भी बढ़ जाता है, परन्तु रक्त वाहिनियों के

नने पर दर्द की अनुभूति समाप्त हो जाती

वैज्ञानिकों के अनुसार ठंडक और पीड़ा नुभूति के प्रति मनुष्य की शरीर क्रिया ानिक और मनोवैज्ञानिक अनुक्रिया न्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न होती कुछ व्यक्ति ठंडक में कांपते ही नहीं है. जोस के अनुसार आबादी में ऐसे व्यक्तियों संख्या दस प्रतिशत होती है. इसका रण अभी तक अज्ञात हैं. दो अलग-अलग क्तियों में आयु, शरीर का भार, आकार र बनावट एक जैसी होने पर भी उनके रीर पर ठंडक का असर अलग-अलग हो रुता है. इसमें थकावट की भी भूमिका हो रुती है क्योंकि थकावट व्यक्ति की ठंडक मुकाबला करने की शक्ति को कम कर ी है. इसी प्रकार पर्याप्त और पोषक ाहार न मिलने पर भी व्यक्ति ठंडक के ागे जल्दी घुटने टेक देता है.

ध्रुव प्रदेशों और दूसरे बर्फीले इलाकों की त्रा करने वाले व्यक्ति ठंडक के प्रति धिक ध्यान नहीं देते. मिनिसोटा श्वविद्यालय के ही मनोवैज्ञानिक हाफमैन अनुसार—"ऐसा नहीं है कि इन लोगों पर डक का असर होता ही नहीं है. ये ठंडक को हसूस करते हैं परन्तु उस पर ध्यान नहीं ते. क्योंकि बहुत से व्यक्ति ठंडे पानी में 10 नट के अंदर ही अपने हथियार डाल देते हैं ौर जल्दी ही मर जाते हैं जबकि कुछ यक्ति उसी पानी में घण्टों जीवित रहते हैं. ाफमैन इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं कि ेसा सम्भवतः जीवित रहने की प्रबल इच्छा ाक्ति के कारण होता है. उनका कहना है कि ो सकता है कि जिस समय हम मानसिक रूप से ठंडक से हार मान लेते हैं उस समय ारीर के भीतर कोई ऐसी प्रक्रिया प्रारम्भ हो ाती है जो हमें जल्दी मौत की ओर ढकेल ेती है. हाफमैन इस बात को स्वीकार करते कि अभी तक वैज्ञानिकों को यह पता नहीं है क जीने की प्रबल इच्छा शक्ति व्यक्ति में हां से आती है. लेकिन यह होती बहुत ही हत्वपूर्ण है. पोजोस के अनुसार मनुष्य की स इच्छाशक्ति और उसकी चयापचयी तिविधियों में कहीं न कहीं कोई सम्बन्ध अवश्य है. पोजोस के शब्दों में "हम जानते हैं कि हमारा मस्तिष्क हमारे तंत्रिका तंत्र को नियंत्रित करता है और तंत्रिका तंत्र के हाथों में ही शरीर की चयापचयी गतिविधियों की लगाम होती है. जो व्यक्ति दृढ़ता पूर्वक यह कहते रहते हैं कि वे ठंडक से हार नहीं मानेंगे वही ठंडक पर विजय पाकर जीवित बचते हैं." पोजोस के अनुसार यह बिल्कुल उसी तरह होता है जैसे हम या तो अपने मरने अथवा जीने की वसीयत कर दें.

तंत्रिकाविज्ञानी अध्ययनों से पता चला है कि ठंडक का प्रभाव हमारे मस्तिष्क पर विशिष्ट प्रकार से होता है. मस्तिष्क का तापमान 3° सेल्सियस कम होने पर प्रभावित व्यक्ति पहले तो मतिभ्रम का शिकार होता है, फिर उसकी याददाशत समाप्त हो जाती है और मानसिक शक्ति में गिरावट आने के और लक्षण प्रकट होते हैं. लेकिन मस्तिष्क के अलग-अलग हिस्सों पर ठंडक का असर भिन्न-भिन्न तापक्रम पर होता है. उदाहरण के लिए मस्तिष्क की शल्य चिकित्सा के लिए एक बार जब एक व्यक्ति के मस्तिष्क का कुछ हिस्सा ठंडा करके निष्क्रिय किया गया तब उस अवस्था में उसने बताया कि उसे अपनी बातचीत सुनाई देती है लेकिन उसे ऐसा लगता है कि वे शब्द किसी दूसरे द्वारा बोले जा रहे हैं.

इस तरह यह स्पष्ट हो जाता है कि शरीर पर ठंडक के प्रभाव पर काफी शोध होने के बावजूद अभी भी बहुत से प्रश्न अनुत्तरित हैं जिनके लिए और भी अनुसंधान आवश्यक हैं. इस दिशा में भारत में भी अनुसंधान जारी हैं. इससे यह आशा की जा सकती है कि इस गूढ़ विषय पर विश्व भर के वैज्ञानिकों के अध्ययन के फलस्वरूप तमाम अनुत्तरित प्रश्नो के उत्तर भी शीघ्र ही मिल जाएंगे.

लेकिन जब तक ठंडक से सम्बन्धित सभी गुत्थियां सुलझ नहीं जातीं तब तक ठंडक में फंस जाने पर जीवित बचे रहने के लिए पोजोस के कुछ नुस्खों को आजमाने से काफी लाभ होने की सम्भावना है. ये नुस्खे हैं:

यदि आप ठंडे पानी में हैं तो बहुत अधिक हिलने-डुलने और तैरने की कोशिश न करें क्योंकि इससे ऊष्मा क्षय अधिक होगा. अपने शरीर को जितना हो सके उतना झुकाकर एक गेंद जैसा बना दें. यदि आप जंगल में अथवा वनस्पतियों के बीच फंस गए हों तो हवा से बचकर रहें और अधिक चल फिर कर पसीना बहाने में शरीर की गर्मी को व्यर्थ न गंवाए. बर्फ न खाएं और कपड़ों को भीगने न दें.

यदि आप बर्फ में फंस गए हों तो प्रयास करके बर्फ की गुफा या गड्ढा बनाकर उसमें छिप जाए लेकिन उसमें बैठने पर अपने नीचे कम्बल, पत्तियां या कुछ और ऐसी वस्तु बिछाना न भूलें जो आपके शरीर को बर्फ से छूने न दें. इन परिस्थितियों में सावधानी बहुत आवश्यक है परन्तु डरने की जरूरत नहीं है. लोगों की यह धारणा कि शराब उन्हें सर्दियों से बचाती है पूरी तरह सही नहीं है. यह और आसानी से मृत्यु के करीब ले जाती है. डा० पोजोस के अनुसार शराब के नशे में शरीर के बाहरी हिस्से में गर्मी का अहसास तो जरूर होता है और कंपकंपी भी नहीं छूटती है लेकिन भीतरी हिस्से का तापमान सामान्य व्यक्ति के समान ही तेजी से गिरता रहता है. इस स्थिति में मस्तिष्क को वास्तविकता का संदेश न मिल पाने से हम यह महसूस ही नहीं कर पाते कि हमारा शरीर धीरे-धीरे ठंडा होता जा रहा है. इसलिए हम शराब के नशे में सर्दी से अपने बचाव का प्रयास ही नहीं करते और धीरे-धीरे मौत के फंदे में फंसते चले जाते हैं. □

(पृष्ठ 23 का शेषांश)

रोकता है. लेकिन इसे निश्चित आधार मान लेना उचित नहीं है, क्योंकि कभी-कभी महिलाएं इस दौरान भी गर्भधारण कर लेती हैं.

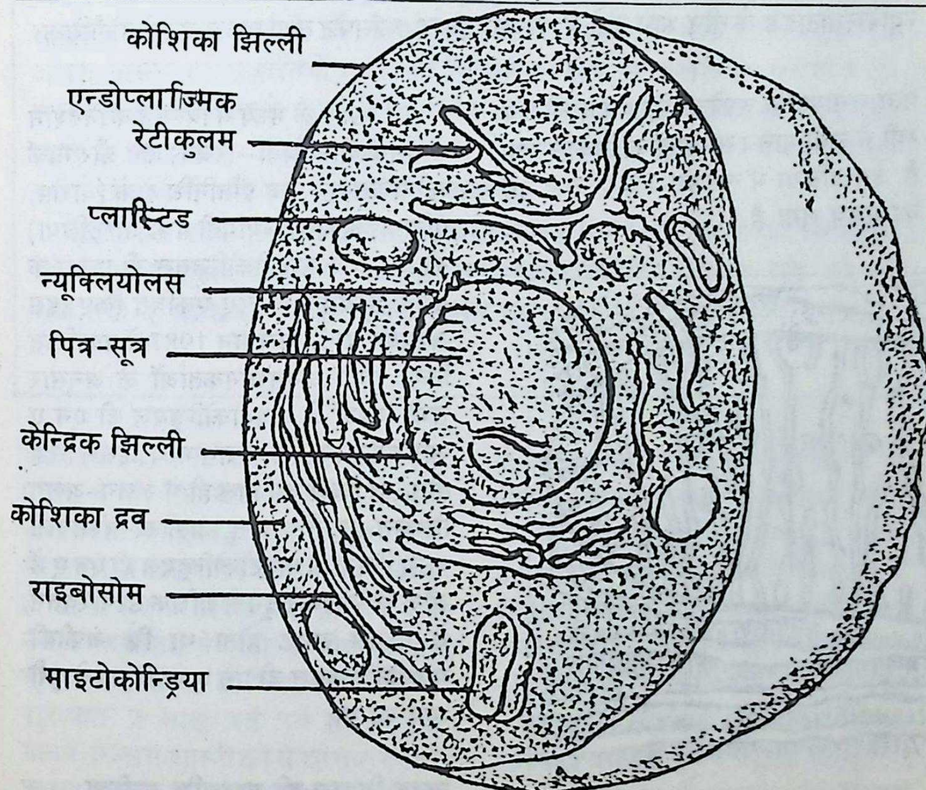
पुरुष यौन ग्रंथि स्क्रोटम में स्थित होती है. यह टैस्टोस्टेरोन नामक हारमोन का निर्माण करती है. ये हारमोन पुरुषों के तरुणावस्था में प्रवेश के दौरान महत्वपूर्ण परिवर्तन लाते हैं. □

क्या मनुष्य अफ्रीका निवासी आद्य-नारी की संतान है?

□ चन्द्रभान शर्मा

□ महाकवि जयशंकर प्रसाद ने 'कामायनी' में श्रद्धा और मनु को 'मानव' का जन्मदाता कहा है. बाइबिल हव्वा और आदम को आदिमानव का माता-पिता मानती है. साहित्य और धर्म ग्रंथों में इन उल्लेखों से अलग विज्ञान भी इस तथ्य की खोज में काफी समय से लगा है कि 'कहां और कब' मनुष्य प्रजाति अपने तथाकथित पूर्वज 'कपि' से अलग हुई.

मानव-विकास शास्त्री काफी समय से इस प्रश्न का उत्तर पृथ्वी के विभिन्न स्तरों में दबे मानव जीवाश्मों के अध्ययन से खोज रहे हैं. प्रारंभ में उनकी धारणा थी कि प्रारम्भिक मानव का विकास एक करोड़ 50 लाख वर्ष पहले हुआ, परन्तु सन् 1970 में खोजे गए कुछ नए जीवाश्मों के बाद इस समय में परिवर्तन हो गया. नई मान्यता के अनुसार मानव जैसे प्राणी का विकास लगभग 50 से 90 लाख वर्ष पूर्व औरांगउटांग से हुआ होगा.



चित्र-1 कोशिका की रचना

मानव-विकास शास्त्रियों की इस मान्यता पर करारी चोट तब लगी जब सन् 1987 में कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, बर्कले के आनुवंशिकीविज्ञ एलान विल्सन और उनके सहयोगियों ने आनुवंशिक आधार पर किए गए अध्ययनों द्वारा प्रतिपादित किया कि आधुनिक मानव का विकास एक से 2 लाख वर्ष पूर्व हुआ है. वे मानव की उत्पत्ति का उद्गम एक स्त्री को मानते हैं जो इस अवधि में अफ्रीका के सहारा प्रान्त में रही होगी.

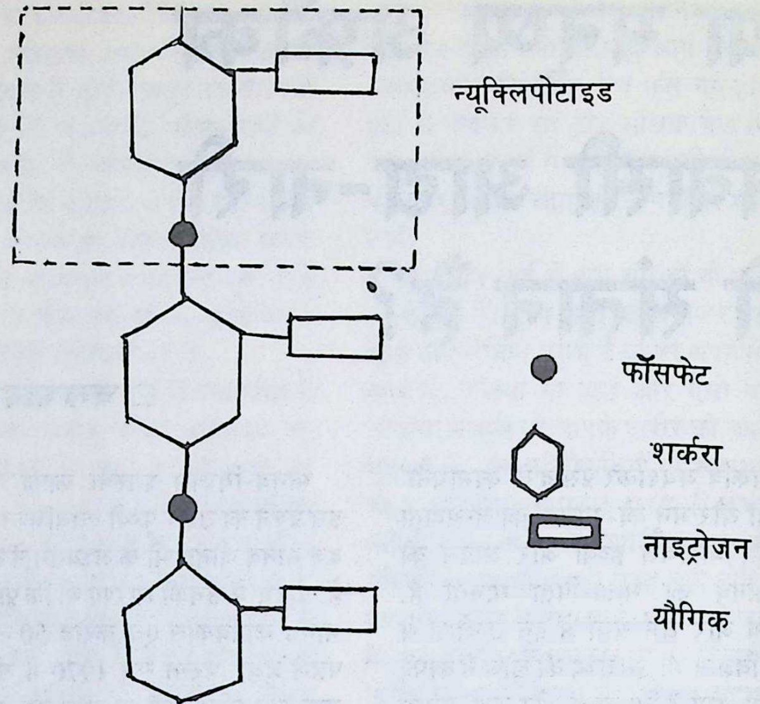
आणविक घड़ी

विल्सन और उनके सहयोगियों ने अपनी खोज के लिए जीव कोशिका के केन्द्र में पाए जाने वाले एक अंग का सहारा लिया जिसे माइटोकोन्ड्रिया (सूत्रकणिका) कहते हैं (चित्र-1). यह अंग कोशिका के पूर्ण कार्य संचालन के लिए ऊर्जा उपलब्ध कराता है (चित्र-2). सूत्रकणिका में भी अपना डी एन ए (डिओक्सीराइबोन्यूक्लिक अम्ल) होता है जो केन्द्रिक डी एन ए से केवल एक प्रकार से भिन्न है. जहां केन्द्रिक डी एन ए हर पीढ़ी में परिवर्तित होता रहता है (निषेचन के समय शुक्र और डिम्ब के डी एन ए आपस में मिल कर भ्रूण के नए डी एन ए का निर्माण करते हैं) वहीं सूत्रकणिका का डी एन ए मां की ओर से डिम्ब कोशिका-द्रव द्वारा ज्यों का त्यों नए जीव में स्थानांतरित कर दिया जाता है. यदि शिशु का सूत्रकणिका के डी एन ए में अपनी मां, नानी, परनानी या लकड़नानी की सूत्रकणिका के डी एन ए से कुछ भिन्नता होती भी है तो वह केवल अनियमित उत्परिवर्तनों के कारण. विल्सन द्वारा किए गए अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि सूत्रकणिका के डी एन ए में होने वाले उत्परिवर्तनों की एक निश्चित दर होती है.

किसी कोशिका की संरचना, उसके कार्य तथा उस जीव की विशेषताएं (जिसकी वह कोशिका एक हिस्सा है) उसके केन्द्र में निहित डी एन ए की न्यूक्लिओटाइड्स के क्रमबद्ध जमाव पर निर्भर करते हैं (चित्र-3). न्यूक्लियोटाइड चार प्रकार की नाइट्रोजन यौगिकों की इकाइयां होती हैं जो बीस प्रकार

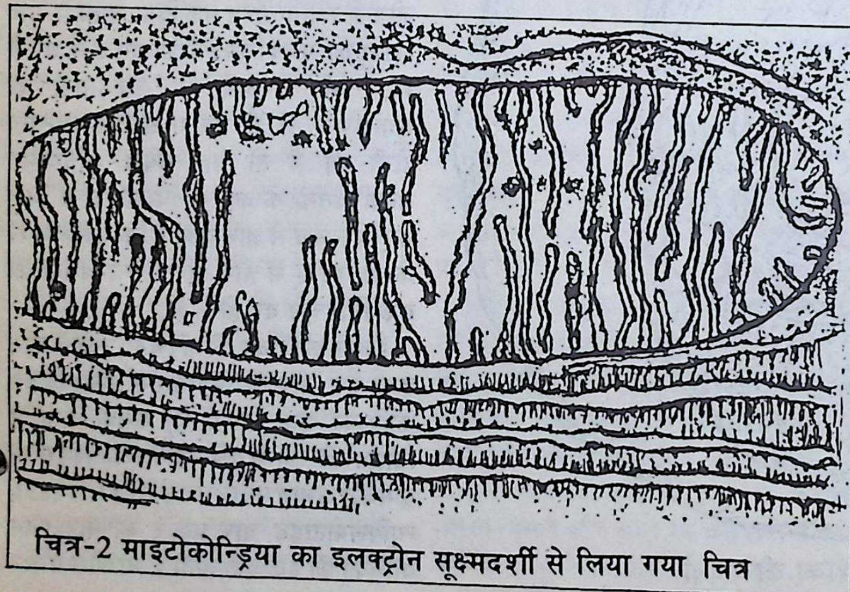
के आधारभूत अमीनो अम्ल बनाती हैं. अतः प्रजातियों के बीच के अन्तर विभिन्न जीवों में उनके आनुवंशिक कोड द्वारा ज्ञात किए जा सकते हैं. डी एन ए में न्यूक्लिओटाइड्स की क्रमबद्धता का अध्ययन काफी समय से किया जा रहा है. पिछले कुछ वर्षों में इस कार्य में काफी प्रगति हुई है. निश्चित गति से होने वाले उत्परिवर्तनों को दर्शाने वाली इस 'आणविक घड़ी' की मदद से वैज्ञानिक मनुष्य के क्रमिक विकास का इतिहास जानने का प्रयत्न कर रहे हैं.

इस नई आणविक घड़ी का उपयोग सूत्रकणिका के डी एन ए में हुए उत्परिवर्तनों से पैदा हुएं विभेदों के अध्ययन के लिए किया गया है. जैव-रसायन शास्त्रियों ने अपना ध्यान अब मानव प्रजाति के अलग-अलग समुदायों के विभेदों की जांच पर केन्द्रित किया है. वे इस बात का पता लगा रहे हैं कि किसी एक समुदाय का माइटोकोन्ड्रियल डी एन ए अन्य समुदायों के माइटोकांड्रियल डी एन ए से किस प्रकार भिन्न है, जैसे एशियन समुदाय का योरोपीय या अफ्रीकन समुदाय से. वैज्ञानिकों के अनुसार यदि माइटोकोन्ड्रियल डी एन ए में उत्परिवर्तन एक निश्चित दर से होते हैं तो उत्परिवर्तन की मात्रा के आधार पर इसमें लगने वाले समय का निर्धारण किया जा सकता है. इसी आधार पर विल्सन और उसके साथियों ने पता लगाया कि अफ्रीका में रहने वाली एक स्त्री से सभी मानव समुदायों का विकास हुआ है. इस प्रक्रिया में लगभग 1 से 2 लाख वर्ष का समय लगा है.



चित्र-3 डी०एन०ए० श्रृंखला

डी०एन०ए० श्रृंखला अलग-2 सेकंड न्यूक्लियोटाइड्स से मिल कर बनती है. प्रत्येक न्यूक्लियोटाइड के तीन भाग होते हैं: शर्करा इकाई, फॉसफेट तथा एक नाइट्रोजन यौगिक



चित्र-2 माइटोकोन्ड्रिया का इलक्ट्रोन सूक्ष्मदर्शी से लिया गया चित्र

सन् 1980 के मध्य में विल्सन के निर्देशन में उसके दो साथियों—रिबेका केन और मार्क स्टोनकिंग—ने पांच प्रतिनिधि क्षेत्रों (योरोप, एशिया, अफ्रीका, न्यूगिनी तथा आस्ट्रेलिया) की स्त्रियों के माइटोकोन्ड्रियल डी एन ए के नमूने अध्ययन के लिए एकत्रित किए. इस अध्ययन का निष्कर्ष सन् 1987 में प्रकाशित किया गया. अनुसंधानकर्ताओं के अनुसार सभी स्त्रियों के माइटोकोन्ड्रियल डी एन ए आश्चर्यजनक रूप से समान थे. इससे सिद्ध होता था कि ये वर्ग हाल ही में अलग-अलग विभक्त हुए हैं. परन्तु, अफ्रीका-वंशावली वाली स्त्रियों के माइटोकोन्ड्रियल डी एन ए में औरों के मुकाबले दूने से अधिक उत्परिवर्तन थे जिससे स्पष्ट होता था कि अफ्रीकी माइटोकोन्ड्रियल डी एन ए बाकी सबसे दूनी आयु का था.

मानव विकास की पृष्ठभूमि अफ्रीका

इस रिपोर्ट के प्रकाशन से मानव-विकास

आणुविक घड़ी

वाटसन और क्रिक ने सबसे पहले डी एन ए अणुओं की 'गुप्त भाषा' को पढ़ा और यह सिद्ध कर दिखाया कि जीवन के सारे रहस्य डी एन ए में छिपे हैं. प्रजनन के समय पित्र-सूत्रों के विभाजन के से आनुवंशिक सूचना एक पीढ़ी से दूसरी में जाती है. चूंकि किसी जीव की बनावट, कार्य और उसकी विशेषताएं उसके कोशों में मौजूद डी एन ए के न्यूक्लियोटाइड के जमाव पर निर्भर करती है, अतः इस क्रमबद्धता में आए परिवर्तनों के आधार पर अलग-अलग प्रजातियों का विकास हुआ है.

कालांतर में प्रजातियों में आए परिवर्तन उनके विकास क्रम की विभिन्न दूरियों के परिचायक हैं, उदाहरणार्थ, माना एक प्रजाति 'अ' से दो अन्य प्रजातियों 'ब' और 'स' का विकास हुआ है. यदि 'अ' से 'ब' तक विकसित होने में 'अ' की प्रोटीन रचना में दस बार परिवर्तन आया और 'स' तक पहुंचने में केवल एक बार तो 'स' प्रजाति 'अ' के समीप है और 'ब' उससे दूर.

डी एन ए श्रृंखला में कई संभाग ऐसे होते हैं जो किसी भी तरह की प्रोटीन बनाने में काम नहीं आते. इन संभागों में आया कोई भी परिवर्तन जीव के लिए न तो लाभदायक होता है और न हानिकारक. अतः प्राकृतिक चयन का इनकी बनावट पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता. डी एन ए के इन संभागों में आए उत्परिवर्तनों की भली-भांति जांच करने के बाद वैज्ञानिकों ने ज्ञात किया है कि ये उत्परिवर्तन एक निश्चित दर से एकत्रित होते रहते हैं. दूसरे शब्दों में, ये एक 'आणुविक घड़ी' की तरह हैं जिसकी सूईयों को समय की उल्टी दिशा में घुमा कर अतीत में अलग-अलग हुई प्रजातियों का समय निर्धारण किया जा सकता है. गणना बहुत सरल है. एक स्थिति से दूसरी स्थिति तक आने में हुए कुल उत्परिवर्तन गिन लिए जाते हैं और उन्हें उत्परिवर्तनों की दर से गुणा किया जाता है. गुणनफल इन उत्परिवर्तनों में लगे कुल समय का सूचक है.

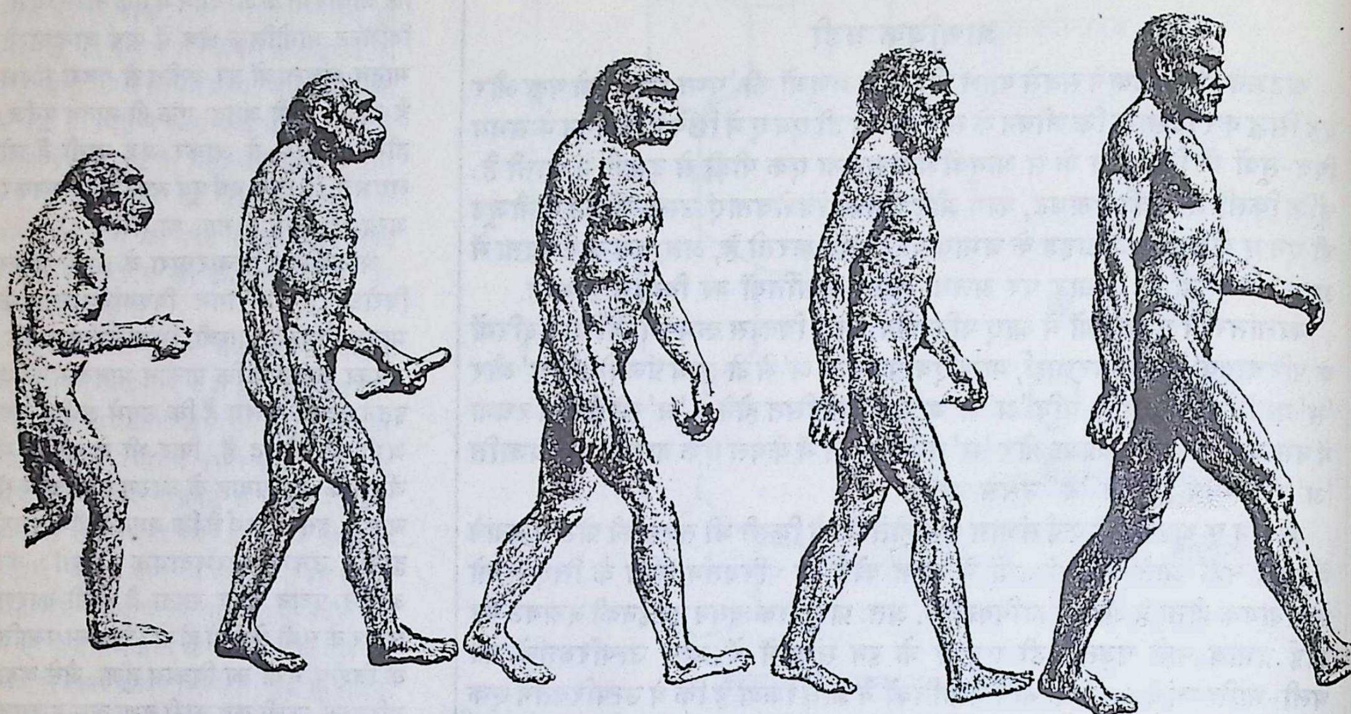
आधुनिक अध्ययनों से पता लगा है कि विकास क्रम में सबसे पहले गुरिल्ला मुख्य तने से अलग हुआ. मानव व चिम्पांजी अपने सम्मिलित पूर्वज से तब तक जुड़े रहे जब तक वे आखिरी रूप से अलग-अलग हुए.

शास्त्रियों में थोड़ी बौखलाहट जरूर हुई परन्तु वे भी इस बात को मान गए कि अफ्रीका ही मानव विकास की पृष्ठभूमि है. यूं भी सबसे प्राचीन मानव जीवाश्म अफ्रीका से ही प्राप्त हुए हैं. परन्तु ज्यों ही केन और उसके सहयोगियों ने 'घड़ी' को पीछे की ओर घुमाया तथा घोषणा की कि मानव प्रजाति की शुरुआत 2 लाख वर्ष पूर्व हुई है, तो मानव-विकास शास्त्री ठगे से रह गए. इसका कारण यह था कि यदि इस विचारधारा को ठीक मान लिया गया तो उनके द्वारा ज्ञात योरोप का निपंडरथल मानव, एशिया का पीकिंग मानव तथा आस्ट्रेलिया तथा इण्डोनेशिया का जावा मानव गौण हो जाता. आनुवंशिकी पर आधारित विचारधारा के अनुसार अफ्रीका से आए नए मानव द्वारा पृथ्वी के विभिन्न भागों में रह रहे इन मानवों की संतानों को पूरी तरह नष्ट कर दिया गया.

इस नई विचारधारा और मानव-विकास शस्त्रियों के बीच संघर्ष ने जड़ पकड़ ली. हालांकि कुछ मानव-विकास शास्त्री इस विचार के पक्ष में भी थे परन्तु अधिकतर इसके विरोध में थे. विरोधियों का कहना था कि जीवाश्मों के अध्ययन में एक तारतम्य है. विभिन्न भौगोलिक क्षेत्र में पाई जाने वाली मानव श्रृंखलाओं का अतीत से गहरा संबंध है और वे सभी अंततः एक ही मानव पूर्वज, होमो इरेक्टस से आकर जुड़ जाती हैं जो लगभग 10 लाख वर्ष पूर्व अफ्रीका से चलकर अन्य भू-भागों में गया था (चित्र-4).

आनुवंशिक विचारधारा के सबसे प्रबल विरोधी हैं मिशिगन विश्वविद्यालय के मानव-विकास शास्त्री, मिलफोर्ड वुलपोफ. उनका कहना है कि प्राचीन मानव समुदाय इतने अलग-थलग हैं कि उनमें क्षेत्रीय गुण अभी भी मौजूद हैं, फिर भी वे आपस में जीन्स के अन्तर्प्रवाह के कारण एक-दूसरे से जुड़े हैं. इसका अर्थ है कि आपसी यौन संसर्ग द्वारा उनमें लाभदायक गुणों का आदान-प्रदान होता रहता है. इसी कारण संसार के सभी क्षेत्रों में होमो सेपियन्स प्रजाति के विशेष गुणों का विकास हुआ, जैसे बड़ा मस्तिष्क, ऊंची कद काठी तथा कम मजबूत जबड़ा. इसके प्रत्युत्तर में आनुवंशिक दृष्टिकोण वालों का कहना है कि जीवाश्म भरोसे लायक नहीं है. उदाहरण के रूप में एशियन वर्ग में पाई जाने वाली विशेषता-गाल की हड्डी, जिसे उत्तरी अफ्रीका, योरोप तथा आस्ट्रेलिया में पाई जाने वाली जीवाश्म खोपड़ियों में भी देखा जा सकता है.

वुलपोफ का दूसरा तर्क है कि यदि अफ्रीका से आदम और हव्वा दूसरे भू-भागों को 'पुनः बसाने' निकले थे तो सब भागों के प्रारम्भिक होमो सेपियन्स अफ्रीका वालों जैसे दिखने चाहिए—परन्तु ऐसा नहीं है. वुलपोफ का यह भी कहना है कि स्वयं आणुविक घड़ी ही भरोसे लायक नहीं है. इसके दो कारण हैं: पहला प्राकृतिक चयन—जिसके कारण अनियमित उत्परिवर्तनों की गति मंद पड़ जाती है, प्राकृतिक चयन कुछ उत्परिवर्तनों को बढ़ावा देता है और कुछ को समाप्त कर देता है. पारिस्थितिक दबाव कितने ही उन हानिकारक उत्परिवर्तनों को नष्ट कर देगा जो किन्हीं कारणों से कभी पैदा हुए होंगे जिससे माइटोकोन्ड्रिल डी एन ए में उनकी



(चित्र-4)

संख्या कम हो जाएगी तथा गणना के समय वह प्रजाति कम समय पूर्व विकसित हुई लगेगी.

दूसरा कारण है अनियमित हानि. इसे इस तरह समझना चाहिए. प्रत्येक पीढ़ी में कुछ स्त्रियां अवश्य होंगी जिनके केवल एक नर संतान होगी या फिर वे निःसंतान होंगी. जब भी ऐसा होगा निरंतर क्रम में से कुछ माइट्रोकोन्ड्रिया कम हो जाएंगे. अतः जहां एक ओर माइटोकोन्ड्रिया में उत्परिवर्तन बढ़ते हैं वहीं अनियमित हानि के कारण उनकी संख्या कम हो जाती है.

पहले संदेह के बारे में जैव-रसायन शास्त्रियों का कहना है कि माइटोकोन्ड्रियल डी एन ए में होने वाले उत्परिवर्तनों पर पारिस्थितिक दबावों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता. दूसरे के बारे में उनका उत्तर है कि अनियमित हानि से माइटोकोन्ड्रिया पर कुछ समय के लिए प्रभाव पड़ सकता है परन्तु जो मौजूद रहते हैं उनमें हमेशा उत्परिवर्तनों की संख्या समान होती है.

समस्या का हल

वर्तमान स्थिति यह है कि आनुवंशिक विचारधारा के पक्षधरों और इसके विरोधियों में लगातार संघर्ष चल रहा है. वास्तव में इस समस्या का सही हल केन्द्रिक डी एन ए के विस्तृत अध्ययन से ही प्राप्त हो सकता है. वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि केन्द्रिक डी एन ए के कुछ जीन निषेचन के समय माता-पिता से बच्चे में बिना किसी परिवर्तन के चले जाते हैं. इन जीनों की क्रमबद्धता का अध्ययन कर मनुष्य के विकास का सही पता लगाया जा सकता है. मनुष्य के पूरे जिनोम की क्रमबद्धता का अध्ययन प्रारम्भ हो चुका है परन्तु इसके सम्पन्न होने में समय लगेगा.

जब आद्य-नारी की खोज कर ही ली गई है तो फिर उसे उसके अर्धांग, यानि आद्य-पुरुष, से क्यों वंचित रखा जाए. मैसच्यूसेट्स इंस्टीट्यूट आफ टेक्नोलोजी के व्हाइटहेड इंस्टीट्यूट के वैज्ञानिक डेविड पेज के अनुसार पुरुष का यौन पित्र-सूत्र माइटोन्ड्रिया का समरूप है तथा उसी की तरह इस गुत्थी को सुलझाने में सहयोगी हो सकता है. यही नहीं, फ्रांसीसी वैज्ञानिक जेरार्ड लूको ने तो मध्य अफ्रीका में रहने वाली अका पिग्मी जाति के लोगों का आद्य-पुरुष की सबसे नजदीकी संतान होने का दावा किया है. आद्य-पुरुष या आदम, आद्य नारी हव्वा का समकालीन है. दोनों दो लाख वर्ष पूर्व अफ्रीका में रहते थे.

सम्पूर्ण मानव जाति के प्रथम माता-पिता के स्थान और काल के बारे में वैज्ञानिक स्वयं अभी एकमत नहीं हैं. हां, माइटोकोन्ड्रिया, केन्द्रिक डी एन ए तथा पित्रसूत्र के विस्तृत समन्वित अध्ययन से कालांतर में इस गुत्थी के सुलझने की आशा अवश्य की जा सकती है. □

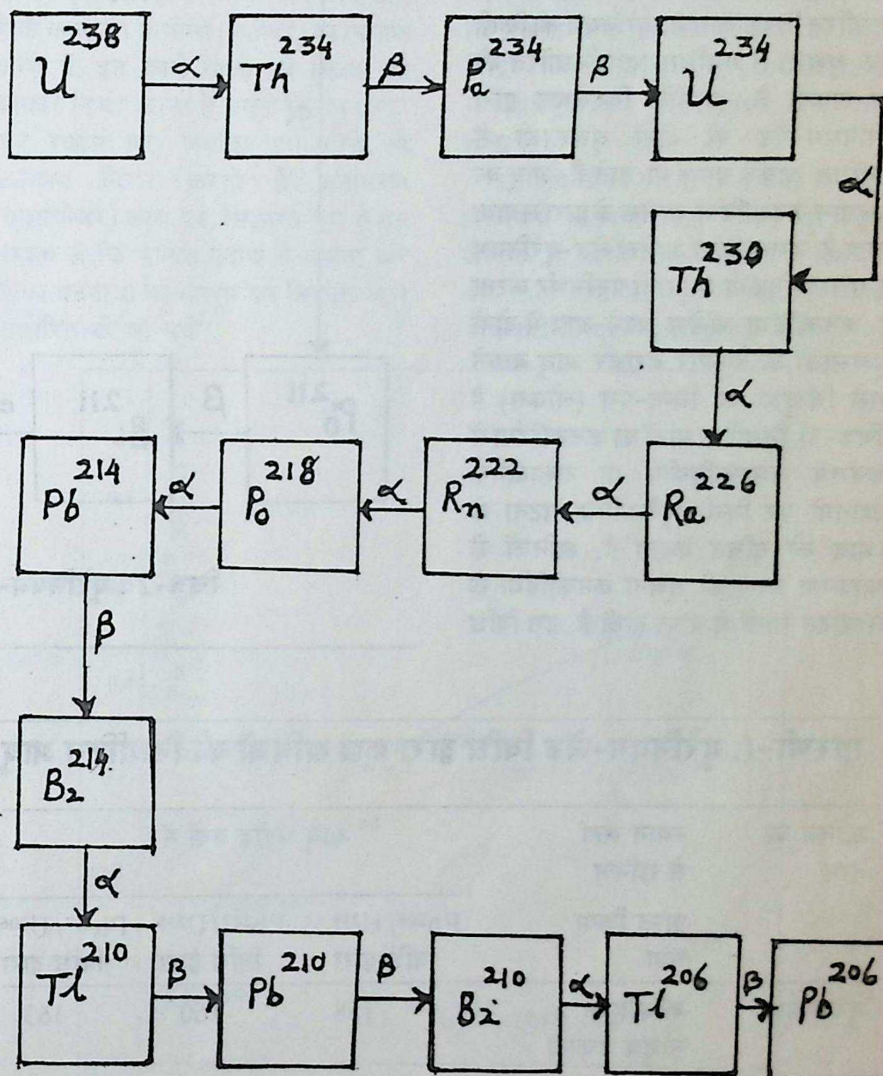
भूवैज्ञानिक घड़ियां-12

यूरेनियम- लेड विधि द्वारा काल- निर्धारण

□ डा० विजय कुमार उपाध्याय

□ सन् 1905 ई० में येल युनिवर्सिटी के प्रोफेसर बोल्टवूड ने बताया कि यूरेनियम के रेडियोधर्मी विखण्डन के कारण लेड अन्त्य उत्पाद के रूप में प्राप्त होता है. यह निष्कर्ष उसने अपने अनुसंधानों के दौरान इस पर्यवेक्षण से निकाला कि प्रत्येक यूरेनियम युक्त खनिज में लेड अवश्य मौजूद रहता है. सन् 1907 ई० में संसार के विभिन्न भागों से प्राप्त 43 यूरेनियम युक्त खनिजों के विश्लेषण से उसने पता लगाया कि तुलनात्मक दृष्टि से अधिक पुराने यूरेनियम युक्त खनिजों में लेड की अधिक मात्रा उपस्थित है. साथ ही साथ उसने यह भी पाया कि एक ही काल में निर्मित खनिजों में लेड/यूरेनियम अनुपात का मान लगभग बराबर है. बोल्टवूड की इन महत्वपूर्ण खोजों से वैज्ञानिकों को काल-निर्धारण के लिए एक नई युक्ति हाथ लग गई. बोल्टवूड ने अपने अनुसंधान के दौरान दस खनिजों की आयु निर्धारित की. इनमें सबसे नवनिर्मित था 41 करोड़ वर्ष पूर्व निर्मित यूरेनीनाइट जो कनेक्टिक से प्राप्त हुआ था, तथा सबसे पुराना नमूना था 220 करोड़ वर्ष पूर्व निर्मित एक यूरेनियम युक्त खनिज का जो श्रीलंका से प्राप्त हुआ था.

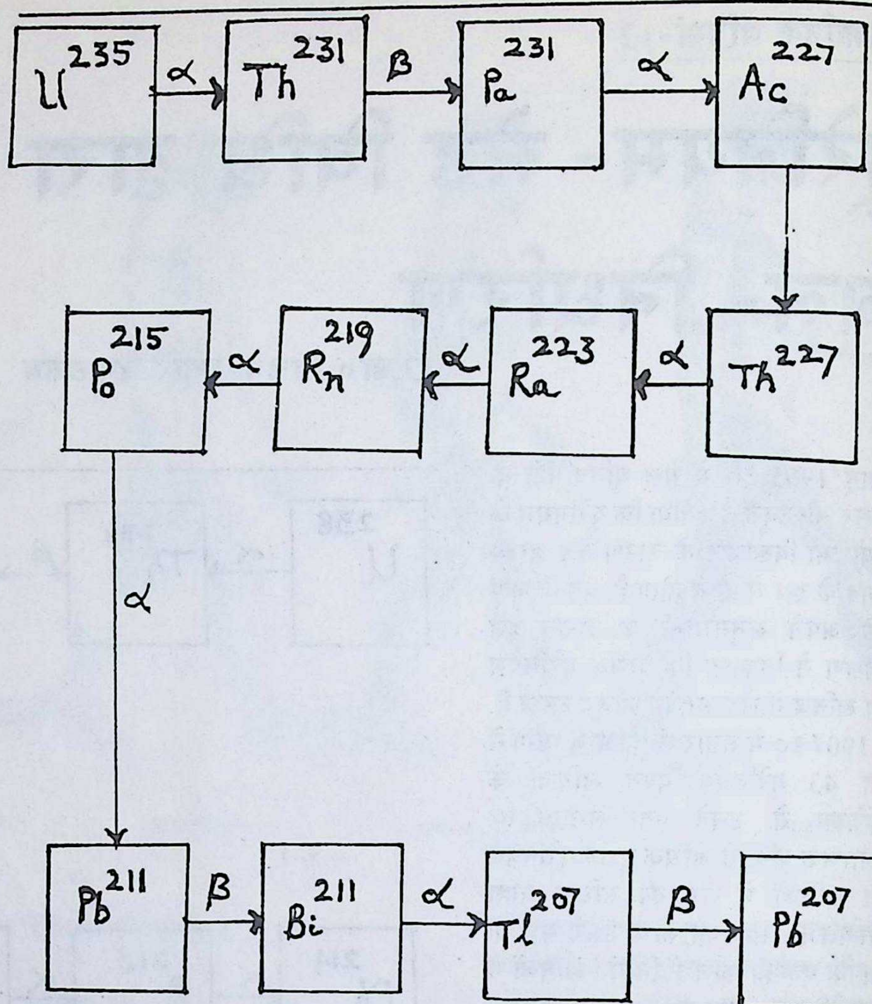
प्रकृति में यूरेनियम के दो समस्थानिक मिलते हैं—यूरेनियम -235 तथा यूरेनियम -238. इन दोनों समस्थानिकों की सापेक्ष प्रचुरता क्रमशः 0.725 प्रतिशत तथा 99.275 प्रतिशत है. ये दोनों ही समस्थानिक रेडियोधर्मी हैं तथा विखंडन द्वारा अन्त्य उत्पाद के रूप में क्रमशः लेड -207 तथा लेड -206 को उत्पन्न करते हैं. यूरेनियम -238—लेड -206 श्रृंखला में कुल 15 तत्व प्राप्त होते हैं (चित्र-1). ये सभी तत्व (लेड को छोड़कर) विखंडनशील हैं. उसी प्रकार यूरेनियम -235—लेड -207 श्रृंखला में कुल बारह तत्व प्राप्त होते हैं (चित्र-2). इस श्रृंखला में लेड को छोड़कर शेष सभी तत्व विखंडनशील हैं. यूरेनियम के उपर्युक्त दो मूल विखंडनशील समस्थानिकों में यूरेनियम -235 का विखंडन अधिक तीव्र गति से होता है. इसके अर्द्ध जीवन काल का मान 71.3 करोड़ वर्ष है, जबकि यूरेनियम -238 के



चित्र-1 : यूरेनियम-238-लेड-206 श्रृंखला

अर्द्ध जीवन काल का मान 4 अरब 51 करोड़ वर्ष है. चूंकि यूरेनियम -238 की तुलना में -235 अधिक तेजी से विखंडित होता है, अतः समय बीतने के साथ-साथ U^{235}/U^{238} अनुपात घटता रहता है. आज कल यह अनुपात लगभग 1/137.7 के बराबर है.

यूरेनियम-लेड श्रृंखला के आधार पर काल-निर्धारण की तीन बुनियादी विधियां हैं. पहली विधि में मूल यूरेनियम समस्थानिक तथा विखण्डन के कारण उत्पन्न अन्त्य उत्पाद लेड की मात्रा का निर्धारण तथा विखण्डन नियतांक को निर्धारित किया जाता है. यूरेनियम की किसी एक श्रृंखला से संबंधित आयु निर्धारित की जा सकती है, हालांकि विश्लेषण द्वारा यूरेनियम-लेड की दोनों श्रृंखलाओं से संबंधित आंकड़े प्राप्त हो जाते हैं. आयु का अनुमान कनकॉर्डिया आलेख के द्वारा लगाया जाता है. कनकॉर्डिया आलेख लेड-यूरेनियम के समस्थानिकीय अनुपातों पर निर्भर करता है. कनकॉर्डिया आलेख अपने आप में दोनों श्रृंखलाओं के अनुसार बराबर आयु बताने वाले बिन्दुओं का बिन्दु-पथ (लोकस) है (चित्र-3). निर्धारित मानों का कनकॉर्डिया से विचलन समस्थानिकीय या रासायनिक संहतियों पर किसी भूवैज्ञानिक घटना के प्रभाव को सूचित करता है. खनिजों के रवाकरण काल की सूचना कनकॉर्डिया के निर्धारित मानों से प्राप्त होती है. इस विधि द्वारा यूरेनीनाइट, पिचब्लेंड, जिरकन आदि का निर्माण-काल संतोषजनक रूप से निर्धारित किया जा सकता है.



चित्र-2 : यूरेनियम-235-लेड-207 श्रृंखला

सारणी-I. यूरेनियम-लेड विधि द्वारा कुछ खनिजों की निर्धारित आयु

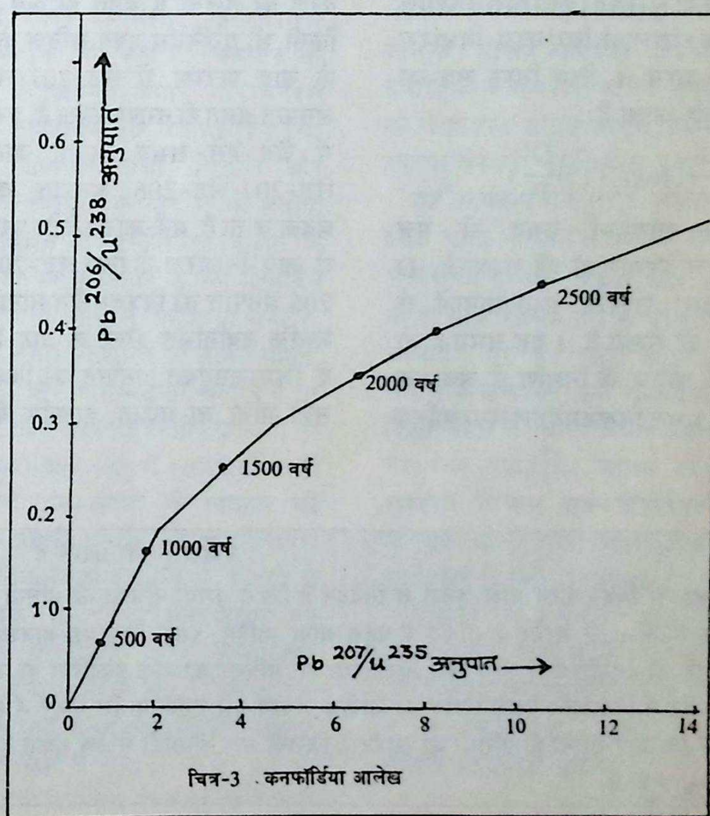
खनिज का नाम	स्थान जहां से खनिज प्राप्त किया गया	आयु करोड़ वर्षों में		
		Pb^{206}/U^{238} विधि द्वारा	Pb^{207}/U^{235} विधि द्वारा	Pb^{207}/U^{206} विधि द्वारा
यूरेनीनाइट	ब्लैकहिल्स साउथ डकोटा	158	160	163
जिरकन	केप टाउन दक्षिण अफ्रीका	33	35.4	52.5

काल-निर्धारण की दूसरी बुनियादी विधि में यूरेनियम विखण्डन श्रृंखला में असाम्यता (डिसइक्विलिब्रियम) का आकलन किया जाता. जैसे ही यूरेनियम किसी शैल में शामिल होता है, उसका विखंडन प्रारम्भ हो जाता है तथा विखण्डन द्वारा उत्पन्न पदार्थ का संचय होने लगता है. निरपेक्ष साम्यावस्था तब आती है जब विखण्डन श्रृंखला के मध्य में स्थित तत्व का उत्पादन

एवं उसके विखण्डन द्वारा अगले तत्व के निर्माण की दर बराबर हो जाती है. यदि श्रृंखला के मध्य स्थित तत्व असाम्यावस्था में हो तो मेजबान (हौस्ट) शैल की आयु निर्धारित की जा सकती है. आयु का सही निर्धारण निर्भर करता है जनक पदार्थ एवं उत्पादित पदार्थ की प्रचुरता एवं पृथक्कीकरण के समय उनके संचय की दर पर. अवसादों (सेडिमेंट्स) का आयु-निर्धारण थोरियम-230/थोरियम-232 तथा थोरियम-230/प्रोटैक्टिनियम-231 के अनुपातों के उपयोग द्वारा संतोषजनक रूप में किया जा चुका है.

तीसरी बुनियादी विधि में खनिज जालक (लैटिस) के भीतर होने वाले समय आधारी (टाइम डिपेंडेंट) विकिरण-क्षय (डैमेज) का उपयोग किया जाता है. यूरेनियम-238 के स्वतः स्फूर्त्त (स्पौंटेनियस) विखण्डन (फिसन) के द्वारा दो भारी विखंडन उत्पाद निर्मित होते हैं. मेजबान खनिज ऊर्जापूर्ण प्रक्षेप्य (प्रोजेक्टाइल) का शोषण कर लेता है, जिसके कारण क्षय (डैमेज) के सरल रेखीय (लीनियर) अनुचिह्न (ट्रेल्स) निर्मित हो जाते हैं. किसी दिए गए खनिज को उचित खरोचशील (र्सचंग) परिस्थितियों में रखने पर उपर्युक्त अनुचिह्नों (ट्रेल्स) का विस्तार हो जाता है, जिससे अश्मीकृत (फौसिलाइज्ड) विखंडन घटनाओं का अभिलेख हमें प्राप्त हो जाता है. यूरेनियम-235 के तापीय न्यूट्रॉन-विखंडन (थर्मल न्यूट्रॉन फिसन) द्वारा अभिप्रेरित (इन्ड्यूस्ड) विखंडन उत्पाद निर्मित किए जाते हैं जो उपर्युक्त विधि द्वारा ही अभिलेखित होकर स्पष्ट देखे जा सकते हैं. जहां जीवाश्मित (फौसिलाइज्ड) अनुचिह्न घनत्व समय आधारी घटनाओं के अभिलेख हैं वहीं अभिप्रेरित (इन्डयुस्ड) अनुचिह्न घनत्व वर्तमान यूरेनियम सान्द्रण की माप प्रस्तुत करते हैं. किसी खनिज के लीक (ट्रैक) धारण (रिटेंशन) की आयु गणना में कई घटक शामिल हैं जैसे—फौसिल तथा अभिप्रेरित अनुचिह्न घनत्व तथा यूरेनियम- 238 का स्वतः स्फुर्त्त विखण्डन (स्पौंटैनियस फिसन) क्षय-नियतांक. इस विधि द्वारा अनेक स्थानों पर अभ्रक (माइका), स्फीन, जिरकन, ऐपाटाइट, हौर्नब्लेंड तथा प्राकृतिक शीशे (ग्लास) का आयु-निर्धारण संतोषजनक रूप से किया जा चुका है.

कुछ खनिजों (विशेषकर बायोटाइड नामक अभ्रक) में यूरेनियम के सूक्ष्म कणों की उपस्थिति एवं इससे उत्सर्जित रेडियोधर्मी किरणों के प्रभाव के कारण बहुवर्णीय (प्लिओक्रोइक) प्रभामण्डल (हैलो) उत्पन्न होते हैं. इन किरणों में उपस्थित ऐल्फा कण जब उपर्युक्त खनिजों के मणिभ (क्रिस्टल) जालक (लैटिस) द्वारा शोषित कर लिए जाते हैं तो काले रंग के गोलों (स्फीयर) का निर्माण करते हैं. इन काले गोलों की त्रिज्या का आकार निर्भर करता है उसके विशेष ऐल्फा क्षय स्कीम पर, जबकि उस गोले की कालिमा निर्भर करती है अनावरण (एक्सपोजर) काल पर. सिद्धान्त रूप से यह सम्भव है कि मानक पदार्थ से तुलना कर ऐल्फा घटनाओं को मालूम कर निरपेक्ष आयु निर्धारित की जा सके.



चित्र-3 कनफॉर्डिया आलेख

यूरेनियम-238 के विखंडन द्वारा अन्त्य उत्पाद लेड-206 तक पहुंचने में आठ ऐल्फा कणों (हीलियम नाभिकों) का उत्सर्जन होता है. उसी प्रकार यूरेनियम-235 के विखंडन द्वारा अन्त्य उत्पाद लेड-207 तक पहुंचने में सात ऐल्फा कणों का उत्सर्जन होता है. जैसे ही किसी रेडियोधर्मी खनिज का निर्माण होता है, उसके विखंडन द्वारा विखंडनोत्पादित पदार्थ का संचय प्रारम्भ हो जाता है. परन्तु चूंकि अस्थायी समस्थानिकों की एक लम्बी श्रृंखला है (चित्र-1 तथा-2) जिनमें प्रत्येक समस्थानिक का भिन्न-भिन्न अर्द्धजीवन काल है, अतः एक कालावधि होती है जिसमें कि किसी एक जनक परमाणु का एक विखण्डन तथा उससे उत्पन्न प्रत्येक बाद के समस्थानिक का एक विखण्डन साथ-साथ होता है.

इस स्थिति को साम्यावस्था कहा जाता है. अध्ययनों से पता चला है कि यूरेनियम खनिजों में साम्यावस्था पहुंचने में लगभग दस लाख वर्षों का समय लगता है. कोई रेडियोधर्मी यूरेनियम खनिज साम्यावस्था

में पहुंचा है या नहीं इसे जानने के लिए साधारण रेडियोमापी यंत्रों का उपयोग किया जाता है, क्योंकि प्राकृतिक यूरेनियम की रेडियोधर्मिता मूल तत्व एवं उत्पादित मध्यवर्त्ती समस्थानिकों का मिला-जुला योगदान है, परन्तु श्रृंखला के प्रत्येक चरण के समस्थानिक द्वारा बीटा तथा गामा किरणों का विकिरण-योगदान अलग-अलग है. साम्यावस्था में पहुंची हुई किसी भी विखंडनशील रेडियोधर्मी समस्थानिक श्रृंखला के लिए बीटा तथा गामा विकिरण का अनुपात निश्चित रहता है. चूंकि रेडियोमापी गणना यंत्र के उपयोग द्वारा गामा (γ) तथा बीटा एवं गामा के योग ($\beta+\gamma$) के विकिरण की गणना अलग-अलग कर सकता है, अतः साम्यावस्था का निर्धारण किया जा सकता है. वैसा यूरेनियम जो हाल ही में अपनी वर्तमान स्थिति में आया हो तथा वैसा यूरेनियम जिसमें कुछ विखंडनोत्पादित पदार्थ हाल में लुप्त हो गया हो, के बीच उपर्युक्त विधि द्वारा सरलतापूर्वक विभेद किया जा सकता है.

साम्यावस्था में स्थित किसी विखंडनशील समस्थानिक श्रृंखला के लिए काल-निर्धारण हेतु गणना करने के लिए निम्न सूत्र का उपयोग किया जाता है :

$$t = \frac{1}{\lambda} \log_e \left(1 + \frac{D}{P}\right)$$

जहां P वर्तमान समय में मूल विखंडनशील परमाणुओं की संख्या है, D विखंडन द्वारा उत्पन्न समस्थानिकों के परमाणुओं की संख्या है, t वह समय है जो रेडियोधर्मी खनिज के निर्माण से अब तक बीटा तथा λ मूल विखंडनशील समस्थानिक का विखंडन-नियतांक है. विखंडन नियतांक λ तथा अर्द्धजीवन काल $(T)_{1/2}$ के बीच निम्नलिखित गणितीय संबंध स्थापित किया गया है,

$$T_{1/2} = \frac{\log_e 2}{\lambda} = \frac{0.6931}{\lambda}$$

चूंकि यूरेनियम के दो समस्थानिकों U^{235} तथा U^{238} की विखंडन दर अलग-अलग है, अतः इनके अन्त्य उत्पादों Pb^{207} तथा Pb^{206} का अनुपात भी शैलों या खनिजों की आयु की माप के लिए उपयोग में लाया जा सकता है. किसी भी शैल या खनिज में इसकी उत्पत्ति काल से प्रारम्भ कर 60 करोड़ वर्षों के बीच निर्मित होने वाले यूरेनियम खनिजों में यूरेनियम के विखंडन द्वारा निर्मित होने वाले लेड परमाणुओं में Pb^{206} लगभग 95 प्रतिशत रहता है जबकि Pb^{207} सिर्फ 5 प्रतिशत. इस प्रकार Pb^{207} की तुलना में Pb^{206} की माप अधिक सही ढंग से की जा सकती है, विशेषकर नवनिर्मित यूरेनियम खनिजों में. चूंकि यूरेनियम-235 का अर्द्ध जीवन काल, यूरेनियम-238 के अर्द्धजीवन काल की तुलना में बहुत ही कम है, अतः किसी भी यूरेनियम युक्त खनिज के निर्माण के बाद प्रारम्भ में लेड-207/लेड-206 अनुपात बहुत ही नगण्य रहता है. परन्तु बाद में जैसे-जैसे समय बीतता जाता है लेड-207/लेड-206 अनुपात का मान बढ़ता जाता है. यही कारण है कि पुराने शैलों के आयु-निर्धारण के लिए लेड-207/लेड-206 अनुपात को विश्वसनीय माना जाता है जबकि नवनिर्मित शैलों के आयु-निर्धारण के लिए उपर्युक्त अनुपात को विश्वसनीय नहीं माना जा सकता. हालांकि वैसी कोई निश्चित समय-सीमा नहीं है जिसके नीचे Pb^{207}/Pb^{206} अनुपात को अविश्वसनीय कहा जाए फिर भी अभी तक किए गए शोधों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कैम्ब्रियन काल (आज से 60 करोड़ वर्ष पूर्व) से पूर्व में निर्मित शैलों के काल-निर्धारण के लिए लेड-207/लेड-206 अनुपात विश्वसनीय हैं, जबकि उसके बाद में निर्मित शैलों के लिए उपर्युक्त अनुपात उपयोगी नहीं है.

यूरेनियम-लेड विधि द्वारा संसार के अनेक क्षेत्रों से प्राप्त शैलों का आयु-निर्धारण सफलतापूर्वक किया जा चुका है. इस सम्बन्ध में कुछ आंकड़े सारणी-I में दिए गए हैं.

यूरेनियम-लेड विधि द्वारा निर्धारित आयु तथा लेड-लेड विधि द्वारा निर्धारित आयु के मान में इतना अधिक अन्तर का कारण यह बताया गया है कि समय के साथ-साथ लेड परमाणुओं की संख्या में डिफ्यूजन के कारण ह्रास होता रहा है. □

भूवैज्ञानिक काल निर्धारण पर लिखी गई बारह लेखों की इस श्रृंखला के लेखक डा० विजय कुमार उपाध्याय भागलपुर में इंजीनियरी कालेज में भूगर्भ विज्ञान के प्राध्यापक हैं और अर्से से विज्ञान लेखन में लगे हैं. आविष्कार के एक बड़े पाठक वर्ग के आग्रह पर डा० उपाध्याय आविष्कार के लिए एक और लेखमाला की रचना कर रहे हैं जिसका प्रकाशन पत्रिका में शीघ्र ही प्रारंभ होगा.

एजेंट कृपया ध्यान दें

पत्रिका की बिक्री करने वाले एजेंटों से निवेदन है कि वे कृपया पत्रिका की प्रतियों का आर्डर अग्रिम दें. संबंधित अंक के प्रकाशन से कम से कम एक महीने पहले आर्डर कार्यालय में पहुंच जाना चाहिए. इसके लिए यह आवश्यक है कि आर्डर की गई प्रतियों का मूल्य (कमीशन काट कर) पहले ही कार्यालय में जमा करा दिया गया हो. पत्रिका का अंक प्रकाशित हो जाने के बाद आर्डर में वृद्धि नहीं की जा सकती है. कृपया अपने आर्डर में निकटतम रेलवे स्टेशन का उल्लेख अवश्य करें ताकि पार्सल भेजने में सुविधा हो और आपको प्राप्त करने में विलंब न हो. कृपया ध्यान रहे कि आप उतनी ही प्रतियों का आर्डर दें जितनी आप आसानी से बेच सकते है, क्योंकि एक बार आर्डर की गई पत्रिकाओं को वापस लेने की व्यवस्था नहीं है.

—वरिष्ठ सम्पादक

अनूठा कार्यक्रम-1991

रेडियो धारावाहिक "मानव का विकास"

□ भारत सरकार की राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद् (एन० सी० एस० टी० सी०) विज्ञान को जन-ज़न तक पहुंचाने के लिए कटिबद्ध है. आकाशवाणी भी यह काम एक अरसे से कर रही है. हाल ही में इन दोनों ने मिलकर बच्चों के बीच विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के लिए एक अनूठा कार्यक्रम तैयार किया है—'मानव का विकास' शीर्षक से एक लंबा रेडियो धारावाहिक, जो हमारे वैज्ञानिक और तकनीकी विकास के साथ ही सांस्कृतिक पहलुओं को भी छूता है.

रेडियो धारावाहिक 'मानव का विकास' को 130 कड़ियों में प्रसारित करने की योजना है. इसे हर इतवार की सुबह सुना जा सकता है. बाद में हफ्ते के किसी और दिन इसे दोबारा प्रसारित किया जाता है. समय और दिन की सही जानकारी पास के आकाशवाणी केन्द्र से मिल सकती है. नियमित रूप से रेडियो सुनने वालों ने इसके बारे में घोषणाएं भी सुनी होंगी. आकाशवाणी दिल्ली (दिल्ली-क) से इसका प्रसारण सुबह 8 बजकर 15 मिनट पर किया जाता है. प्रसारण पिछली 2 जून से शुरू हो चुका है.

इसे हिन्दी और अंग्रेजी सहित कुल 17 भाषाओं में एक-साथ प्रसारित किया जा रहा है. बाकी भाषाएं हैं—असमी, बंगला, गुजराती, कन्नड़, कोंकणी, मलयालम, मणिपुरी, मराठी, नेपाली, उड़िया, पंजाबी, सिंधी, तमिल और तेलुगू. इतनी भाषाओं में एक साथ सभी केन्द्रों से प्रसारित होने वाला यह पहला कार्यक्रम है.

ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति से लेकर मानव के विकास की वर्तमान दशा तक की पूरी कहानी बताने के लिए धारावाहिक को 17 खण्डों में बांटा गया है, ये हैं: हमारा ब्रह्माण्ड, जीवन की उत्पत्ति और विकास, मानव का विकास, संस्कृति का विकास, प्राचीन सभ्यताएं, अंतरिक्ष की समझ, पदार्थ की प्रकृति, जीवन की पहेली, चिकित्सा, महान खोजें, मानव द्वारा सृजन, मानव और ऊर्जा, अंतरिक्ष में मानव, ब्रह्माण्ड में मानव, मानव खुद कसौटी पर, मानव का आस्तित्व और मानव नैतिकता.

इस धारावाहिक की विशेषता इसका प्रस्तुतिकरण है. मानव के विकास से जुड़े हर पहलू की जानकारी बड़े ही रोचक और नाटकीय अंदाज में दी गई है. इसके पात्र नटखट बच्चे हैं और जानकारी देने के लिए उनके अंकल, पापा वगैरह भी साथ में हैं. धारावाहिक से संबंधित वैज्ञानिक जानकारी विशेषज्ञों द्वारा जुटाई गई है, जिसे विज्ञान लेखकों ने नाटक का रूप दिया है.

इस कार्यक्रम के लिए 10 से 14 साल के एक लाख बच्चों और 10 हजार स्कूलों को नियमित श्रोता के रूप में पंजीकृत किया गया है. विषय-वस्तु को और अधिक विस्तार से समझाने के लिए नियमित श्रोताओं को चार्ट, किट वगैरह भी भेजी जा रही है.

अब तक प्रसारित हुई कड़ियों में ब्रह्मांड की उत्पत्ति, जीवन की उत्पत्ति एवं विकास, मानव का विकास और संस्कृति के विकास के बारे में बताया जा चुका है. 'ब्रह्मांड की उत्पत्ति' के अंतर्गत हमारे सौर-मण्डल बनने की कहानी विस्तार से समझाई गई है. साथ ही आकाशगंगाओं, सितारों और ब्रह्मांड के विस्तार के बारे में भी बताया गया है. 'जीवन की उत्पत्ति एवं विकास' के तहत धरती पर कोशिका के रूप में जीवन की उत्पत्ति के बारे में समझाया गया है. इससे जुड़े तमाम सिद्धान्त भी बताए गए हैं. यह कहानी और आगे बढ़कर बताती है कि धरती पर किस तरह धीरे-धीरे प्राणियों का विकास हुआ और अंत में स्तनपायी प्राणी बने. इसमें वनस्पतियों के विकास की जानकारी भी दी गई है. मानव के संपूर्ण जैव-वैज्ञानिक-विकास को कई कड़ियों में बताया गया है. इस दौरान उसमें हुए शारीरिक परिवर्तनों और सामाजिक बदलावों की चर्चा भी की गई है. 'संस्कृति के विकास' के तहत मानव के सामाजिक ढांचे के निर्माण की कहानी सुनाई गई है. यह भी बताया गया है कि किस तरह मानव ने खेती करना शुरू किया और उपयोगी पशुओं को पालतू बनाया. इसमें अंधविश्वासों, जादू-टोनों, जातियों आदि की उत्पत्ति की धारणाएं भी प्रस्तुत की गई हैं. जिन श्रोताओं ने इन्हें नहीं सुना है, उन्हें निराश होने की जरूरत नहीं है. बाद में धारावाहिक के कैसेट और किताब बनाने की योजना भी है.

उन्नीस जनवरी से प्राचीन मानव सभ्यताओं की जानकारी दी जाएगी, सबसे पहले सुमेरियन सभ्यता की. इसमें सुमेरियन सभ्यता के शहरों, गांवों आदि की जानकारी के साथ ही उनके वैज्ञानिक और तकनीकी विकास के बारे में भी बताया गया है. **छब्बीस जनवरी** को गणतंत्र दिवस के कारण कोई कड़ी प्रसारित नहीं की जाएगी. **दो फरवरी** को मिस्र की महान सभ्यता के बारे में बताया जाएगा. पता लगेगा कि मिस्र के विशाल पिरामिड कैसे बने. दुनिया के पहले 'कागज' पैपीरस की जानकारी भी इसी से मिलेगी. **नौ फरवरी** को मिनोअन और यूनानी सभ्यता का परिचय मिलेगा. यह भी पता लगेगा कि मिनोअन सभ्यता नष्ट कैसे हुई. इन सभ्यताओं की उपलब्धियां भी गिनाई जाएंगी. **सोलह फरवरी** को श्रोताओं के सवालों के जवाब दिए जाएंगे. **तेइस फरवरी** को वे हालात बताए जाएंगे, जिनके कारण हड़प्पा सभ्यता का विकास हुआ.

यह कार्यक्रम एक तरफा सम्वाद नहीं है. इसमें श्रोता भी भाग ले सकते हैं अपने सवाल भेजकर. फिर इसे 'भइया' और 'दीदी' नाम के दो पात्र रोचक ढंग से प्रस्तुत करते हैं. आमतौर पर हर चार कड़ियों के बाद सवाल-जवाब का एक कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है. श्रोता अपने सवाल इस पते पर भेज सकते हैं: **'मानव का विकास', राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद, टेक्नोलाजी भवन, नया महरौली मार्ग, नई दिल्ली-110016.**

सवालों को स्थानीय भाषा में पास के आकाशवाणी केन्द्र में भी भेजा जा सकता है. किसी अन्य जानकारी के लिए **पोस्ट बाक्स नं. 71, नई दिल्ली-110001** के पते पर भी सम्पर्क किया जा सकता है.

—डा० जगदीप सक्सेना

आओ दूरदर्शी बनाएं—1

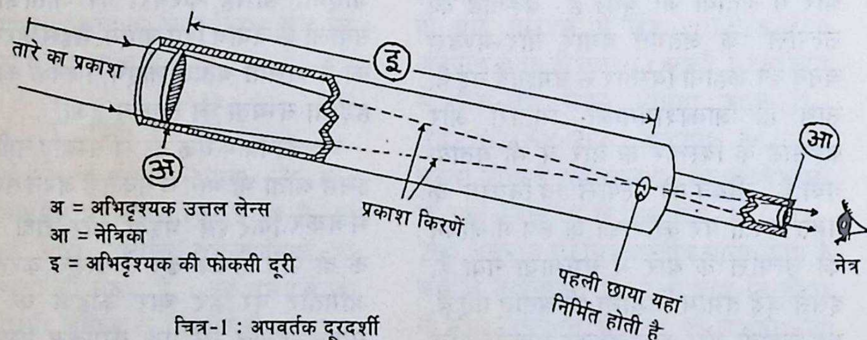
□ आशुतोष मिश्र

आकाश में झिलमिलाते सितारों को देखकर हम सबके मन में अनेक प्रश्न उठते हैं. ये हमसे कितनी दूर हैं? इनकी चमक का रहस्य क्या है? कुल कितने तारे हैं? और भी न जाने क्या क्या? अंतरिक्ष की जानकारी पाने के लिए दूरदर्शी होना बड़ा जरूरी है. इसी से इस अंक से हम प्रारंभ कर रहे हैं एक लेखमाला जिसमें हम आपको बताएंगे कि कम लागत में एक अच्छा दूरदर्शी किस प्रकार बनाया जा सकता है.

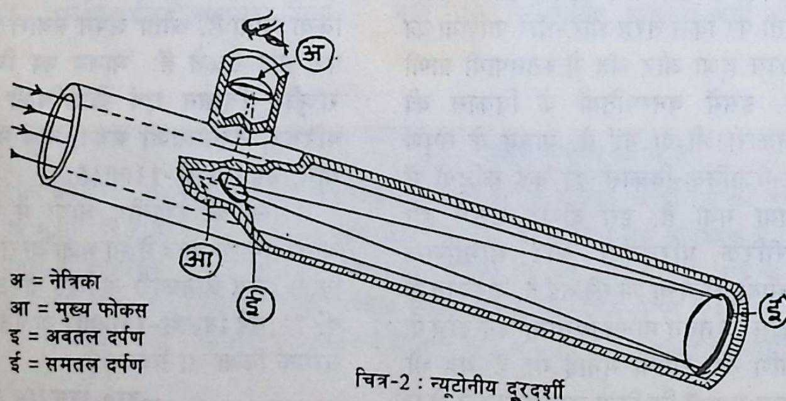
□ दूरदर्शी बनाने से पहले आइए हम यह जान लें कि दूरदर्शी कितने प्रकार के होते हैं, इनके कार्य करने का सिद्धान्त क्या है और अंतरिक्ष की जानकारी हासिल करने के लिए दूरदर्शी की आवश्यकता क्यों है?

हमारी आंखों की संवेदनशीलता इतनी नहीं होती कि वे बहुत धुंधली आकृतियों को देख सकें. तारे हमसे बहुत दूर हैं. इसलिए उनसे आने वाला प्रकाश हमारे नेत्रों तक पहुंचते-पहुंचते अत्यंत क्षीण हो जाता है. इसके कारण कुछ तारों को तो हम देख पाते हैं, कुछ को नहीं. फिर दूरदर्शी से उन तारों को देखना कैसे संभव होता है?

मान लीजिए किसी तारे से प्रकाश किरणें पृथ्वी पर आ रही हैं. हम उन किरणों को देख पाते हैं अथवा नहीं यह इस बात पर निर्भर करता है कि वे किरणें कितने क्षेत्रफल पर एकत्रित हो रही हैं. वास्तव में एक 6 इंच के अवतल दर्पण (कनकेव मिरर) का क्षेत्रफल हमारी आंखों के क्षेत्रफल से अधिक होता है. इसके फलस्वरूप यह अवतल दर्पण हमारी आंखों की अपेक्षा प्रकाश किरणों के प्रति अधिक संवेदनशील होता है. हमारे नेत्रों के लेंस का व्यास लगभग 1/5 इंच होता है. इसका अर्थ यह हुआ कि 6 इंच व्यास का अवतल दर्पण हमारे नेत्रों का 30 गुना होता है, जिसके कारण वह $(30)^2 = 900$ गुना अधिक प्रकाश एकत्रित कर सकता है. नंगी आंखों से दिखने वाला तारा, 6 इंच के दूरदर्शी से देखे जाने पर लगभग 900 गुना अधिक चमकीला दिखाई देगा. आपके दूरदर्शी के अभिदृश्यक (आब्जेक्टिव) का व्यास जितना अधिक होगा, वह उतना ही अधिक संवेदनशील होगा.



चित्र-1 : अपवर्तक दूरदर्शी



चित्र-2 : न्यूटोनीय दूरदर्शी

कितनी तरह के दूरदर्शी

दूरदर्शी मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं :

अपवर्तक (रिफ्रेक्टिंग) दूरदर्शी : ऐसे दूरदर्शी में एक बड़ा उत्तल (कन्वेक्स) लेंस दूरदर्शी की ट्यूब के अगले सिरे पर लगा होता है. तारे से आने वाला प्रकाश इस लेंस द्वारा अपवर्तित (रिफ्रेक्ट) होता है और ट्यूब के दूसरे सिरे पर तारे की आकृति बना देता है. लेंस से आकृति की दूरी को फ़ोकस दूरी कहते हैं. लेंस द्वारा निर्मित छाया को देखने के लिए एक अन्य लेंस का उपयोग किया जाता है (चित्र-1).

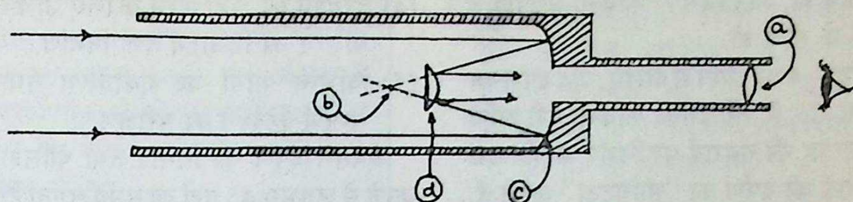
पहला दूरदर्शी सत्रहवीं शताब्दी में गैलीलियो (1564-1642) ने बनाया था जो इसी सिद्धांत पर कार्य करता था. उसके दूरदर्शी के लेंस का व्यास लगभग दो इंच था. आज यह तकनीक इतनी विकसित हो चुकी है कि विश्व का सबसे विशाल अपवर्तन दूरदर्शी जिसका व्यास 40 इंच है, यर्कीज वेधशाला, विस्कॉन्सिन में स्थापित है. आप अंदाज लगा सकते हैं कि यह कितना शक्तिशाली होगा—यह हमारे नेत्रों से (200 x 200) = 40,000 गुना अधिक संवेदनशील है.

परावर्तक (रिफ्लेक्टिंग) दूरदर्शी : इस दूरदर्शी में उच्च गुणवत्ता का पॉलिश किया हुआ एक अवतल (कनकेव) दर्पण ट्यूब के निचले सिरे पर लगा होता है. तारे से आने वाली प्रकाश किरणें इस दर्पण से परावर्तित होकर मुख्य फोकस पर छाया का निर्माण करती हैं (चित्र-2). चूंकि यह फोकस ट्यूब के अंदर होता है, इसलिए अनेक विधियों का

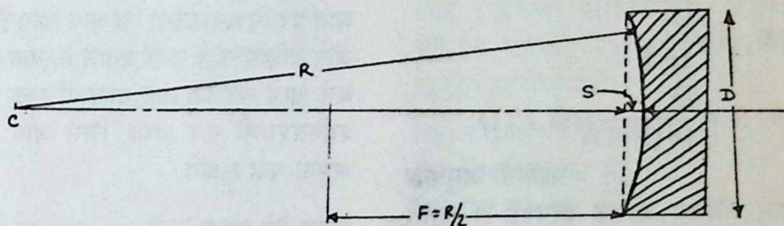
उपयोग करके इस छाया को ट्यूब के बाहर बनाया जाता है. न्यूटोनियाई रिफ्लेक्टर में (चित्र-2) एक समतल दर्पण द्वारा मुख्य फोकस पर आने वाली प्रकाश किरणों को ट्यूब के बाहर मोड़ दिया जाता है. कैसेग्रेन रिफ्लेक्टर में एक अलग तकनीक प्रयुक्त होती है. इसमें अवतल दर्पण के बीच में एक छेद बना दिया जाता है और मुख्य फोकस के पहले ही एक उत्तल (कन्वेक्स) दर्पण द्वारा प्रकाश किरणों को इस प्रकार मोड़ दिया जाता है कि वे अवतल दर्पण में बने छेद से निकल सकें (चित्र-3). इस समय विश्व का विशालतम परावर्तक दूरदर्शी जिसके अवतल दर्पण का व्यास 236 इंच (6 मीटर) है, सोवियत यूनियन की कॉकेशस पहाड़ियों पर स्थित है. अमेरिका का विशालतम परावर्तक दूरदर्शी माउंट पैलोमर (कैलिफोर्निया) पर बना है. इसका व्यास 200 इंच है. इतने विशाल दूरदर्शियों का उपयोग करके हम अंतरिक्ष की गहराइयों में बहुत दूर तक जा सकते हैं.

खगोलशास्त्र में दिलचस्पी रखने वाले शौकिया लोग यदि छः इंच के परावर्तक दूरदर्शी से कार्य प्रारम्भ करें तो अच्छा रहेगा क्योंकि इसे बनाना अपेक्षतया सरल है, और इसमें खर्चा भी कम आता है. इस प्रकार का जो दूरदर्शी आप बनाने जा रहे हैं, उसके तीन मुख्य भाग होते हैं : (i) अवतल दर्पण (कॉन्केव माइरर); (ii) समतल दर्पण (फ्लैट डायगोनल); और (iii) नेत्रिका (आइपीस).

अंतरिक्ष से आने वाली प्रकाश किरणें अवतल दर्पण से परावर्तित होकर फोकस पर पहुंचती हैं जहां लगा समतल दर्पण उन्हें 90 अंश पर मोड़ देता है, जिससे हम उन्हें ट्यूब में लगी नेत्रिका से देख सकते हैं. दूरदर्शी का सबसे महत्वपूर्ण भाग होता है उसका अवतल दर्पण. इस अवतल दर्पण को या तो आप बाजार से बना बनाया खरीद सकते हैं अथवा स्वयं बना सकते हैं. यदि आप छः इंच व्यास का अवतल दर्पण बाजार से खरीदना चाहें, तो यह आपको आसानी से नहीं मिलेगा. और यदि मिला तो बहुत महंगा होगा. इसलिए यहां ऐसी तकनीक बताई जा रही है जिससे आप स्वयं उच्चकोटि का



चित्र-3 : कैसिग्रेनीय दूरदर्शी



चित्र-4 : अवतल दर्पण का आकार

अवतल दर्पण बना सकेंगे. दर्पण तैयार हो जाने पर आपको स्वयं यह विश्वास नहीं होगा कि आपने उसे खुद ही बनाकर तैयार किया है.

शब्दावली

आइए पहले आपको दूरदर्शी के संदर्भ में प्रयुक्त होने वाली शब्दावली से आपको परिचित करा दें :

(1) **कोणीय आवर्धन क्षमता (एंगुलर मैग्निफाइंग पावर)** : यदि अवतल दर्पण का व्यास D तथा फोकस (फोकल) दूरी F है, और नेत्रिका की फोकस दूरी fe है, तो उस दूरदर्शी की कोणीय आवर्धन क्षमता $M = F/fe$ होती है.

(2) **प्रकाश संग्राहक क्षमता तथा संवेदनशीलता** : आपका दूरदूर्शी कितना संवेदनशील है, इस बात पर निर्भर करेगा कि उसके अवतल दर्पण का व्यास "D" कितना है. यह व्यास जितना अधिक होगा, उतनी ही धुंधली आकृतियों को देख सकने में दूरदर्शी सक्षम होगा.

(3) **फोकसी अनुपात** : किसी दूरदर्शी का फोकसी अनुपात F/D के बराबर होता है. यदि हम कहते हैं कि हमारे दूरदर्शी f/8 है तो उसका तात्पर्य है कि हमारे दूरदर्शी के लिए $f/D = 8$, यानि $f = 8$ D. यदि अवतल दर्पण का व्यास 6 इंच है, तो दूरदर्शी की फोकस दूरी $8 \times 6 = 48$ इंच होगी.

यहां एक बात ध्यान देने योग्य है. हमारा उद्देश्य है कि दूरदर्शी की संवेदनशीलता अधिक से अधिक हो, तथा उससे बनने वाली छाया (इमेज) स्पष्ट हो; यह नहीं कि छाया बहुत बड़ी बने. दूसरे शब्दों में दूरदर्शी की कोणीय आवर्धन क्षमता से कहीं ज्यादा आवश्यक है उसकी संवेदनशीलता. आप चाहें तो विभिन्न नेत्रिकाओं का उपयोग करके, तारों को जितना बड़ा देखना चाहें, देख सकते हैं.

अवतल दर्पण

यहां दिए गए (चित्र-4) के अनुसार प्रयुक्त होने वाला दर्पण, एक परवलयिक (पैराबोलायडल) दर्पण होना चाहिए, जो अपने अक्ष एक्सिस के समानान्तर आने वाली प्रकाश किरणों को फोकस पर संकेन्द्रित कर देता है. वास्तविकता में ऐसा दर्पण बनाना अत्यंत कठिन होता है, इसलिए हम एक छिछला (कम गहराई वाला) गोलाकार दर्पण बनाते हैं जो कि परवलयिक दर्पण का कार्य बखूबी करता है. आपके लिए वह अवतल दर्पण पर्याप्त होगा, जिसका व्यास लगभग

छः इंच हो, और जिसका फोकसी अनुपात 8 से 9 के बीच हो.

चित्र-4 को ध्यान से देखिए. यदि दर्पण का व्यास 'D' है, तो उसकी फोकसी दूरी दर्पण की सतह की गहराई पर निर्भर करेगी. इस गहराई को दर्पण का "सौगिट्टा" कहते हैं, यदि इसका मान 'S' है, तो–

$$S = \frac{D^2}{8R}$$

अथवा, $S = \frac{D^2}{16F}$

या, $S = \frac{D}{16(F/D)}$ जहां F/D = फोकसी अनुपात

मान लीजिए आपके दूरदर्शी में लगने वाले अवतल दर्पण का व्यास 15 सेंटीमीटर है, और आप चाहते हैं कि यह दर्पण F/8 हो तो (सैगिट्टा) का मान होगा–

$$S = \frac{D}{16(F/D)}$$

यहां, D = 15 सेंटीमीटर

$\frac{F}{D} = 8$

यानि, $S = \frac{15}{16 \times 8}$

= 0.117 सेंटीमीटर

= 1.17 मिलीमीटर (लगभग 10 पैसे के सिक्के की ऊंचाई के बराबर)

इन गणनाओं से आप अपना लक्ष्य निर्धारित कर सकते हैं. आपका लक्ष्य होगा ऐसा अवतल दर्पण बनाना, जिसके लिए–

(i) व्यास D = 15 सेंटीमीटर,
(ii) f/D = 8
(iii) गहराई S = 1.17 मिलीमीटर हो.

सम्पूर्ण दूरदर्शी के निर्माण को निम्न पांच चरणों में विभक्त किया जा सकता है :

(1) अवतल दर्पण की घिसाई.
(2) अवतल दर्पण की पॉलिश तथा गुणवत्ता की जांच.
(3) दूरदर्शी के ट्यूब का डिजाइन, समतल दर्पण और अवतल दर्पण को उसके स्थान पर कसने के लिए 'सपोर्ट' का निर्माण.
(4) दूरदर्शी को खड़ा करने के लिए उचित माउण्ट का डिजाइन तथा निर्माण.
(5) विभिन्न भागों का एकीकरण तथा सम्पूर्ण दूरदर्शी का परीक्षण.

अवतल दर्पण की घिसाई तथा पॉलिश करने में लगभग 45 घंटों का समय लगता है. यदि आप एक दिन में 4-5 घंटे दर्पण पर काम करें, तो लगभग दस दिनों में दर्पण बन कर तैयार हो जाएगा. शेष भागों का निर्माण इस बात पर निर्भर करेगा कि आप कितनी लगन और बुद्धिमता से उन्हें बनाते हैं. याद रखिए, बन जाने पर आपका दूरदर्शी एक अत्यंत शक्तिशाली यंत्र होगा, जिसे आप गर्व से अपना कह सकेंगे.

ध्यान देने योग्य बातें

इस प्रोजेक्ट को प्रारम्भ करने के पूर्व निम्न बातों को ध्यान में रखें :

(1) जिस स्थान पर आप कार्य कर रहे हों, वह अत्यंत साफ सुथरा हो, क्योंकि धूल के कणों के कारण दर्पण की सतह पर खरोंचें आ सकती हैं.
(2) घिसाई में प्रयुक्त होने वाले सभी पाउडर अलग-अलग बोतलों में बन्द होने चाहिएं और आपस में मिलने नहीं चाहिएं.
(3) प्रत्येक चरण के कार्य को सावधानीपूर्वक पूरा करना आवश्यक है जल्दबाजी करने से अच्छा खासा अवतल दर्पण चौपट हो सकता है.
(4) प्रत्येक भाग में दिए निर्देशों का सख्ती से पालन करें.
(5) कभी कभी आपको ऐसा लग सकता है कि बहुत मेहनत के बाद भी दर्पण ठीक से नहीं बन रहा. ऐसे में हिम्मत न हारें. हर हालत में दर्पण बनेगा ही. हो सकता है कहीं कहीं आपको अधिक मेहनत करनी पड़े.
(6) हर दिन किए हुए कार्य का सम्पूर्ण लेखा-जोखा एक डायरी में नोट करते जाइए–इससे आपको सुविधा रहेगी.

[अगले अंक में 'अवतल दर्पण की घिसाई']

प्रायोजित प्रतियोगिता-5

'आविष्कार' के इस स्तंभ को प्रायोजित प्रतियोगिता के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है. इस प्रतियोगिता के प्रायोजक हैं जूता-निर्माता 'एक्शन शूज' कंपनी. प्रतियोगिता के उस विजेता को जो सर्वाधिक सही उत्तर भेजेगा एक्शन शूज की ओर से सीधे एक जोड़ा एक्शन जूता पुरस्कार स्वरूप पार्सल से भेजा जाएगा. इस कार्यालय में पहुंचने वाले पहले ढाई हजार पत्रों को ही प्रतियोगिता में शामिल किया जाएगा.

एक से अधिक सही उत्तर प्राप्त होने पर 'ड्रा' निकाल कर निर्णय लिया जाएगा. इस संबंध में संपादक का निर्णय अंतिम व मान्य होगा और कोई पत्र व्यवहार नहीं किया जाएगा. पुरस्कार विजेता का नाम और सही हल एक अंक छोड़ कर प्रकाशित किया जाएगा. उत्तर कागज के एक ओर हाशिया छोड़ कर साफ-साफ लिखा/टाइप किया होना चाहिए. उत्तर के साथ प्रकाशित कूपन अवश्य लगा होना चाहिए जिसमें प्रतियोगिता में भाग लेने वाले का नाम, पूरा पता तथा जूते की माप स्पष्ट लिखी होनी चाहिए. लिफाफे के ऊपर 'प्रायोजित प्रतियोगिता-1/92' अवश्य लिखें.

हमारा पता : संपादक, 'आविष्कार'
नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन
20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र, कैलाश कालोनी
एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110048

अपना वैज्ञानिक ज्ञान परखिए

□ डा० उमेश चन्द्र पाण्डेय
एवं कौशल प्रताप सिंह

1. जीवाणुओं को प्रोकेरियोटा के अंतर्गत रखा जाता है. अधिकांश जीवाणुओं में लिंगी जनन नहीं पाया जाता है. लेकिन इश्चिरीचिया कोलाई में लिंगी जनन की संयुजन (कान्जूगेशन) विधि की जानकारी दी है—

(क) एहेरेन बर्ग ने,
(ख) सैफरमैन तथा मारिस ने,
(ग) लीडर बर्ग तथा टेटम ने,
(घ) लीवेन हौक ने.

2. "वर्तमान शैवाल विज्ञान के जनक" माने जाते हैं—

(क) प्रो० आर०एन० सिंह,
(ख) प्रो० वाई०एस०आर०के० शर्मा,
(ग) प्रो० बी०एन० प्रसाद,
(घ) प्रो० एम०एस० रन्धावा.

3. 'वर्टीसिलास्टर' एक विशेष प्रकार का पुष्पक्रम है, जो पाया जाता है—

(क) टमाटर में, (ख) धनिया में,
(ग) तुलसी में, (घ) पीपल में.

4. असम में पाया जाने वाला कीटभक्षी पौधा है—

(क) ड्रोसेरा, (ख) नीपेन्थीज,
(ग) यूट्रीकुलोरिया,
(घ) उपरोक्त में से कोई नहीं.

5. एक फर्न, एक मॉस के पौधे से अंतर प्रदर्शित करता है. फर्न के पौधे में पाया जाता है—

(क) एक स्वतंत्र बीजाणुभिद्,
(ख) एक स्वतंत्र युग्मकोदभिद्,
(ग) एक पराश्रयी बीजाणुभिद्,
(घ) उपरोक्त सभी असत्य हैं.

6. डार्विन की तरह किसी दूसरे वैज्ञानिक ने एक सिद्धांत प्रतिपादित किया है—

(क) मेंडल, (ख) लेमार्क,
(ग) वैलेस, (घ) खुराना.

7. वह कौन सा पुष्प है जो भारतीय राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार से संबंधित है—

(क) गुलाब, (ख) सूरजमुखी,
(ग) कमल, (घ) डहेलिया.

8. पेट्रो-पादपों से कृत्रिम पेट्रोल व डीज़ल का उत्पादन, राष्ट्रीय पेट्रोलियम संस्थान में किया जा रहा है. अभी परीक्षण प्रयोगों पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है. यह संस्थान कहां है—

(क) देहरादून में, (ख) बम्बई में,
(ग) नई दिल्ली में, (घ) नागपुर में.

9. कच्चे रेशम के उत्पादन हेतु रेशम के कीड़े (कोकून) पालना और उनका संवर्धन करना, रेशम विभाग की राष्ट्रीय प्रायोजना है—

(क) सेरीकल्चर के अंतर्गत,
(ख) सिल्वीकल्चर में,
(ग) टिश्यूकल्चर में,
(घ) एल्गल कल्चर में.

10. वाष्पोत्सर्जन की क्रिया में पौधों के वायवीय भागों से जल, वाष्प के रूप में विशेष प्रकार की संरचनाओं (स्टोमेटा) से निकलता रहता है. स्टोमेटा अधिक संख्या में पाए जाते हैं—

(क) पत्तियों की ऊपरी सतह पर,
(ख) पत्तियों पर नहीं होते हैं,
(ग) पत्तियों की निचली सतह पर,
(घ) पत्तियों की दोनों सतह पर.

11. एंजाइम में प्रोटीन का भाग होता है—

(क) कोएन्जाइम, (ख) एपोएन्जाइम,
(ग) होलोएन्जाइम, (घ) प्रोएन्जाइम.

12. कोशिका के बीच में आनुवंशिक अन्तर उत्पन्न होता है—

(क) मिओसिस से,
(ख) एमाइटोसिस से,
(ग) माइटोसिस से,
(घ) उपरोक्त सभी से.

13. राइजोपस में लिंगी जनन होता है—

(क) आइसोगैमस,
(ख) ऐनआइसोगैमस,
(ग) ऊगैमस,
(घ) ओइडियम टाइप.

14. मृदा की उर्वरता बढ़ती है—

(क) नाइट्रीफाईंग जीवाणु द्वारा,

(ख) डिनाइट्रीफाईंग जीवाणु द्वारा,
(ग) सैप्रोफिटिक जीवाणु द्वारा,
(घ) उपरोक्त सभी से.

15. लाइकेन थैलस के निर्माण में दो अलग-अलग प्रकार के जीवी (शैवाल तथा कवक) होते हैं. इनका आपसी संबंध कहलाता है–
(क) सहजीवन,
(ख) मालिक और गुलाम का संबंध,
(ग) परजीवी,
(घ) उपरोक्त में से कोई नहीं.

16. असंवहनी पादपों में नहीं पाए जाते हैं–
(क) मेरीस्टेमेटिक कोशाएं,
(ख) जाइलम,
(ग) मृदु ऊतक,
(घ) बाह्य त्वचा.

17. निम्न में से किन लक्षणों के आधार पर जीवित को, अजीवित से विभेदित किया जा सकता है–
(क) वृद्धि व चलन,
(ख) जनन व चलन,
(ग) उत्तेजनशीलता व उपापचय,
(घ) श्वसन व उत्सर्जन.

18. यूलोथ्रिक्स में पतलीभित्तियुक्त, अचल बीजाणु को कहते हैं–
(क) मैक्रोस्पोर, (ख) माइक्रोस्पोर,
(ग) जूस्पोर, (घ) एप्लेनोस्पोर.

19. क्रेब्स चक्र की शुरुआत से पहले पाइरूविक एसिड जो 3C यौगिक है, 2C यौगिक में परिवर्तित होता है. एन्जाइम कार्बोजाइलेज है तथा यौगिक है–
(क) साइट्रिक एसिड,
(ख) एसीटाइल CoA,
(ग) सक्सीनाइल Co-A
(घ) उपरोक्त कोई नहीं.

20. शकरकंद में जड़े भोजन संग्रह करने के कारण मोटी व मांसल हो जाती हैं. यह जड़े होती हैं–
(क) अपस्थानिक जड़ों का रूपान्तर,
(ख) प्राथमिक जड़ का रूपान्तर,
(ग) भूमिगत तना,
(घ) उपरोक्त सभी.

21. नारियल में रेशेदार अष्ठिल फल (ड्रूप) पाया जाता है. इसका खाने योग्य भाग होता है–
(क) अन्तःफलभित्ति, (ख) भ्रूणपोष,
(ग) मध्य फलभित्ति,
(घ) उपरोक्त सभी.

22. लाइकेन थैलस में शैवाल को कहा जाता है–
(क) फाइकोसिम्बायोन्ट,
(ख) माइकोबॉयोन्ट,
(ग) एस्कोलाइकेन,
(घ) फाइकोबॉयोन्ट.

23. कोशाओं में 'फ्यूजेन स्टेन' के प्रयोग से पहचाना जाता है–
(क) लिपिड को, (ख) डी०एन०ए०,
(ग) आर०एन०ए०, (घ) प्रोटीन को.

24. निम्न में से किस कुल में एक कोष्ठीय परागकोष तथा पुंकेसरीय नाल पाई जाती है–
(क) कम्पोजिटी, (ख) क्रूसीफेरी,
(ग) मालवेसी, (घ) ग्रैमिनी.

25. पाइरुविक एसिड के अनाक्सीश्वसन में कम मात्रा में ऊर्जा, ए टी पी के रूप में मिलती है और अंतिम उपपाद् बनता है–
(क) कार्बन डाइआक्साइड,
(ख) कार्बन मोनोआक्साइड,
(ग) मिथाइल एल्कोहल,
(घ) एथाइल एल्कोहल.

26. हीरा व ग्रेफाइट हैं–
(क) समाकृतिक, (ख) समावयवी,
(ग) अपररूप.

27. परमाणु का नाभिक होता–
(क) धनावेशित, (ख) ऋणावेशित,
(ग) उदासीन.

28. आधुनिक आवर्त सारणी में हैं–
(क) 7 आवर्त व 9 वर्ग,
(ख) 9 आवर्त व 7 वर्ग,
(ग) 7 आवर्त व 7 वर्ग,
(घ) 9 आवर्त व 9 वर्ग.

29. बुझे हुए चूने का रासायनिक सूत्र है–
(क) CaO, (ख) $CaCO_3$,
(ग) $Ca(OH)_2$,
(घ) उपरोक्त में कोई नहीं.

30. माइक्रोकास्मिक बीड निम्न में किसके निर्धारण के लिए प्रयुक्त होती है–
(क) ZnO, (ख) Al_2O_3,
(ग) MgO, (घ) SiO_2.

31. निम्न में से कौन सा धातु कार्बोनेट गर्म करने पर अपघटित हो जाता है–
(क) $MgCO_3$, (ख) Na_2CO_3,
(ग) K_2CO_3, (घ) Rb_2CO_3.

32. जब बाक्साइट में सिलिका की अशुद्धि अधिक होती है तो उसका शोधन किया जाता है–
(क) बायर प्रक्रम द्वारा,
(ख) सरपेक प्रक्रम द्वारा,
(ग) हॉल प्रक्रम द्वारा.

33. एक एलुमिनोतापी प्रक्रम में एल्युमिनियम क्रिया करता है–
(क) एक आक्सीकारक पदार्थ के रूप में,
(ख) एक अपचायक की तरह,
(ग) फ्लक्स की तरह,
(घ) सोल्डर की तरह.

34. हेवर विधि प्रयुक्त होती है–
(क) आक्सीजन निर्माण,
(ख) क्लोरीन निर्माण,
(ग) अमोनिया निर्माण में.

35. हास गैस (लाफिंग गैस) का सूत्र है–
(क) NO_2, (ख) NO,
(ग) N_2O, (घ) N_2O_2.

36. सेफ्टी माचिस के निर्माण में प्रयुक्त होने वाला फास्फोरस है–
(क) श्वेत फास्फोरस,
(ख) लाल फास्फोरस,
(ग) स्कार्लट फास्फोरस.

37. सम्पर्क विधि द्वारा H_2SO_4 का उत्पादन करने में प्रयुक्त उत्प्रेरक है–

(क) Al_2O_3, (ख) V_2O_5,
(ग) MnO_2, (घ) K_2SO_4.

38. संक्रमण तत्वों में संकर आयन बनाने की प्रवृत्ति होती है यह कथन–

(क) सत्य है, (ख) असत्य है.

39. प्रकृति में सर्वाधिक पाए जाने वाली धातु है–

(क) लोहा, (ख) सोना,
(ग) प्लेटिनम, (घ) एल्युमिनियम.

40. मोहर लवण का सूत्र है–

(क) $Fe\ SO_4.(NH_4)_2SO_4.6H_2O$,
(ख) $K_2SO_4.Al_2\ (SO_4)_3.24H_2O$,
(ग) $Na_2S_2O_3$.

41. सायनाइड प्रक्रम द्वारा निष्कर्षण किया जाता है–

(क) सोने का, (ख) चांदी का,
(ग) कॉपर का, (घ) एल्युमीनियम का.

42. नाइट्रोजन की निम्नतम आक्सीकरण अवस्था है–

(क) –3, (ख) 1,
(ग) 0, (घ) 2.

43. β किरणों पर आवेश है–

(क) धन, (ख) ऋण, (ग) उदासीन.

44. न्यूट्रान के खोजकर्ता थे–

(क) रदरफोर्ड, (ख) टामसन,
(ग) कॉसल, (घ) चैडविक.

45. SO_4^{2-}-आयन में S की आक्सीकरण संख्या–

(क) + 2, (ख) –4, (ग) +6, (घ) –8.

46. मरक्यूरस क्लोराइड को कहते हैं–

(क) कैलोमल, (ख) कोरोसिव सब्लीमेट,
(ग) मोर लवण, (घ) हाइपो.

47. भारी जल प्रयुक्त होता है–

(क) पीने के काम में, (ख) मंदक में,
(ग) सिंचाई में, (घ) विस्फोट में.

48. आवागाद्रो संख्या का मान होता है–

(क) 6.302×10^{23},
(ख) $23.10\times10^{6\cdot023}$,
(ग) 6.023×10^{23}.

49. परमाणु रासायनिक अभिक्रियाओं में भाग लेता है परन्तु अणु नहीं लेता, कथन–

(क) सत्य है, (ख) असत्य है,
(ग) अनिश्चित.

50. 2.3 ग्राम सोडियम में सोडियम परमाणुओं की संख्या होगी–

(क) 6.023×10^{24},
(ख) 6.023×10^{23},
(ग) अनन्त, (घ) 6.023×10^{22}

प्रायोजित प्रतियोगिता-3

पुरस्कार विजेता

श्री अशोक कुमार शुक्ला
पुत्र श्री कमला एस० शुक्ला
ग्राम-अराज
डाकघर-कटरा बाजार
जिला-वाराणसी-221309 (उ० प्र०)

उत्तर

1. (ख), 2. (घ), 3. (घ), 4. (ग), 5. (क), 6. (ख), 7. (क), 8. (ख), 9. (ख), 10. (क), 11. (ग), 12. (ख), 13. (क), 14. (क), 15. (ख), 16. (क), 17. (ग), 18. (ख), 19. (क), 20. (ग), 21. (घ), 22. (घ), 23. (ग), 24. (ख), 25. (ग), 26. (ग), 27. (ख), 28. (ग), 29. (ग), 30. (घ), 31. (ख), 32. (क), 33. (ख), 34. (ख), 35. (ख), 36. (घ), 37. (ग), 38. (क), 39. (क), 40. (घ),

"भारत के समाचार पत्रों के पंजीयक के कार्यालय
नई दिल्ली में पंजीकृत, पंजीकर[illegible] 21740/71"
DL-16014/92

CLOSE ENCOUNTERS



Smoo ....ch. Slu ....rp. Sma ....ck.
Be it those naughty-haughty moments in campus, jive sessions at your favourite discotheque or those moments of leisure and pleasure with your spouse.
YES. For that real thing, Real comfort. Real thrill, Real quality and Real style.
Wear'em on and get going. Indulge in close encounters of action kind.

नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन, नई दिल्ली के लिए श्री डी०एन० भटनागर द्वारा सम्पादित और प्रकाशित

ISSN 0970-6607

ग्राम शिल्प समाहित

आविष्कार

जनभाषा में रुचिकर विज्ञान की सशक्त अभिव्यक्ति

अप्रैल 1992
8 रुपए

दिल की धड़कन पर स्वास्थ्य की लय



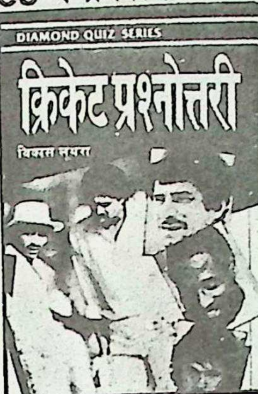
कार्बन –महत्वपू[...] ऊर्जा स्रो[...]

डायमंड पाकेट बुक्स
प्रस्तुत करते हैं
Diamond Quiz Series में प्रकाशित

क्रिकेट प्रश्नोत्तरी
लेखक : विकास लूथरा

मातृभाषा हिन्दी में अपनी तरह की पहली किताब जिसमें समूचे क्रिकेट जगत को 2000 से भी अधिक प्रश्नों और उनके उत्तरों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। क्रिकेट के हर सवाल का तुरन्त जवाब आप इस पुस्तक से प्राप्त कर सकते हैं।

मूल्य 20/- डाक व्यय 5/-





इतिहास प्रश्नोत्तरी
लेखक : सुरेश शर्मा, उमेश ठाकुर और नितिन श. वशिष्ठ

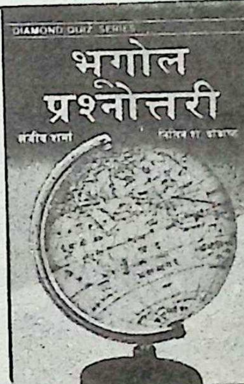
इतिहास मानव जाति की प्राचीन सभ्यता, संस्कृति का दर्पण है। हर बीता क्षण इतिहास है। मानव सभ्यता के इतिहास की सभी महत्त्वपूर्ण घटनाओं की जानकारी दी गई है।

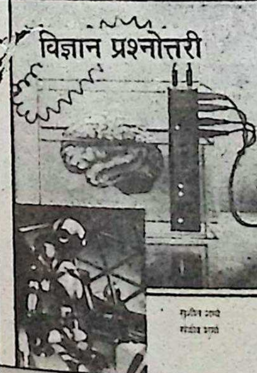
मूल्य 20/- डाक व्यय 5/-

भूगोल प्रश्नोत्तरी
लेखक : संजीव शर्मा, नितिन श. वशिष्ठ

मानव हमेशा से ही प्रकृति के रहस्यों को जानने के लिए जिज्ञासु और तत्पर रहा है। मानव के यह अथक प्रयास का परिणाम है कि हम पृथ्वी तो क्या अन्य ग्रहों के विषय में भी थोड़ा बहुत जान गए हैं। भूगोल प्रश्नोत्तरी आपके हर सवाल का जवाब है।

मूल्य 20/- डाक व्यय 5/-





विज्ञान प्रश्नोत्तरी
लेखक : सुशीला शर्मा, संजीव शर्मा

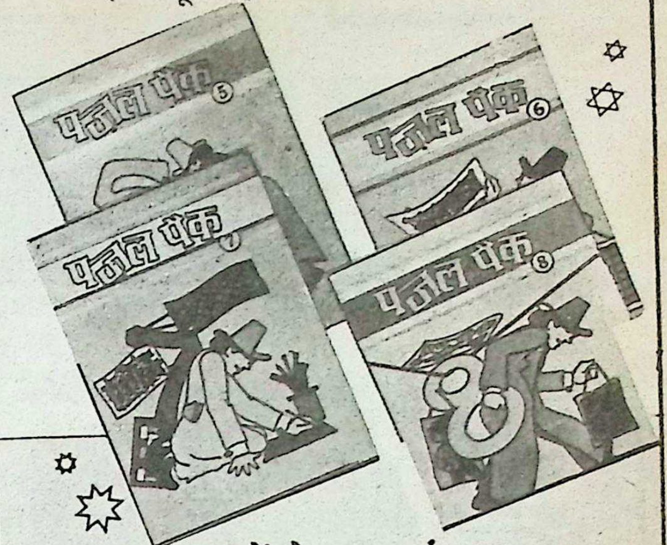
विज्ञान से सम्बन्धित अनेक रोचक, रोमांचक और जिज्ञासा भरे प्रश्न तथा उनके ज्ञानवर्धक उत्तर। विज्ञान के हर विद्यार्थी के लिए पठनीय व संग्रहणीय।

मूल्य 20/- डाक व्यय 5/-

आगामी प्रकाशन
- राजनैतिक प्रश्नोत्तरी
- खेलकूद प्रश्नोत्तरी
- मनोविज्ञान प्रश्नोत्तरी
- सामान्य ज्ञान प्रश्नोत्तरी
- साहित्य कला संस्कृति प्रश्नोत्तरी

डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि. 2715, दरियागंज, नई दिल्ली-2

आइवर यूशिएल की शानदार पेशकश



उलझनों से भरा संसार, जो सुलझा ले वह है होशियार

उलझनों का दूसरा नाम है जीवन! ....

....और इस जीवन में सफलता उसी को मिलती है जिसकी बुद्धि तेज़ होती है, मस्तिष्क विकसित होता है और जो सही समय पर सही निर्णय लेकर उलझनों को सुलझाने की योग्यता रखता है।

पाठ्य-पुस्तकें रटकर परीक्षाएं पास की जा सकती हैं पर इस तरह जीवन में सफलता की गारण्टी नहीं मिलती।

सफल जीवन के लिये ज़रूरी है मस्तिष्क को विकसित, और बुद्धि को पैना करने की नियमित कोशिश जिसमें तुम्हारी सहायता के लिये--

डायमण्ड पब्लिकेशन्स प्रस्तुत करते हैं--

दिलचस्प और उपयोगी सामग्री से लबालब भरी अपनी तरह की एकदम अनोखी व अनूठी

दिमाग़ी कसरत
पज़ल पैक

डायमण्ड ज्ञान-मनोरंजन सीरीज़

इसकी 64-64 पृष्ठों वाली चार पुस्तकें अपने आप में क्या-क्या समेटे हैं, यह स्वयं देखोगे तभी जानोगे, हम क्या-क्या बतायें! तो आज ही पहुंचो अपने पुस्तक विक्रेता के यहां।

मूल्य प्रत्येक : 5.00 रुपये

आइवर यूशियल की अन्य पुस्तकें

पज़ल पैक सैट नं. 1 (1-4)	20.00
पज़ल पैक सैट नं. 2 (5-8)	20.00
पज़ल पैक सैट नं. 3 प्रेस में	20.00

रोचक प्रश्न	8.00	रोचक जादू	8.00
रोचक खेल	8.00	रोचक तथ्य	8.00
रोचक खिलौने	8.00	रोचक गणित	8.00
रोचक विज्ञान	8.00		

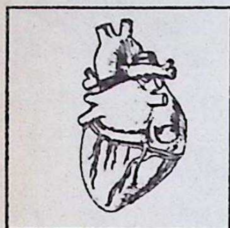
RAJESH

डायमण्ड कामिक्स प्रा. लि.
2715, दरियागंज नई दिल्ली- 110002

इस अंक में

आविष्कार

अप्रैल 1992 वर्ष 22, अंक 4





प्रबंध निदेशक
एन०के० शर्मा
चीफ इंजीनियर (मेट०)
एम० एन० गुप्ता
•
वरिष्ठ सम्पादक
डी०एन० भटनागर
सम्पादन सहायक
राघवेंद्र कुमार शर्मा
आर०के० अन्थवाल
•
उत्पादन अधिकारी
चन्द्र मोहन
मुद्रण कार्य सहायक
राधे श्याम अरोड़ा
अरुण कुमार अरोड़ा
•
व्यावसायिक चित्रकार
के०के० थपलियाल
वरिष्ठ चित्रकार
नबनीता भौमिक
•
विज्ञापन प्रतिनिधि
एन०के० चोपड़ा

■ 'आविष्कार' नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन (एन आर डी सी) द्वारा प्रकाशित विज्ञान और प्रौद्योगिकी की लोकप्रिय मासिक पत्रिका है.

■ लेखकों के कथनों व मतों के लिए कारपोरेशन उत्तरदायी नहीं है.

■ 'आविष्कार' में प्रकाशित सामग्री का किसी भी रूप में उपयोग करने से पूर्व सम्पादक की अनुमति लेना जरूरी है.

■ 'आविष्कार' में प्रकाशित विज्ञापनों की 'आविष्कार' के सम्पादकीय दृष्टिकोण से सहमति आवश्यक नहीं.

एक प्रति : 8 रुपए
वार्षिक मूल्य : 80 रुपए
फोन : 6418615, 6419929, 6419945, 6419947, टेलेक्स : 031-71358
टेलीग्राम : 'अनुसंधान विकास'
फैक्स : 091-11-6449401

विश्व में हर साल अनुमानतः एक करोड़ बीस लाख लोग हृदय संबंधी बीमारियों के कारण मौत का शिकार हो जाते हैं. इनमें विकसित व विकासशील देशों का हिस्सा बराबर का है. पूरी दुनिया में साल भर में मरने वालों में एक चौथाई यानी सबसे ज्यादा मौतों के लिए हृदय संबंधी बीमारियां जिम्मेदार हैं.

हृदय की बीमारियां पहले सिर्फ विकसित देशों की समस्या मानी जाती थीं. पर अब यह बात स्पष्ट हो गई है कि ये बीमारियां अमीरी और गरीबी दोनों से जुड़ी हुई हैं. जहां एक ओर शरीर में वसा और कोलेस्ट्रोल बढ़ाने वाला धनाढ्य लोगों का आहार इसके लिए जिम्मेदार है, वहीं दूसरी ओर स्ट्रेप्टोकोकस जीवाणु के संक्रमण से होने वाला रुमेटी हृदय रोग गरीबी से जुड़ा है. यह विकासशील देशों में बच्चों, किशोरों और वयस्कों की आम बीमारी है और ज्यादा भीड़-भाड़ वाली आबादियों में देखने को मिलती है. विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार मोटे अनुमान से विकासशील देशों में रुमेटी हृदय रोग से एक करोड़ बीस लाख लोग प्रभावित हैं. हृदय रोगों से मरने वालों में अनेक लोग कम उम्र के होते हैं. अनेक रोगों पर विजय पाने के बाद मनुष्य की औसत आयु में वृद्धि को देखते हुए इसे अकाल मृत्यु ही कहा जाएगा.

हमारी बदलती जीवन शैली, रहन-सहन, खान-पान आदि से दिल संबंधी बीमारियों में वृद्धि हुई है. उच्च रक्तचाप दिल के दौरे का एक प्रमुख कारण है. लगातार चिंताग्रस्त रहना और मानसिक तनाव में रहने से उच्च रक्तचाप होता है. मद्यपान, धूम्रपान, तम्बाकू का सेवन आदि भी उच्च रक्तचाप के लिए जिम्मेदार हैं. अत्यधिक महत्वाकांक्षी और होड़ा-होड़ी वाले लोगों में दिल की बीमारियां ज्यादा पाई गई हैं. अत्यधिक परिश्रम और विश्राम की कमी इन रोगों को बढ़ाने में सहायक है. एक अध्ययन के अनुसार आक्रामक प्रवृत्ति के लोगों में हृदय संबंधी रोग चार गुना अधिक पाए जाते हैं. रक्त संचार में गड़बड़ी पैदा करने वाले अन्य प्रत्यक्ष तत्वों में भोजन की बदहजमी, क्रोध तथा अन्य भावनात्मक उत्तेजनाएं भी शामिल हैं.

पश्चिमी देशों में हृदय रोगों के प्रति जागरुकता बढ़ी है और इन मामलों में कमी देखने को मिली है. संयुक्त राज्य अमेरिका में हृदय संबंधी रोगों के मामलों में 10 प्रतिशत कमी आई है. जबकि भारत में इस बीच 20 प्रतिशत की वृद्धि हुई है. प्राप्त सूचना के अनुसार भारत में 4 करोड़ लोग हृदय संबंधी विभिन्न बीमारियों से ग्रस्त हैं.

चिंता व मानसिक तनावों से मुक्त सरल जीवन शैली निश्चय ही इन रोगों से बचने का अच्छा उपाय है. शरीर में वसा और कोलेस्ट्रोल की मात्रा बढ़ाने वाले भोजन से बचना चाहिए. अनुसंधानों से पता चला है कि यदि रक्त में कोलेस्ट्रोल का स्तर एक चौथाई घट जाए तो हृदय रोग का खतरा आधा कम हो जाता है. कई हृदय रोग विशेषज्ञों ने परहेज की अपेक्षा नियमित व्यायाम को रक्त में कोलेस्ट्रोल की मात्रा को बढ़ने से रोकने में अधिक प्रभावकारी बताया है. उच्च रक्तचाप बढ़ाने में सहायक शराब, सिगरेट, तम्बाकू आदि से बचना चाहिए. इस प्रकार औषधियों पर निर्भरता कम की जा सकती है. विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार आवश्यक सावधानियां बरत कर हर साल हृदय रोगों से मरने वाले एक करोड़ बीस लाख लोगों में से साठ लाख लोगों की जिंदगी बचाई जा सकती है.

नरेन्द्र शर्मा
(एन०के० शर्मा)
प्रबंध निदेशक

लेखकों से निवेदन

1. 'आविष्कार' में प्रकाशनार्थ भेजे जाने वाले लेख कागज के एक ओर हाशिया छोड़कर टाइप किए या साफ-साफ लिखे होने चाहिएं. लेख की दो प्रतियां भेजी जानी चाहिएं. साथ में लेखक का पूरा नाम, पता व व्यवसाय का उल्लेख अवश्य होना चाहिए.

2. लेख मौलिक, अप्रकाशित और अप्रसारित होना चाहिए. लेख भेजते समय इस आशय का आश्वासन लेखक के अपने पत्र में होना लेख की स्वीकृति के लिए आवश्यक है.

3. लेख का विषय विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में किसी आविष्कार/विकास/अनुसंधान या खोज कार्य के सार्वजनिक रुचि के किसी भी पहलू से संबंधित हो सकता है.

4. लेख में प्रस्तुत विषय का प्रतिपादन ऐसा होना चाहिए कि उच्चतर माध्यमिक स्तर तक शिक्षित वर्ग उसे आसानी से समझ सके. साधारणतया लेख 2500 शब्दों से अधिक बड़ा नहीं होना चाहिए.

5. लेख सरल, आम बोलचाल की भाषा में लिखा होना चाहिए. लेख में प्रस्तुत अंग्रेजी के वैज्ञानिक व तकनीकी शब्दों के पर्याय वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित शब्दावलियों के अनुसार होने चाहिएं. साथ में कोष्ठ में अंग्रेजी शब्द अवश्य दिए जाने चाहिएं.

6. लेख में जहां कहीं रासायनिक तत्वों का उल्लेख आता है वहां उनके उन्हीं नामों का उल्लेख किया जाना चाहिए जो आज रसायन विज्ञान में अंतरराष्ट्रीय हो चुके हैं जैसे तांबे के लिए कॉपर और जस्ते के लिए जिंक, सीसे के लिए लेड और आक्सीजन, नाइट्रोजन व हाइड्रोजन आदि. तांबा व सीसा शब्द कोष्ठक में दिए जा सकते हैं.

7. मापों को संक्षिप्त रूप में न लिखकर पूरे रूप में लिखें. जैसे कि० ग्रा० के लिए किलोग्राम, मि० मी० के लिए मिलीमीटर. इससे समझने में आसानी होगी. सभी माप मीट्रिक प्रणाली में दिए जाएं.

8. लेख में वर्णित विषय को बोधगम्य बनाने की दृष्टि से लेख के साथ आवश्यक चित्र/रेखाचित्र संलग्न होने चाहिएं. रेखाचित्र काली स्याही से साफ-साफ बने होने चाहिएं. रेखाचित्रों की दो प्रतियां—एक मूल तथा दूसरी फोटो प्रतिलिपि—हो तो अच्छा है.

9. लेख वरिष्ठ संपादक, 'आविष्कार', नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन, 20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र, कैलाश कालोनी एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110048 को भेजा जाना चाहिए.

10. 'आविष्कार' में प्रकाशित लेखों पर पारिश्रमिक देने की व्यवस्था है.

विज्ञान प्रदर्शनी/मेलों में भाग लेने वाली शिक्षण संस्थाएं/विद्यार्थी कृपया ध्यान दें

राष्ट्रीय, राज्य, जिला और क्षेत्रीय स्तरों पर आयोजित विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों की विज्ञान प्रदर्शनियों/मेलों में पुरस्कृत मॉडलों, युक्तियों आदि पर 'आविष्कार' में प्रकाशन के लिए विचारार्थ प्रलेख आमंत्रित हैं.

प्रलेख पुरस्कार प्राप्त विद्यार्थी द्वारा स्वयं लिखा होना चाहिए और संबद्ध शिक्षण संस्था के प्राचार्य/प्रधानाचार्य द्वारा अग्रसारित किया जाना चाहिए. साथ में 'पुरस्कार प्रमाण पत्र' की फोटो प्रति भी भेजी जानी चाहिए.

प्रलेख में पुरस्कृत मॉडल, युक्ति आदि को बनाने की संपूर्ण जानकारी का तरतीबवार विवरण होना चाहिए और यह भी बताया जाना चाहिए कि उक्त माडल, युक्ति आदि को बनाने का विचार विद्यार्थी के मस्तिष्क में कैसे उपजा और उसे बनाने के लिए विद्यार्थी ने तकनीकी जानकारी कैसे जुटाई.

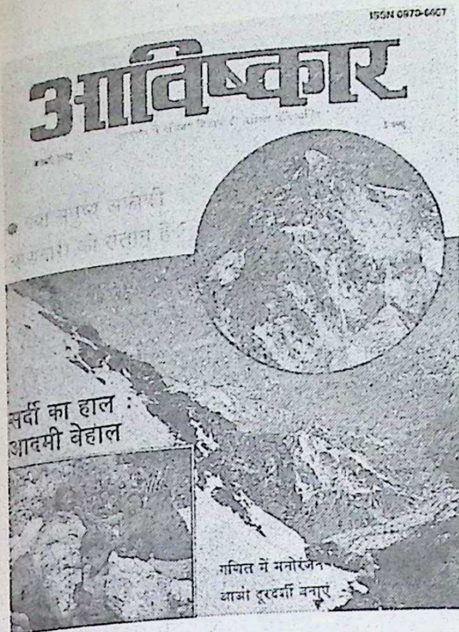
प्रलेख की दो प्रतियां भेजें जो कागज के एक ओर हाशिया छोड़कर टाइप की गई हों अथवा साफ-साफ लिखी हों. चित्र सफेद ड्राइंग कागज पर साफ-साफ बने होने चाहिएं. चित्रों की भी दो प्रतियां भेजें.

जिस लिफाफे में प्रलेख भेजा जाए उसके बाईं ओर मोटे अक्षरों में 'विज्ञान प्रदर्शनी/मेले में पुरस्कृत मॉडल' लिखें.

जिन प्रलेखों को प्रकाशन के लिए स्वीकार किया जाएगा उनकी सूचना संबद्ध शिक्षण संस्था/विद्यार्थी को उपयुक्त समय पर कार्यालय द्वारा स्वयं भेज दी जाएगी. अस्वीकृत रचनाओं के बारे में किसी प्रकार का पत्र व्यवहार नहीं किया जाएगा.

प्रलेख वरिष्ठ सम्पादक, 'आविष्कार', नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन, 20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र, कैलाश कालोनी एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110048 को भेजा जाना चाहिए.

आपकी प्रतिक्रियाएं



❑ **आओ दूरदर्शी बनाएं:** 'आविष्कार' का जनवरी 1992 का अंक पढ़ा जिसमें 'दूरदर्शी' बनाने की विधि, तथा 'क्या मनुष्य अफ्रीकी निवासी आद्यनारी की संतान हैं' विशेष तौर पर पसंद आए. इसके अलावा पूरा अंक ही विशिष्ट था.

आपसे अनुरोध है कि कृपया आविष्कार में घर पर गमलों में पेड़-पौधे लगाने की विधि और उनके रखरखाव के बारे में एक धारावाहिक स्तंभ आरंभ करें जिससे लाखों पाठक घर पर विभिन्न प्रकार के पौधे लगा सकें तथा प्रदूषित वातावरण को शुद्ध करने में अपना योगदान दे सकें जो आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है. नगरों के दूषित वातावरण में पेड़-पौधे हमारे सच्चे हितैषी होने की बात को सिद्ध करते हैं. आशा है आप इस ओर जरूर ध्यान देंगे. **[धर्मेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, काली माता मंदिर रोड, छावड़ा कालोनी, गुना (म०प्र०) 217 301]**

❑ मैं 'आविष्कार' का पिछले 7 सालों से लगातार पाठक रहा हूं और इसी के

एक निवेदन

हम अपने देश में और विशेष तौर पर अपनी विभिन्न भाषाओं में विज्ञान लोकप्रियकरण का वास्तविक और विस्तृत इतिहास संकलित करने का प्रयास कर रहे हैं, जिसके लिए हम आपके इस स्तंभ में स्थान, तथा पाठकों की मदद पाना चाहते हैं.

काफी समय से यह समझा जाता रहा है कि इस दिशा में सबसे पहले केवल बंगाल और बंगला में ही प्रयास किए गए हैं, और यह तिथि उन्नीसवीं सदी के अंतिम चौथाई भाग तक जाती है, किंतु अब हमें ऐसे प्रमाण (वाकई, आकस्मिक रूप से) मिले हैं, जो यह दर्शाते हैं कि ऐसे ही प्रयास और गतिविधियां पंजाब और पंजाबी में भी इसी दौरान की गईं. 1885 में इस प्रयोजन से प्रोफेसर रुचिराम साहनी द्वारा लाहौर में पंजाब साइंस इंस्टिट्यूट (पीएसआई) की स्थापना (प्रोफेसर जे०सी० ओमन के साथ) की गई थी. वे लगभग सारे पंजाब प्रांत में जाते थे और पंजाबी (और अंग्रेजी में भी आवश्यकतानुसार) विज्ञान पर लोकप्रिय व्याख्यान देते थे. 1888 में उन्होंने विज्ञान के सरल उपकरणों और यंत्रों की मरम्मत तथा निर्माण के लिए पीएसआई कार्यशाला की स्थापना की; इस कार्यशाला में बने उपकरण 1890 के दशक में पूरे भारतवर्ष में बिकते थे. उनकी आत्मकथा में कुछ लोगों का जिक्र आया है, जो अन्य प्रांतों के थे, और जिन्होंने उनके प्रयासों को सराहा और प्रोत्साहित किया, वे हैं: (1) श्री हीरालाल, विज्ञान शिक्षक, होशंगाबाद (अब मध्य प्रदेश में), (2) पूना के प्रसिद्ध श्री गोविंद रानाडे, (3) बड़ौदा के प्रोफेसर मोदक, और (4) पूना के श्री नाम जोशी, जो भारत के औद्योगिक आधुनिकीकरण के प्रति समर्पित प्रख्यात जन कार्यकर्ता थे. बंगाल के प्रोफेसर जगदीश चन्द्र बोस तथा डा० प्रफुल्ल चन्द्र रे के साथ भी प्रोफेसर साहनी के घनिष्ठ संबंध थे और 1905-1906 से उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के वार्षिक सत्रों के दौरान होने वाली औद्योगिक और वैज्ञानिक प्रदर्शनियों में अपने वैज्ञानिक उपकरणों को प्रदर्शित करना आरंभ किया था. कौन जाने, ऐसे उदाहरण अन्य भारतीय भाषाओं में भी हों. हम इस विषय में निम्नलिखित व्यक्तियों/विषयों पर जानकारी खोज निकालने और प्राप्त करने हेतु मदद चाहते हैं: (1) ऊपर लिखे व्यक्ति जिनके नाम प्रोफेसर रुचिराम साहनी की आत्मकथा में आए हैं, विशेषतया पंजाब में विज्ञान लोकप्रियकरण गतिविधियों और पीएसआई कार्यशाला में निर्मित वैज्ञानिक उपकरणों/यंत्रों के संदर्भ में, (2) अन्य भारतीय भाषाओं में विज्ञान लोकप्रियकरण हेतु 75-100 वर्ष पहले किए गए प्रयास.

यदि इस संबंध में कोई संकेत, सूत्र और सूचना आप के पाठक हमें निम्नलिखित पते पर भेज सकें तो हम आपके आभारी होंगे: निदेशक, राष्ट्रीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी संचार परिषद्, विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग, टैक्नॉलोजी भवन, नया महरौली मार्ग, नई दिल्ली-110016.

[डा० नरेन्द्र सहगल, निदेशक, रा०वि०प्रौ०सं०प०, नई दिल्ली]

साथ ही अन्य विज्ञान पत्रिकाएं भी लगातार पढ़ता रहा हूं. वैसे मैं बी०काम० अंतिम वर्ष का छात्र हूं परंतु विज्ञान में मेरी काफी रुचि है एवं अपने जेब खर्च चलाने के लिए मैं टी०वी०, वी०सी०आर० आदि की रिपेयरिंग भी करता हूं.

आपके 'व्योमविहार', 'आविष्कार मंच', 'हम सुझाएं आप बनाएं' इत्यादि सभी अंक ठीक लगते हैं. मगर देखने में आता है कि कभी-कभी 'आविष्कार मंच' में कुछ ऐसे परिपथ या अन्य सामग्री छप जाती है जिनका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं होता है या फिर जो चोरी की हुई होतीं हैं. इस प्रकार की सामग्री से पत्रिका का स्तर गिरता है. अतः क्यों न इस मंच पर प्रकाशित होने वाले पत्रों के साथ ही आप उन तथ्यों की मांग नहीं करते जहां से उन आविष्कारकों और तथाकथित आविष्कारकों को प्रेरणा मिली.

आज वैज्ञानिक उपलब्धियों की समुचित उपयोग की आवश्यकता है. 2-3 वर्ष पूर्व तक नयी प्रौद्योगिकी पर स्तंभ निकलता था पर पता नहीं क्यों बंद कर दिया गया है. आज तो नए-नए उद्योगों पर सामग्री निकालनी ही चाहिए ताकि युवा पीढ़ी को स्वरोजगारोन्मुख किया जा सके. जैसे पी०सी०बी० निर्माण, मुर्गीपालन, साबुन निर्माण, इलेक्ट्रोलाइटिक कन्डेंसर या अन्य छोटे-छोटे इलेक्ट्रोनिक घटकों के निर्माण की विधियों पर पूर्ण लेख प्रकाशित करें. किसी भी पत्रिका की पाठकों द्वारा समालोचना होनी ही चाहिए और इस समालोचना से शायद कुछ पाठकों को ठेस भी पहुंची हो परंतु अपनी प्यारी पत्रिका के स्तर को तो बनाए रखना ही है. **[मनोज कुमार शाह, द्वारा श्री पी०एल० शाह रिक्रूटमेंट आफीसर, सी०डी०आर०आई०, लखनऊ]**

❑ **'आविष्कार' विज्ञान युग में साथ चलने की प्रेरणा:** मैं 'आविष्कार' का बहुत ही आभारी हूं, जिसे पढ़ने के बाद विज्ञान की नई-नई खोजों के बारे में बहुमूल्य ज्ञान मिलता है. मैं इस विज्ञान पत्रिका का पिछले पांच महीनों से नियमित पाठक हूं. 'आविष्कार' का हर लेख बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो रहा है. जनवरी '92 का 'आविष्कार' पढ़ा जिसमें सारे लेख बहुत ही पसंद आए. मैं आशा करता हूं कि 'आविष्कार' हमें ऐसे ही उच्च कोटि की शिक्षा देता रहेगा. **[विजय सिंह, द्वारा दिनकर सिंह धर्म समाज संस्कृत महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर (छात्रावास) (बिहार)]**

❑ **मानव चालित जेनरेटर:** 'आविष्कार' का जनवरी 1992 का अंक मिला. सभी लेख एक से बढ़कर एक हैं. इसी अंक के 'आपकी प्रतिक्रियाएं' नामक स्तंभ में मेरे लेख 'मानव चालित जेनरेटर' के संबंध में रविकांत जी का आलोचनात्मक पत्र पढ़ा. पत्र पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि वास्तव में उन्हें भ्रम तथा समझने में भूल हुई है. पत्र में उठाए गए प्रश्नों के उत्तर क्रम से दे रहा हूं:

1. पत्र पढ़ने पर यह स्पष्ट होता है कि उन्हें डायनेमो से संबंधित गणनाओं को लेकर भ्रम उत्पन्न हुआ है. चूंकि 50 हर्ट्ज, 240 वोल्ट विद्युतीय मानक होता है अतः उसी के आधार पर यह समझाने का प्रयत्न किया गया कि वोल्ट डी सी के लिए आर्मेचर को प्रति सेकंड कितने चक्करों की आवश्यकता होगी. यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि लेख में 12 वोल्ट के छोटे जेनरेटर तथा 240 वोल्ट के बड़े जेनरेटर की चर्चा अलग अलग तथा तुलनात्मक अर्थों में की गई है. अतः उक्त पत्रलेखक का यह समझना कि 12 वोल्ट डी सी को उत्पन्न करने के लिए 50 हर्ट्ज 240 वोल्ट के डायनेमो का उपयोग होता है तो यह उनके द्वारा समझने में की गई भूल है. अब मेरा एक प्रश्न यह है कि 50 हर्ट्ज 240 वोल्ट के बड़े जेनरेटर के उपयोग के बाद 300 वाट—240 वोल्ट के इन्वर्टर की क्या उपयोगिता रह जाएगी?

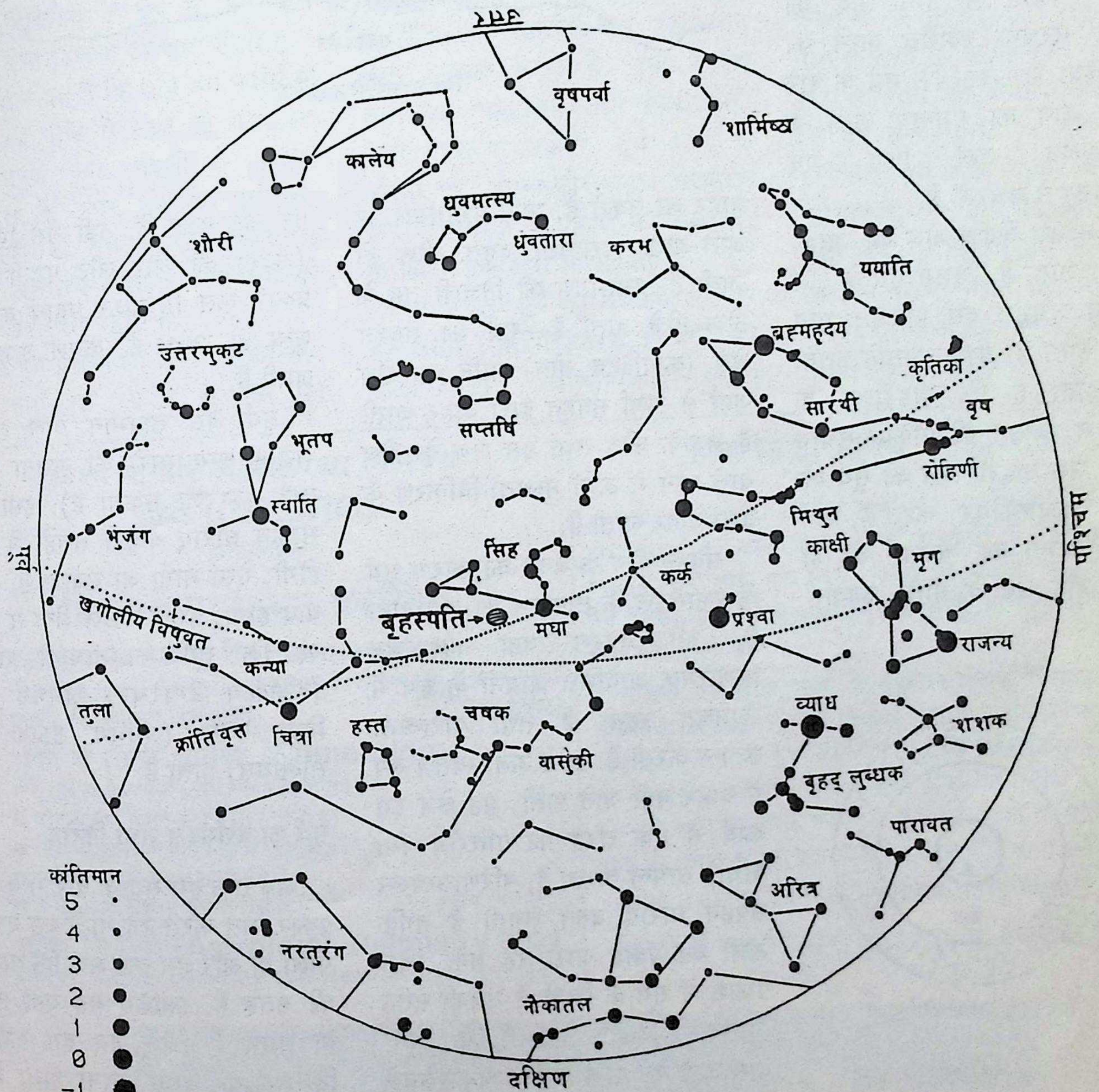
2. यह मानवचालित जेनरेटर दुपहिए वाहनों में प्रयुक्त दुध्रुवीय डायनेमो नहीं है. इन द्वि या बहुध्रुवीय डायनेमो में शक्तिशाली छड़ चुंबक तांबे के तारों से लिपटे क्रोडों के बीच तेजी से घूमते हुए धारा उत्पन्न करते हैं. जबकि 'मानवचालित जेनरेटर' में स्थिर चुंबकीय क्षेत्र में तांबे के तारों के लपेटों से बना आर्मेचर घूमता है. अतः यह स्पष्ट है कि इन दोनों ही प्रकारों के डायनेमो की कार्यविधि तथा बनावट भिन्न है. अतः एक बार फिर समझने में भूल प्रकट होती है.

3. यह सही है कि इतने कम (12 वोल्ट) वोल्ट के लिए स्लिग रिगो का उपयोग नहीं हो सकता. परंतु आमतौर पर डायनेमो से संबंधित सामान्य चित्रों में रिगो का ही उपयोग हुआ दिखाई पड़ता है. अगर इस चित्र में रिगो के स्थान पर (उनके अनुसार) 'कम्प्यूटर' का उपयोग होता तो चित्र दोषपूर्ण हो जाता. इससे जटिलताएं उत्पन्न होती तथा अकारण ही विवाद बढ़ता.

मेरे इस स्पष्टीकरण से उक्त पत्र लेखक तथा अन्य उन्हीं जैसे पाठकों के भ्रम अवश्य दूर होंगे, ऐसा मेरा विश्वास है. **[विवेक कुमार सूद द्वारा, श्री वीरेंद्र कुमार सूद, ओम निवास, क्लब रोड, मिठनपुरा, मुजफ्फरपुर-842002 (बिहार)]**

□ पीयूष पाण्डेय

इस मास केवल एक ग्रह बृहस्पति संध्याकाश में हमारे मानचित्र की सीमाओं के भीतर है—सिंह राशि में. शेष ग्रह उषाकाश में स्थित हैं, मास के मध्य में उनकी स्थितियां इस प्रकार हैं: बुध, शुक्र तथा मंगल—मीन राशि में तथा शनि ग्रह मकर में हैं. चन्द्रमा की कलाएं इस प्रकार हैं: अमावस्या दिनांक 3 अप्रैल, शुक्ल पक्ष अष्टमी दिनांक 10 अप्रैल, पूर्णिमा 17 अप्रैल और कृष्ण पक्ष अष्टमी दिनांक 25 अप्रैल को है.

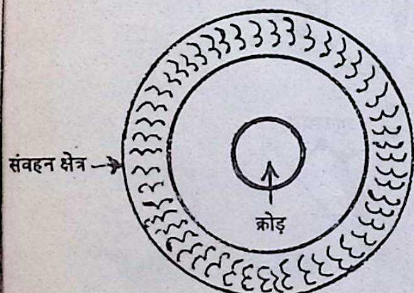


श्याम विवर भाग-3: हमारा तारा सूर्य-2

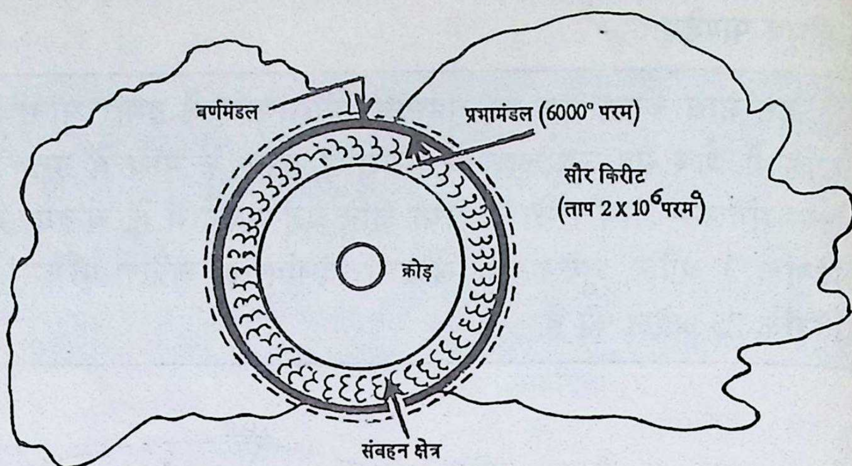
इस श्रृंखला की पिछली कड़ी में हमने सूर्य के 'सेफ्टी वाल्व' के बारे में चर्चा की थी कि किस प्रकार सूर्य अपनी क्रोड़ में हो रही तापनाभिकीय संलयन की प्रक्रिया को नियंत्रण में रखता है, वह एक उद्जन बम की तरह विस्फोटित नहीं हो जाता बल्कि ऊर्जा को धीरे-धीरे उत्पन्न करता है जिससे हमें वह एक 'शाश्वत-प्रकाश स्रोत' सा प्रतीत होता है.

नीचे चित्र-1 में हमने सूर्य की आंतरिक संरचना प्रदर्शित करने का प्रयास किया है—जैसा कि सूर्य के बारे में प्राप्त ज्ञान का समन्वय करने के पश्चात—अब तक किए गए मॉडलीकरण से उभरती है.

सूर्य के उस केंद्रीय क्षेत्र को उसका क्रोड़ कहा जाता है, जिसमें सूर्य के कुल पदार्थ का लगभग दस प्रतिशत भाग उपस्थित होता है. यहां तापमान इतना अधिक होता है कि हाइड्रोजन के हीलियम में संलयन की प्रक्रिया सुचारु चल सके. उस बाहरी परत को सूर्य का प्रभामंडल (फोटोस्फीयर) कहते हैं, जहां पहुंचकर फोटोनो का 'चलना' बंद हो जाता है और अब वे सीधे 'उड़कर' बाहर जा सकते हैं, यानि प्रभामंडल पर आते-आते पारान्धता बहुत क्षीण हो जाती है. प्रभामंडल की निचली तह के ठीक नीचे होता है—सूर्य का संवहन क्षेत्र (कन्वैक्टिव ज़ोन) यानि वह क्षेत्र जहां से ऊर्जा संवहन द्वारा बाहर जाती है जबकि क्रोड़ तथा इस क्षेत्र के बीच वाले भाग में ऊर्जा मुख्यतः विकिरण के द्वारा बाहर जाती है.



चित्र 1 : सूर्य की आंतरिक बनावट



चित्र 2 : सूर्य की बाह्य सतहें

संवहन क्षेत्र के बनने का कारण सूर्य के प्रभामंडल के तापमान का कम होना है, इस कारण वहां हाइड्रोजन ऋणात्मक आवेशित आयनों के रूप में उंपस्थित रहती है तथा पारान्धता उत्पन्न करती है. इससे ऊर्जा स्वतंत्र रूप में बाहर नहीं जाने पाती, यह क्षेत्र इस कार्य में एक तरह का प्रतिरोध (या बाधा) उत्पन्न करता है, परिणामस्वरूप संवहन धाराएं बनने लगती हैं ताकि ऊर्जा का प्रवाह जारी रह सके. श्वेत प्रकाश में सूर्य के चित्रों में उसकी सतह 'दानेदार' दिखाई देती है, ये 'दाने' वास्तव में गैस के वे विशालकाय बुलबुले होते हैं जो भीतर से गर्मी लाकर सतह पर फूट पड़ते हैं. ठंडी गैसें फिर नीचे (अंदर) की ओर लौट पड़ती है, इस प्रकार कुल मिलाकर पदार्थ का प्रवाह शून्य ही रहता है, केवल ऊर्जा बाहर जाती है.

सूर्य जैसे तापमान वाले तारों में (जिन्हें अन्य तारों की तुलना में ठन्डे तारे कहा जा सकता है). इसी प्रकार संवहन धाराएं बाहरी सतहों में चलती होंगी, ऐसा माना जा सकता है. आपको याद होगा, हमने पिछले अंक में बताया था कि सूर्य का प्रभावी तापमान (इफैक्टिव टैम्परेचर) लगभग 5800 डिग्री परम (लगभग 5500 डिग्री सेल्सियस) होता है.

सूर्य का वर्णमंडल तथा किरोट

अब तक हम सूर्य के बारे में कुछ इस प्रकार बात करते रहे मानों यह एक पूर्ण गोला हो और हम कह सकें कि यह गोले की सतह है. इसलिए यह यहां समाप्त हो जाता है (जैसे जब हम कहते हैं कि सूर्य का व्यास इतना होता है तो हमारा तात्पर्य कुछ ऐसा ही होता है).

प्रभामंडल की कुल मोटाई, जहां फोटोन चलना 'बंद करके उड़ना' प्रारंभ कर देते हैं, सूर्य की त्रिज्या का मात्र एक प्रतिशत होती है. इस कथन से तो यही लगता है मानो सूर्य की कोई निश्चित सीमा होती है यानि उसका कोई निश्चित आकार होता है, और हम यह कह सकें कि यह सूर्य की सतह है. यदि हम ऊर्जा के संदर्भ में बात करें तो उपरोक्त कथन पर कोई आपत्ति इसलिए नहीं हो सकती क्योंकि विकिरण के रूप में ऊर्जा हमें मुख्यतः प्रभामंडल से ही प्राप्त होती है.

पर सच यह है कि यदि हम पदार्थ के फैलाव की दृष्टि से सोचें तो यह बात थोड़ा सरल जान पड़ती है क्योंकि प्रभामंडल के ऊपर सूर्य का वर्णमंडल (क्रोमोस्फीयर) तथा किरीट (कोरोना) का भी अस्तित्व होता है जहां सूर्य की ही गैसें उपस्थित रहती हैं.

यदि हम प्रभामंडल से बाहर की ओर बढ़ते जाएं तो आरंभ में गैस का तापमान घटता है और उसके बाद फिर बड़ी तेजी से बढ़ने लगता है और सौर किरीट में यह 20 लाख डिग्री परम ताप के बराबर पहुंच जाता है.

पर यह भी सच है कि प्रभामंडल का तापमान किरीट से बहुत कम होने के बावजूद भी सूर्य के प्रकाश का एक बड़ा हिस्सा हमें प्रभामंडल से ही मिलता है. किरीट का अत्यंत झीना होना उसके कम प्रकाश के लिए उत्तरदायी है. वर्णमंडल को हम प्रभामंडल और किरीट के बीच का संवर्तन क्षेत्र (ट्रांजिशन ज़ोन) समझ सकते हैं. इसी कारण सामान्यतः वर्णमंडल तथा किरीट को देखा नहीं जा सकता. सूर्य ग्रहण के अवसर पर, अथवा कोरोनाग्राफ उपकरण द्वारा प्रभामंडल के प्रकाश को रोक कर ही किरीट को देखा जा सकता है.

सामान्यतः सूर्य का वर्णक्रम लेने पर हमें उसमें (सतरंगी प्रकाश की पट्टी पर) काली-काली अवशोषण रेखाएं (फ्रॉनहोफर रेखाएं) दिखाई देती हैं. परंतु सूर्य ग्रहण के समय जब प्रभामंडल का प्रकाश कट जाता है, तब हमें वर्णमंडल दिखाई पड़ता है जो ठंडी गैसों के ऊपर गर्म गैसों की एक परत के समान है, अतः उस समय यकायक पूरा वर्णक्रम पलट जाता है, अवशोषण रेखाओं के स्थान पर हमें उत्सर्जन रेखाएं (चमकती रेखाएं) मिलती हैं जिसे 'फ्लैश स्पैक्ट्रम' कहते हैं.

ऐसे ही एक सूर्य ग्रहण का अध्ययन करने के दौरान, (भारत में) हीलियम नाम के तत्व की खोज उसके वर्णक्रम के द्वारा हुई. तब तक ऐसा माना जाता था कि यह तत्व पृथ्वी पर नहीं होता है इसीलिए सूर्य के एक अन्य नाम 'हीलिऑस' से इस गैस को हीलियम कहा गया. पृथ्वी पर हीलियम बहुत अल्प मात्रा में मिलती है परन्तु ब्रह्मांड में हाइड्रोजन के बाद बाहुल्य की दृष्टि से दूसरा स्थान इमीगैस है. ❑

इमरजेन्सी लाइट

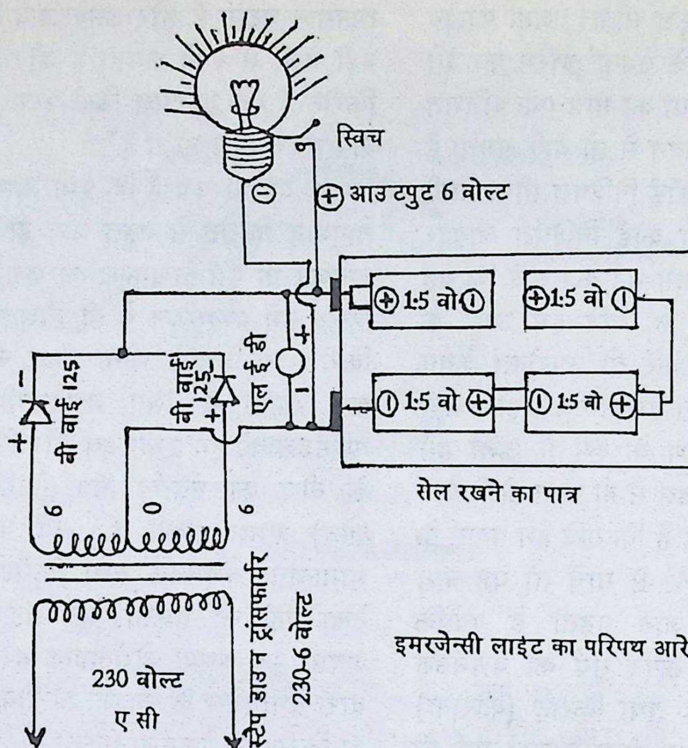
❑ मैंने एक इमरजेन्सी लाइट प्रणाली तैयार की है जो अचानक बिजली चले जाने की स्थिति में काफी उपयोगी हो सकती है.

यह एक सरल युक्ति है. इसमें न तो कठिन इलेक्ट्रोनिक परिपथ है और न ही एसिड युक्त बैटरी का झंझट. इसमें निकिल-कैडमियम सेल का उपयोग किया गया है, जिसे आमतौर पर फोटोग्राफर अपने कैमरे के फ्लैशगन में उपयोग करते हैं. इसका दूसरा महत्वपूर्ण हिस्सा एक स्टैप डाउन ट्रांसफार्मर है जो 230 वोल्ट को 6 वोल्ट में परिवर्तित कर देता है. इसके अलावा इसमें दो रैक्टीफायर डायोडों का उपयोग किया गया है. रैक्टीफायर 220 वोल्टमेन को 1.5 से 12 वोल्ट पल्सेटिंग डी०सी० में परिवर्तित करता है.

सभी आवश्यक घटक आपको किसी इलेक्ट्रोनिक सामान की दुकान में आसानी से प्राप्त हो जाएंगे.

विधि :

सर्व प्रथम 6 वोल्ट का ट्रांसफार्मर लीजिए. इसमें एक ओर तीन तथा दूसरी तरफ दो प्वांइट होते हैं. जिस तरफ दो प्वांइट हैं, वह ट्रांसफार्मर की प्राइमरी क्वाइल है. इसमें आपको 230 वोल्ट ए०सी० इनपुट देता है जिससे इसके दूसरी तरफ (जिधर तीन प्वांइट हैं) 6 वोल्ट आउटपुट प्राप्त होगा. तीन प्वांइट में से सामान्यतया बीच वाला प्वांइट न्यूट्रल होता है तथा शेष किनारे वाले दोनों प्वांइट फेस होते हैं. इन दोनों प्वांइट में आपको रेक्टीफायर डायोड जोड़ना होगा. रेक्टीफायर साधारणतया बेलनाकार होगा तथा इसके दो सिरे होंगे कैथोड एवं ऐनोड.



इमरजेन्सी लाइट का परिपथ आरेख

अब दिए गए परिपथ के अनुसार घटकों को जोड़िए. प्रकाश उत्सर्जक डायोड (एल इ डी) में भी दो ध्रुव होते हैं, घनात्मक तथा ऋणात्मक. इसका संयोजन सही होने पर ही यह जलेगा अर्थात् घनात्मक में घनात्मक तथा ऋणात्मक में ऋणात्मक धारा इसे मिलनी चाहिए.

इसी प्रकार सेलों का संयोजन सही प्रकार से होना चाहिए अर्थात सेल के घन ध्रुव को घनात्मक तथा ऋण ध्रुव को ऋणात्मक धारा मिलनी चाहिए. अब आपकी इमरजेन्सी लाइट तैयार है. इसे बनाना जितना आसान है इसका उपयोग उतना ही कठिन है. इसमें कठिनाई सिर्फ इतनी है कि अब आपको

(शेष पृष्ठ 113 पर)

घटकों की सूची

घटक	मान	संख्या
निकिल-कैडमियम सेल	1.5 वोल्ट	4
ट्रांसफार्मर	6 वोल्ट 500 मिलीएम्पीयर	1
रेक्टीफायर डायोड	बी वाई 125 या 126 या 127	2
सेल कंटेनर	6 वोल्ट	1
ऑन ऑफ स्विच	—	1
एल०इ०डी०	—	1

सूक्ष्म तरंग से प्राकृतिक कच्चे रबड़ को मुलायम बनाना

प्राकृतिक रबड़ को मुलायम बनाने के लिए जापान की टोक्यो इलेक्ट्रिक पावर कंपनी लि० और न्यू जापान रेडियो कंपनी लि०, ने संयुक्त रूप से एक युक्ति विकसित की है जिसमें सूक्ष्म तरंग (माइक्रोवेव) प्रौद्योगिकी का उपयोग किया जाता है.

प्राकृतिक रबड़ को मुलायम बनाने के लिए पहले इसे गर्म किया जाता है. यह युक्ति रबड़ को गर्म करने के लिए कोई भारी तेल इस्तेमाल नहीं करती इसलिए इसके उपयोग में प्रदूषण की समस्या नहीं है.

इस प्रौद्योगिकी में कच्चे रबड़ को संवाहक पट्टे के जरिए युक्ति में भरा जाता है और फिर सूक्ष्म तरंग से उपचारित किया जाता है. सूक्ष्म तरंगों के लिए सूक्ष्म तरंग-जनित्रों का उपयोग किया जाता है जो न्यू जापान रेडियो कंपनी लि० द्वारा तैयार किए ज़ा रहे हैं.

परंपरागत विधियों में रबड़ को मुलायम करने में 3-4 दिन लग जाते हैं जबकि इस युक्ति से सिर्फ 14 मिनट में यह काम किया जा सकता है. इसकी बिजली की खपत भी सिर्फ 10 किलोवाट है जो कि अपेक्षाकृत काफी कम है.

भूकम्प को झेल सकने वाले मकान

भूकम्प नहीं मारता, मारते हैं घर. भूकम्पों की विनाशलीला तो यही कहती है. आज जहां वैज्ञानिक भूकम्प के पूर्वानुमान पर अनुसंधान कर रहे हैं, वहीं ऐसे मकानों का निर्माण भी किया जा रहा है जो भूकम्प के झटकों को सह सकें. जापान के वैज्ञानिकों को ऐसी इमारतों के निर्माण में सबसे ज्यादा सफलता मिली है. टोरंटो (कनाडा) के बीचों-बीच 1.2 अरब डालर की लागत से भूकम्पों के झटकों से सुरक्षित 37,000 अपार्टमेंट शीघ्र बनाए जाएंगे. जापान के ही इंजीनियर टोक्यो में एक ग्यारह मंजिली इमारत बना रहे हैं. ऐसा बताया जाता है कि इस इमारत को भूकम्प से कभी कोई खतरा नहीं हो सकता. इस इमारत में विशेष संवेदक (सैंसर) और कम्प्यूटरों का इस्तेमाल किया गया है. जो जमीन से उठी हल्की सी हलचल या कम्पन के प्रभाव को समाप्त या बहुत कम कर सकते हैं.

इस इमारत की छत और दीवारों पर ऐसे कम्प्यूटर लगाए गए हैं, जो भूकम्प के दौरान जिस दिशा से इमारत हिलेगी उसी तरफ से चौगुना दबाव पैदा कर सकते हैं. आधार तल और छत पर ऐसे संवेदक लगाए गए हैं, जो कम्प्यूटर को यह जानकारी देंगे कि भूकम्प के दौरान किस तरफ से इमारत को कितना दबाव देना है. इमारत की ऐसी सुरक्षा देने में इसकी लागत दस प्रतिशत और बढ़ जाती है.

नेत्र रोगों का इलाज आसान हुआ

रूस के एक नेत्र विशेषज्ञ डा० फ्योदरोव ने दावा किया है कि अधिकांश नेत्र रोगों का इलाज मानव शरीर में पाए जाने वाले 'कोलैजन' नामक प्रोटीन से किया जा सकता है. कृत्रिम लेंस, कार्नियां प्रत्यारोपण और कृत्रिम आइरिस का निर्माण 'कोलैजन' से किया जा सकता है. कोलैजन मानव शरीर की कोशिकाओं के 70 प्रतिशत भाग में पाया जाता है.

रूस में पिछले छह वर्षों में किए गए परीक्षणों के परिणाम से पता चला है कि प्राकृतिक नेत्र लेंस के खराब होने पर इसे कोलैजन निर्मित लेंस से आसानी से बदला जा सकता है. इस लेंस से कोई परेशानी नहीं होती और निकटदृष्टि तथा मोतियाबिंद के रोगियों द्वारा इस लेंस का उपयोग करने से 10 से 25 प्रतिशत् दृश्य अधिक स्पष्ट हो जाता है.

कोलैजन निर्मित लेंस अत्यंत लचीले और टिकाऊ होते हैं. सबसे बड़ी बात है कि इन्हें बड़ी संख्या में उपलब्ध कराया जा सकता है, क्योंकि कोलैजन को जंतु स्रोतों से भी प्राप्त किया जा सकता है. डा० फ्योदरोव ने बताया कि डाक्टरों के समक्ष यह भी एक चुनौती थी कि शरीर के कुछ एन्जाइम कोलैजन को नष्ट कर देते हैं, लेकिन अब हमने शरीर में कोलैजन को स्थिर कर लेने में सफलता प्राप्त कर ली है. डा० फ्योदरोव के अनुसार केवल कोलैजन पदार्थ को शरीर में प्रविष्ट करा के ही 91 प्रतिशत दूरदृष्टि रोगियों को बिना किसी हानिकारक प्रभाव के ठीक किया जा सकता है.

डा० फ्योदरोव रूस में एक अनुसंधान संस्थान के अध्यक्ष हैं. इस संस्थान में लगभग 550 नेत्र चिकित्सक और 2000 तकनीकी विशेषज्ञ नेत्र रोगों को ठीक करने, अनुसंधान करने और नेत्र रोगों के लिए नई तकनीकें विकसित करने में लगे हुए हैं.

सैनवर्नाडिनों में ऐसी इमारतों का निर्माण किया जा रहा है जो रिक्टर स्केल पर 8.4 की तीव्रता को झेल सकते हैं. इनमें 98 प्रतिशत हिस्सा रबड़ का है. टोरंटो में बनाए जाने वाले अपार्टमेंट में स्टील और रबड़ को मिश्रित रूप से इस्तेमाल किया जाएगा. वास्तव में अभी तक भूकम्परोधी भवन निर्माण की दो तकनीकें उपयोग में लाई जाती रही हैं. पहली है प्रबलित कंक्रीट, स्टील फ्रेम, गहरी नींव और हल्की छत. दूसरी है—कमजोरी, जिसे अलग से हिलाया नहीं जा सकता. जापान के परंपरागत लकड़ी और कागज के घर भूकम्पीय स्थिति से जुड़े रहते हैं क्योंकि इनका हिलना खपच्ची की टोकरी हिलनें के बराबर ही होता है. टेक्सास, अमेरिका की 'इंटरटेक' नामक कंपनी ने कच्चे घरों को मजबूती प्रदान करने के लिए नई प्रौद्योगिकी का विकास किया है. यह हमारे देश में पहाड़ी इलाकों के लिए काफी उपयोगी हो सकती है.

हमारे देश में भी रुड़की विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने ऐसे मकानों का निर्माण किया है जो जल्द तैयार किए जाने के साथ-साथ भूकम्परोधी भी हैं. इन घरों का डिजाइन कम्प्यूटर मॉडल के आधार पर तैयार किया गया है. यह भूकम्प के अलावा 130 किलोमीटर प्रति घंटे के तूफान और प्रचंड हिमपात में भी खड़े रह सकते हैं. केंद्रीय भवन अनुसंधान संस्थान, रुड़की ने दो प्रकार के घर विकसित किए हैं, जो भूकम्परोधी हैं. एक टिन और स्टील का तथा दूसरा लकड़ी का. इन घरों को आसानी से दूरदराज के इलाकों में ले जाया जा सकता है. संस्थान ने ऐसे दो हजार घरों का निर्माण किया है.

तीसरी दुनिया में मोटरवाहनों का बढ़ता धुआं

विश्व बैंक के एक शोध-पत्र 'आटोमोटिव एयर पोल्यूशन—इश्यूज एंड आप्शन्स फॉर डेवलेपिंग कंट्रीज' के अनुसार तीसरी दुनिया के देशों में तेजी से शहरीकरण और मोटरवाहनों की तेजी से बढ़ रही संख्या के कारण प्रदूषण खतरनाक सीमा तक पहुंच रहा है और वर्ष 2000 तक इन देशों के कुछ बड़े शहरों में प्रदूषण आज से दुगना हो जाएगा.

शोध-पत्र के अनुसार विश्व जनसंख्या 1985 में चार अरब आठ करोड़ से बढ़कर वर्ष 2000 तक छः अरब हो जाने का अनुमान है, जिसका अधिकतर बोझ विकासशील देशों पर पड़ेगा. वर्ष 1985 में विश्व में एक करोड़ से अधिक जनसंख्या वाले 12 महानगर थे, जिनमें से आठ विकासशील देशों में थे. वर्ष 2000 तक इनकी संख्या दोगुनी हो जाने की आशंका है. मोटरवाहनों की संख्या भी इसी अनुपात में बढ़ेगी. यदि समय रहते इनके कारण वायु-प्रदूषण रोकने के लिए कदम नहीं उठाए गए तो इस शताब्दी के अंत तक तीसरी दुनिया के चालीस करोड़ से अधिक लोग खतरनाक हद तक प्रदूषण से प्रभावित होंगे.

शोध-पत्र में कहा गया है कि अध्ययनों से पता चला है कि तीसरी दुनिया के बहुत से महानगरों में मोटरगाड़ियों से निकलने वाले रासायनिक हानिकारक पदार्थों की मात्रा विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा निर्देशित सुरक्षित मात्रा से बहुत अधिक है. ये शहर हैं—बम्बई, मैक्सिको सिटी, लागोस, साओपाउलो, बैंकाक, जकार्ता, मनीला, सिदोल, अंकारा, काहिरा, तेहरान, बेलग्राद, बुडापेस्ट और इस्ताम्बल. अध्ययन में बताया गया है कि हालांकि प्रदूषण नियंत्रण कार्यक्रम के तहत भारत, थाइलैंड, हांगकांग और सिंगापुर में मोटरवाहनों से कार्बन डाइआक्साइड और अन्य हानिकारक तत्वों की निस्सरण की जांच की जाती है लेकिन वह बड़े शिथिल ढंग से ही हो पाती है. शोध-पत्र में प्रदूषण रोकने के लिए तीन सूत्री कार्यक्रम पर जोर दिया गया है—ईंधन की बचत करने वाले स्वच्छ वाहनों का इस्तेमाल, साफ ईंधन का उपयोग और कुशल यातायात प्रबंध.

सौर ऊर्जा से बिजली बनाने वाले ऐंटिना

सूरज की गर्मी को बिजली में बदल कर अंधेरे मकानों को जगमगाने वाले एक खास किस्म के ऐंटिना को देश के दूरदराज के देहाती इलाकों में तेजी से लगाया जा रहा है. यह ऐंटिना उन क्षेत्रों को बिजली भेजेगा, जो अभी तक इससे महरूम रहे हैं. देश में सौर ऊर्जा से बिजली पैदा करने के अभियान का यह कार्यक्रम एक हिस्सा है. देश में इस समय सौर ऊर्जा से पैदा बिजली से लगभग 40 हजार घरेलू और सड़कों में प्रकाश के लिए लैम्प, कुछेक सौ रेलवे सिगनल प्रणाली और 50 छोटे बिजली संयंत्र काम कर रहे हैं. अंडमान में शीघ्र ही सौर ऊर्जा पर आधारित 5 संयंत्र लगाए जाने की योजना है.

हमारे देश में आज भी एक लाख गांव ऐसे हैं जहां बिजली की दस्तक नहीं हो सकी है. गैर परम्परागत ऊर्जा स्रोत विभाग के निदेशक डा० ई०वी०आर० शास्त्री के अनुसार दूरदराज के लगभग

10 हजार गांवों के लिए सौर ऊर्जा से प्राप्त बिजली सबसे बेहतर विकल्प है. सौर ऊर्जा के बेहतर उपयोग के लिए अब निजी कंपनियां भी ऊर्जा विभाग के प्रयासों में हाथ बंटा रही हैं. आज सौर ऊर्जा से न सिर्फ घरों में रोशनी हो रही है, बल्कि टेलीविजन सेट और बिजली के पंप भी चलाए जा रहे हैं.

सिरेमिक कम्पोजिटों की नवीन संविरचना

जर्मनी में हामवर्ग-हारबर्ग के तकनीकी विश्वविद्यालय के सिरेमिक ग्रुप के अनुसंधानकर्ताओं ने एक नई संविरचन (फैब्रिकेशन) तकनीक के द्वारा सिरेमिक समन्वित वस्तुएं और घटक तैयार किए हैं.

एक्टिव फिलर कंट्रोल पौलीमर पाइरोलिसिस नामक इस नवीन प्रक्रिया में अकार्बनिक पौलीमर और संक्रमण (ट्रांजिशन) धातुओं, बोराइडों या सिलिसाइडों जैसे कार्बाइड संरूपण पूरक (फार्मिंग फिलर) घटकों से मिश्रों को संविरचित किया जाता है.

सूक्ष्म संरचना संरूपण और पौलीमर सिरेमिक के रूपांतरण के दौरान विमीय परिवर्तन के नियंत्रण के लिए सक्रिय पूरकों का इस्तेमाल किया जाता है. इस विधि से समन्वित सूक्ष्म संरचनाओं का व्यापक स्तर पर उत्पादन किया जा सकता है, जो उत्पादन कार्य अकारिकी (मोर्फोलाजी) और सांद्रण के पूरक फेज पर निर्भर करता है. पूरक को कणों, कोलायडी निलंबन, कार्ब-धात्विक विलयनों या तंतु जैसे सतह विलेपन प्रबलन घटकों के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है.

कैक्टस करेंगे प्रदूषण की रोकथाम

'इंडियन सोसायटी ऑफ सेकूलैंटस' के अध्यक्ष श्री बी०पी० सक्सेना का कहना है कि पर्यावरण में प्रदूषण को रोकने में कैक्टस (यूफोर्बिया) और मांसलोद्भिद (सेकूलेंट) महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं. इन पौधों पर प्रदूषण का बहुत कम असर पड़ता है. अगर इन पौधों को भारी संख्या में बंजर और रेगिस्तानी इलाकों में लगाया जाए, तो समस्त रेगिस्तान को हरे-भरे इलाके में बदला जा सकता है.

कैक्टस और सैकूलेंट से कैंसर, गठिया, मधुमेह (डायबिटीज) सहित कई असाध्य रोगों के लिए दवाएं बनाई जाती हैं. नए अध्ययनों से पता चला है कि इन पौधों से हाइड्रोकार्बन-ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है, जिसका इस्तेमाल पेट्रोल की तरह किया जा सकता है. इन पौधों से प्लास्टिक निकालने में भी वैज्ञानिकों को सफलता मिली है. सड़क अनुसंधान संस्थान ने इन पौधों के दूध को तारकोल में मिलाकर सड़क बनाने का सुझाव दिया है. इससे सड़क की आयु दुगनी हो सकती है.

इस समय देश में कई दवा कंपनियां और सौंदर्य प्रसाधनों के निर्माता कैक्टस और सेकूलेंट का दवाइयां बनाने में इस्तेमाल कर रहे हैं. अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली इन पौधों के दूध से एलर्जी संबंधी रोगों के उपचार की दवा को ढूंढने में लगा है.

भारत में यूफोर्बिया पौधे बड़ी संख्या में पाए जाते हैं, लेकिन आम आदमी इन्हें कैक्टस कह कर ही पुकारते हैं. बारह परिवारों के इन पौधों की 25 हजार किस्में पूरे संसार में उपलब्ध हैं. हमारे देश में राष्ट्रीय वानस्पतिक उद्यान, लखनऊ में कैक्टस और सेकूलेंट पर शोध कार्य किया जा रहा है. इन पौधों को ज्यादा पानी की आवश्यकता नहीं होती है. ये अपने भीतर पानी जमा करके रख सकते हैं.

(पृष्ठ 110 का शेषांश)

इंतजार रहेगा बिजली के चले जाने का लेकिन इससे पहले कि आपके घर की बिजली गुल हो आप इसे चार्ज कर लीजिए. यह तीन से चार घंटे में चार्ज हो जाती है. जब यह पूर्णतः चार्ज हो जाएगी तो प्रकाश उत्सर्जक डायोड बुझ जाएगा और अब आपकी युक्ति तैयार है जो बिजली चलें जाने पर भी आपको रोशनी देगी.

पुष्पराज सिंह तिवारी
पुत्र डा० जी०एस० तिवारी, कार्यालय डी०आर०डी०ए०, नरसिंहपुर (म०प्र०)

कार्बन—महत्वपूर्ण ऊर्जा स्रोत

□ डा॰ गणेश पोखरियाल

□ कार्बन प्रकृति में सर्वाधिक व्यापक रूप में वितरित तत्व है. सन् 1775 में लावोजियर ने कोयले और हीरे को जलाकर कार्बन डाइआक्साइड प्राप्त की थी. कुल 106 तत्वों में कार्बन असाधारण है, जहां अन्य सभी तत्वों के यौगिकों की कुल संख्या 30,000 के लगभग है, कार्बन के लगभग 60,00,000 योगिक हैं, कार्बन के महत्व को स्वीकार करके कार्बनिक रसायन को 'कार्बन के यौगिकों का रसायन' कहा जाता है.

कार्बन क्रिस्टलीय और अक्रिस्टलीय, को रूपों में पाया जाता है. हीरा और ग्रैफाइट क्रिस्टलीय रूप हैं. पत्थर का कोयला, लकड़ी का कोयला का कज्जल अक्रिस्टलीय रूप हैं. हीरा कार्बन का शुद्धतम रूप है और इसकी कठोरता के कारण इसका उपयोग शीशा काटने तथा चट्टानों के बेधन में किया जाता है. हीरे का दूसरा महत्वपूर्ण गुण इसका उच्च अपवर्तनांक है, जिसके कारण यह रत्नजड़ित आभूषण में मूल्यवान पत्थर के रूप में इस्तेमाल किया जाता है. ग्रेफाइट में एक प्रकार की धात्वीय चमक और साबुन जैसी फिसलन होती है. यह कागज पर काले रंग का निशान छोड़ता है इसीलिए इसे काला सीसा भी कहा जाता है. मोम या मिट्टी की आवश्यक मात्रा मिलाकर ग्रेफाइट का उपयोग सीसा-पेंसिलें बनाने में किया जाता है. भारी उद्योगों में ग्रेफाइट का उपयोग स्नेहक और इलेक्ट्रोडों के निर्माण में भी किया जाता है. जातव कोयला जो प्राणियों की हड्डी को सीमित वायु में तप्त करके बनाया जाता है, औद्योगिक स्तर पर गन्ने के रस और प्रयोगशाला में अशुद्ध कार्बनिक यौगिकों में से रंगीन पदार्थों को दूर करने में इस्तेमाल किया जाता है. सूक्ष्म रंध्रों वाला होने के कारण गैसों के अवशोषक के रूप में इस्तेमाल में लाया जाता है. इसका उपयोग जूते की पालिस, छपाई की स्याही और काले पेंट बनाने में भी किया जाता है.

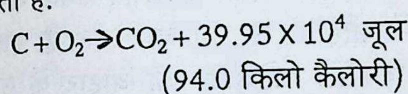
कोयला हमारी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के ऊर्जा क्षेत्र का मेरुदंड माना जाता है. कोयला इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि इसे ऊर्जा के अन्य प्रकारों जैसे गैस, बिजली या तेल तक में सरलता से परिवर्तित किया जा सकता है. कोयला उन रसायनों का भी स्रोत है जो रंजक, दवाई आदि बनाने के काम आते हैं. कुछ सामान्य ईंधनों को घरों में तथा उद्योगों में वस्तुओं को गर्म करने की

कार्बन चक्र

पैट्रोलियम के परिष्करण से प्राप्त प्रभाग और उनके उपयोग

क्र० सं०	प्रभाग का नाम	घटकों का क्वथनांक-परिसर	परमाणुओं की संख्या	उपयोग
1.	गैस	16° से०—30° से०	C_1 से C_2	गैसीय, ईंधन, कज्जल
2.	गैसोलीन	30° से०—200° से०	C_5 से C_{12}	मोटर ईंधन, विलायक, सूखी धुलाई, पेट्रोल, गैस
3.	केरोसीन	175° से०—275° से०	C_{12} से C_{16}	घरेलू प्रकाश व ईंधन
4.	गैस तेल और डीज़ल तेल	250° से०—400° से०	C_{15} से C_{18}	भट्टी ईंधन, डीजल इंजन के लिए ईंधन, भंजन

आवश्यकता होती है. इस ऊष्मा का अधिकांश भाग लकड़ी, कोयला, मिट्टी का तेल, एल्कोहल, पेट्रोल और गैस जैसी चीजों के जलाने से प्राप्त होता है. उदाहरण के लिए 12 ग्राम कार्बन के जलने से 39.95 X 10^4 जूल ऊष्मा पैदा होती है.


$C + O_2 \rightarrow CO_2 + 39.95 \times 10^4$ जूल (94.0 किलो कैलोरी)

कार्बनिक यौगिक अनेक स्रोतों से प्राप्त किए जाते हैं, जैसे सूक्ष्म जीव, पौधे, जंतु और खनिज. इनमें से सबसे अधिक संख्या में ये पौधों से प्राप्त होते हैं. उदाहरण के लिए शर्करा, स्टार्च, सेलुलोज, औषध, वनस्पति तेल, सुगंधित तेल, रंजक, कीटनाशक और एल्कोहल आदि पौधों से प्राप्त किए जाते हैं. सांश्लेषिक उत्पादों के लिए अन्य महत्वपूर्ण स्रोत कोयला है जिससे बेंजीन, टालूईन, फिनोल और नैफ्थलीन प्रचुर मात्रा में प्राप्त किए जाते हैं. कार्बनिक यौगिकों का दूसरा महत्वपूर्ण स्रोत खनिज तेल (पैट्रोलियम) है.

द्रवित पैट्रोलियम गैस (एल०पी०जी०) शब्द साधारणतया उन गैसों के लिए प्रयुक्त होता है जिसमें मुख्यतः प्रोपेन तथा ब्यूटेन गैसें मिली होती हैं. मीथेन, एथेन, एथिलीन और एसीटिलीन गैसें सामान्य रूप से ईंधन के लिए इस्तेमाल की जाती हैं. वायु की अनुपस्थिति में तेजी से गर्म करने पर मीथेन हाइड्रोजन और तत्वीय कार्बन में भंग हो जाती है. इस प्रकार से प्राप्त कार्बन सूक्ष्म रूप से विभाजित अवस्था में होता है और रबड़ उद्योग में इस्तेमाल किया जाता है. छोटी मात्रा में एथिलीन कृत्रिम रूप से फलों के पकाने में इस्तेमाल की जाती है. पौलीथीन जैसे प्लास्टिकों के औद्योगिक निर्माण में भी इसका उपयोग होता है जिससे बहुत सारी घरेलू वस्तुएं जैसे थैले, बाल्टियां आदि सामान बनाए जाते हैं. एसीटिलीन ईंधन और एसीटिलीन लैंपों में प्रदीपक के रूप में उपयोग में लाई जाती है. उच्च तापमान उत्पन्न करने के लिए एसीटिलीन को आक्सी-एसीटिलीन टार्च में जलाया जाता है. आक्सी-एसीटिलीन ज्वाला धातुओं की वेल्डिंग में काम में लाई जाती है.

द्रवित पैट्रोलियम गैस ईंधन का उपयोग हमारे जीवन में अत्यंत लाभकारी सिद्ध हुआ है. यह गैस भवनों को गरम रखने वाले अनेक प्रकार के घरेलू उपकरण जैसे दीप्तिमान, ऊष्मा प्रदान करने वाले संवाहक उपकरणों में उपयोग में लाई जा रही है. घरों में खाना पकाने के लिए द्रवित पैट्रोलियम गैस पिछले कई वर्षों से उपयोग में लाई जा रही है. कारखानों के मुख्य स्थानों में प्रकाश तथा ऊष्मा प्रदान करने के लिए द्रवित पैंट्रोलियम गैस का उपयोग अत्यधिक होने लगा है.

पैट्रोलियम हाइड्रोकार्बनों का एक मिश्रण होता है जो ठोस, द्रव तथा गैसीय होते हैं और पृथ्वी के अन्दर प्राणियों एवं पौधों के अवशेषों के अपघटन के फलस्वरूप बनते हैं. पैट्रोलियम के साथ-साथ पृथ्वी के अंदर गैसों का भी विशाल भंडार होता है जिन्हें प्राकृतिक गैस कहा जाता है और जो हाइड्रोकार्बनों की मिश्रण होती है. पैट्रोलियम 400° सेल्सियस से ऊपर गर्म किया जाता है और विभिन्न क्वथन-परिसर पर आसंवित होने वाले प्रभाग अलग-अलग एकत्र कर लिए जाते हैं.

वर्तमान ऊर्जा स्थिति पर गौर करने पर पता चलता है कि भारत में कोयला ऊर्जा का एक ऐसा व्यावसायिक साधन

है जो सबसे अधिक मात्रा में उपलब्ध है और ईंधन की लकड़ी सबसे अधिक मात्रा में उपलब्ध है. ईंधन की लकड़ी सबसे महत्वपूर्ण गैर-व्यावसायिक परन्तु नवीनीकरणय ऊर्जा साधन है. उक्त सभी वर्णित ईंधनों जैसे कोयला, लकड़ी, मिट्टी का तेल, पेट्रोल, डीजल, द्रवित पैट्रोलियम, गैस, प्राकृतिक गैस, एसीटिलीन आदि में कार्बन की उपस्थिति से ज्वलन क्रिया होती है जिससे हमें ऊर्जा प्राप्त हो रही है. ❑

लौह और हमारा शरीर

❑ **सुभाष लखेड़ा**

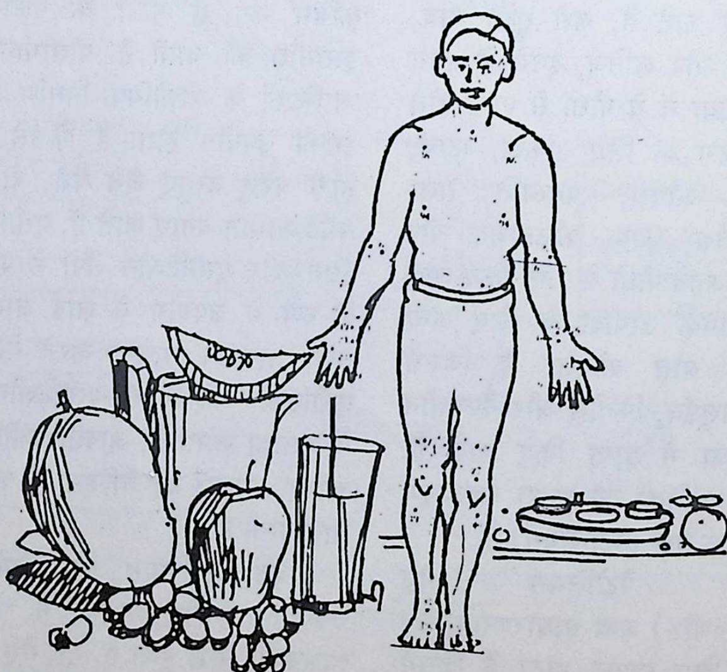
❑ हमारे शरीर में कुछ तत्व अत्यंत अल्पमात्रा में मौजूद होते हैं. ऐसे तत्वों को शरीरक्रिया विज्ञान में लेश-तत्व कहा जाता है. शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से इन तत्वों का अत्यधिक महत्व है. लौह भी इन्हीं तत्वों में से एक है.

जहां तक मनुष्य का प्रश्न है, एक वयस्क व्यक्ति के शरीर में लगभग 3 से लेकर 5 ग्राम तक लौह (आयरन) होता है. इस लौह का दो तिहाई से कुछ अधिक भाग हीमोग्लोबिन में, पांच प्रतिशत भाग ऊतकों के मायोग्लोबिन में तथा शेष पच्चीस प्रतिशत अस्थिमज्जा (बोन मेरो), यकृत तथा प्लीहा में हीमोसिडेरिन एवं फैरिटिन के रूप में संचित रहता है. पुरुषों में एक ग्राम और स्त्रियों में तीन सौ मिलीग्राम लौह संचित अवस्था में रहता है.

दरअसल, लौह शरीर में हीमोग्लोबिन, मायोग्लोबिन, साइटोक्रोमों और कुछ एंजाइमों के निर्माण के लिए अत्यधिक आवश्यक है. सामान्यावस्था में मनुष्य शरीर के लिए आवश्यक लौह को अपने द्वारा खाए गए आहार से प्राप्त करता है.

आहार में मौजूद लौह का दस प्रतिशत भाग ही छोटी आंत में अवशोषित होता है. शेष भाग मल के साथ उत्सर्जित हो जाता है. यूं छोटी आंत में लौह का अवशोषण इसके रूप भेद (हीम या नॉन हीम), आहार के संघटन एवं व्यक्ति विशेष की शारीरिक लौह स्थिति पर निर्भर करता है. अवशोषित लौह का ट्रैन्सफेरिन अस्थिमज्जा, अंग ऊतकों एवं यकृत में पहुंचाता है. इसका उपयोग हीमोग्लोबिन के निर्माण में एवं ऊतक कोशिकाओं में लौह धारित प्रोटीनों एवं सहएन्जाइमों के निर्माण में होता है. यकृत में पहुंचने वाला लौह वहां संचित रहता है.

मल के अलावा पसीने एवं मूत्र के साथ भी लौह अल्पमात्रा में उत्सर्जित होता है. सामान्य परिस्थितियों में एक पुरुष कोशिकाओं के अपशल्कन (डेसक्वामेशन), पसीना एवं मूत्र के माध्यम से 1 मिलीग्राम लौह प्रतिदिन एवं एक वयस्क महिला 0.8 मिलीग्राम लौह प्रतिदिन खोते हैं. इसके अतिरिक्त रजोनिवृत्ति से पूर्व एक महिला आर्त्तव काल के दौरान होने वाले रक्तस्राव के साथ 0.6 मिलीग्राम लौह प्रति दिन खोती है. इसलिए उन दिनों महिलाओं के शरीर से लगभग 1.4 मिलीग्राम लौह उत्सर्जित होता है. संतुलित आहार ग्रहण करने वाला एक पुरुष अपने आहार के साथ औसतन 6 मिलीग्राम प्रति हजार किलो कैलोरी लौह प्राप्त करता है जिसका 10 प्रतिशत भाग अवशोषित होता है. इस प्रकार से 3000 किलो कैलोरी आहार ग्रहण करने पर एक पुरुष को शरीर से उत्सर्जित होने वाले लौह के बराबर लौह अपने आहार से मिलता रहता है जिसने उसके शरीर में लौह का संतुलन बना रहता है. इसके विपरीत महिलाओं को आहार के साथ



कुल 12 मिलीग्राम लौह प्राप्त होता है, जिसका 10 प्रतिशत भाग 1.2 मिलीग्राम होता है. फलस्वरूप महिलाओं में विशेषकर आर्त्तवचक्र के दिनों में होने वाली लौह हानि से शरीर में 'लौह अभाव' की स्थिति पैदा हो सकती है. किशोरियों एवं महिलाओं को रजोनिवृत्ति से पूर्व अपने आहार के साथ प्रतिदिन लगभग 18 मिलीग्राम लौह अवश्य मिलना चाहिए. रजोनिवृत्ति के पश्चात महिलाओं के लिए एवं वयस्क पुरुषों के लिए आहार में 10 मिलीग्राम लौह पर्याप्त है.

शरीर में लौह कमी या लौहहीनता की स्थिति कई निश्चित चरणों में पैदा होती है. आहार में लौह की निरंतर कमी के कारण अस्थिमज्जा एवं यकृत में लौह निशेषण (आयरन डिप्लीशन) की स्थिति पैदा हो जाती है. यह पहला चरण है. इस स्थिति के पैदा होने पर हीमोग्लोबिन का निर्माण सीधे आहार से अवशोषित होने वाले लौह की मात्रा पर निर्भर करता है. सौभाग्य से शरीर में लौह की संचित मात्रा के कम होने पर आहार से अवशोषित होने वाली लौह की मात्रा में वृद्धि हो जाती है. यदि किसी वजह से आहार से लौह का आवश्यकतानुसार अवशोषण नहीं हो पाता है तो अपर्याप्त हीमोग्लोबिन बनने के कारण लोहितकोशिकाओं का निर्माण कम हो जाता है. यह अवस्था 'लौह-हीन लोहितकोशिकाजनन' (आयरनडेफिसेन्ट एरिथ्रोपोयसिस) कहलाती है. लौह-हीन लोहितकोशिकाजनन की स्थिति के बने रहने पर हीमोग्लोबिन सांद्रता कम होने लगती है. धीरे-धीरे रक्त में हीमोग्लोबिन का स्तर इतना कम हो जाता है कि व्यक्ति विशेष 'अरक्तक' श्रेणी मे आ जाता है. इस अंतिम चरण को 'लौह हीनता अरक्तता' कहा जाता है.

अस्थिमज्जा में लौह संचयन के आकलन (परिमापन) की सर्वोत्तम विधि अस्थिमज्जा जीवऊति परीक्षा (बायॉप्सी) है. इस विधि में, एक चपटी अस्थि, जैसे इलियम (श्रोणिफलक) की अस्थिमज्जा में सुई निवेशित करके मज्जा का नमूना लिया जाता है. इस मज्जा में 'हीमोसिडेरिन' की मात्रा को ज्ञात किया जाता है. यह परीक्षण व्यापक जनसमूह की जांच करने में अधिक उपयोगी नहीं है. रक्त में सीरम फैरिटिन का स्तर भी अस्थिमज्जा में संचित लौह की मात्रा की जानकारी देता है. जब अस्थिमज्जा में लौह की मात्रा कम होती है तो सीरम में फैरिटिन का स्तर 12 माइक्रोग्राम प्रति लीटर से कम हो जाता है. लौह की संचित मात्रा का आकलन सीरम फैरिटिन के स्तर से आसानी से लगाया जा सकता है, क्योंकि 1 माइक्रोग्राम प्रति लीटर सीरम फैरिटिन 8 मिलीग्राम संचित लौह के बराबर होता है.

लौह हीन लोहितकोशिकाजनन का परीक्षण कई विधियों से किया जा सकता है. जब लोहितकोशिकाओं के निर्माण हेतु लौह उपलब्ध नहीं होता है तो रक्त में हीम अणुओं के निर्माण में इस्तेमाल होने वाले अपरिबद्ध प्रोटोपार्फिरीन बढ़ जाता है. संतुलित लाल कोशिका आयतन (पैक्ड रैड सैल वाल्यूम) के एक डेसिलीटर में यदि अपरिबद्ध प्रोटोपार्फिरीन की मात्रा 100 माइक्रोग्राम से अधिक हो तो यह हीमोग्लोबिन के कम बनने का सूचक है. इसी प्रकार शरीर में संचित लौह की मात्रा के अवक्षय होने पर सीरम लौह 60 माइक्रोग्राम प्रति डेसिलीटर से कम हो जाता है. यूं सीरम लौह में दिन के दौरान घट-बढ़ होती रहती है और यह संक्रमणों एवं शोथों सहित कई कारणों से प्रभावित होता है. रक्त में लौह का वाहक प्रोटीन 'ट्रैन्सफेरिन' शरीर में लौह की संचित मात्रा के अवक्षय होने पर बढ़ जाता है. इसकी उन्नयित सान्द्रताएं भी लौह न्यूनता या हीनता की ओर संकेत करती हैं. लौह हीनता की स्थिति में, सीरम लौह एवं ट्रैन्सफेरिन के बीच का अनुपात जिसे ट्रैन्सफेरिन संतृप्ति कहते हैं, 15 प्रतिशत से कम हो जाता है. यूं ट्रैन्सफेरिन संतृप्ति भी संक्रमणों एवं शोथों से प्रभावित होती है.

इस प्रकार से लौह न्यूनता अरक्तता का निदान केवल हीमोग्लोबिन सान्द्रता पर नहीं अपितु लौह-हीन लोहितकोशिकाजनन एवं लौह निःशेषण से किया जाना जरूरी है. यदि केवल हीमोग्लोबिन की सान्द्रता सामान्य से कम है किन्तु लौह निःशेषण (अवक्षय) या लौह-हीन लोहितकोशिकाजनन के प्रमाण नहीं मिलते हैं तो ऐसी अरक्तता को 'लौह न्यूनता अरक्तता' की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है.

अध्ययनों से पता चला है कि किशोरियों में लौह अवक्षय का प्रतिशत सर्वाधिक होता है. तत्पश्चात महिलाओं एवं बच्चों का नम्बर आता है. किशोरों में किशोरियों की तुलना में लौह अवक्षय का प्रतिशत आधा पाया गया है. पुरुषों में लौह अवक्षय के मामले अपेक्षाकृत कम पाए जाते हैं. अब तक किए गए अध्ययनों से यह स्पष्ट हो चुका है कि अत्यधिक प्रशिक्षित खिलाड़ियों में भी लौह अवक्षय एवं लौह न्यूनता की स्थिति पैदा हो सकती है. सन् 1970 में ओलंपिक स्तर के खिलाड़ियों में किए गए एक अध्ययन में पांच प्रतिशत

महिला एवं दो प्रतिशत पुरुष खिलाड़ियों में 'लौह हीनता अरक्तता' देखने को मिली. अभी हाल में किए गए कुछ अनुसंधानों में पुरुषों एवं महिला दोनों ही समूह के खिलाड़ियों में लौह हीनता अरक्तता पाई गई है. लंबी दौड़ वाले पुरुष तथा महिला धावकों में सीरम फैरिटिन का स्तर सामान्य से कम पाया गया जो लौह अवक्षय का सूचक है. एक अध्ययन में 18.5 प्रतिशत महिला धावकों में 'लौहहीनता अरक्तता' पाई गई.

आखिर, खिलाड़ियों में लौह की कमी क्यों हो जाती है? इस प्रश्न के जवाब में वैज्ञानिकों का कहना है कि खिलाड़ी सामान्य लोगों की तुलना में मल, मूत्र एवं पसीने के साथ अधिक लौह खोते हैं. महिला खिलाड़ी आर्त्तव चक्र के दौरान होने वाले रक्तस्राव के साथ सामान्य महिलाओं की तुलना में संभवतया अधिक लौह खोती है. लंबी दूरी के धावकों में किए गए एक अध्ययन के दौरान देखा गया है कि दौड़ के तुरंत बाद वे प्रतिग्राम मल के साथ 2.25 मिलिलीटर हीमोग्लोबिन खोते हैं. इसका अर्थ है कि वे उस दिन लगभग 1.5 मिलिग्राम लौह मात्र इसी माध्यम से खो देते हैं. खिलाड़ियों में मूत्र के साथ होने वाली लौह हानि भी .18 मिलिग्राम प्रतिदिन के लगभग पाई गई है जो सामान्य से अधिक है. पसीने के माध्यम से भी खिलाड़ी सामान्य लोगों की अपेक्षा अधिक लौह खोते हैं क्योंकि उनको सामान्य लोगों से कहीं अधिक पसीना बहाना पड़ता है (0.13 मिलीग्राम प्रति लीटर). कुल मिलाकर ऐसा लगता है कि लंबी दूरी की दौड़ लगाने वाले पुरुष धावक सामान्य व्यक्तियों की तुलना में शरीर से प्रतिदिन दुगना लौह खोते हैं.

रेडियोधर्मी लौह के इस्तेमाल से वैज्ञानिकों ने इस तथ्य का पता लगाया है कि लौह हीनता अरक्तता के कारण व्यक्ति की लंबे समय तक शारीरिक श्रम करने की शक्ति की कमी होती है. जब रक्त में हीमोग्लोबिन की मात्रा 11 ग्राम प्रति 100 मिलीलीटर से कम हो जाती है तो व्यक्ति की लंबे समय तक कठिन शारीरिक कार्य करने की सीमा पर इसका कुप्रभाव पाया गया. यदि रक्त में हीमोग्लोबिन का स्तर सामान्य भी हो लेकिन ऊतकों में लौह की कमी हो तो भी खिलाड़ी की शारीरिक क्षमता पर इसका कुप्रभाव पड़ता है क्योंकि लौह की कमी होने पर ऊतकों में आक्सीजनी चयापचय (एरोबिक मैटाबॉलिज्म) की क्रियाएं प्रभावित होती हैं जिससे लैक्टिक एसिड का स्तर बढ़ जाता है. अध्ययनों से पता चला है कि लौहहीन आहार केवल रक्त हीमोग्लोबिन की सान्द्रता को ही कम नहीं करता है, चयापचय की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण अन्य कई एंजाइमों की मात्रा को भी प्रभावित करता है.

लौह समृद्ध आहार खाने से लौहहीनता से प्रभावित प्राणियों में आक्सीजन ग्रहण करने की क्षमता में वृद्धि देखने को मिली. वैज्ञानिकों का कहना है कि शरीर में लौह की पर्याप्त मात्रा होने पर कठिन शारीरिक कार्यों को करने की समय सीमा में वृद्धि होती है और लैक्टिक एसिड बनने की प्रक्रिया मंद हो जाती है.

इस प्रकार से लौह हीनता से ग्रस्त खिलाड़ियों को लौह संपूरकों के द्वारा लाभ पहुंचाया जा सकता है. ऐसे खिलाड़ियों को लौह संपूरक देने से उनकी हृदय गति एवं लैक्टिक एसिड जमाव पर अच्छा प्रभाव पड़ता है. यदि संपूरकों से शरीर को प्रतिदिन मात्र 50 मिलीग्राम या इससे कम लौह मिलता हो तो कोई उल्लेखनीय लाभ नहीं मिलता है. केवल उसी स्थिति में अपेक्षित लाभ देखने को मिला है जब संपूरकों द्वारा शरीर में कम से कम 100 मिलीग्राम या अधिक लौह शरीर में पहुंचता है. वैज्ञानिकों का कहना है कि ऐसे सभी खिलाड़ियों को लौह संपूरक दिए जाने चाहिएं जो लौहहीनता से ग्रस्त हों. इसका उनके खेल परिणामों पर अच्छा असर पड़ने की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता. ❑

सेनेटरी टॉवेल और नैपकिन भी अब एक पर्यावरणीय मुद्दा

❑ **शालिनी शर्मा**

❑ एक बार उपयोग के बाद फेंक दिए जाने वाले बच्चों के लंगोटों तथा मासिक-धर्म के समय स्त्रियों द्वारा उपयोग किए जाने वाले 'सेनेटरी टॉवेलों' का बाजार हमेशा बना रहता है क्योंकि न तो स्त्रियों को यह चुनने की स्वतंत्रता है कि वे रजस्वला हों या न हों, न शिशुओं को कि वे शौच या लघुशंका जैसे नित्य कर्म करें या नहीं. दोनों चीजें जिंदगी के जीव वैज्ञानिक तथ्य हैं और पिछले कुछ बरसों में धोकर फिर से उपयोग में लिए जाने वाले 'नैपकिनों' का स्थान आज पूरी तरह, एक बार उपयोग के बाद फेंक दिए जाने वाले उत्पादों ने ले ली है.

मूलतः इन दोनों उत्पादों, खासतौर से सेनेटरी टॉवेलों पर खुली चर्चा कभी

नहीं होती. हमारे देश में लोग आमतौर से शारीरिक क्रियाओं के बारे में बात करना पसंद नहीं करते तथा अक्सर माहवारी की सच्चाई को उजागर करने के मामले में काफी संवेदनशील होते हैं. इसके बावजूद बिक्री के जोरदार विज्ञापन अभियान इन वस्तुओं के बारे में ताजा जानकारी इनके उपभोक्ताओं को देते रहते हैं.

किचन पेपर, लेवेटरी (शौचालय) पेपर तथा 'टिशू' जैसी चीजें आधुनिक जीवनशैली का हिस्सा बन गई हैं. काफी भारी संख्या में स्त्रियों के यौवन में कदम रखने तथा जन्म-दर में हुई रिकार्ड वृद्धि के कारण इन दोनों उत्पादों के निर्माताओं की पांचों उंगलियां इस समय घी में हैं.

औसत स्त्री का प्रजनन-काल औसतन 35 वर्ष का होता है. इस हिसाब से एक औरत की जीवन भर की रजस्वला होने की लागत, मौजूदा कीमतों के हिसाब से लगभग 10,000 रुपए बैठती है. चूंकि ये प्रसाधन उत्पाद बार-बार खरीदे जाते हैं, हर वर्ष तीन हजार करोड़ रुपए से भी ज्यादा के 'सेनेटरी टॉवेल' बेचे जाते हैं. यद्यपि बड़े



सेनेटरी-उत्पादक अपनी वार्षिक बिक्री का ब्यौरा देने से कतराते हैं तथापि सेनेटरी नैपकिनों (बच्चों के लंगोटों) का बढ़ता बाजार भी अब 1000 करोड़ से ऊपर पहुंच गया है.

हांलाकि इन उत्पादों के ग्राहक अपने आप बनते हैं तथा ग्राहक किसी खास 'बैंड' के प्रति वफादार भी रहते हैं तथापि नए-नए ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए अबाध गति से साल भर



इनके लिए विज्ञापन अभियान चलाए जाते हैं. यहां चर्चा का विषय इन वस्तुओं के उपभोग का पैटर्न न होकर इन उत्पादों खासतौर से 'टॉवेलों' को ठिकाने लगाने की सुविधाओं की अपर्याप्त उपलब्धि है. इन 'टॉवेलों' को या तो शौचालयों में बहा दिया जाता है या कूड़ा-दान में फेंक दिया जाता है.

शिशुओं के लंगाटों तथा 'सेनेटरी टॉवेलों' को बनाने का तरीका बिल्कुल एक जैसा है, दोनों चीजें ब्लीच की हुई 'फ्लप' लुग्दी से बनती हैं जो कि डायोक्सीन जैसे विषाक्त रसायन पैदा करता है. ये रसायन पूरी तरह बन चुके उत्पादों में भी मौजूद रहते हैं. दूध-सी सफेदी लाने के लिए जो रासायनिक प्रक्रियाएं अपनाई जाती हैं उनमें फिर से उपयोग किए गए पदार्थों का रंग उड़ाना, क्लोरीन तथा डिटरजेंटों से धोना शामिल है. ये सारी रासायनिक क्रियाएं 'नैपकिन' में अपने कुछ अवशेष छोड़ती जाती हैं, इसके बाद नैपकिन से रिसाव को रोकने के लिए उसे

पॉलीप्रोपाइलीन में लपेटा जाता है जो जैविक क्रिया द्वारा नष्ट नहीं हो सकता. ये सारे 'सेनेटरी' उत्पाद अंततः समुद्रों में पहुंचते हैं, अमेरिका, ब्रिटेन तथा योरप के समुद्री तट इन उत्पादों से भरे पड़े हैं. जहां अमेरिकी हर वर्ष कोई 18 अरब नैपकिन इस तरह ठिकाने लगाते हैं वहीं ब्रिटेन भी 4 अरब नैपकिन समुद्र में विसर्जित करता है.

नैपकिनों में बच रहे विषाक्त रसायनों के अलावा उनमें लगे पॉली-प्रोपाइलीन तथा प्लास्टिक के अस्तर से सागर-जीवों का, जिनमें कछुए, व्हेल, जल-पक्षी तथा मछलियां शामिल हैं का जीवन भी खतरे में पड़ गया है. बी बी सी की वन्य-जीवन पत्रिका का अनुमान है कि प्रति वर्ष कोई 20 लाख समुद्री परिंदें तथा एक लाख समुद्री स्तनपायी प्लास्टिक खा जाने या उसमें फंस जाने के प्रत्यक्ष परिणामस्वरूप मर जाते हैं. दूसरी तरफ तैरने के शौकीन लोगों को इन्हीं के कारण लगातार टायफाइड तथा पोलियो जैसी बीमारियां होती हैं.

जमीन पर रहने वाले लोग भी इनके दुष्प्रभावों से नहीं बच पाते. बच्चों की साफ न हुई लंगोटें एक नए किस्म की समस्या खड़ी करती है. जो चीज़ सीधे सीवेज-लाइन (मल-नालियों) में पहुंचनी चाहिए वह अब लंगोटों में ही रख ली जाती है. कहा जाता है कि मानव-मल में कोई 100 से भी ज्यादा प्रकार के विभिन्न आंत्र-विषाणु, जिनमें पोलियो तथा पेचिश भी शामिल हैं, होते हैं. अमेरिका की सार्वजनिक स्वास्थ्य पत्रिका में प्रकाशित डॉ० मिजट्रा पीटरसन के एक अध्ययन से पता चला है कि ये विषाणु कचरे के गड्ढों में दो सप्ताह तक भी जीवित रह सकते हैं. अतः इन 'नैपियों' के कारण ये भूमिगत कूड़ादान तथा जल-प्रदाय प्रणालियां बड़ी आसानी से प्रदूषित हो सकती हैं.

सबसे नागवार बात तो यह है कि इन 'टॉवेलों' और 'नैपकिनों' को कीटाणु मुक्त नहीं किया जाता. मलेशिया, फ़िलीपींस तथा भारत में पाया गया कि इन देशों में बिकने वाले 'टॉवेलों' में जीवाणु तथा फंगस भारी मात्रा में मौजूद थे. कुछ नमूनों में तो प्रति आइटम 11,000 से भी ज्यादा जीवाणु पाए गए जो कि अनुमानित मात्रा से 10 गुना ज्यादा हैं. इनसे स्त्रियों को योनि-संक्रमण हो सकता है. आमतौर से महिलाएं लज्जावश ऐसे प्रकरण छुपा जाती हैं.

ब्लीच किए हुए तथा बिना 'स्टेरिलाइज' (कीटाणु मुक्त) किए हुए 'टॉवेलों' के खिलाफ आगाह करते हुए स्वीडन के डा० लेनार्ट हार्डेल कहते हैं: 'स्त्रियों की योनि की श्लेष्मा झिल्ली चूंकि पदार्थों को बड़ी तेजी से सोख लेती है टॉवेलों में मौजूद विषाक्त 'डायोक्सीन' बड़ी आसानी से शरीर में पहुंचकर गर्भाशय के कैंसर का कारण बन सकता है. स्त्रियां, जो कि इन खतरों से अनजान होती हैं, मात्र सुविधा की खातिर इन 'टॉवेलों' का उपयोग करती चली जाती हैं. कई अध्ययनों से पता चला है कि ये टैम्पून (फाहे) सबसे ज्यादा खतरनाक होते हैं क्योंकि ये शरीर से सटे रहते हैं. इनके साथ जो विषाक्तता व्याधि समूह (टॉक्सिक शॉक सिन्ड्रोम) जुड़ा हुआ है उसके कारण कई को इसका उपयोग बंद करना पड़ा लेकिन हमारे देश में उच्च वर्ग की महिलाओं में इसका उपयोग बढ़ रहा है.

मजे की बात तो यह है कि इनके उत्पादकों के लिए ऐसी कोई कानूनी बाध्यता नहीं है कि वे लोगों को बतलाएं कि ये उत्पाद बनते कैसे हैं. सूक्ष्म विवरण तो दूर एक बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनी के भारतीय भागीदार ने तो इस लेखिका को अपने बिक्री के आंकड़े बतलाने से भी इंकार कर दिया.

कई लोगों की धारणा के विपरीत 'नैपकिन' और 'टॉवेल' सिर्फ औरतों के 'विषय' नहीं रह गए हैं. ये अब एक गंभीर परिणामों वाला गंभीर पर्यावरणीय मुद्दा बन गए हैं. अनुमान है कि मात्र 500 फेंक दिए जाने वाले शिशुओं के लंगोट बनाने के लिए एक समूचे वृक्ष की ही बलि चढ़ानी पड़ती है. इनके उपयोग को त्यागने के लिए क्या यही एक कारण काफी नहीं? □

अब सुअर रक्तदाता बनेंगे?

□ अखिलेश कुमार सिंह

□ खून का रिश्ता बड़ा करीबी रिश्ता होता है. अगर कोई सुअर से आपका 'खून का रिश्ता' जोड़ने की कोशिश करे तो आपका क्रोध सीधे सातवें आसमान पर पहुंच जाएगा और यह हिमाकत करने वाला अगर आपसे कमजोर हुआ तो अपनी हड्डी-पसली तुड़वा बैठेगा. लेकिन चिकित्सा जगत की मजबूरियों को आप घूंसा नहीं मार सकते. उनका सामना करने के लिए वैज्ञानिक सुअर और आदमी के बीच 'खून का रिश्ता' जोड़ने की सोच रहे हैं.

किसी व्यक्ति के दुर्घटनाग्रस्त होने की स्थिति में कई बार इतना अधिक रक्तस्राव हो जाता है कि तत्काल खून

चढ़ाना जरूरी हो जाता है. इसी प्रकार बड़े आपरेशनों के दौरान भी रोगी को खून चढ़ाना पड़ता है. अस्पतालों के रक्त भंडारों में इतना खून नहीं होता कि उसे पर्याप्त कहा जा सके. तमाम कोशिशों और व्यवस्थाओं के बावजूद खून की कमी बनी ही रहती है.

मांग और आपूर्ति में अंतर के अलावा एक प्रमुख समस्या है संक्रमण की. नियमित रूप से खून बेचने वाले व्यक्तियों में से अनेक ऐसे रोगों से पीड़ित होते हैं जो खून के माध्यम से दूसरे व्यक्ति तक पहुंच सकते हैं. रक्त भंडारों में लापरवाही बरते जाने या व्यावसायिक लाभ के मद्देनजर नैतिकता को ताक पर रख देने की स्थिति में तो संक्रमित रक्त भंडार में पहुंच ही जाता है, अगर इस संबंध में पूरी सावधानी बरती जाए तो भी संक्रमित रक्त को भंडार में पहुंचने से बिल्कुल रोक पाना बहुत कठिन है. दुनिया में एड्स (एक्वायर्ड इम्यूनो डिफीसिएंसी सिंड्रोम) का जितनी तेजी से प्रसार हो रहा है उसे देखते हुए यह समस्या और जटिल हो गई है. रक्त के माध्यम से एड्स विषाणु एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुंच सकते हैं और अभी तक इस जानलेवा बीमारी का कोई कारगर उपचार नहीं ढूंढ़ा जा सका है. एड्स के व्यापक प्रसार के मद्देनजर संक्रमण रहित रक्त की व्यवस्था करना एक तात्कालिक जरूरत बन गई है.

वैज्ञानिक इन समस्याओं से निजात पाने के लिए सुअरों का इस्तेमाल करने के बारे में सोच रहे हैं. उनकी योजना है कि जरूरतमंद व्यक्तियों के शरीर में चढ़ाने के लिए आवश्यक खून किसी आदमी के शरीर से प्राप्त करने के बजाए सुअर के शरीर से प्राप्त किया जाए. लेकिन सुअर के खून को मनुष्य की शारीरिक प्रणाली स्वीकार कैसे करेगी? इसी बिंदु पर आनुवंशिक इंजीनियरों ने अपना करिश्मा दिखाया है. असल में आदमी के शरीर में चढ़ाने के लिए सुअरों से जो खून प्राप्त किया जाएगा वह सुअर का खून न होकर आदमी का ही खून होगा. सिर्फ उसका उत्पादन आदमी के बजाए सुअर के शरीर में किया जाएगा.

प्रिंस्टन, न्यूजर्सी स्थित एक अमेरिकी जैव प्रौद्योगिकी कंपनी—'डी०एन०एक्स०' ने ऐसे सुअरों का विकास किया है जिनकी रक्त वाहिनियों में मनुष्य जैसा रक्त प्रवाहित है. इस अनूठे लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कंपनी के वैज्ञानिकों ने आनुवंशिक इंजीनियरों की जादुई क्षमता की सहायता ली है. कंपनी के एक वैज्ञानिक डा० स्टेव होल्ट्जमैन के अनुसार सुअर के निषेचित अंडे में मनुष्य के रक्त में 'हीमोग्लोबिन' के उत्पादन के लिए अन्तरदायी जीन का प्रवेश करा कर यह लक्ष्य प्राप्त किया गया.

अंडे में जीन का प्रवेश कराने के बाद उसे पुनः मादा सुअर के गर्भाशय में स्थापित कर दिया गया. बाहर से प्रविष्ट कराए गए जीन के भ्रूण के विकास के दौरान स्वयं को उसकी सभी कोशिकाओं में स्थापित कर लिया और उसकी आनुवंशिक संरचना का स्थाई हिस्सा बन गया. भ्रूण के पूर्ण विकास के पश्चात् मादा सुअर ने जिस बच्चे को जन्म दिया उसकी रक्त वाहिकाओं में मनुष्य का रक्त प्रवाहित हो रहा था. 'डी०एन०एक्स०' ने ऐसे तीन सुअरों का उत्पादन करने में सफलता हासिल की है.

तकनीकों में सुधार लाकर सुअरों का एक पूरा ऐसा समूह तैयार किया जा सकता है जो अपनी आनुवंशिक संरचना में समाहित मनुष्य के 'जीन' को अपनी संतानों में स्थानांतरित करने में समर्थ हो. डा० होल्ट्जमैन का कहना है कि सुअर की रक्त वाहिकाओं में प्रवाहित यह 'मानव रक्त' अगर सुरक्षा की कठिन कसौटी पर खरा उतरता है तो पांच वर्षों के भीतर यह उपयोग के लिए उपलब्ध हो सकता है.

अगर मनुष्य के स्थान पर सुअरों को रक्तदाता बनाने का विचार मूर्त रूप लेता है तो रक्त एकत्र करने के सिलसिले में उनके साथ भी वही प्रक्रिया अपनाई जाएगी जो मनुष्यों के लिए अपनाई जाती है. यानी किसी रक्तदाता सुअर के शरीर से एक बार में एक या दो यूनिट खून निकाला जाएगा और दुबारा खून लेने से पहले उसे इसकी भरपाई करने के लिए लगभग छः सप्ताह की मोहलत दी जाएगी. ❑

नई सूचना तकनीक और आदमी की स्वतंत्रता

❑ हरीश अग्रवाल

❑ सारे संसार में कुछ ही सेकंड में सूचना या चित्र पहुंचने का एक उदाहरण देखिए. अमेरिका के 41 वें राष्ट्रपति ने शपथ-ग्रहण की तो उसका चित्र चालीस सेकंड में दुनिया के हर कोने में पहुंच गया. यह चित्र अमेरिका के एक हजार समाचार-पत्रों को तुरंत मिल गया. एसोसिएटेड प्रेस ने राष्ट्रपति के सामने बूथ से यह चित्र प्रेषित किया.

यह किसी सार्वजनिक स्थान से भेजा जाने वाला प्रथम चित्र था. चित्र एक चुम्बकीय फीते से टेलीफोन के जरिए भेजा गया. यह फीता एक इलेक्ट्रोनिक कैमरे में लगा था. कोई फिल्म बनाने या प्रोसेस करने की जरूरत नहीं पड़ी. समाचार-पत्रों ने हजारों मील दूर चित्र प्राप्त किया और छापेखानों में तैयार संस्करणों में इसे लिया. ए॰पी॰ के समाचार चित्र सहायक मैनेजर ने कहा—"हम अंकीय (डिजिटल) संसार की ओर बढ़ रहे हैं."

यह चित्र राष्ट्रपति बुश के शपथ-ग्रहण समारोह का था. अंकीयकरण तथा टेलीफोनी आई॰एस॰डी॰एन॰ के आने वाले युग के महत्वपूर्ण भाग हैं. महत्वपूर्ण बात यह है कि कैमरा जापान में बनाया गया था.

आई॰एस॰डी॰एन॰ का मतलब है—इंटीग्रेटेड सिस्टम्स आफ डिजिटल नेटवर्क्स. यह प्रणाली विश्वव्यापी नेटवर्क प्रणाली मुहैया कराएगी. इसमें छपाई, प्रसारण, चित्र, सूचनाएं, मार्केटिंग, बैंकिंग, विश्वकोशीय (एन्साइक्लोपीडिया) इलेक्ट्रोनिक डाक तथा अन्य सेवाएं शामिल होंगी. ये सब घर या कार्यालय में ही एक ही टर्मिनल पर उपलब्ध होंगी. ये एक फाइबर ऑप्टिक धागे पर टेलीफोन से जुड़ी होंगी.

अब सब इस नेटवर्क प्रणाली को आने वाली सूचना क्रांति कह रहे हैं. इससे आदमी की बुद्धि में वृद्धि होगी, कमी नहीं. हर जगह लोगों को अभाव से मुक्ति मिल जाएगी. अधिकारियों को आर्थिक तथा सामाजिक आपदाओं से छुटकारा पाने के लिए आई॰एस॰डी॰एन॰ स्थापित करनी होगी. सैनिक शक्ति स्थायित्व के लिए यह आवश्यक होगी लेकिन उसका स्थान सूचना शक्ति ले लेगी. यह सूचना शक्ति मानव शक्ति के सभी रूपों के लिए जरूरी समझी जाएगी.

समाचार-पत्र और पत्र-पत्रिकाएं (प्रेस) सूचनाएं लोगों तक या लोगों से प्रेषित करने के सभी रूपों का प्रतिनिधित्व करते हैं. 1990 के दशक में और अगली शताब्दी में संचार टेक्नोलॉजी हर जगह आदमी की स्वतंत्रता में वृद्धि करेगी. पृथ्वी पर लगभग हर पुरुष और नारी कुछ ही क्षणों में अन्य महाद्वीपों पर किसी से भी सम्पर्क स्थापित कर सकेंगे. हर कोई अपने घर या कार्यस्थल पर विभिन्न प्रकार की सूचनाएं प्राप्त कर सकेगा. ये सूचनाएं अपार हो सकती हैं, जितनी कि आज के सर्वोत्तम पुस्तकालय और सूचना एजेंसियां भी मुहैया नहीं कर पातीं. नई संचार तकनीकों से आदमी का मस्तिष्क अधिक स्पष्ट रूप से सोचने को प्रेरित होगा, वह नई संभावनाओं की परीक्षा कर सकेगा और विचार खोज की प्रक्रिया से प्रेरणा प्राप्त कर सकेगा. इन सबमें राजनीतिक प्रतिबंध हो सकते हैं, लेकिन सबके लिए उपलब्ध संचार-प्रणाली प्रौद्योगिकी इतनी शक्तिशाली हो जाएगी कि यह राजनीतिक प्रतिबंध पर भी हावी हो जाएगी.

'सूचना शक्ति' के सामान्य यंत्र टेलीफोन व टेलीफेक्स, कंप्यूटर तथा इसके मूल्यवान टर्मिनल, टेलीविजन और वी॰सी॰आर॰, रेडियो, रिकार्डर और कापियर तथा फाइबर ऑप्टिक तार तथा उपग्रह डिश हैं. इन यंत्रों को मिला दें तो चमत्कार होता है. लंदन में तेज रफ्तार वाला कंप्यूटर उपग्रह टेलीफोन से दूर जुड़ा हो, तो दूर मनीला में लायब्रेरी ऑफ कांग्रेस (अमेरिका में) से किसी हस्तलिपि को प्राप्त किया जा सकता है. उस विशाल पुस्तकालय की सभी पुस्तकें एक कंप्यूटर में संग्रहीत की जा सकती हैं और इस कंप्यूटर का आकार किसी घरेलू रेफ्रीजरेटर से बड़ा नहीं होगा.

पत्रकारिता भी एक कठिन व्यवसाय है. ये अनेक उन कारणों से कठिन है जो हमने बनाए हैं. फिर भी यह एक व्यवसाय ही है. इसके सामने अन्य किसी भी व्यवसाय जैसी समस्याएं आती हैं जैसे हाट अर्थ व्यवस्था में लाभ के लिए प्रतियोगिता. लेकिन पत्रकारिता कुछ अर्थों में अन्य व्यवसायों से अलग है. यह एक कर्तव्य भी है. अन्य व्यवसायों में ऐसी बात नहीं है. पत्रकारिता सारे राष्ट्र को समुचित रूप से चलाने के लिए बहुत जरूरी है. शायद इतनी अधिक कार्यकुशलता, उत्पादकता तथा निष्पक्षता की जरूरत इस्पात संयंत्रों, हवाई कंपनियों, स्वास्थ्य सेवाओं तथा पुलिस बलों को संयुक्त रूप से भी नहीं होती.

पत्रकारिता एक ऐसा बंधन है जो समाज के सभी पहलुओं को एक दूसरे से बांध कर रखती है. टॉमस कारलाइल ने सौ वर्ष पूर्व ठीक ही कहा था—"साहित्य हमारा पार्लियामेंट भी है. छपाई आवश्यक रूप से लेखन से ही आती है और मेरी राय में यह जनतंत्र के बराबर है. लेखक का आविष्कार करो, जनतंत्र अवश्यम्भावी है."

कारलाइल के लिए छपाई जनतंत्रीकरण के समान थी. लेकिन उनके युग की तरह हमारे युग में भी, राज्य या कार्पोरेट एकाधिकार, आत्म-हित, एकपक्षीय कार्रवाई या निर्मम व्यापारीकरण सच्चाई को ताक पर रखकर बरती गई हैं. इसके कारण प्रेस की पूरी क्षमताओं का

लाभ नहीं उठाया गया है. लेकिन आई०एस०डी०एन० के युग के लिए भविष्य मुक्ति से भरा है. कारलाइल के शब्दों में—आइ०एस०डी०एन० का आविष्कार करो, जनतंत्र अवश्यम्भावी है.

अब हमारे सामने तीसरा अवसर आ रहा है. मार्शल मैकलुहन कहते हैं—''प्रिंट टेक्नोलॉजी से समस्या पैदा हुई—व्यक्तियों ने अपनी इच्छा और पसंद से पढ़ा.'' लेकिन विद्युत टेक्नोलॉजी से जनसमूह तैयार हुआ. व्यक्तियों की व्यक्तिगत क्षमता समाप्त हो गई और ब्रॉडकास्ट टेक्नोलोजी ने 'श्रोतागण' तैयार कर दिए. संजालों के संजाल, अर्थात आई०एस०डी०एन० युग में व्यक्तिगत चयन ही प्रमुख रहेगा. सभी प्रकार के विषय, विभिन्न रूपों में, एक कुंजीपटल दबाते ही आपके सामने होंगे.

आई०एस०डी०एन० का आविष्कार कीजिए, जनतंत्र अवश्यम्भावी है. बशर्ते इसके लिए राजनीतिक इच्छा हो तथा सूचना शक्ति की साझेदारी. फ्रांस के प्रधानमंत्री बनने से पहले शिराक ने कहा था ''सबसे अच्छे प्रेस कानून को एक ही वाक्य में कत्ल किया जा सकता है: प्रेस स्वतंत्र रहेगा.'' फिर उन्होंने कहा, ''यह बात आपको उस समय सार्वजनिक रूप से कहनी चाहिए जब आप सत्ता में न हों. अन्यथा जब आप सत्ता में आ जाएं तो कुछ भिन्न तरीका अपनाने का मोह आ जाता है.''

शिराक ने यह बात सार्वजनिक रूप से कभी नहीं कही. हर राजनीतिज्ञ की तरह, एक बार सत्ता में आने पर वे अपनी ही नेक सलाह पर नहीं चल सके.

मेक्सिको में प्रेस सरकारी आधिपत्य में है. वहां एक अखबार 'अल नोर्टे' पाठकों को सदा सनसनीखेज खबरें देता है क्योंकि यह स्वतंत्र है. यह भ्रष्टाचार की खबरें देता है और कहता है गत 15 साल में 35 मेक्सिकन पत्रकार मारे गए हैं. 1988 में 19 देशों में 38 पत्रकार मारे गए क्योंकि वे खबरें देने या खबरों पर टिप्पणी करते थे. अट्ठाईस और पत्रकारों को गोली मारी गई और 14 पत्रकारों का अपहरण किया गया, 225 को गिरफ्तार किया गया, 428 को तंग किया गया और 24 को देश निकाला दिया गया. कोई 40 अखबार और रेडियो स्टेशन बंद कर दिए गए. तेंतालीस पत्रकारों को मौत की धमकी दी गई तथा 40 की पिटाई की गई. आठ अखबारों व रेडियो प्रतिष्ठानों को आग लगाई गई या उन पर बम फेंके गए. यह सब 1988 में हुआ.

ये 'पत्रकारिता मौतों' को आंकड़े हैं, जिन्हें कुछ वर्ष से अमेरिका में फ्रीडम हाउस रखता आया है. सूचना तथा समाचारों के वाहकों पर इतने आतंकवाद का काफी गहरा प्रभाव पड़ता है. अधिसंख्य मामलों में सरकारें किसी न किसी रूप में इन हमलों के लिए उत्तरदायी होती हैं. कुछ स्थानों में विद्रोही आंदोलन या नशीली वस्तुओं के तस्कर हमलावर होते हैं. लेकिन वे चाहे कोई हो पीड़ितों में पत्रकार ही नहीं बल्कि स्वयं जनता भी होती है.

लेकिन विभिन्न सूचना वितरण प्रणालियों से जो इस समय बन रही हैं, किसी एक रिपोर्टर या ट्रांसमीटर पर हमले खत्म होने चाहिएं. वस्तुतः भावी संजाल सभी प्रकार की सूचनाएं तुरंत उपलब्ध कराएंगे. इनके पास सूचनाओं का अंबार होगा. ये 'विकास समाचार' रखेंगे जो इस समय बड़ी विश्वव्यापी समाचार सेवाएं मुहैया नहीं करती. इसकी आलोचना 100 देश तथा यूनेस्को कर चुके हैं.

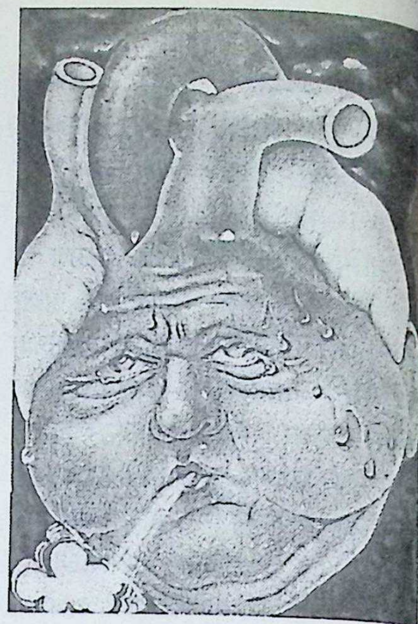
आई०एस०डी०एन० दूरदर्शन के पर्दों तथा कंप्यूटर कुंजीपटलों का इस्तेमाल करेगा, लेकिन जिस तरह के दूरदर्शन को आज हम जानते हैं, वह दृश्य उत्पादों का छोटा-सा ही अंश होगा. संजालों का संजाल हर प्रकार की पुरानी व नई सूचनाएं, साहित्य, कला, संगीत, कविता हर भूमि व संस्कृति से देगा. वह मूलभूत गणितीय व भौतिक सिद्धांत तथा प्रक्रियाएं, वास्तुकला व टेक्नोलॉजी सिद्धांत व मॉडल, अनेक भौतिक व सामाजिक विज्ञानों की प्रगति तथा अनगिनत अन्य सूचना-प्रसार मुहैया कराएगा. सूचनाओं का बहाव सभी दिशाओं से सभी दिशाओं की ओर होगा, महाद्वीप से महाद्वीप को होगा. यह एक ऐसी क्रांति होगी जिसमें किसी का कोई नुकसान नहीं होने वाला.

गरीब दुनिया के विकास में नागरिकों की दूरसंचार नेटवर्कों में भागीदारी बहुत जरूरी है. इसके लिए इन तक उनकी पहुंच होनी चाहिए. आई०एस०डी०एन० संपर्क विकासशील देशों के नागरिकों के लिए संचार प्रक्रिया पर प्रभाव डालने में उन्हें समर्थ बना देगा. वे सामान्य टेलीफोन लाइनों से जुड़े इलेक्ट्रोनिक टर्मिनलों के द्वारा गांवों, कस्बों तक पहुंच सकेंगे. अंतरराष्ट्रीय दूरसंचार महासंघ (आई०टी०यू०) इस बात के लिए वचनबद्ध है कि अगली शताब्दी के आरंभिक वर्षों में पृथ्वी का हर नागरिक टेलीफोन तक अपनी पहुंच रख सके. गांवों के लिए सामुदायिक टेलीफोन भी हो सकते हैं.. इनके साथ बहुसेवीय सूचना टर्मिनल जोड़े जा सकते हैं. वहां समाचार-पत्र व रेडियो, पत्रकार तथा सूचना विशेषज्ञ सर्वप्रथम अपने समाचार भेज सकते हैं. □

विश्व स्वास्थ्य दिवस (7 अप्रेल) पर

दिल की धड़कन पर स्वास्थ्य की लय

❑ राजेन्द्र कुमार राय

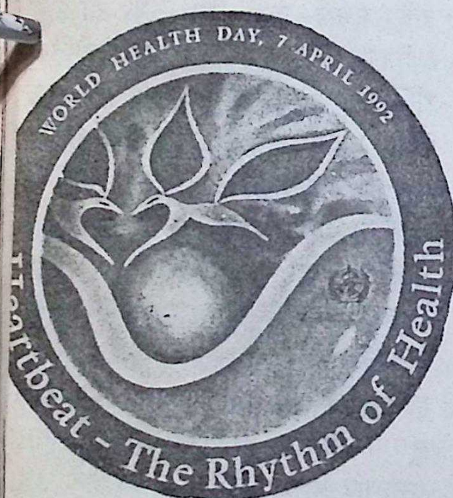


भागती दौड़ती जिंदगी, बढ़ता तनाव, प्रदूषण और कई अच्छी-बुरी आदतों के कारण आज स्वास्थ्य की परेशानियां बढ़ती जा रही हैं. तनाव और चिंता हमारे जीवन का एक अंग बन गए हैं और इनसे उपजे हैं अनेक रोग. चिंता, तनाव, आसपास के माहौल, खान-पान और हमारे बदलते रहन-सहन ने सबसे अधिक प्रभावित किया है हमारे दिल को. इसलिए दिल संबंधी बीमारियों की संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है. विकसित और विकासशील देशों के अमीर व गरीब दोनों को दिल का रोग समान रूप से शिकार बना रहा है. दुनिया भर का ध्यान इस ओर खींचने के लिए 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' ने इस वर्ष 'विश्व स्वास्थ्य दिवस' (7 अप्रैल) पर 'दिल' ही को मुख्य विषय चुना है.

❑ दिल के सभी रहस्य उसकी निरंतर होती धड़कन में समाए रहते हैं. और यह मांसल पिंड छाती के बीच में स्थित रहता है. यह छाती के बीचोंबीच होता है. पुरुषों में इसका वजन लगभग 340 ग्राम होता है, महिलाओं में थोड़ा कम होता है. शरीर में इसका काम है, दो अलग-अलग संचार व्यवस्था में रक्त को प्रभावित करना. पहला रक्त संचार शरीर की विभिन्न धमनियों में किया जाता है. रक्त संचार से विभिन्न अंगों और कोषों को आक्सीजन और खुराक पहुंचती है. फिर रक्त शिराओं के माध्यम से दिल तक पहुंच जाता है. तब तक रक्त की सारी आक्सीजन शरीर के विभिन्न अंग काम में ले चुके होते हैं. और अंत में दूषित रक्त शिराओं द्वारा दिल में वापस आ जाता है. फिर दिल रक्त को दूसरे अंगों में प्रसारित करता है.

यूं तो व्यक्तियों, शायरों, कवियों और दार्शनिकों की दृष्टि में दिल, प्यार और श्रद्धा का केंद्र रहा है. लेकिन चिकित्सकों की नजर में यह सामान्य मांसपेशियों से बना एक अवयव है. दिल की तुलना एक बैंक कर्मचारी से की जा सकती है, जो लाखों का लेन-देन करता है, लेकिन निर्भर उसे अपनी तनख्वाह पर ही रहना पड़ता है. यही हालत दिल की है. चौबीस घंटे रक्त से भरा तो रहता है, लेकिन इसे ऊर्जा मिलती है दो छोटी धमनियों से, जिन्हें कारोनरी आर्टीज कहते हैं.

एक वर्ष में दिल छः लाख पचास हजार गैलन रक्त प्रसारित करता है. यह रक्त संचार शरीर में बारह हजार मील के रक्त मार्गों में होता है. यह बारह घंटों में इतनी ऊर्जा का इस्तेमाल करता है जो पैंसठ टन वजन को हवा में एक फुट ऊंचा उठाने के लिए पर्याप्त होती है.



इस वर्ष का प्रतीक-चिन्ह

ग्राम शिल्प

अप्रैल 1992

2 रुपए

बायोगैस से इंजन चलाइए

बहुकीमती ईंधन बचाइए

धान काटने की नई व सस्ती मशीन

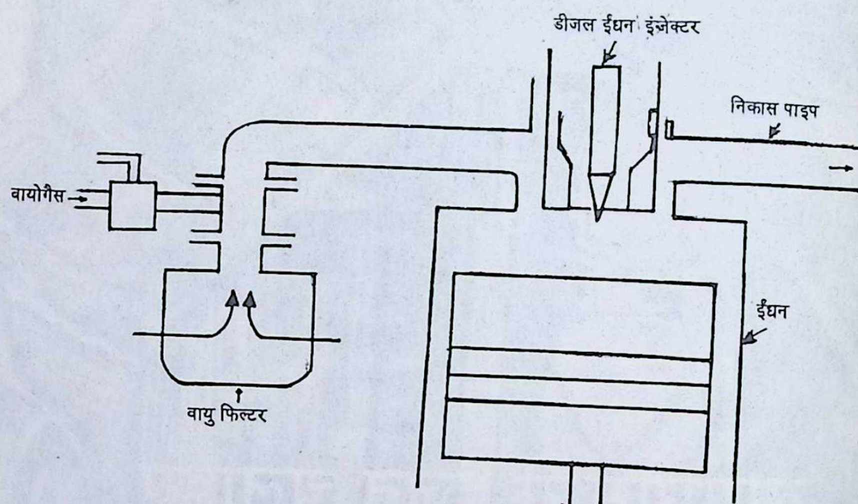
बायो गैस से इंजन चलाइए बहुकीमती ईंधन बचाइए

□ वीरेन्द्र कुमार विजय

□ डीजल पेट्रोल व प्राकृतिक गैस जैसे ऊर्जा स्रोत हमारे दैनिक जीवन में ऐसे समाहित हो गए हैं कि उनके पृथ्वी पर समाप्त होने की कल्पना करने पर हमें लगता है कि इनके बिना हमारा जीवन दूभर हो जाएगा. इस शताब्दी में जैसे-जैसे विज्ञान ने उन्नति की है हमारा पैट्रोलियम ईंधनों पर आश्रय बढ़ता गया है और उसी के अनुरूप में इनका दोहन अधिक से अधिक होता है. वैज्ञानिकों ने चेतावनी दी है कि यदि पैट्रोलियम ईंधनों का उपयोग इसी दर से होता रहा तो अगले कुछ ही दशकों में इनके भण्डार समाप्त हो जाएंगे और इससे पर्यावरण को गम्भीर खतरा पैदा हो जाएगा. अतः इन ऊर्जा स्रोतों का अभी से ही विकल्प निकालना जरूरी है.

परिवहन, कृषि व उद्योग धंधों जैसे क्षेत्र डीजल-पेट्रोल से चलने वाले इंजनों पर बहुत अधिक निर्भर करते हैं. एक अनुमान के अनुसार यदि भारत में कृषि कार्यों में डीजल की खपत वर्तमान दर से ही होती रही तो सन् 2000 तक यह 71 लाख टन प्रतिवर्ष पहुंच जाएगी. हमारे देश के पास जो विदेशी मुद्रा का भण्डार है वह बहुत ही सीमित है. हम और अधिक पैट्रोलियम ईंधन खरीदने की स्थिति में नहीं है जबकि मांग लगातार बढ़ रही है. डीजल, पेट्रोल बचाने के लिए इन इंजनों को चलाने में बायोगैस महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है. बायोगैस से पेट्रोल इंजन में शत-प्रतिशत पेट्रोल की तथा डीजल इंजन में लगभग 80 प्रतिशत डीजल की बचत होती है. इसका महत्व इसलिए और भी अधिक है कि बायोगैस से पर्यावरण प्रदूषण का खतरा भी कम है.

बायोगैस जिसे गोबर गैस भी कहते हैं बहुत ही सुगम तरीके से पशुओं के गोबर, मल-मूत्र व अन्य जैविक पदार्थों को वायु की अनुपस्थिति में सड़ाने से प्राप्त होती है. बायोगैस में मुख्य रूप से मीथेन गैस (लगभग 60 प्रतिशत), कार्बन डाइआक्साइड (लगभग 40 प्रतिशत) तथा अल्प मात्रा में वाष्प व हाइड्रोजन-सल्फाइड होती है. बायोगैस में मीथेन के कारण ही यह ईंधन के रूप में



चित्र–1 डीजल इंजन को बायोगैस से चलाने के लिए आवश्यक परिवर्तन

सारणी-1. एक घन मीटर बायोगैस की अन्य ईंधनों से तुलना

बायोगैस		अन्य ईंधन
एक घन मीटर -	केरोसीन	0.62 लीटर
	जलाऊ लकड़ी	3.47 किलोग्राम
	गोबर उपले	12.03 किलोग्राम
	कोयला	1.45 किलोग्राम
	बिजली	4.69 किलो वाट आवर

सारणी-2. कार्य एवं गैस की खपत

कार्य	इकाई	गैस की खपत मात्रा (घन मीटर में)
1. खाना बनाना	प्रति व्यक्ति प्रतिदिन	0.24
2. रोशनी	100 कैण्डल पावर प्रति घण्टा	0.13
3. डीजल इंजन में	80 प्रतिशत डीजल की बचत प्रति अश्वशक्ति	0.50
4. बिजली	एक किलो वाट आवर	0.21

काम में लाई जाती है. बायोगैस का उपयोग खाना पकाने, रोशनी करने व इंजन चलाने में किया जाता है. लगभग 25 किलोग्राम गोबर से एक घन मीटर बायोगैस प्राप्त होती है. बायोगैस की उष्मा क्षमता 4700 किलो कैलोरी प्रति घन मीटर होती है. सारणी-1 में बायोगैस की अन्य ईंधनों की मात्रा से तुलना की गई है.

इंजन ईंधन के रूप में बायोगैस की गुणवत्ता

बायोगैस में उपलब्ध मीथेन गैस ही ईंधन का कार्य करती है जबकि कार्बन डाइआक्साइड अक्रियाशील रहती है. बायोगैस में से कार्बन डाइआक्साइड को निकाल कर इंजन में काम में लेने से दक्षता बढ़ जाती है. गोबर से प्राप्त बायोगैस में हाइड्रोजन सल्फाइड गैस की मात्रा अत्यल्प होती है, अतः इसे हटाने की आवश्यकता नहीं रहती. यदि बायोगैस में हाइड्रोजन सल्फाइड की मात्रा एक प्रतिशत से अधिक हो तो यह इंजन के अन्दर जंग पैदा कर देती है. अतः इसे बायोगैस में से हटाकर काम में लेना चाहिए. हाइड्रोजन सल्फाइड को लोहे के टुकड़ों में से गुजार कर शोषित किया जाता है. जब बायोगैस को किसी टंकी वगैरह में इकट्ठा करके काम में लेते हैं तो इसमें उपस्थित नमी हट जाती है, परन्तु गैस जब सीधे ही बायोगैस संयंत्र में काम में ली जाती है तो नमी को हटाना आवश्यक है. इस नमी (पानी की वाष्प) को या तो संघनित कर या केल्शियम आक्साइड में से गुजार कर अब शोषित किया जाता है. डीजल इंजन को बायोगैस पर चलाकर एक शोध कार्य किया गया जिसमें यह पाया गया कि इंजन को सुचारू रूप से चलाने के लिए बायोगैस में करीब 20 प्रतिशत कार्बन डाइआक्साइड होनी चाहिए. कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा इससे अधिक होने से इंजन की कार्यक्षमता प्रभावित होती है.

हमारे देश में कृषि कार्यों के लिए साधारणतया डीजल इंजन उपयोग में लाया जाता है. बायोगैस डीजल व पेट्रोल दोनों प्रकार के इंजनों को चलाने में समर्थ है. पेट्रोल इंजन में तो बायोगैस 100 प्रतिशत पेट्रोल बचा सकती है, परन्तु डीजल इंजन में बायोगैस के साथ-साथ थोड़ी मात्रा में डीजल की भी जरूरत पड़ती है. डीजल इंजन में जब इंजन का कम्प्रेशन स्ट्रोक पूरा होता है तो सिलिण्डर को बायोगैस का अपने आप दहन नहीं हो पाता एवं दहन के लिए थोड़ी मात्रा में डीजल छिड़कना पड़ता है. दहन इस प्रकार होता है जिससे शक्ति मिलती है. प्रयोगों में पाया गया है कि बायोगैस द्वारा अधिकतम 80 प्रतिशत तक डीजल की बचत हो सकती है यानि की कुल आवश्यकता का केवल 20 प्रतिशत डीजल ही खर्च होता है.

एक अध्ययन में विभिन्न आकार के बायोगैस संयंत्रों से 5 अश्वशक्ति का डीजल इंजन चलाया गया. इससे डीजल में हुई बचत को सारणी-3 में दर्शाया गया है. इस अध्ययन से ज्ञात होता है कि बायोगैस से बड़ी मात्रा में डीजल की बचत की जा सकती है.

डीजल इंजन को बायोगैस से चलाने के लिए आवश्यक सुधार

आजकल बाजार में बायोगैस इंजन के नाम से इंजन मिलते हैं जो बायोगैस व डीजल से चलते हैं. डीजल इंजन को भी थोड़ा सा परिवर्तित कर बायोगैस से चलाया जा सकता है. डीजल इंजन को बायोगैस से चलाने के लिए इसके

सारणी-3. 5 अश्वशक्ति ईंधनी इंजन को बायोगैस से चलाने में डीजल में हुई बचत

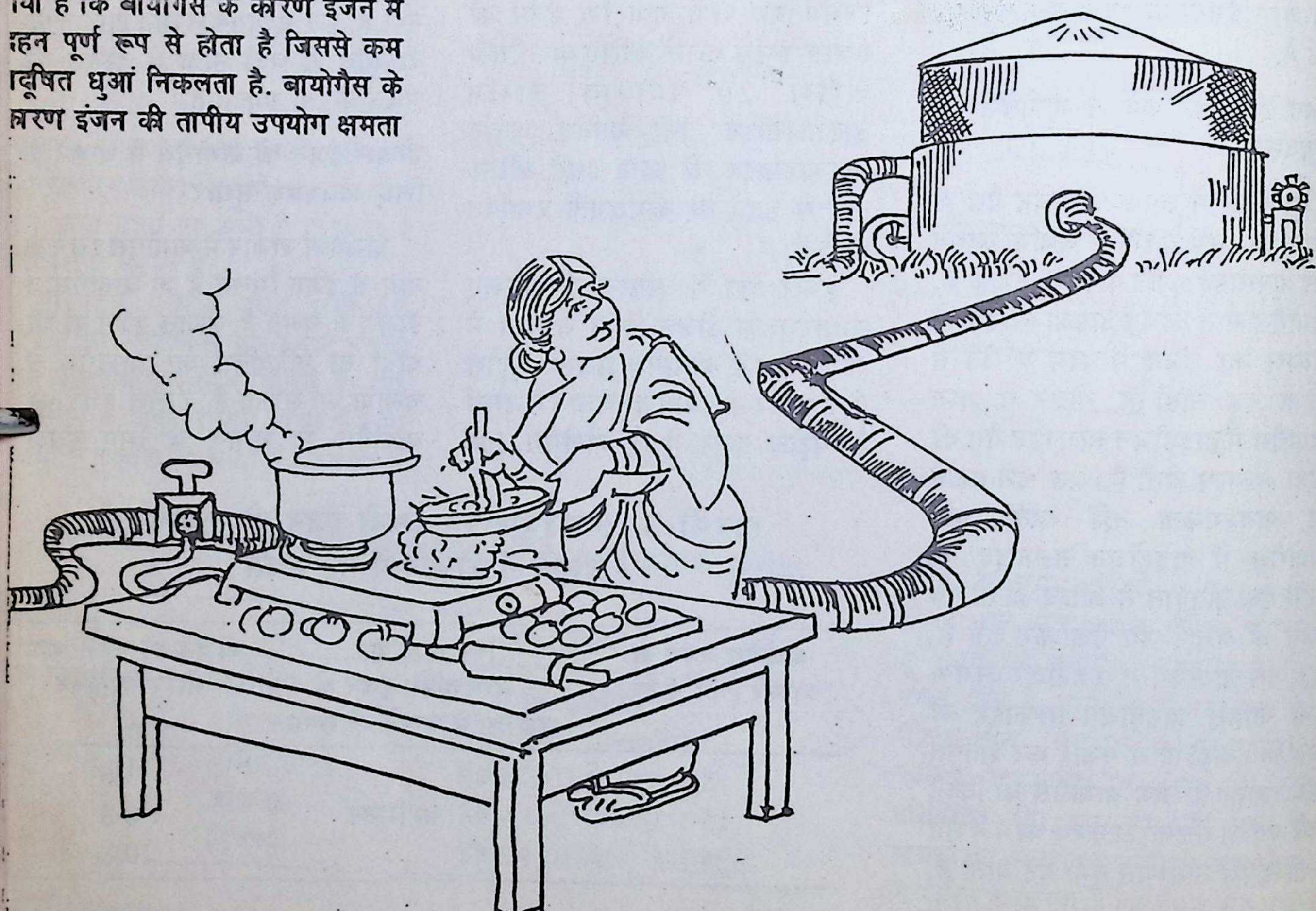
बायोगैस संयंत्र का आकार (घन मीटर)	दिन में दो बार 5 अश्वशक्ति इंजन को बायोगैस से चलाने का समय	डीजल की बचत मात्रा लीटर/प्रतिदिन
8	4 घंटे	3.6
15	6 घंटे 30 मिनट	6.8
25	12 घंटे	10.8

'इनलेट मेनीफोल्ड' जहां से हवा अन्दर जाती है, के साथ बायोगैस भी जाने का प्रावधान बनाया जाता है. इसमें से बायोगैस व हवा दोनों मिलकर अन्दर इंजन सिलिण्डर में जाते हैं. इंजन का गति संचालक इंजन में डीजल की मात्रा का नियंत्रण करता है. इन इंजनों में यह लाभ भी है कि जब बायोगैस उपलब्ध नहीं होती तो इंजन अपने आप पूर्ण डीजल पर काम करना शुरू कर देते हैं. अतः गैस के नहीं होने की स्थिति में भी काम करने में कोई व्यवधान नहीं होता.

बायोगैस के उपयोग से प्रदूषण में कमी

बायोगैस को पेट्रोलियम ईंधनों की जगह काम में लाने से वायुमण्डल में प्रदूषण कम किया जा सकता है. यह पाया गया है कि बायोगैस के कारण इंजन में दहन पूर्ण रूप से होता है जिससे कम प्रदूषित धुआं निकलता है. बायोगैस के कारण इंजन की तापीय उपयोग क्षमता भी बढ़ जाती है. किर्लोस्कर इंजन लिमिटेड द्वारा दिए गए आंकड़ों के अनुसार जब इंजन पूरी तरह डीजल पर चलता है तो उसके द्वारा छोड़े गए धुएं की सघनता 1.5 बोश्च इकाई होती है जबकि बायोगैस द्वारा चालित इंजन द्वारा छोड़े गए धुएं की सघनता 0.5 बोश्च इकाई होती है. आर्टिज (1981) ने डीजल इंजन को लम्बे समय तक बायोगैस पर चलाने के बाद पाया कि डीजल इंजन में बायोगैस के उपयोग से इंजन की आयु में वृद्धि होती है.

सिंचाई, थ्रेशिंग व कुट्टी काटने आदि कार्यों में आने वाले इंजनों को बायोगैस से आसानी से चलाया जा सकता है. एक आकलन के अनुसार देश में उपलब्ध लगभग 25 करोड़ जानवरों से प्रतिवर्ष 57.5 करोड़ टन गोबर प्राप्त होता है. यदि इसका 66 प्रतिशत एकत्रित कर सकें तो भी उससे प्राप्त होने वाली गैस की मात्रा 2242.5 करोड़ घन मीटर प्रतिवर्ष होगी जो 1.166 करोड़ टन डीजल के बराबर होगी. इससे स्पष्ट है कि बायोगैस का उपयोग करने से बहुत बड़ी मात्रा में डीजल पर खर्च होने वाली विदेशी मुद्रा को बचा कर इस क्षेत्र में आत्मनिर्भर हो सकते हैं. पर्यावरण सुरक्षा का जो लाभ होगा वह इससे अतिरिक्त होगा. □



धान कूटने की नई व सस्ती मशीन

□ एम०एम०एस० कार्की

□ चावल दुनिया की लगभग आधी आबादी का मुख्य आहार है. यह मुख्यतया म्यानमार (वर्मा), चीन, भारत, इंडोनेशिया, जापान, पाकिस्तान तथा कुछ अन्य एशियाई देशों में खाया जाता है. चावल उगाने वाले देशों में भारत का दूसरा स्थान है. वर्ष 1988-89 में भारत का अनुमानित चावल उत्पादन 9.3 करोड़ टन था.

आवरण सहित चावल का बीज धान कहलाता है. इन बीजों को पके हुए धान की बालियों से अलग किया जाता है.

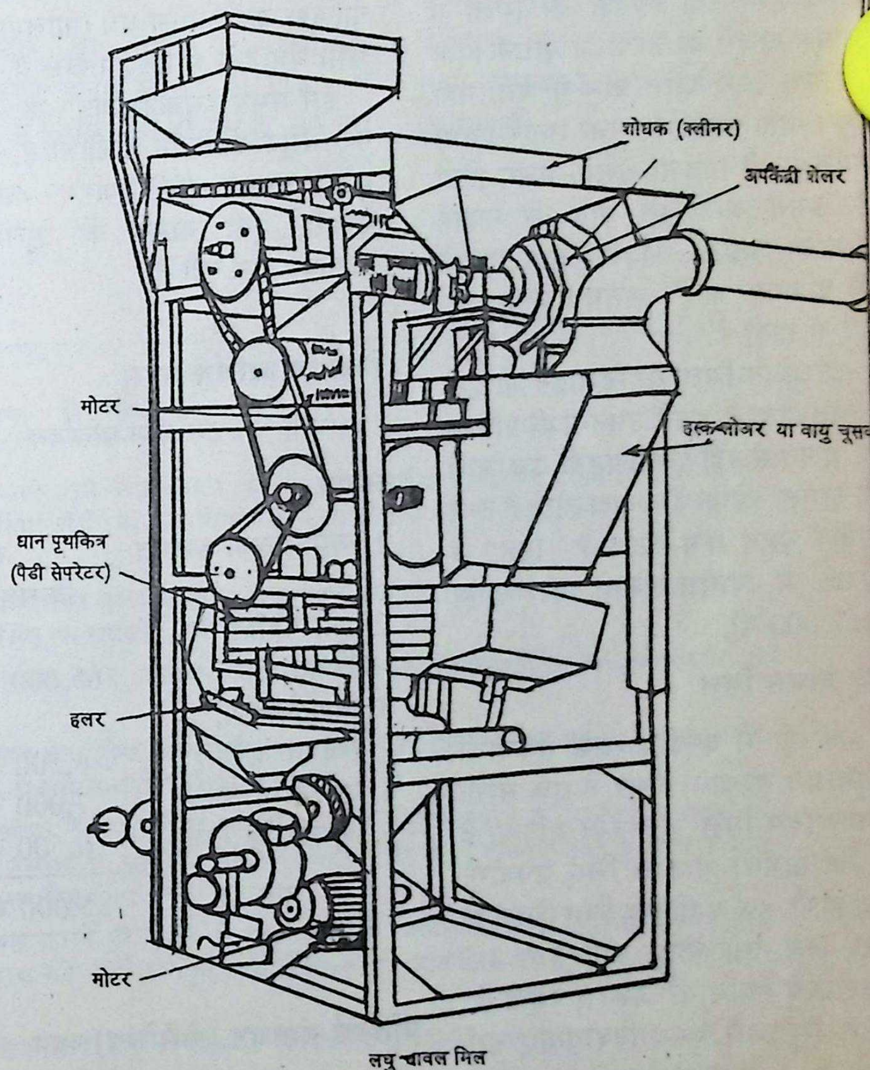
धान से चावल निकालने के लिए उनकी कुटाई अथवा 'मिलिंग' की जाती है. मिलिंग का उद्देश्य गूदे से भूसा तथा गूदे या चावल की पालिश, जिसे 'ब्रान' कहते हैं, अलग करना है. इस प्रक्रिया में चावल के दाने का 'जर्म' भी जो दाने पर हल्के से लगा रहता है, इससे अलग हो जाता है. इस प्रकार प्राप्त चावल का सफेद दाना अच्छा पकने के अलावा अधिक समय तक भंडारित भी किया जा सकता है. लेकिन उसके कुछ पोषक तत्व जैसे प्रोटीन लवण तथा विटामिन 'बी' ब्रान व जर्म के साथ निकल जाते हैं. इसलिए आजकल सावधानी से धान की कुटाई पर जोर दिया जा रहा है. भारत सरकार ने भी चावल पर पालिश की सीमा 3-5 प्रतिशत निर्धारित कर दी है.

प्राचीन काल से भारत में धान की कुटाई मूसल व ओखली से होती आ रही है इस विधि को 'हैंड पाउडिंग' कहते हैं. अभी भी बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश तथा केरल में यह विधि प्रचलित है.

हैंड पाउडिंग के अतिरिक्त भारत में धान की कुटाई अधिकतर 'हलर' तथा स्वचालित 'शेलर' से की जाती है, ये दोनों मशीनें देश में ही बनती हैं.

हलर मिल 'हैंडपाउडर' का ही सुधरा व विकसित रूप है जिन्हें अभी भी छोटे कस्बों व दूर-दराज के गांवों में इस्तेमाल किया जाता है. ये सरल व सस्ती मशीनें हैं जिनमें छिलके उतारना तथा पालिश की प्रक्रिया एक साथ होती है. हलर में या हैंडपाउडिंग में चावल अधिक टूट जाता है. ज्यादा चोट या रगड़ से ब्रान भी अधिक निकल जाता है.

हमारे देश में लगभग 4.5 करोड़ टन धान मशीनों द्वारा कूटा जाता है, जिसमें से केवल 10 से 15 प्रतिशत बड़ी व आधुनिक मशीनों द्वारा कूटा जाता है. बाकी 'हलर' द्वारा कूटा जाता है. 1987 में देश में हलरों की संख्या 7,83,000 थी. 'हलर' कम क्षमता वाली मशीन है.



लघु चावल मिल

इसमें साबुत चावल का उत्पादन 2 से 5 प्रतिशत कम होता है. इसमें पालिशिंग में कोई नियंत्रण नहीं है तथा ब्रान में भूसे की मिलावट आ जाती है.

चावल की अच्छी कुटाई का अर्थ है साबुत चावलों का अधिक उत्पादन. इसके लिए 'मिलिंग' पर नियंत्रण आवश्यक है. अच्छी 'मिलिंग' की प्राप्ति के लिए चावलों को पहले उसनना (पार बायल) भी किया जाता है. इस प्रक्रिया में धान को पानी में भिगोया जाता है फिर उन पर भाप भेजी जाती है उसके बाद उन्हें सुखाया जाता है. इस प्रकार चावल सख्त हो जाते हैं और 'मिलिंग' में टूटते नहीं हैं.

'शेलर' तथा चावल की मिलों में साबुत चावल का उत्पादन अधिक होता है तथा इनसे प्राप्त ब्रान में भूसा नहीं मिल पाता क्योंकि छिलका उतारने तथा पालिश की प्रक्रिया अलग-अलग होती है. इसके अतिरिक्त धान की सफाई छिलका उतारने, पालिश तथा सुखाने की प्रक्रियाएं अलग-अलग व स्वचालित ढंग से होती हैं.

आधुनिक मिलों का डिजाइन और भी उन्नत होता है. इनमें उसनना की प्रक्रिया भी अलग से नहीं करनी पड़ती. इन मिलों की क्षमता भी काफी ज्यादा होती है तथा चावल बहुत कम टूटता है. 1987 में भारत में चावल मिलों की संख्या ,17,000 थी.

लघु चावल मिल

हाल ही में केन्द्रीय खाद्य तकनीकी अनुसंधान संस्थान, मैसूर ने एक सस्ती लघु चावल मिल' का विकास किया है जो कि ग्रामीण क्षेत्रों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी. इस मशीन के लिए केवल दो मीटर लंबे, एक मीटर चौड़े तथा 3.5 मीटर ऊंचे स्थान की जरूरत पड़ती है.

इस मिल की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं : 1. धान की किस्मों के अनुसार दो से चार प्रतिशत चावल का अधिक उत्पादन; 2. शुद्ध ब्रान का उत्पादन जिसे सीधे खाद्य तेल निकालने के उपयोग में लाया जा सके; 3. निर्यात्रत पालिशिंग; और 4. मिल की 500 किलोग्राम प्रति घंटा धान कूटने की क्षमता, जो कि लघु उद्योग के रूप में ग्रामीण क्षेत्रों के लिए उपयोगी है.

इस प्रकार इस मिल में आधुनिक चावल मिलों की सभी विशेषताएं पाई जाती हैं और इससे हलर की सभी कमियां दूर कर दी गई हैं.

इस मशीन के मुख्य घटक हैं : 1. धान साफ करने वाला यंत्र, 2. छिलका उतारने का यंत्र, 3. चावल व छिलका पृथक करने वाला यंत्र (सेपरेटर) व 4. पालिश करने वाला यंत्र (पालिशर). ये सभी यंत्र देश में ही उपलब्ध हैं.

इस समय इसके डिजाइन के आधार पर मैसूर प्रीसिजन इंजीनियर्स, मैसूर तथा जनरल इंजीनियरिंग कम्पनी, उदीपी, ऐसी चावल की मिलों का उत्पादन कर रही है.

मिल का आर्थिक पहलू

क्षमता : 4 टन धान प्रतिदिन

लागत

1. जमीन तथा इमारत	स्वयं किराए पर
2. पूरी मशीन की कीमत	65,000 रु०
3. विद्युतीकरण, स्थापन आदि	6,500 रु०
4. कर बीमा आदि	7,000 रु०
5. आकस्मिक खर्चे	6,500 रु०
योग	85,000 रु०

प्रतिवर्ष संसाधन (प्रोसेसिंग) व्यय

75 प्रतिशत की दर पर मशीन की क्षमता का उपयोग होने पर जिसमें 100 टन धान प्रतिवर्ष संसाधित होता है :

1. कच्चा माल	शून्य
2. यूटिलिटीज	3,000 रु०
3. मजदूर तथा देख रेख	स्वयं
4. मशीन का रख रखाव आदि (15 रु० प्रति टन की दर से)	4,500 रु०
5. कर, अवमूल्यन, ब्याज आदि	14,300 रु०
6. अन्य खर्च	3,000 रु०
संसाधन पर पूरा खर्च	24,800 रु०
प्रति टन मिलिंग की कीमत :	27.55 रुपए

आमदनी

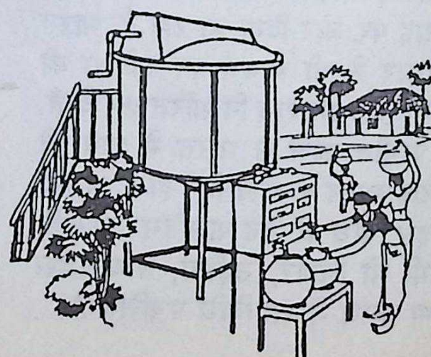
50 रुपए प्रति टन धान की मिलिंग. कीमत की दर पर 900 टन धान की मिलिंग पर अनुमानित आमदनी

	45,000 रुपए
मिलिंग में खर्चा	24,000 रुपए
वार्षिक आय	20,200 रुपए

मिल की क्षमता 75 प्रतिशत से अधिक होने पर तथा ब्रान व भूसे के सदुपयोग से इस आय में और वृद्धि की संभावना है.

मिल के उपोत्पाद (बाइप्रोडक्ट)

चावल की मिलों से मुख्यतः तीन उप उत्पाद (बाइप्रोडक्ट) प्राप्त होते हैं : 1. टूटे चावल, 2. ब्रान, व 3. भूसा.



मिल के टूटे हुए चावलों का उपयोग इडली, उपमा आदि खाद्य पदार्थों में होता है. मुर्गी तथा दूध देने वाले पशुओं को भी इन चावलों का चारा दिया जाता है. टूटे हुए चावलों से स्टार्च तथा एल्कोहली पेय पदार्थ भी प्राप्त किए जाते हैं.

चावल के ब्रान में 10-25 प्रतिशत वसा, 11-15 प्रतिशत प्रोटीन, 10-14 प्रतिशत फाइबर तथा 9-15 प्रतिशत राख होती है. इसके अतिरिक्त यह ब्रान विटामिन 'बी' का बहुत अच्छा स्रोत है. इसका उपयोग तेल निकालने के लिए किया जाता है. ब्रान का उपयोग पशुओं के चारे के रूप में भी होता है. इससे तेल भी निकाला जाता है. अभी तक हमारे देश में इस तेल की अधिक मात्रा औद्योगिक वर्ग की होती है. केवल मिलों से प्राप्त ब्रान से ही खाद्य तेल निकलता है. पश्चिमी देशों में चावल का ब्रान अपने पोषक गुणों व औषधि गुणों के कारण महंगा बिकता है. इस तेल में असंतृप्त वसा अम्ल होते हैं,जो हृदय के रोगियों के लिए फायदेमंद है इस तेल का उपयोग वनस्पति व साबुन उद्योग में भी होता है. 1977-78 में खाने योग्य राइस ब्रान तेल का उत्पादन 10,000 टन से अधिक था. देश में विलायक निष्कर्षण (साल्वैंट एक्सट्रैक्शन) उद्योग के विकसित हो जाने तथा चावल मिलों से शुद्ध ब्रान उपलब्ध हो जाने से इस ब्रान से खाद्य तेल निकालने की संभावनाएं बढ़ गई हैं. इस ब्रान की खली भी अच्छा चारा तथा उत्तम खाद मानी जाती है.

चावल की भूसी का इस्तेमाल अधिकतर ईंधन के रूप में चावल के मिलों के बॉयलरों में हो रहा है. जले हुए भूसे में सिलिका की मात्रा प्रचुर होती है जिसको कांच तथा मिट्टी के बर्तन के उद्योग में उपयोग किया जा सकता है. इससे सक्रियित (एक्टीवेटेड) कार्बन भी प्राप्त होता है जो चीनी को संशोधित करने के काम आता है. इससे फरफ्यूरल नामक रसायन भी प्राप्त होता है. इस भूसे से कागज, लुगदी, गत्ता तथा कम लागत की ईंटें बनती हैं. भूसे से कम्पोस्ट खाद भी बनती है. धान की भूसी औद्योगिक एलकोहल का अच्छा स्रोत साबित हो सकती है. इस समय इस भूसी का अनुमानित उत्पादन 80 लाख टन प्रतिवर्ष से अधिक है.

ब्रान तथा भूसी के उचित उपयोग संभव हो जाने पर यह नई मिल अवश्य एक लाभकारी लघु उद्योग का रूप ले सकती है. □

लेखक से निवेदन

1. 'ग्राम शिल्प' में प्रकाशनार्थ भेजे जाने वाले लेख कागज के एक ओर हाशिया छोड़कर टाइप किये या साफ-साफ लिखे होने चाहिएं. लेख की दो प्रतियां भेजी जानी चाहिएं. साथ में लेखक के पूरे नाम, पते व व्यवसाय का उल्लेख अवश्य होना चाहिए.

2. लेख मौलिक, अप्रकाशित और अप्रसारित होना चाहिए. लेख भेजते समय इस आशय का आश्वासन लेखक के अपने पत्र में होना लेख की स्वीकृति के लिए आवश्यक है.

3. लेख का विषय ग्रामोपयोगी विज्ञान और उपयुक्त प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में सार्वजनिक रुचि की किसी भी विषय वस्तु से सम्बन्धित हो सकता है.

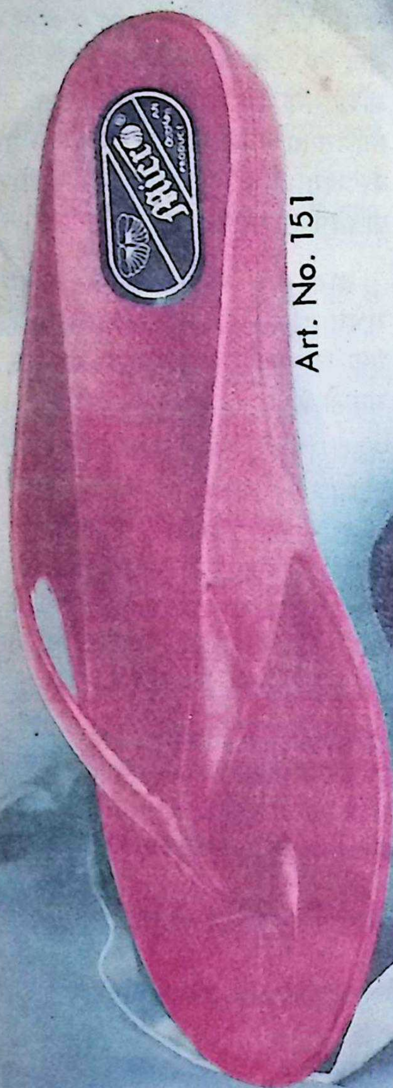
4. लेख में प्रस्तुत विषय का प्रतिपादन ऐसा होना चाहिए कि माध्यमिक स्तर तक शिक्षित वर्ग उसे आसानी से समझ सके. साधारणतया लेख 2500 शब्दों से अधिक बड़ा नहीं होना चाहिए.

5. लेख सरल, आम बोलचाल की भाषा में लिखा होना चाहिए. लेख में प्रयुक्त अंग्रेजी के वैज्ञानिक व तकनीकी शब्दों के पर्याय वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित शब्दावलियों के अनुसार होने चाहिएं. साथ में कोष्ठ में अंग्रेजी शब्द अवश्य दिए जाने चाहिएं.

6. लेख में वर्णित विषय को बोधगम्य बनाने की दृष्टि से लेख के साथ आवश्यक चित्र/रेखाचित्र संलग्न होने चाहिएं. रेखाचित्र काली स्याही से साफ-साफ बने होने चाहिएं. रेखाचित्रों की दो प्रतियां—एक मूल तथा दूसरी फोटो प्रतिलिपि —हो तो अच्छा है.

7. लेख संपादक, 'ग्राम शिल्प', नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन, 20-22, जमरूदपुर सामुदायिक केन्द्र, कैलाश कालोनी एक्स्टेंशन, नई दिल्ली 110048 को भेजा जाना चाहिए.

8. 'ग्राम शिल्प' में प्रकाशित लेखों पर पारिश्रमिक देने की व्यवस्था है.


Art. No. 151
Micro


Art. No. 161
Micro


Art. No. 152
Micro

दिल के रोग

आज जहां प्रदूषण दिन-ब-दिन बढ़ता ही जा रहा है और जिंदगी की रफ्तार भी तेज होती जा रही है, दिल तथा उससे संबंधित रोगों का अनुपात भी बढ़ता जा रहा है. दिल के जांच पड़ताल के साधनों में पिछले दशकों में चमत्कारिक प्रगति हुई है. आज हम न केवल हृदय की सम्पूर्ण भागों की जांच कर सकते हैं, बल्कि एक तरह से अपनी आंखों से हर चीज को देख सकते हैं.

एक ओर समूची दुनिया में हृदय आघात (दिल का दौरा) की घटनाएं बढ़ती जा रही हैं तो दूसरी तरफ आधुनिक चिकित्सा के कारण लोगों की औसत उम्र भी बढ़ती जा रही है. असाध्य समझी जाने वाली कई बीमारियों से भी अब लोग बच जाते हैं, लेकिन दिल के दौरे का खतरा बना ही रहता है. अब दिल के रोग के प्रति लोगों में सतर्कता आई है और नई तकनीकों से इसकी जांच और निदान आसान ही नहीं सटीक भी हो गई है.

धमनियों में रक्त के दौरे में किसी भी तरह की बाधा का अर्थ है—दिल की मांसपेशियों का रक्त से वंचित रहना. ऐसे कई कारण हैं जो दिल के दौरे का कारण बन जाते हैं. धमनियों में होने वाली बीमारी है—एंथरोस्क्लेरोसिस. इस रोग में धमनियों की अंदरूनी परतें फूल जाती हैं. सबसे बड़ी बात है कि जब तक यह बाधा धमनियों में 70 प्रतिशत हानि नहीं पहुंचा देती तब तक कोई लक्षण नहीं दिखाई देता है. उच्च रक्तचाप, वजन बढ़ना, मधुमेह, मद्यपान तथा धूम्रपान इस रोग में रक्त में चर्बी के तत्वों को बढ़ा देते हैं. मानसिक तनाव, गठिया और अन्य व्यक्तिगत कारण भी दिल के दौरे को बढ़ावा देते हैं.

सामान्य लक्षण

छाती में तकलीफ, छाती के बीच में आमतौर पर दर्द का उभरना या छाती के पीछे की हड्डियों में दर्द का उभरना. यह दर्द दोनो हाथों तक पहुंच सकता है. इससे गर्दन, पीठ आदि में भी 50 प्रतिशत तक हानि पहुंच सकती है. कई लोगों में अलग तरह की तकलीफें तो होती हैं लेकिन दर्द नहीं होता और इसलिए लोग भ्रमवश गैस, अपचन, रीढ़ की हड्डी में दर्द आदि की परेशानी समझ बैठते हैं. लक्षणों का विविध रूप रोगी और उसके परिवार को भ्रमित कर देता है और वे आराम पाने के लिए अन्य तरीके ढूंढने लगते हैं. कुछ सामान्य लक्षण हैं—अधिक धड़कन, दिल डूबना, छाती में दर्द, चक्कर आना, उल्टियां आना, सांस लेने में तकलीफ आदि.

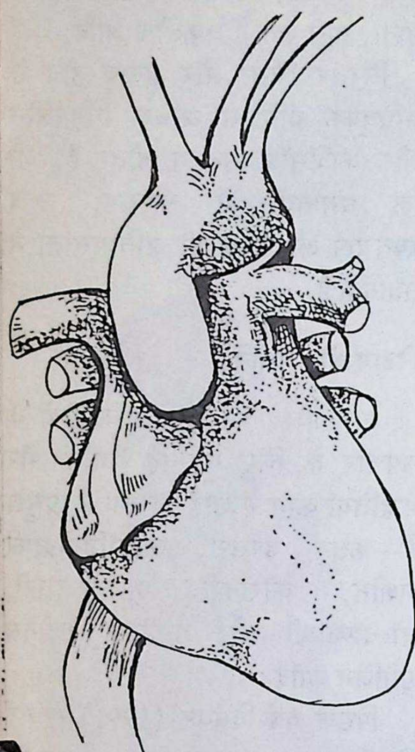
निरंतर चिंता और तनाव होने से अधिवृक्क ग्रंथि से अधिक एड्रिनलीन और कार्टिसॉल उत्पन्न होता है, जो कि धमनियों में संकुचन, उच्च रक्तचाप और दिल की अतिव्यस्तता में सहायक है.

निदान और मशीनें

आज विश्व भर में दिल के रोगों के उपचार के लिए नई-नई मशीनें और पद्धतियां काम में लाई जा रही हैं, प्रमुख हैं—कलर डाप्लर इकोकॉर्डियोग्राफी मशीन, कोरोनरी एंजियोप्लास्टी, वॉल्वोप्लास्टी और मैग्नेटिक रेजोनेंस इमेजिंग आदि.

पिछले वर्ष दिसंबर (1991) में नई दिल्ली में एक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन का





आयोजन किया गया था. इसमें देश विदेश के सौ से ज्यादा हृदय-रोग विशेषज्ञों ने भाग लिया. विशेषज्ञों की राय थी कि उच्च रक्तचाप दिल के दौरे का एक प्रमुख कारण है. अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली के प्रसिद्ध हृदय रोग विशेषज्ञ प्रोफेसर एच०एस० बशीर की राय थी कि उच्च रक्तचाप की बीमारी पर काबू पाने के लिए दवा के सेवन से बचने का प्रयास करना चाहिए, क्योंकि इस दवा के पार्श्व प्रभाव (साइड इफेक्ट) काफी अधिक होते हैं. प्रोफेसर बशीर के अनुसार मोटापां कम करके तथा शराब, धूम्रपान, तम्बाकू का इस्तेमाल छोड़ कर उच्च रक्तचाप से बचा जा सकता है. इसके अलावा मानसिक तनाव से मुक्त रहना चाहिए और शाकाहारी भोजन को प्राथमिकता देनी चाहिए. ऐसे उपायों के जरिए उच्च रक्तचाप के 40 से 50 प्रतिशत मरीजों को सामान्य स्थिति में लाया जा सकता है.

प्रो० बशीर के अनुसार उच्च रक्तचाप की बीमारी से बचने के लिए पोटेशियम युक्त नमक फायदेमंद रहता है किंतु सोडियम युक्त नमक का

कृत्रिम दिल

कोई भी व्यक्ति तभी तक जीवित रहता है, जब तक उसके दिल की धड़कन रहती है. लेकिन बढ़ते रोगों ने डाक्टरों और वैज्ञानिकों को रोगी दिल का विकल्प खोजने को विवश किया है. मानव के दिल में कुल चार भाग होते हैं, ऊपर के दो भागों को एट्रियम और निचले दो भागों को वेंट्रिकल कहते हैं. शरीर का परिभ्रमण कर, ऑक्सीजन रहित रक्त दाएं एट्रियम में पहुंचता है, जहां से दाएं वेंट्रिकल से होता हुआ फेफड़ों में ऑक्सीकृत होने के पश्चात् रक्त फेफड़ों से बाएं एट्रियम में आता है और फिर बाएं वेंट्रिकल में पहुंचता है, जहां से ऑक्सीकृत रक्त एक बार फिर सारे शरीर का परिभ्रमण करने निकल पड़ता है.

'जारविक-7' एक काफी विकसित कृत्रिम दिल है. अमेरिकी वैज्ञानिक डॉ० रोबर्ट जारविक द्वारा विकसित यह दिल एक विशेष प्रकार के प्लास्टिक और एलुमिनियम से मिलकर बना है. इसका भार लगभग 300 ग्राम होता है तथा संरचना प्राकृतिक दिल से मिलती-जुलती है. यह अपने आप नहीं धड़क सकता, इसलिए इसे किसी बाहरी ऊर्जा स्रोत से जोड़ना पड़ता है. 'जारविक-7' को धड़कने के लिए संपीड़ित हवा (क्रम्प्रेस्ड एयर) का इस्तेमाल किया जाता है.

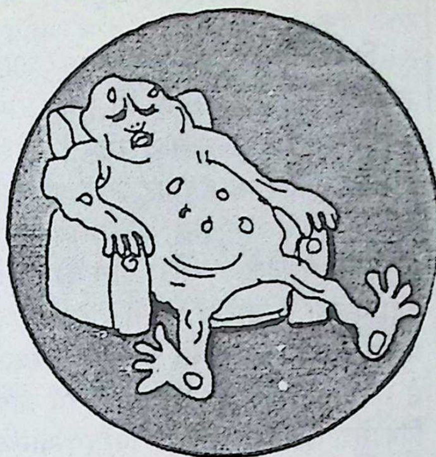
'जारविक-7' को सर्वप्रथम सफल रूप से 2 दिसंबर 1982 को बी० क्लार्क नाम के अमेरिकी व्यक्ति को लगाया गया. लेकिन गुर्दों के काम नहीं करने के कारण लगभग चार माह बाद क्लार्क का निधन हो गया. 'जारविक-7' कृत्रिम दिल की चौथी पीढ़ी में आता है. पहले के तीन पीढ़ी के कृत्रिम दिल बिजली से अपनी ऊर्जा प्राप्त करते थे. कृत्रिम दिल का विकास अभी जारी है. संभव है कि भविष्य में वैज्ञानिक असली जैसा नकली दिल बनाने में सफल हो जाएं. इसमें वैज्ञानिकों को कब तक सफलता मिलेगी, यह कहना तो कठिन है. लेकिन वैज्ञानिकों ने एक ऐसी कलाई घड़ी विकसित की है जो बटन दबाने पर दिल की गति का हाल बता देगी. इसमें कम्प्यूटर चिप और माइक्रोप्रोसेसर तकनीक का उपयोग किया गया है, जो दिल की धड़कनों से उत्पन्न होने वाले सूक्ष्म इलेक्ट्रोनिक संकेतों को आंकड़ों में बदलकर घड़ी के डॉयल पर दिखा देती है. इसमें तीन संवेदक लगे होते हैं जो दिल की धड़कनों को पहचानते हैं. एक संवेदक कलाई पर दबाव डालता है और नब्ज की गति नापता है. बाकी दो घड़ी के दोनों तरफ लगे होते हैं. इस उपकरण के जरिए दिल की गति बिलकुल ठीक-ठाक पढ़ी जा सकती है.

—रा० कु० रा०

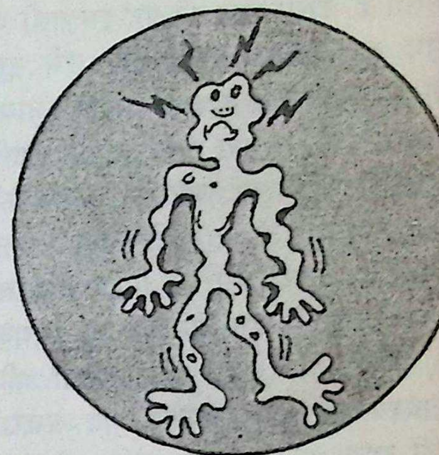
उपयोग कम करना चाहिए. रक्तचाप (ब्लड प्रेशर) की बीमारी से बचने के लिए शारीरिक व्यायाम भी काफी फायदेमंद रहता है. अध्ययनों के दौरान यह पाया गया है कि धावकों और आउटडोर खेल खेलने वाले खिलाड़ियों में रक्तचाप की बीमारी कम होती है क्योंकि उनका पर्याप्त शारीरिक व्यायाम हो जाता है.

दिल को कम रक्त मिलने को एन्जाइना कहते हैं. यदि एन्जाइना काफी देर तक हो तो यह कभी भी दिल का दौरा साबित हो सकती है. एन्जाइना के दर्द को दो भागों में बांटा जा सकता है. एक 'अस्थाई एन्जाइना' और दूसरा 'वेरियेंट एन्जाइना'. 'वेरियेंट एन्जाइना' को 'वासोस्पास्टिक एन्जाइना' भी कहते हैं. इस अवस्था को सबसे पहले प्रिंजमेटल नामक चिकित्सक ने बताया था, इसलिए इसे 'प्रिंजमेटल एन्जाइना' भी कहते हैं.

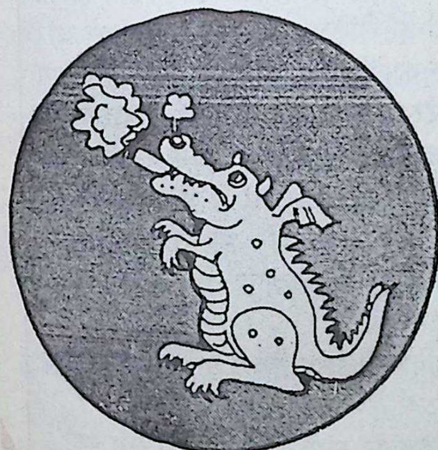
इस तरह की बीमारी में अचानक दिल की धमनियां सिकुड़ जाती हैं और उससे रक्त संचार में बाधा उत्पन्न होती है. सामान्य होने पर रक्त संचार फिर सुचारु रूप से होने लगता है. इसके विपरीत दिल की धमनियों में कोलस्ट्रोल के जमा होने के कारण होने वाली रुकावट स्थाई होती है. जिन धमनियों में अचानक सिकुड़न (स्पाज्म) पैदा होती है, वे सामान्य होती हैं. इन सामान्य धमनियों में अचानक सिकुड़न क्यों आती है, इस बात का अभी तक पता नहीं लगाया जा सका है. वेरियेंट एन्जाइना का दर्द एक साथ 3-4 बार आता है और कई दिनों तक ठीक उसी समय.



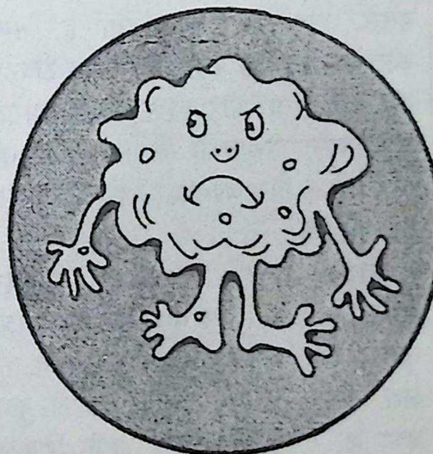
निष्क्रिय न बैठें



उच्च रक्तचाप से बचें



धूम्रपान से बचें



रक्त में उच्च कोलेस्ट्रोल खतरनाक है

यदि एंजियोग्राफी करने पर धमनियों ऊबड़-खाबड़ नजर आता है बाई-पास सर्जरी यानि शल्य क्रिया जाती है.

शल्य चिकित्सा का हृदय रोगों उपयोग बहुत पुराना नहीं है. इस अवरोधवाली धमनी के ऊपर नई र वाहिनी लगाई जाती है. बाई-पास सर्ज दिल के रोगियों के लिए वरदान सावि हुई है. सभी प्रमुख धमनियों के प्रारंभि भाग में आई रुकावट को बाई-प सर्जरी से ठीक किया जा सकता बाई-पास सर्जरी कुछ विशेष विकारों काफी फायदेमंद पाई गई है, प्रोक्सीमल लेफ्ट एंटीरियर डिसें आर्टरी (बाईं आगे की उत्तराल धमन में रुकावट, एन्जाइना का वह दर्द दवाइयों से ठीक नहीं होता है या दिल का दौरा पड़ने के बाद उसका भाग फूल जाए.

कोरोनरी एंजियोप्लास्टी

इस पद्धति में नस द्वारा एक न हृदय की धमनियों में पहुंचाई जाती इन नली पर एक गुब्बारा लगा होता

नली डालते वक्त गुब्बारा चिपका हुआ होता है. टेलीविजन पर्दे पर इस नली के पथ का अध्ययन करते हुए उसे इस तरह से रुकावट के स्थान पर ले जाया जाता है कि गुब्बारा ठीक रुकावट वाली जगह पर आ जाए. अब इस गुब्बारे को फुला दिया जाता है. इससे रुकावट खुल जाती है, फिर नली को बाहर निकाल लिया जाता है. इस विधि के कई फायदे हैं, जैसे कम खर्च, शल्य क्रिया की आवश्यकता नहीं, संक्रमण का खतरा नहीं रहता और अस्पताल में काफी कम समय रहना पड़ता है. लेकिन यह पद्धति सभी रोगियों के लिए उपयोग में नहीं लाई जा सकती.

एक नई जांच-तकनीक, जिसे 'होल्टर' कहते हैं, कारोनरी धमनी रोग के निदान में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही है. इस तकनीक द्वारा चौबीस घंटे से बहत्तर घंटों तक लगातार किसी भी व्यक्ति का ई सी जी रिकार्ड किया जा सकता है. कलाई घड़ी के बराबर एक ई सी जी मशीन और एक रिकार्डर-व्यक्ति को बेल्ट पहना कर बांध दिया जाता है. फिर व्यक्ति को यह निर्देश दिया जाता है कि वह रोज की तरह ही काम करता रहे. इस दौरान उसका ई सी जी बराबर रिकार्ड होता रहता है. अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में उसके दिल की जैसी भी दशा होती है, वह रिकार्ड होती चली जाती है. फिर उसके पूरे ई सी जी का कंप्यूटर से विश्लेषण करते हैं. इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि किन परिस्थितियों में उस व्यक्ति का दिल डांवाडोल होने लगता है.

दिल के दौरे के तत्कालिक निदान में ई सी जी और रक्त के विशेष परीक्षणों के अलावा, आजकल एक खास किस्म के कैमरे का भी उपयोग किया जा रहा

दिल की धड़कन और विश्व स्वास्थ्य संगठन

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने सन् 2000 तक दुनिया भर के लोगों को हृदय-रोगों से सुरक्षित करने का लक्ष्य रखा है. विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार आज पश्चिमी यूरोप, उत्तरी अमेरिका, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड में दिल का दौरा मौत का सबसे बड़ा कारण है. दुनिया भर में प्रतिवर्ष एक करोड़ बीस लाख व्यक्ति हृदय-गति रुकने से मौत के शिकार हो जाते हैं. इनमें आधे विकासशील देशों के हैं. विश्व स्वास्थ्य संगठन का कहना है कि केवल भारत में 4 करोड़ व्यक्ति दिल के किसी ना किसी रोग के शिकार हैं.

हृदय रोग होने की मुख्य वजह है—हमारा खान-पान और रहन-सहन. यही नहीं हमेशा तनाव में रहना भी इसका कारण बन सकता है. विश्व स्वास्थ्य संगठन का कहना है कि तीसरी दुनिया के मध्यवर्गीय लोगों के सामने सबसे बड़ी समस्या उच्च रक्तचाप की है, जो दिल के दौरे का एक प्रमुख कारण है. चीन में पांच करोड़, ब्राजील में एक करोड़ बीस लाख, बंगलादेश में 18 लाख, एवं चिली और नाइजीरिया में 15 लाख व्यक्ति उच्च रक्तचाप से पीड़ित हैं. हमेशा तनाव से बचने का प्रयास करना चाहिए, क्योंकि इससे उच्च रक्तचाप बढ़ता है. उच्च रक्तचाप बढ़ने से रक्त का संचार ठीक से नहीं हो पाता और दिल को अत्यधिक काम करना पड़ता है. लगातार ऐसी ही स्थितियों से दिल का दौरा पड़ने का खतरा बढ़ जाता है.

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार भोजन में वसा, मांस व मलाई की मात्रा कम करके तथा शराब और धूम्रपान की लत छोड़कर हृदय रोगों से काफी कुछ बचा जा सकता है. आज इसके शिकार सभी हैं—बुजुर्ग, युवा और यहां तक कि किशोर. बीमारी उम्र देख कर नहीं आती. आती है हमारे चाल-चलन से. भोजन में शाक-भाजियों, ताजे फल, अनाज व दाल की मात्रा बढ़ाकर कोलेस्ट्रोराल की मात्रा नियंत्रित की जा सकती है.

विश्व स्वास्थ्य संगठन का कहना है कि किसी भी प्रकार का उच्च रक्तचाप, चाहे वह कितना ही मामूली क्यों न हो, उसका उपचार करवाना चाहिए. कुछ लोगों को इसके लिए सिर्फ वजन घटाने, नमक कम खाने और ज्यादा व्यायाम करने की जरूरत होती है. कुछ को औषधि की जरूरत हो सकती है.

नियमित व्यायाम से हृदय को अधिक कुशलता से काम करने में मदद मिलती है. प्रतिदिन थोड़ा नियमित रूप से व्यायाम करके दिल के दौरों से बचा जा सकता है. उच्च रक्तचाप को कम करने में कम कैलोरी वाला भोजन काफी सहायक है.

आम लोग खतरों से सचेत रहें और अपनी सीमाओं को पहचाने तो दिल के दौरे के बाद भी सामान्य जिंदगी जी सकते हैं. विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 7 अप्रैल 1992 के विश्व स्वास्थ्य दिवस पर अपना मत कुछ इस प्रकार व्यक्त किया है— ''औसत उम्र, तनाव और भागदौड़ बढ़ने तथा खान-पान के बदलते स्तर के कारण दिल के रोगों से मौतों की संख्या बढ़ती ही जा रही है. लेकिन नई खोजों, तकनीकों और जानकारियों से इस रोग की आम जटिलताओं को दूर करने में आज हम पूरी तरह सक्षम हैं. असमय मौत को टाला जा सकता है. बस जरूरी है आम आदमी की जागरुकता, लक्षणों की जानकारी और बीमारी की शुरुआत में ही चिकित्सा सुविधा की.''

विश्व स्वास्थ्य दिवस पर 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' ने यह संदेश दिया है—

'दिल की धड़कन-स्वास्थ्य की लय पर'

—रा० कु० रा०

है. 'मूगा टेस्ट' नामक इस परीक्षण में एक गामा कैमरा द्वारा दिल की न्यूक्लियर स्कैनिंग करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि दिल का कितना बड़ा भाग क्षतिग्रस्त हुआ है. नष्ट हुई दिल की मांस-पेशियां गामा कैमरे की सहायता से पहचानी जा सकती हैं.

विशेषज्ञों ने पाया है कि दिल के दौरे के तुरंत बाद दिल में सबसे अधिक क्षति कोरोनरी धमनियों में रक्त के थक्के जम जाने से होती है. रक्त का थक्का यदि धमनी के ऊपरी भाग में जमता है तो दिल का दौरा काफी गंभीर होता है, क्यों धमनियों के ऊपरी भाग में ही रक्त का प्रवाह ज्यादा होता है. निचले भाग में या धमनी के आखिरी हिस्से में रक्त का थक्का जमने पर दिल का दौरा ज्यादा गंभीर नहीं होता.

रक्त के थक्कों को दूर करना चिकित्सा विज्ञान के नवीनतम आविष्कारों के कारण अब संभव हो गया है. इन थक्कों को समाप्त करने के लिए अस्सी के दशक में अमेरिका में दो इंजेक्शनों (दवाओं) का विकास किया गया, जिन्हें 'स्ट्रेप्टोकिनास' और 'यूरोकिनास' कहा जाता है. दिल के रोगियों के लिए ये दवाएं एक वरदान साबित हुई हैं. हृदय चिकित्सा विज्ञान में यह पद्धति 'थ्रोम्बोलाइटिक थैरेपी' के नाम से जानी जाती है. इसके उपचार के बाद यह पाया गया है कि दिल के मरीज को दौरा पड़ने के बाद तीन से चार वर्ष तक किसी प्रकार की दिल संबंधी कोई तकलीफ नहीं हुई.

दिल का प्रत्यारोपण

बीस साल पहले जब डा० सी० बर्नार्ड ने पहला सफल हृदय-प्रत्यारोपण किया तब यह कहना काफी कठिन था कि भविष्य में यह कितना आसान होगा. क्योंकि डा० बर्नार्ड का पहला दिल प्रत्यारोपित रोगी केवल 18 दिन बाद ही न्यूमोनिया से मर गया था. लेकिन आज विकसित देशों में दिल के प्रत्यारोपण के मामलों की संख्या कई हजार है. केवल अमेरिका में 1700 दिल प्रतिवर्ष प्रत्यारोपित किए जाते हैं.

अंग प्रत्यारोपण के क्षेत्र में सफलता एक एंटीबायोटिक दवा साइक्लोस्पोरिन की खोज के बाद मिली. साइक्लोस्पोरिन शरीर द्वारा प्रत्यारोपण को अस्वीकृति का खतरा काफी कम कर देती है. इसी कारण आज 60 वर्ष तक के लोगों में सफल प्रत्यारोपण संभव हो गया है.

दिल की मांसपेशियों की एक गंभीर बीमारी है—'इडिओपैथिक कार्डिओमायोपैथी'. इसमें दिल का आकार काफी बढ़ जाता है. इसमें व्यक्ति लेट कर भी पूरी तरह सांस नहीं ले पाता है. इस रोग का कारण बड़ा ही रहस्यमय है. विशेषज्ञों को संदेह है कि सामान्य विषाणु (वायरस) ही इसके लिए दोषी हैं. लेकिन कुछ लोगों में यह इतना घातक क्यों हो जाता है, इसकी खोज अभी बाकी है. आज तमाम खोजों के बाद भी अंगों के संरक्षण की सीमाएं हैं. दिल निकाले जाने के 12 से 14 घंटे के अंदर ही प्रत्यारोपित किया जा सकता है. इसके बाद यह बेकार हो जाता है. अंग प्रत्यारोपण के क्षेत्र में अग्रणी संस्था यूनाइटेड नेटवर्क फॉर ऑर्गन शेयरिंग (यूनोज) निगरानी रखती है ताकि अंगों को सचमुच जरूरतमंद लोगों तक पहुंचाया जा सके.

दिल का दौरा और पुनर्वास

दिल के दौरे के बाद जिंदगी बेकार, अनुपयोगी और निरर्थक होती है. यह धारणा अब तेजी से बदली है. ठीक होने के बाद वे फिर अपने काम में लग सकते हैं. हृदय की मांसपेशियों में आई खराबी भी अन्य रोगों की तरह ठीक हो सकती है.

दिल के रोगियों के लिए पुनर्वास काफी महत्वपूर्ण होता है. डाक्टरों द्वारा स्थापित पुर्नस्थापना का लक्ष्य का अर्थ होता है—रोगी को पुनः काम करने योग्य बनाना, मानसिक चिंता दूर करना और सामान्य जीवन जीने के काबिल बनाना. अक्सर दिल के दौरे के बाद रोगी को मानसिक चिंता और डर सताने लगते हैं और सामान्य जीवन जीने के लिए ऐसी आशंकाओं को दूर करना आवश्यक है.

पुर्नस्थापना के तीन प्रमुख चरण हैं पहले चरण में अक्षम होने या अचानक मौत का डर रोगी के मन से निकालना आवश्यक होता है. साथ ही दिल पर पड़ने वाले किसी भी तरह के दबाव को भी दूर करने का प्रयास किया जाता है. यही वह समय होता है जब मानसिक रूप से रोगी को स्वस्थ किया जाता है.

रोगी को पूर्णतः निरोग करने की शुरुआत दूसरे चरण में होती है. इसमें रोगी बिस्तर से बाहर आता है और वह धीरे-धीरे कुछ सीढ़ियां भी चढ़ सकता है और अंत में वह घर आ जाता है. चिकित्सक का पूरा प्रयास यही रहता है कि रोगी फिर से समाज का एक स्वस्थ और सक्रिय नागरिक बने. उसमें फिर आत्मविश्वास जागे, काम के प्रति उत्साह बढ़े और वह अपनी क्षमता के प्रति आश्वस्त हो. और तीसरे चरण में रोगी को शारीरिक और मानसिक रूप से पूर्ण स्वस्थ बनाने का प्रयत्न किया जाता है.

इन्सुलेटिंग वार्निश : विकास की नई दिशाएं

□ डा० ब्रजेश्वर सिंह

□ विद्युत उद्योग के शुरुआत से ही विद्युत उपकरण निर्माताओं के लिए इन्सुलेशन एक चर्चा का महत्वपूर्ण विषय रहा है. उपकरणों में कोई खराबी या तो इन्सुलेशन के ठीक न होने से या किसी यांत्रिक गड़बड़ी के कारण होती है. इसे रोकने के लिए इन्सुलेटिंग वार्निशों का इस्तेमाल किया जाता है.

वार्निश का उपयोग मुख्यतया दो कारणों से वाइडिंग के साथ किया जाता है—पहला कार्य वाइडिंग को वातावरण, नमी आदि से सुरक्षा प्रदान करना तथा दूसरा कार्य विद्युत कुचालता को बढ़ाना तथा अन्य गुणों जैसे यांत्रिक, तापीय, अवरोधकता आदि में वृद्धि करना है. यह प्राकृतिक या कृत्रिम रेजिन से बनाई जाती है. इसमें घोलक की मात्रा 40-45 प्रतिशत के बीच होती है. तांबे (कापर) तथा इनामल्ड कापर वायर को वार्निश में डूबो देते हैं. सूखने के बाद तारों के ऊपर कोटिंग के रूप में जमा हो जाती है तथा वाइंडिंग के बीच स्थित रिक्त स्थान में जाकर भर जाती है. इससे वाइडिंग स्थित तारों के बीच घर्षण, यांत्रिक कम्पन आदि को रोकने में मदद मिलती है. दूसरी तरफ वैद्युत शक्ति को बढ़ावा मिलता है. किसी वार्निश की घुसने की क्षमता (पेनिट्रेशन पावर) सही घोलक के चुनाव पर निर्भर करती है. किसी उपकरण में वार्निश की कीमत सम्पूर्ण उपकरणीय पदार्थ की कीमत की 2-5 प्रतिशत होती है. कीमत कम होने के बावजूद विद्युत उपकरणों में इसका विशेष महत्व है.

इन्सुलेटिंग वार्निशों का इस्तेमाल प्रायः पंखे, मोटर, ट्रांसफार्मर, जनेरेटर तथा अन्य घरेलू उपकरणों में किया जाता है. पिछले कुछ वर्षों में तकनीकी विकास की दृष्टि से इसके विकास में काफी परिवर्तन हुआ है. कम कीमत तथा अल्प ऊर्जा खपत वाले उपकरणों का विकास अच्छे कुचालक पर निर्भर करता है. विश्व के वैज्ञानिक इस दिशा में यानी अच्छे कुचालक के विकास के लिए काफी तेजी से कार्य कर रहे हैं. शुरुआत में वार्निश प्राकृतिक रेजिन जैसे शैलाक, गम तथा बिटुमिन आदि से बनाई जाती थी लेकिन ऊंची वोल्टेता पर यह ठीक कार्य नहीं कर पाती थी. शैलाक रेजिन की क्योरिंग के समय कुछ अन्य नए पदार्थ बन जाते हैं जो कुचालक के गुणों पर प्रतिकूल असर डालते हैं. बिटुमिन का इस्तेमाल 155 डिग्री सेल्सियस वाले समूह में किया जाता था. इस तापक्रम पर यह काफी मुलायम हो जाता है तथा जगह-जगह से इन्सुलेशन खराब हो जाता है या टूट जाता है. इसकी एक वजह यह भी है कि ये रेजिन तथा बिटुमिन विभिन्न स्रोतों से प्राप्त किए जाते हैं. स्रोत के बदलने से इसके गुणों में भिन्नता आ जाती है. आजकल बिटुमिन वार्निशें ड्राइंग आयल को बिटुमिन में डालकर बनाते हैं जिससे ताप अवरोधता, फिल्म में लचीलापन तथा अन्य गुणों में वृद्धि हो जाती है जो शुद्ध बिटुमिन में नहीं मिलती. फिनोलिक, पालीएस्टर, इपाक्सी सिलिकोन आदि वार्निशें काफी उपयोग में आ रही हैं. इनका उपयोग करने से पहले इनके गुणों को भलीभांति जान लेना आवश्यक है जैसे कितने तापक्रम पर इस्तेमाल करना है, किस वातावरण में इस्तेमाल करना है आदि. इससे कीमत को कम रखने में सुविधा होती है.

वर्गीकरण

सन् 1930 में आई ई सी ने इन्सुलेटिंग पदार्थ को चार समूहों (समूह अ, समूह आ, समूह इ, समूह ई) में विभाजित किया था लेकिन लगातार नए-नए पदार्थों के विकास को देखते हुए तापक्रम सूचकांक (इन्डेक्स) के आधार पर इसे फिर से विभाजित किया जिसे सारणी-1 में संक्षेपित किया गया है. वार्निशों को चुनने के समय निर्माताओं को इन बातों पर ध्यान देना चाहिए :

सारणी-1. वार्निश का तापक्रम सूचकांक के आधार पर वर्गीकरण

क्रम संख्या	समूह	तापक्रम सूचकांक (डिग्री सेल्सियस)	वार्निशों के नाम
1.	ओ	90	गम, कागज, काटन
2.	ए	105	प्राकृतिक रेजिन तेल, युक्त वार्निश आदि
3.	वी	130	फिनोलिक, तेल युक्त बिटुमिन तथा वार्निश
4.	एफ	155	एल्कीड रेजिन, पालीएस्टर रेजिन, इपाक्सी रेजिन आदि
5.	एच	180	पालीएमाइड, पालीएस्टर एमाइड
6.	सी	220	पालीएमाइड एमाइड सिलिकोन

1. किसी विद्युत उपकरण का प्रत्येक भाग सदैव एक ही तापक्रम पर कार्य करे, यह आवश्यक नहीं. जैसे कुछ भाग 155° सेल्सियस पर कार्य कर रहा है तथा कुछ भाग कम ताप पर यानी 130° सेल्सियस पर हैं. ऐसी जगह पर उपकरण की कीमत को ध्यान में रखते हुए एक ही वार्निश का उपयोग करने के बजाए तापक्रम के अनुसार अलग-अलग वार्निशों का इस्तेमाल करना चाहिए.

2. कुछ कुचालक पदार्थ ऐसे होते हैं जिनकी क्षमता वहां स्थित वातावरण पर निर्भर करती है. एक समूह का कुचालक एक वातावरण में ठीक कार्य करता है लेकिन दूसरे वातावरण में ठीक कार्य नहीं करता. इसलिए वार्निश का चयन करते समय वातावरण को ध्यान में रखना आवश्यक है.

3. वार्निशों का इस्तेमाल उपकरण की माली हालत को ध्यान में रखते हुए करना चाहिए जैसे किसी उपकरण की क्षमता अथवा आयु अगर कम है तो वहां पर ऊंचे तापक्रम वाला कुचालक उपयोग करना चाहिए.

सारणी-2. वार्निश के कुछ भारतीय तथा अन्तरराष्ट्रीय मानकों की सूची

मानक संख्या	नाम
भारतीय मानक	
आई एस : 350-1980	विद्युतीय उद्देश्य के लिए बेकिंग इमप्रेगिनेटिंग वार्निशों का परीक्षण
आई एस : 352-1969	वायु में सूखने वाली (एयर ड्राइंग) वार्निशों का परीक्षण
आई एस : 10026-1982 (भाग 1,2,3)	घोलक युक्त वार्निश का परीक्षण
अमेरिकी मानक	
ए एस टी एम डी-115	वार्निश का परीक्षण
ए एस टी एम डी- 3145-83	घुमावदार रिंग (हेलिकल क्वायल) विधि से वार्निश का तापीय अवरोधकता का परीक्षण
ए एस टी एम डी-2519-83	विद्युत कुचालकीय वार्निशों के बन्धन सामर्थ्य का परीक्षण.
जापानी मानक	
जे आई एस सी-2103 तथा वी डी ई 0360 (भाग 2/5.69)	वार्निशों का परीक्षण
अन्य	
आई ई सी 216-1-1974	विद्युत कुचालकीय पदार्थों के तापीय अवरोधक गुणों के परीक्षण के मार्गदर्शन
डी आई एन (जर्मन) 46456	तापीय अवरोधक गुणों का परीक्षण

वार्निशों के आवश्यक गुण

कुचालक का उद्देश्य चालक को सहयोग प्रदान करना तथा विद्युतधारा के बहाव को सुचालक में सीमित करना है जिससे निर्धारित क्षमता का लक्ष्य प्राप्त हो सके. कुचालक के ठीक न होने से विद्युतधारा का बहाव सुचालक तक सीमित नहीं रह पाता जिससे काफी बिजली का नुकसान हो जाता है. विद्युत उपकरण के पुर्जे जैसे रोटर, स्टार्टर आदि को बनाने के काम में वार्निशें इस्तेमाल की जाती है. ऐसे उपयोगों के लिए वार्निशों में निम्न गुण होना आवश्यक है:

- नमी को रोकने की क्षमता.
- चालक को पूरी तरह से बांधे रखने की क्षमता.
- वाइडिंग के ऊपर समान, कठोर परत प्रदान करने की क्षमता.
- यात्रिक शक्ति (कम्पन तथा ध्रुवीय बल) प्रदान करने की क्षमता.
- वाइडिंग में स्थित रिक्त स्थान में घुसने की क्षमता.
- इनामल्ड तार के साथ सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता.
- रसायनों, लुब्रिकेटिंग तेल, ट्रांसफार्मर का तेल तथा समुद्री वातावरण के प्रति अवरोधकता की क्षमता तथा
- अच्छी विद्युत शक्ति, तापीय अवरोधक का होना.

मानक

भारत में अनेक प्रकार की वार्निशें उपलब्ध हैं. किसी विशेष समूह जैसे एफ, एच आदि उपकरणों के लिए उसमें स्थित सभी कुचालक समूहों को एफ, एच की शर्तों को पूरा करना चाहिए, लेकिन अनेक प्रकार की वार्निशों की उपलब्धता के कारण सही वार्निश का चुनाव करना मुश्किल पड़ता है. इसे ध्यान में रखते हुए इनके परीक्षण के लिए मानक निश्चित किए गए हैं जिससे गुण नियंत्रण पर नजर रखी जा सके. सारणी-2 में देशीय-अन्तरदेशीय मानकों की कुछ सूची दी गई है.

वार्निश के प्रकार

घोलक के आधार पर वार्निशों को मुख्यतया तीन समूहों में विभाजित किया गया है :

1. पानी में घुलने वाली वार्निश, 2. घोलक वार्निश, 3. घोलक रहित वार्निश.

मूलत: पानी में घुलने वाली वार्निश को तीन श्रेणियों : 1. इमल्शन, 2. पानी में घुलनशील वार्निश, 3. पानी में

बिखरी हुई वार्निश में बांटा जा सकता है. इसका उपयोग विद्युत कुचालन अथवा परत चढ़ाने जैसे कार्य में किया जाता है. इमल्शन वार्निश बनाने के लिए पहले वार्निश को पानी में डिटरजेंट, सोप, स्टीयरेट तथा स्टेबिलाइजर आदि के साथ डाल कर इमल्सीकरण क्रिया कराते हैं इससे रेजिन व पानी लगभग आपस में मिल जाते हैं. रेजिन निचली सतह पर बैठता नहीं. इमल्सीकरण क्रिया में सोप के बदले स्टीयरेट डालने से वार्निशों के विद्युतीय व तापीय गुणों में वृद्धि होती है. पानी में घुलनशील वार्निश बनाने के लिए वार्निश की सोडियम हाइडाक्साइड या अन्य क्षार से क्रिया कराते हैं. यह ज्वलनशील नहीं होता. क्योरिंग में पानी के घोलक होने की वजह से हानिकारक गैसें भी नहीं निकलती. इनके यांत्रिक तथा विद्युतीय गुण अच्छे होते हैं.

घोलक वार्निश मुख्यतया ट्रैक्शन मोटर के उपयोग में लाई जाती थी. इसमें रेजिन की मात्रा 50-60 प्रतिशत के बीच होती है. क्योरिंग के समय घोलक वाष्प के रूप हवा में आ जाते हैं और वार्निश एक जैल के रूप में जमा हो जाती है. अगर घोलक किसी कारणवश रेजिन के अन्दर रुक जाता है तब बाद में वहां छोटा रिक्त स्थान उत्पन्न हो जाता है जिससे वार्निश के गुणों में काफी गिरावट आ जाती है. घोलक वार्निश के द्वारा वाइडिंग के सभी रिक्त स्थान ठीक ढंग से भर नहीं पाते. अच्छे गुणों के लिए रेजिन की मात्रा ज्यादा होनी चाहिए. क्योरिंग के समय जो घोलक वाष्पीकृत होते हैं उनसे उपकरण के अन्य भाग में क्षरण (करोजन) की संभावना काफी रहती है. यह ज्वलनशील तथा हानिकारक होते हैं. इनसे आंशिक डिस्चार्ज, ऊष्मा का विस्थापन ठीक न होना, चालक के बीच उच्च बन्धन का न होना तथा विद्युतीय शक्ति में कमी आदि की संभावनाएं बनी रहती हैं.

घोलक रहित वार्निशें दो या तीन अलग-अलग भागों (कम्पोनेन्ट) से मिलकर बनी होती हैं. प्रत्येक भाग के अपने अलग-अलग गुण होते हैं. इन्हें आपस में एक निश्चित मात्रा में मिलाया जाता है. मिलाने के कुछ घंट बाद ही ये जम जाते हैं. मरम्मत वाले कार्यों के लिए इन्हें बहुत कम इस्तेमाल में लाया जाता है. इनकी विशेषता वाइडिंग के अंदर घुसने की क्षमता, वाइंडिंग को एक समान संरचना प्रदान करना, अच्छे ऊष्मा विस्थापन गुणों का होना, सुचालकों में उच्च बन्धन, अच्छे यांत्रिक व विद्युतीय गुणों का होना आदि है.

पानी में घुलनशील वार्निश, घोलक वार्निश तथा घोलकरहित वार्निश का तुलनात्मक विवरण सारणी-3 में दिया गया है.

सारणी-3. वार्निशों का तुलनात्मक विश्लेषण

क्रम संख्या	गुण	घोलक वार्निश	घोलकरहित वार्निश	पानी में घुलनशील वार्निश
1.	स्थिरता	बहुत अच्छी	अच्छा	अच्छा
2.	टंकी की मरम्मत	आसानी	मुश्किल	—
3.	कीमत	कम	ज्यादा	कम
4.	सामंजस्य	अच्छा	कम अच्छा	ठीक नहीं
5.	उत्पादन			
	अ. ऊर्जा की कीमत	सामान्य	कम	ज्यादा
	ब. समय	सामान्य	जल्दी	धीमा
6.	आपेक्षिक घनत्व (25° सेल्सियस पर)	0.91	1.18	1.012
7.	श्यानता (25° सेल्सियस पर)	.260	600	350
8.	रेजिन की मात्रा	48-60	—	41-45
9.	ज्वलनशील तापक्रम (डिग्री सेल्सियस)	30	149	>93

कुछ वार्निशें

पहले बतलाया जा चुका है कि वार्निश का चुनाव करते समय बहुत से कारकों को ध्यान में रखना आवश्यक है जैसे कुछ इम्प्रिगनेटिंग वार्निश है जिनका इस्तेमाल ट्रांसफार्मर में करना है. ऐसे वार्निशों में मिनरल तेल के प्रति अवरोधकता तथा अच्छे बन्धन के गुणों का होना आवश्यक है. ज्यादा अम्लीय मान होने से ट्रांसफार्मर तेल से ज्यादा अम्लीय पदार्थ निकलते हैं जो तांबे के बने चालक से क्रिया करके क्षरण क्रिया को बढ़ावा देते हैं. अन्य जैसे कोल कटर मोटर में ऐसे वार्निश की आवश्यकता होती है जो ऊंचे तापक्रम पर कार्य करें तथा नमी व कोयले के कण के प्रति निष्क्रिय रहें आदि. कुछ वार्निशों का विवेचन नीचे किया गया है:

समूह बी : फिनोल-फारमेल्डिहाइड की ड्राइंग तेल से सामान्य तापक्रम या ऊंचे तापक्रम पर क्रिया कराते हैं. घोलक के रूप में मिनरल तेल अथवा एरोमैटिक हाइड्रोकार्बन डालते हैं. वार्निश की ऊपरी सतह पर परत बनने से रोकने तथा लचीलापन प्रदान करने के लिए ड्रायर तथा प्लास्टीसाइजर डाल देते हैं. इसकी कीमत को और कम करने के उद्देश्य से फिनोलिक रेजिन के स्थान पर अरण्डी का तेल (सी एन एस एल) का

इस्तेमाल करते हैं इससे नमी अवरोधकता बढ़ जाती है. एल्कीड रेजिन का इस्तेमाल इस समूह में काफी किया जा रहा है. यह ऊंचे तापक्रम पर अपने लचीलेपन को बनाए रखती है. एमिनो रेजिन को भी उपरोक्त रेजिनों के स्थान पर इस्तेमाल किया जाता है लेकिन इसे आवश्यकता से ज्यादा गैस के बुलबुलेपन होने तथा घोलक की विचित्र महक के कारण बहुत कम इस्तेमाल में लाया जाता है.

समूह एफ: इस समूह में इपाक्सी, पालीएस्टर व पालीयूरिथेन रेजिनें काम में लाई जाती हैं. यह फिनोलिक तथा अन्य समूह वी की वार्निशों से काफी अच्छी होती हैं. इपाक्सी वार्निश का इस्तेमाल आजकल ट्रिकिल इम्प्रिगनेशन विधि में किया जाता है. घोलक के साथ इस्तेमाल करने में ज्यादा ऊर्जा ज्यादा मजदूरी लगती है. ट्रिकिल विधि से गुणों जैसे वांईडिंग को वातावरण से सुरक्षा तथा यांत्रिक व विद्युतीय शक्ति में काफी वृद्धि होती है. आजकल विसफिनोल इपाक्सी के स्थान पर साइक्लोएलीफैटिक इपाक्सी का इस्तेमाल किया जा रहा है. साइक्लोएलीफैटिक युक्त इपाक्सी रेजिन में गाढ़ेपन का कम होना, जैल का कम समय में बनना तथा लम्बे समय तक पूर्ववत् अवस्था में बने रहना आदि गुण पाए जाते हैं. इसके अलावा सारे अभियान्त्रिक गुण विसफीनोलिक इपाक्सी से काफी अच्छे होते हैं.

असंतृप्त पालीएस्टर का इस्तेमाल इस समूह की मशीनों में काफी किया जाता है क्योंकि यह इपाक्सी रेजिन से काफी सस्ता तथा टिकाऊ होता है. इसमें स्टाइरीन तथा मेथिल मेथाएक्राइलेट नामक क्रियाशील मोनोमर का इस्तेमाल किया जाता है जो सामान्य तापक्रम पर इसकी श्यानता को स्थिर बनाए रखता है. मेथिलएथिल कीटोन पराक्साइड अथवा बेंजाइल पराक्साइड तथा कोबाल्ट नेफ्टेलेट आदि बहुलकीकरण क्रिया कराने के लिए उपयोग में लाए जाते हैं. क्रियाशील मोनोमर क्योरिंग के दौरान कुछ वाष्पीकृत हो जाता है.

समूह एच: इस समूह में मुख्यतया पालीएमाइड, पालीएस्टर-एमाइड तथा पाली एमाइड एमाइडएस्टर रेजिन से बनी वार्निशें आती हैं. इनका इस्तेमाल ऊंचे तापक्रम पर कार्य करने वाली मोटरों जैसे रोलिंग मिल, ट्रेक्शन मोटर, प्रिन्टेड सर्किट बोर्ड आदि में किया जाता है. यह ट्राइमेलीटिक एनहाइड्राइड तथा डाइआइसोनेट के क्रिया करने से बनता है. यह अन्य समूह की वार्निशों के मुकाबले काफी महंगी होती है क्योंकि इसका घोलक मेथिल पाइरोलीडोन काफी महंगा होता है. सस्ते घोलक तथा रेजिन की तलाश करने के लिए शोध जारी है. इस समूह की वार्निश का अन्य समूह की वार्निशों (वी एफ आदि) पर लेप कर देते हैं जिससे बहुत से अभियान्त्रिकीय गुणों में वृद्धि हो जाती है. इसके अलावा आजकल कारबाइमाइड युक्त ब्लाक आइसोसाइनेट तथा बिसमैलीमाइड-ट्राइएजीन नामक रेजिनों का इस्तेमाल इस समूह के लिए किया जाने लगा है जो इनामलिंग की रफ्तार तथा कुचालकीय गुणों में वृद्धि करती हैं. कारबाइमाइड के आइसोसाइनेट वार्निश में होने से जल अवरोधता बढ़ जाती है. इन वार्निशों की खोज होने से इस उद्योग में एक नए अध्याय की शुरुआत हुई है.

समूह सी: समूह सी में सिलिकोन रेजिन से बनी वार्निशें काम में लाई जाती हैं. यह 250° सेल्सियस से ऊंचे तापक्रम पर कार्य करने वाली मशीनों में इस्तेमाल किया जाता है. इसकी संरचना में प्रमुख भाग सिलिकन-आक्सीजन-सिलिकन (Si-o-Si) होता है जो रेजिन के ऊंचे तापक्रम पर कार्य करने की क्षमता को बढ़ा देता है. यह ट्राइफंक्शनल या डाइफंक्शनल या मेथिल या फेनिल क्लोरोसिलेन से बनाया जाता है. फेनिल समूह के होने से तापीय अवरोधकता में काफी बढ़ोत्तरी होती है. मेथिल तथा फेनिल समूह तथा कार्बन और सिलिकोन के अनुपात को बदल कर इनके गुणों में विकास किया जाता है. इसे लगातार ऊंचे तापक्रम पर इस्तेमाल करने से इनके यान्त्रिक गुणों में गिरावट आ जाती है इसलिए सिलिकोन रेजिन को फिनालिक अथवा एल्कीड रेजिन से परिवर्तित कर दिया जाता है जो इसके गुणों को ऊंचे तापक्रम पर भी बनाए रहता है.

संक्षेप में, देश में वार्निश निर्माता बहुत संख्या में हैं. वे अनेक प्रकार की वार्निशें बनाते हैं. एक निर्माता की वार्निश से दूसरे निर्माता के उसी समूह की वार्निश में गुणों तथा कीमतों का भारी अन्तर है. वार्निश निर्माता अपने बुलेटिन पर वार्निशों के गुण लिख कर उपभोक्ता को देते हैं. प्रायः देखा गया है वे गुण जो बुलेटिन में लिखे हैं सही नहीं होते. इसलिए गुण नियंत्रण रखना काफी जरूरी है. वार्निशों के गुण मुख्यतया तापक्रम सूचकांक का कोई नया तथा कम समय में परीक्षण का तरीका ढूंढने पर ज्यादा बल दिया जाना चाहिए. कम कीमत की वार्निश बनाने की दिशा में प्रयास ज्यादा से ज्यादा किया जाना चाहिए. सस्ते रेजिन से ऊंचे तापक्रम सूचकांक की वार्निशें बनाना संभव है और वैज्ञानिक प्रयास भी कर रहे हैं. अभी तक उपकरण निर्माता वार्निश निर्माताओं द्वारा दिए गए वार्निश के गुण को ध्यान में रखकर उपकरण बनाते हैं जो एक ठीक प्रक्रिया नहीं है. उपकरण निर्माता, वार्निश निर्माता तथा उपभोक्ता के बीच समय-समय पर खुली बहस होनी चाहिए. इससे सही ढंग से वार्निश का चुनाव तथा इस्तेमाल करने में काफी मदद मिलेगी. अनुसंधान केन्द्रों के लिए इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का पूरा अवसर है. □

रेडियो धारावाहिक

इस महीने 'मानव का विकास' में

❑ डा० जगदीप सक्सेना

❑ पिछले महीने की अंतिम कड़ी में आपने प्राचीन युग में प्रचलित प्रारंभिक खगोलीय अवधारणाओं के बारे में सुना. इससे अंतरिक्ष के बारे में जानने की उत्सुकता बढ़ गई होगी. इस महीने की कड़ियों में अंतरिक्ष से जुड़े कई पहलुओं पर रोशनी डाली जाएगी.

इस महीने रविवार यानि 5 अप्रैल (36वीं कड़ी) को प्रसारित होने वाली कड़ी में राशियों और नक्षत्रों की जानकारी दी जाएगी. आपको पता लगेगा कि कोई चार हजार साल पहले तारों को विभिन्न समूहों में वर्गीकृत करने की बात सोची गई थी. तारा समूहों यानी राशियों को नाम देने का काम नाविकों ने किया था. नक्षत्रों का जन्म चांद की स्थितियों के आधार पर हुआ. ये सारी जानकारी 'पोपटराम' और 'तोताराम' नामक कठपुतलियों के माध्यम से रोचक अंदाज में प्रस्तुत की गई है. पहेली जैसी कविताओं से राशियों के नाम बताए गए हैं. जैसे—

'एक उछल कर मार करे,
एक धनुषबाण से वार करे,
एक लड़की है भोली-भाली,
एक डंक भरे विष की प्याली,
अब एक छोड़ो गुनगुन,
जो राशि बची कहलाए मिथुन.'

इनके अर्थ जानने के लिए यह कड़ी जरूर सुनिएगा.

दूसरे रविवार यानी 12 अप्रैल (37वीं कड़ी) को प्रसारित होने वाली कड़ी में वैदिक काल में प्रचलित खगोल विज्ञान की जानकारी दी जाएगी. पर इस बार पोपटराम की जगह गंगूबाई आ गई हैं. पर—अंदाज वही है. इस कड़ी में वैदिक काल में सूर्य, ग्रहों आदि की जानकारी के साथ ही समय के बंटवारे की जानकारी भी मिलेगी. पता लगेगा कि दिन, महीने, साल कैसे बने, तिथियां और मुहूर्त क्या है, कैलेंडर कैसे बने आदि. इस कड़ी में भी रोचक शैली के साथ जगह-जगह सरल कविताओं का समावेश है. जैसे—

'तब होती थी पूरणमासी
या अमावस होता था
जब तारों का नया समूह
आसमान में चलता था.

तीसरे रविवार यानी 19 अप्रैल (38वीं कड़ी) को प्रसारित होने वाली कड़ी में सौर मंडल के केंद्र में सूर्य होने की धारणा के वैज्ञानिक विकास की जानकारी दी जाएगी. बहुत पहले लोग यह मानते थे कि पृथ्वी केंद्र में है और सूर्य तथा अन्य ग्रह इसकी परिक्रमा करते हैं. यह जानकारी 'नट' और 'नटी' के माध्यम से दिलचस्प रूप में प्रस्तुत की गई है. इसमें आपकी मुलाकात कुछ प्रसिद्ध प्राचीन खगोलशास्त्रियों से भी होगी. जैसे एरिस्टारकस और क्लौडियस टौलेमी. इस कड़ी में प्राचीन भारतीय खगोल विज्ञानियों, जैसे आर्यभट्ट, वाराहमिहिर और भास्कर द्वितीय, की खोजों का भी उल्लेख है.

चौथे और अंतिम रविवार यानी 26 अप्रैल (39वीं कड़ी) को प्रसारित होने वाली कड़ी में बताया जाएगा कि प्रख्यात खगोल विज्ञानी कोपरनिकस ने किस तरह सौर मंडल के केंद्र में सूर्य की स्थिति की पुष्टि की. साथ ही सौरमंडल के लिए प्रस्तावित अन्य मॉडलों की जानकारी भी दी जाएगी. इस कड़ी में आप बहुत कुछ जानकारी 'क्विज़ कार्यक्रम' के माध्यम से प्राप्त करेंगे. बाकी जानकारी कोपरनिकस खुद देंगे. जी हां, इस अंक में आपकी इनसे मुलाकात तय है. इस कड़ी में कोपरनिकस के जीवन की करुण गाथा भी आपके सामने आएगी.

'मानव का विकास' की हर कड़ी को ध्यान से सुनिए और अगर आप कोई सुझाव देना चाहते हैं तो इस पते पर लिखें—
'मानव का विकास', पोस्ट बॉक्स नं० 71, नई दिल्ली-110 001.

अगर आप धारावाहिक से जुड़ी वैज्ञानिक अवधारणाओं के बारे में आपके मन में कुछ सवाल जगे हैं तो इन्हें इस पते पर भेजें—
'मानव का विकास', राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद, टैक्नोलॉजी भवन, नया महरौली मार्ग, नई दिल्ली-110066.

इन सवालों को आगे प्रसारित होने वाले प्रश्नोत्तरी कार्यक्रमों में शामिल किया जा सकता है. ❑

अंटार्कटिका की ओर

❑ डा० पी०के० मुखर्जी

चर्चित पुस्तक : अंटार्कटिका की ओर; लेखक : दिलीप मधुकर सालवी; प्रकाशक : चिल्ड्रन्स बुक ट्रस्ट; नेहरू हाउस, 4 बहादुरशाह जफर मार्ग; नई दिल्ली-110002; पृष्ठ : 117; मूल्य : 14 रुपए.

❑ चारों ओर फैली दूधिया सफेदी, हमेशा तुषारझंझाओं के थपेड़ों को झेलता हुआ संसार का सबसे ऊंचा और निर्जन स्थान—यही है अंटार्कटिका या दक्षिण ध्रुव. जीवन के नाम पर इस महाद्वीप पर मिलते हैं केवल पेंग्विनों के झुंड, पानी में कलाबाजियां खाती सील या क्रिल मछली. पर हाल ही में मनुष्यों के कदम भी इस वीरान महाद्वीप पर पड़े हैं.

अंटार्कटिका की बर्फीली सतह के नीचे दबे तेल, खनिज तथा अन्यान्य बहुमूल्य सम्पदा ने राष्ट्रों का ध्यान अपनी तरफ खींचा है. तभी विभिन्न देशों के वैज्ञानिक दल इस बर्फीले प्रदेश पर शोध तथा अनुसंधान करने के लिए रवाना किए गए हैं. यहां तक कि मौसम के अध्ययन के लिए बड़े-बड़े गुब्बारे भी इस महाद्वीप से छोड़े गए हैं. शोध द्वारा वैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि अंटार्कटिका पर फैली बर्फ विश्व तापमान के नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है. चुनांचे अंटार्कटिका के नैसर्गिक पर्यावरण के साथ अनावश्यक छेड़छाड़ के भयंकर परिणाम भी हो सकते हैं.

समीक्ष्य पुस्तक नेहा और अजय नामक दो किशोरों की अंटार्कटिका महाद्वीप की रोमांचक यात्रा कथा है. नेहा और अजय अभियान दल के सहाय अंकल तथा दूसरे सदस्यों के साथ 'दक्षिण सम्राट' नामक जहाज में अपनी यात्रा प्रारंभ करते हैं. पोर्ट लुइस से गुजरता हुआ जहाज जब 'गरजते फोर्टीज' में पहुंचता है तो पाठकों की सांस ऊपर की ऊपर और नीचे की नीचे रह जाती है. दक्षिण अक्षांश के 40 और 50 अंश के बीच समुद्र के 'गरजते फोर्टीज' नामक क्षेत्र में भयंकर तूफानी हवाएं बिना किसी रोक-टोक के पुरजोर चलती हैं. तथा जहाज इस क्षेत्र में प्रवेश करने पर इस तरह डांवाडोल होना शुरू होता है जैसे भंवर में फंसी कोई कागज की नाव. कबड़ी ह्वेल और ह्वेलिंग स्टेशन का दर्शन लाभ उठाते हुए तथा समुद्रपथ की परेशानियों को साहसपूर्वक झेलते हुए अभियान दल के यात्री अन्ततः अंटार्कटिका आ पहुंचते हैं. हेलीकाप्टर द्वारा यह दल फिर 'दक्षिण गंगोत्री' नामक भारतीय शिविर में पहुंचता है. यहीं नेहा के साथ एक बड़ी रोमांचक घटना घटित होती है. वह वाइटआउट यानी सफेद बर्फीले धुंध में डा० डायस नामक वैज्ञानिक के साथ फंस जाती है. इस घटना को पढ़ते-पढ़ते सचमुच पाठकों के रोंगटे खड़े हो जाते हैं. पर अन्त में सब ठीक हो जाता है और अपने अदम्य साहसिक कार्य के लिए नेहा को पुरस्कार भी मिलता है.

प्रवाहमय शैली में लिखी गई यह पुस्तक पाठकों को यात्रा-कथा का रोमांच और मजा तो देती ही है उनकी उत्सुकता को भी शुरू से अन्त तक बनाए रखती है. किशोर उम्र के पाठकों में साहसिक अभियानों के प्रति अभिरुचि और साहस ज़गाने में पुस्तक निस्संदेह सफल होगी. अंटार्कटिका के बारे में महत्वपूर्ण वैज्ञानिक जानकारी भी पुस्तक में दी गई है.

समीक्ष्य पुस्तक लेखक की 'ए पैसेज टु अंटार्कटिका' शीर्षक अंग्रेजी पुस्तक का हिन्दी रूपान्तर है. अनुवाद ठीक-ठाक है, पर कहीं-कहीं अनुवाद में जटिल शब्द आ गए हैं जैसे प्रवाल भित्तियों (पृष्ठ 26) की जगह मूंगे की चट्टानों का इस्तेमाल किया जा सकता था. उसी तरह पृष्ठ 72 पर पश्चप्रवण (रिसीडिंग) हिमनदी की जगह सूखती हिमनदी का उपयोग हो सकता था. जियोस्टेशनरी उपग्रह का सरल और सटीक अनुवाद भूस्थिर उपग्रह है, जबकि अनुवादिका ने तुल्यकाली उपग्रह (पृष्ठ 77) का इस्तेमाल किया है. कई अंग्रेजी के शब्द ज्यों के त्यों छोड़ दिए गए हैं जैसे पृष्ठ 98 पर प्री-फैब्रिकेटिड. क्या इसकी जगह पूर्वनिर्मित शब्द का इस्तेमाल नहीं हो सकता था? कई जगह अशुद्ध हिन्दी शब्दों का उपयोग भी हुआ है जैसे पृष्ठ 23 पर कौतुहल की जगह कुतूहल का इस्तेमाल. इसी गलती को आगे भी कई जगह दोहराया गया है और भी कई तरह की अनुवाद की खामियां हैं जो पुस्तक के प्रवाह में निस्संदेह बाधा उत्पन्न करती हैं. पर मूल पुस्तक यकीनन अंटार्कटिका की अनोखी और रोमांचक यात्रा-कथा का आनन्द पाठकों को देने के साथ-साथ रोचक और ज्ञानवर्द्धक भी है. निर्ज लाइब्रेरी तथा स्कूल पुस्तकालयों में य पुस्तक अवश्य होनी चाहिए. □

पाठकों के लिए सूचना

- पत्रिका का शुल्क मनीआर्डर द्वारा नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन को भेजिए. मनीआर्डर कूपन पर पत्रिका का नाम, शुल्क की राशि, अवधि (एक साल) स्पष्ट लिखिए. मनीआर्डर फार्म के पीछे दिए गए स्थान पर 'भेजने वाले का नाम व पता' के अन्तर्गत बड़े अक्षरों में पूरा नाम व पता साफ-साफ लिखिए.
- शुल्क का नवीकरण कराते समय या पत्र-व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक संख्या का उल्लेख अवश्य कीजिए. नवीकरण काफी समय पहले कराइए ताकि पत्रिका मिलने में रुकावट न आए.

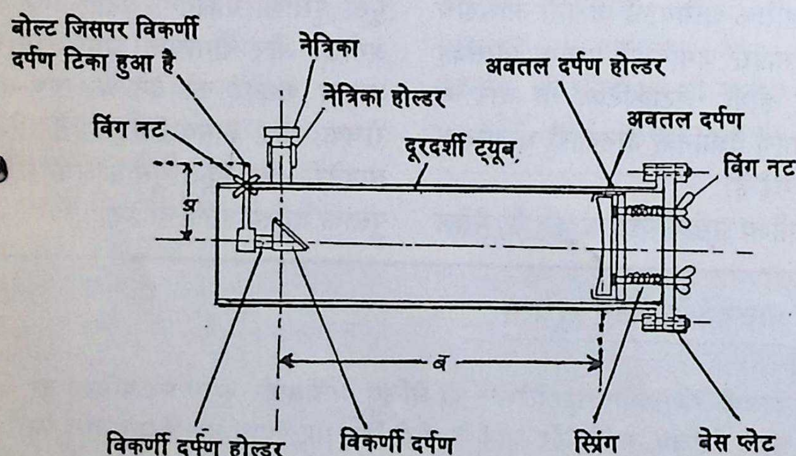
आइए दूरदर्शी बनाएं—3

❑ आशुतोष मिश्र

इस लेखमाला के पिछले दो भागों में आपने पढ़ा कि दूरदर्शी का सबसे महत्वपूर्ण भाग—अवतल दर्पण आप किस प्रकार घिसकर और पॉलिश करके स्वयं बना सकते हैं. यदि आप गंभीरता से दूरदर्शी बनाने पर विचार कर रहे हैं, तो हमारी आपको सलाह है कि आप अवतल दर्पण स्वयं ही बनाएं—बाज़ार से खरीदने के झंझट में न पड़ें, क्योंकि दर्पण बनाने की प्रक्रिया अत्यंत रोचक है, निर्माण के दौरान आप बहुत-सा ज्ञान अर्जित करेंगे और बहुत कम खर्च में उच्च गुणवत्ता का दूरदर्शी बना सकेंगे जिससे आप अंतरिक्ष की गहराइयों में बहुत दूर तक जा सकते हैं. इस बात से न डरें कि दर्पण बनेगा कि नहीं. यदि आप भाग-1 व भाग-2 में दिए निर्देशों का सख्ती से पालन करते हैं तो दर्पण अवश्य बनेगा.

अगर आपने निर्माण कार्य प्रारंभ कर दिया है तो अब तक आपके दर्पण का एलुमिनीकरण हो चुका होगा. अब निर्माण का जो कार्य शेष बचा है, वह इस भाग में विस्तारपूर्वक बताया जाएगा. हो सकता है आप दर्पण का निर्माण स्वयं न करना चाहें. भाग-1 में दर्पण के विषय में जो जानकारी दी गई है, उसके अनुसार आप वैसा ही दर्पण बाज़ार से खरीद सकते हैं, और इस भाग में दिए निर्देशों की सहायता से उसे अपने दूरदर्शी में लगा सकते हैं.

चित्र-1 में दूरदर्शी के अंदर विभिन्न भागों की स्थिति दर्शाई गई है. दूरदर्शी के कार्य करने का सिद्धांत तो अत्यंत सरल होता है, किन्तु वास्तविकता में अलग-अलग अवयवों को एकीकृत करके उसे कार्य हेतु तैयार करना भी एक पेचीदा प्रक्रिया है. जब आप इस लेख को पढ़कर दूरदर्शी बनाएंगे तो एक बात अवश्य ध्यान में रखें—लेख में दी गई सभी डिज़ाइनें एक प्रकार के दूरदर्शी के लिए लागू होती हैं. ऐसा नहीं है कि दूरदर्शी किसी अन्य विधि से नहीं बनाया जा सकता है. इसलिए किसी भी स्थान पर अपनी कल्पना शक्ति का उपयोग करने में न हिचकें—हो सकता है आप और भी अच्छा डिज़ाइन बना सकने में सफल हों, जिसे इस्तेमाल में लाना अधिक आसान हो.



चित्र-1 : दूरदर्शी के अंदर विभिन्न भागों की व्यवस्था

दूरदर्शी के विभिन्न भाग :

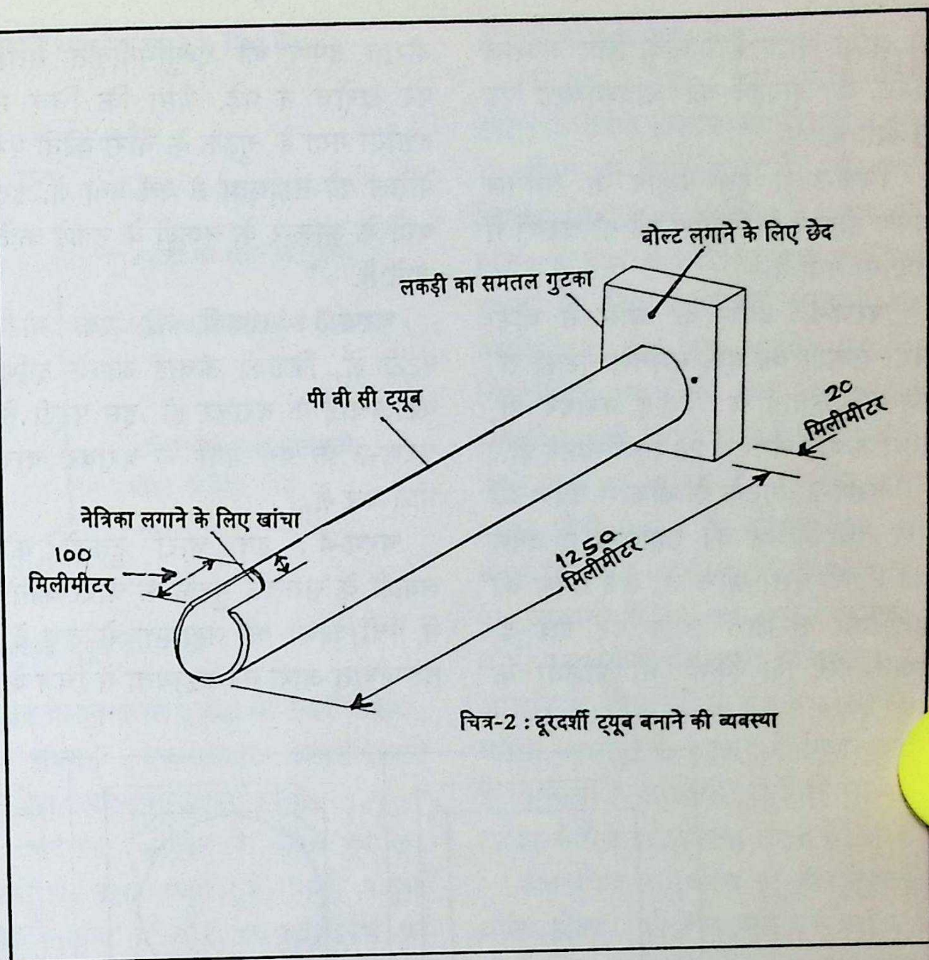
(1) ट्यूब : दूरदर्शी में प्रयुक्त होने वाले सभी भाग एक ट्यूब के अंदर व्यवस्थित होते हैं. यह ट्यूब पी वी सी (पॉलीविनायल क्लोराइड) अथवा लकड़ी की बनी हो सकती है. धातु की ट्यूब हम इसलिए इस्तेमाल में नहीं लाते क्योंकि (अ) उसका भार अधिक होता है तथा (आ) वातावरण के तापमान में परिवर्तनों के फलस्वरूप उसके आकार में परिवर्तन आ सकते हैं जिससे नेत्रिका पर बनने वाली छाया भलीभांति नहीं आएगी. पी वी सी की ट्यूब का (अ) भार बहुत कम होता है. (आ) ये ट्यूबें अलग-अलग व्यास की आसानी से मिल जाती हैं, जिससे आप जिस व्यास का दर्पण बनाएं, उसके अनुरूप ट्यूब आप बाज़ार से खरीद सकते हैं. (इ) तापमान का परिवर्तन इन पर असर नहीं करता है. इन बातों को देखते हुए आपको

सलाए दी जाएगी कि दर्पण के व्यास से लगभग 15 मिलीमीटर बड़े व्यास की पी वी सी ट्यूब जिसकी लंबाई फोक्सी दूरी के बराबर हो, आप खरीद लें.

इस ट्यूब के एक छोर पर अवतल दर्पण हमेशा और दूसरे छोर पर विकर्णी दर्पण लगेगा जो आने वाली प्रकाश पुंज को 45 डिग्री के कोण से घुमाकर नेत्रिका की ओर मोड़ देगा.

चित्र-2 को ध्यान से देखिए. चित्र में वैसी ही ट्यूब प्रदर्शित है जैसी आपको इस्तेमाल में लानी है. ट्यूब के एक छोर पर लगभग 100 मिलीमीटर का एक खांचा काट लीजिए. विकर्णी दर्पण से जुड़ा वोल्ट व नेत्रिका होल्डर इस खांचे पर ही लगाए जाएंगे. इसके पश्चात् 20 मिलीमीटर ऊंचाई का लकड़ी का एक समतल गुटका लें और उसके मध्य में ट्यूब के व्यास के बराबर एक बड़ा छेद बना लें. गुटके पर 120 डिग्री के कोणों पर तीन छेद भी कर लें, जिससे कि गुटके को बेस प्लेट पर नट की सहायता से कसा जा सके. गुटके के बीच में आपने जो छेद किया है, उसमें ट्यूब को फंसा दें और एरेल्डाइट या किसी अन्य चिपकाने वाले पदार्थ (एडहेसिव) से अच्छी तरह चिपका दें, जिससे कि ट्यूब गुटके में ही फंसा रहे—बाहर न निकले. इस प्रक्रिया के समाप्त हो जाने पर आपकी ट्यूब **चित्र-2** की भांति लगेगी.

नोट : यह आवश्यक नहीं कि ट्यूब गोलाकार ही हो. कुछ लोग चौकोर ट्यूबों का भी उपयोग करते हैं क्योंकि उन्हें बनाना आसान होता है, परंतु चौकोर ट्यूब को आरोपण की प्रक्रिया में अपने अक्ष पर घुमाना कठिन कार्य होता है, इसलिए आप गोल ट्यूब का ही उपयोग करें तो अच्छा रहेगा. कभी-कभी शौकिया खगोलशास्त्री ऐसे दूरदर्शी भी बनाते हैं जिनमें ट्यूब ही नहीं लगती! चौंकिए नहीं—ट्यूब का मुख्य उद्देश्य चारों ओर के प्रकाश को दर्पण पर आने से बचाना होता है, ताकि जो प्रकाश दर्पण पर आए वह आकाश का ही हो. साथ ही साथ ट्यूब दूरदर्शी के विभिन्न भागों को एकीकृत करने में सहायता प्रदान करती है. बिना ट्यूब वाले दूरदर्शी ऐसे स्थानों पर लगाए जाते हैं जहां शहर से आने वाला प्रकाश विघ्न न उत्पन्न करे और ऐसे दूरदर्शियों में अवतल दर्पण व नेत्रिका को लगाने की युक्तियां अत्यंत पेचीदा होती हैं.



चित्र-2 : दूरदर्शी ट्यूब बनाने की व्यवस्था

(2) दर्पण होल्डर : दूरदर्शी का यह अत्यंत महत्वपूर्ण भाग होता है, इसलिए इसे अत्यंत सावधानी से बनाया जाना चाहिए. इस होल्डर में ही अवतल दर्पण कसा रहता है. दर्पण होल्डर इस प्रकार का होना चाहिए कि (अ) उसमें अवतल दर्पण भली भांति लगा रहे और बाहर न गिरे, साथ ही साथ दर्पण इतना न कसा हो कि दबाव के कारण उसके आकार में परिवर्तन आ जाएं (आप सोचेंगे कि भला एक इंच मोटे दर्पण में दबाव के कारण आखिर कितना परिवर्तन होगा? देखने में तो यह परिवर्तन पता नहीं चलेगा, परंतु उसके द्वारा बनने वाले प्रतिबिंब में बहुत से परिवर्तन उत्पन्न हो जाते हैं). होल्डर में ऐसी युक्ति होनी चाहिए कि दर्पण को अपने अक्ष पर थोड़ा बहुत झुकाया जा सके. इस लेख में आप आगे पढ़ेंगे कि समांतरण (कालिमेशन) के दौरान अवतल दर्पण और विकर्णी दर्पण के केंद्रों को एक सीध

में लाया जाता है जिसके लिए अवतल दर्पण को झुकाने की आवश्यकता पड़ सकती है.

चित्र-3 में इस प्रकार के अवतल दर्पण होल्डर के निर्माण को नौ चरणों में दर्शाया गया है—

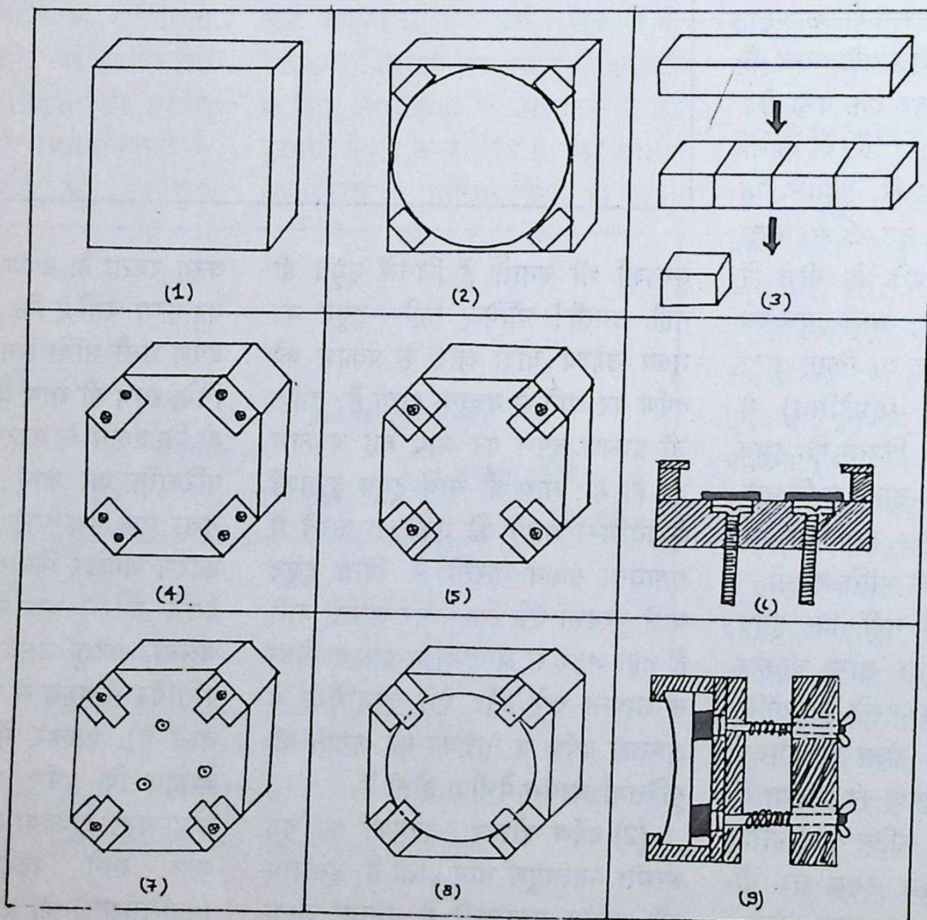
चरण-1 : दर्पण के व्यास से थोड़ा बड़ा लकड़ी का एक समतल गुटका लें, जिसकी लंबाई व चौड़ाई बराबर हों, तथा ऊंचाई लगभग 20 मिलीमीटर हो.

चरण-2 : गुटके के बीच में दर्पण को रखें तथा पेंसिल की सहायता से दर्पण की बाहरी रेखा खींच लें. अब दर्पण को हटा कर सुरक्षित स्थान पर रख दें. ध्यान रखें कि किसी भी प्रक्रिया के दौरान दर्पण की एल्युमिनीकृत सतह पर खरोंच न पड़े. जैसा कि चित्र में दर्शाया गया है, गुटके के चारों कोनों पर पेंसिल की सहायता से वर्ग बना लें. इन वर्गों के आकार के लकड़ी के टुकड़े काटे जाने हैं.

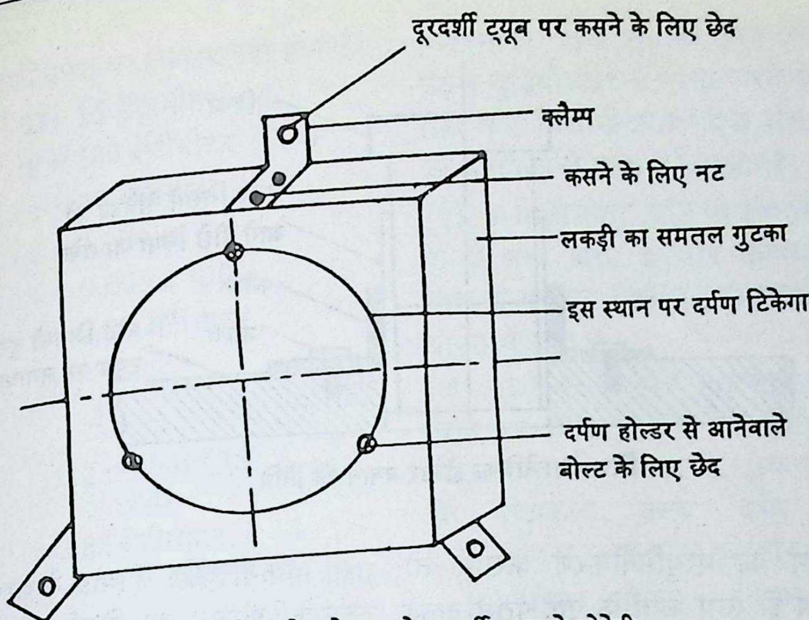
चरण-3 : लकड़ी की एक मोटी पट्टी लें, जिसकी ऊंचाई आपके दर्पण की ऊंचाई के बराबर हो. इस पट्टी से चरण-2 के बने वर्गों के बराबर चार भाग कर लें.

चरण-4 : इन चारों टुकड़ों को लकड़ी के समतल गुटके के चारों कोनों में पेचों/कीलों की सहायता से जड़ दें. तत्पश्चात् आरी की सहायता से चित्र के अनुसार गुटके को आकार दे दें, जिससे कि वह देखने में अच्छा लगे.

चरण-5 : दर्पण को इस होल्डर में फंसा कर देखें. दर्पण होल्डर के ऊपर लगे चार वर्गों में भलीभांति फिट हो जाना चाहिए. यदि ऐसा नहीं होता है, तो किसी एक वर्ग को निकाल कर पुनः व्यवस्थित कर दें. दर्पण को हटा दें और चारों वर्गों के ऊपर लकड़ी अथवा प्लाइवुड की पतली पट्टियां जड़ दें जैसा चित्र में प्रदर्शित है. इन पट्टियों का उद्देश्य दर्पण को बाहर न आने देना है. साथ ही साथ ये पट्टियां इतनी लंबी भी नहीं होनी चाहिएं कि वे दर्पण की सतह पर अधिक दूरी तक आ जाएं. इसलिए



चित्र-3 : अवतल दर्पण होल्डर का निर्माण—विभिन्न चरण



चित्र-4 : बेस प्लेट जो कि दर्पण होल्डर को दूरदर्शी ट्यूब से जोड़ेगी

ध्यान में रखें कि पट्टियां बस उतनी ही लंबी हों कि वे दर्पण के छोर को दबाए रखें और उसे बाहर न आने दें.

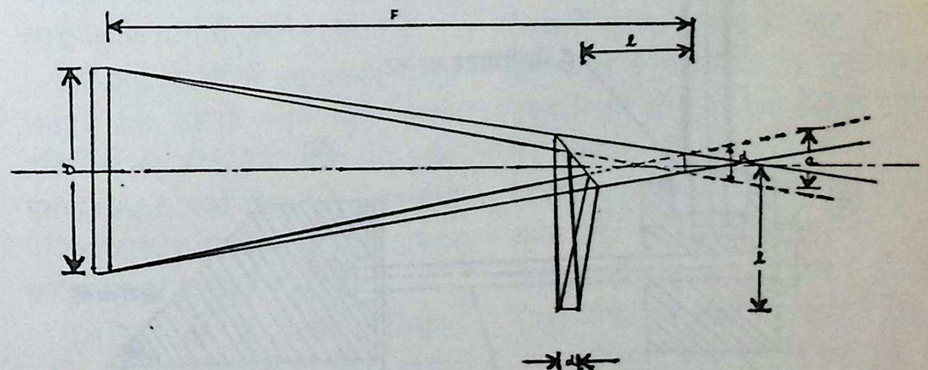
चरण-6 : होल्डर के बीच में 6 मिलीमीटर व्यास के तीन छेद, 120 डिग्री के अंतराल पर करें, और छेदों को प्रतिमज्ज (काउंटरसिंक) कर दें अर्थात जिस सतह पर छेद बनाया जा रहा है, उसकी ऊपरी सतह को इच्छित व्यास से कुछ बड़ा बनाएं जिससे कि छेद में लगने वाला बोल्ट सतह पर न रह कर पदार्थ के अंदर घुसा रहे. यह स्थिति चित्र में भलीभांति प्रदर्शित है. अब इन छेदों में 6 मिलीमीटर व्यास के बोल्ट लगा दें और नट की सहायता से कस दें. अच्छा होगा कि नट कसने के पूर्व छेदों में एरेल्डाइट भी लगा दें जिससे कि बोल्ट छेद के अंदर जकड़ा रहे और इधर-उधर न हिले. बोल्ट कसे जाने के पश्चात् होल्डर की ऊपरी सतह पर रबड़ के पतले टुकड़े छेदों के ऊपर चिपका दें. इस चरण के समाप्त होने पर आपका होल्डर चित्र-3 (चरण-6) की तरह दिखेगा. आपका अवतल दर्पण रबड़ के इन पतले टुकड़ों के ऊपर टिकेगा.

चरण-7 : यह आपका होल्डर सामने से देखने पर ऐसा प्रतीत होगा.

चरण-8 : होल्डर के कोनों पर लगे वर्गों के ऊपर कसी हुई पतली पट्टियों को निकाल दें और अवतल दर्पण को ठीक से क़स दें. अब उन पट्टियों को भी वर्गों पर कस दें, जिससे कि दर्पण होल्डर में भलीभांति बैठा रहे.

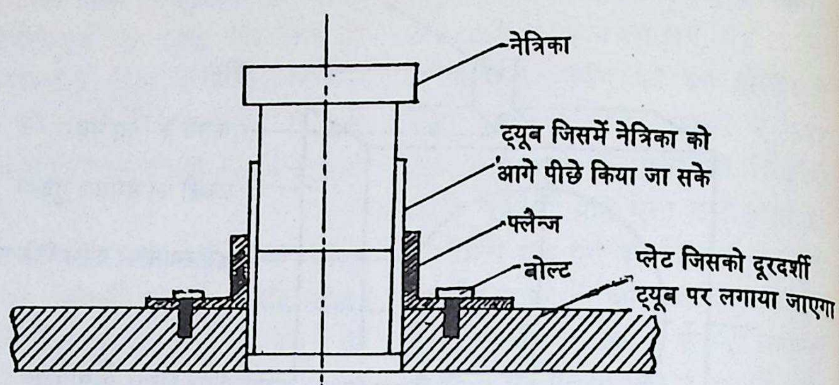
(3) बेस प्लेट : इस प्लेट का इस्तेमाल दर्पण होल्डर को दूरदर्शी ट्यूब से जोड़ने के लिए होता है. प्लेट का निर्माण चित्र-4 में प्रदर्शित है. दर्पण के व्यास से बड़ा लकड़ी का एक समतल टुकड़ा लें, जिसकी ऊंचाई लगभग 10 मिलीमीटर हो. इस गुटके पर 6 मिलीमीटर व्यास के छेद ठीक उन्हीं स्थानों पर करें, जहां पर दर्पण होल्डर से आने वाले बोल्ट लगे हैं. यह प्लेट इस प्रकार होनी चाहिए कि दर्पण होल्डर के बोल्ट इस प्लेट पर बिना किसी व्यवधान के, आसानी से जा सकें. प्लेट के तीन छोरों पर अंग्रेजी वर्णमाला के अक्षर 'L' आकार के तीन क्लैम्प जड़ दें (धातु के क्लैम्प आसानी से बाज़ार में मिल जाते हैं, अन्यथा आप स्वयं एल्युमिनियम की चादर से ऐसे क्लैम्प बना सकते हैं).

अब चित्र-3 (चरण-9) के अनुसार दर्पण होल्डर को बेस प्लेट पर कस दें. दोनों को आपस में जोड़ने से पूर्व दर्पण होल्डर से आने वाले बोल्ट में स्प्रिंग भी



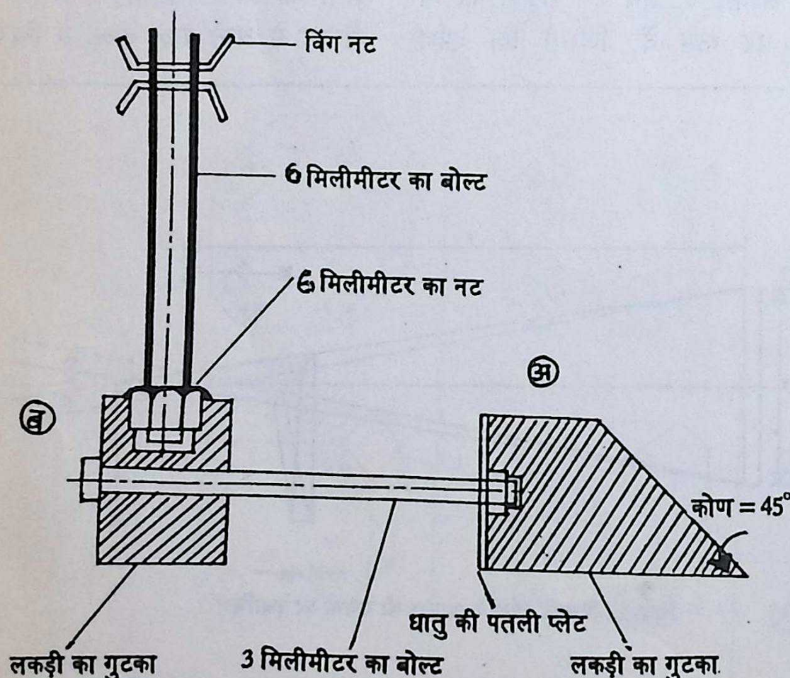
चित्र-5 : विकर्णी दर्पण के आकार की गणना का रेखाचित्र

डाल दें, और कसने के लिए विंग नट का उपयोग करें. विंग नट से आप बोल्ट को आसानी से, बिना किसी रिंच की सहायता से कस सकते हैं. अब आप इन तीन नटों की सहायता से अवतल दर्पण होल्डर को उसके अक्ष पर आगे पीछे झुका सकते हैं और इस प्रकार दर्पण सतह की स्थिति को परिवर्तित कर सकते हैं.



चित्र–7 : नेत्रिका होल्डर बनाने की विधि

(4) विकर्णी दर्पण : यह एक छोटा समतल दर्पण होता है, जिसका उद्देश्य अवतल दर्पण से आने वाली प्रकाश पुंज को 90 डिग्री के कोण से घुमाना होता है, जिससे कि प्रतिबिंब ट्यूब के ऊपर लगी नेत्रिका पर बने. अच्छे विकर्णी दर्पण भी अवतल दर्पण की भांति ऊपरी सतह पर एल्युमिनीकृत होते हैं. यदि आप चाहते हैं कि आपके दूरदर्शी की गुणवत्ता बनी रहे, तो आपको आम समतल दर्पण के बजाए ऊपरी सतह पर एल्युमिनीकृत समतल दर्पण इस्तेमाल में लाना चाहिए. इसलिए जब आप अवतल दर्पण का एल्युमिनीकरण कराएं, तो साथ ही साथ कांच के एक पतले टुकड़े पर एल्युमिनीकरण करवा लें. यदि आप ऐसा विकर्णी दर्पण खरीदना चाहते हैं, तो आपको "एसोसिएशन ऑफ बैंगलोर एमेच्योर एस्ट्रोनॉमर्स, कर्नाटक राज्य विज्ञान परिषद्, बैंगलोर 560012" से उच्च क्वालिटी के विकर्णी दर्पण प्राप्त हो सकते हैं.



चित्र-6:विकर्णी दर्पण को दूरदर्शी ट्यूब में लगाने की व्यवस्था

विकर्णी दर्पण उपयोग में लाने से पूर्व उसके आकार का निर्धारण कर लेना अत्यंत आवश्यक होता है. चित्र-5 में रेखाचित्र के माध्यम से यह विधि प्रदर्शित है.

चित्र में :

D = अवतल दर्पण का व्यास
d = अवतल दर्पण द्वारा बने प्रतिबिंब का व्यास
e = विकर्णी दर्पण के केंद्र से नेत्रिका की दूरी—यह इस पर निर्भर करती है कि आप ट्यूब के कितने बाहर छाया देखना चाहते हैं
a = विकर्णी दर्पण का आकार
F = अवतल दर्पण की फोकसी दूरी

विकर्णी दर्पण का आकार इस सूत्र से निकाला जा सकता है:

(अ) $$a = \frac{(D-d)e}{F} + d$$

जहां — (आ) $d = 0.009\ F$.

उदाहरण—मान लीजिए आपके अवतल दर्पण का व्यास 15 सेंटीमीटर है, तथा फोक्सी दूरी 120 सेंटीमीटर है. यदि आप चाहते हैं कि अवतल दर्पण का प्रतिबिंब केंद्र से 15 सेंटीमीटर की दूरी पर बने,

तो विकर्णी दर्पण का आकार क्या होगा?

यहां — D = 15 सेंटीमीटर

F = 120 सेंटीमीटर

e = 15 सेंटीमीटर

तो — d = 0.009 F

= 0.009 x 120

d = 1.08 सेंटीमीटर

तथा, $a = \frac{(D-d)\,e}{F} + d$

$= \frac{(15-1.08) \times 15}{120} + 1.08$

= 2.82 सेंटीमीटर.

इसलिए आपके उपयोग के लिए 2.85 (या 2.9) x 3.9 सेंटीमीटर का विकर्णी दर्पण उपयुक्त रहेगा

(5) विकर्णी दर्पण होल्डर : विकर्णी दर्पण ट्यूब के अंदर फ़ोकसी दूरी से कुछ दूर पहले लगाया जाता है. यह दर्पण, अवतल दर्पण के अक्ष की सीध में 45 डिग्री के कोण पर लगा होना चाहिए जिससे कि यह अवतल दर्पण से आने वाले प्रकाश को 90 डिग्री के कोण से ट्यूब के बाहर मोड़ दे. इस प्रकार की युक्ति बनाने की विधि चित्र-6 में समझाई गई है.

(अ) लकड़ी का एक मोटा सा गुटका लें और एक छोर पर 45 डिग्री के कोण पर काट कर वेज का आकार दे दें. 45 डिग्री के इस ढलान पर ही विकर्णी दर्पण को लगाया जाएगा.

(आ) गुटके के दूसरे छोर पर तीन मिलीमीटर व्यास का लगभग 10 मिलीमीटर गहरा छेद बना लें और छेद में चूड़ियां काट लें, जिससे कि तीन मिलीमीटर का बोल्ट उसमें आसानी से कसा जा सके.

(इ) लकड़ी का एक अन्य गुटका लें और उसके बीच में 3 मिलीमीटर व्यास का आरपार छेद बना लें. यह गुटका चित्र-6 में (ब) से अंकित है. चित्र के ही अनुसार इस (ब) गुटके के ऊपरी भाग में 6 मिलीमीटर व्यास का 15 मिलीमीटर गहरा एक छेद बना लें और उसमें चूड़ियां काट लें. ऐसा करने से इस छिद्र में 6 मिलीमीटर का एक बोल्ट नट की सहायता से कसा जा सकता है.

(ई) 3 मिलीमीटर और 6 मिलीमीटर के दो लम्बे बोल्ट लें और उनके द्वारा चित्र के अनुसार (अ) व (ब) गुटकों को आपस में जोड़ दें.

(अ) गुटके के 45 डिग्री के ढलान वाली सतह पर विकर्णी दर्पण को एरेल्डाइट की सहायता से चिपका दें. (ध्यान रखें कि चिपकाते समय दर्पण की एल्युमिनीकृत सतह ऊपर की ओर हो).

(6) नेत्रिका होल्डर : नेत्रिका का उद्देश्य अवतल दर्पण से आने वाली किरणों (जो कि विकर्णी दर्पण द्वारा 90 डिग्री से मोड़ी जा चुकी हैं) से आवर्धित प्रतिबिंब का निर्माण करना होता है. ये नेत्रिकाएं बाज़ार में आसानी से उपलब्ध होती हैं और इनकी आवर्धन क्षमताएं भिन्न-भिन्न (जैसे 10x–10 गुना, 25x–25 गुना, आदि) होती हैं. इनका उपयोग करके आप अवतल दर्पण के प्रतिबिंब का आकार जितना चाहें बढ़ा सकते हैं. अच्छा होगा कि आप दो आवर्धन क्षमताओं, 10x तथा 25x की नेत्रिकाएं, जिनकी फ़ोकसी दूरी 25 मिलीमीटर हो, बाजार से खरीद लें. बाज़ार में ये रैम्सडेन आइपीस के नाम से उपलब्ध होती हैं.

नेत्रिका दूरदर्शी में इस प्रकार लगनी चाहिए कि उसको आगे पीछे करके प्रतिबिंब को फ़ोकसित किया जा सके. इसके लिए आपको **चित्र-7** में दिया गया नेत्रिका होल्डर बनाना होगा. ऐसे होल्डर को बनाने की विधि निम्न हैः

(अ) पी वी सी पाइप (जिसका व्यास दर्पण के व्यास से कुछ अधिक हो—उतने ही व्यास की ट्यूब जो कि आपने मुख्य ट्यूब के लिए प्रयुक्त की है) के 15 सेंटीमीटर के दो टुकड़े लें और दोनों को बीच में से सफ़ाई से काट लें—इससे आपको 15 सेंटीमीटर लंबे चार अर्धवृत्ताकार टुकड़े मिलेंगे. इन चारों टुकड़ों को एक के ऊपर एक रखते हुए एरेल्डाइट द्वारा चिपका कर एक मोटी परत तैयार कर लें.

(आ) इस अर्धवृत्ताकार प्लेट के बीच में नेत्रिका के व्यास से 3 मिलीमीटर अधिक व्यास का एक आरपार छेद बना लें.

(इ) इस छेद में प्लास्टिक की एक ट्यूब फंसाकर, एरेल्डाइट से चिपका दें अथवा फ्लैन्ज ('L' आकार का) व बोल्ट की सहायता से जड़ दें.

(ई) प्लास्टिक की इस ट्यूब में ही नेत्रिका लगेगी और उसे सरका कर आगे पीछे किया जा सकता है जिससे कि प्रतिबिंब फ़ोकसित हो सके.

(ड) इस नेत्रिका होल्डर को दूरदर्शी ट्यूब में बने खांचे (दिखें चित्र-2) पर रख दें और पेचों की सहायता से कस दें.

इस चरण के समाप्त होने के साथ आपके दूरदर्शी ट्यूब में लगने वाले सभी भाग तैयार हैं. आपको बस इतना करना है कि दर्पण होल्डर व उससे जुड़ी बेस प्लेट को नट बोल्ट की सहायता से दूरदर्शी ट्यूब के सिरे पर लगे लकड़ी के गुटके से जोड़ दें. जिससे कि दर्पण ट्यूब के अंदर चला जाए. साथ ही साथ विकर्णी दर्पण होल्डर के भाग (ब) से आने वाले 6 मिलीमीटर के बोल्ट को भी ट्यूब में बने खांचे पर कसे नेत्रिका होल्डर पर विंगनट की सहायता से लगा दें. विकर्णी दर्पण होल्डर कसते समय दो बातें ध्यान में रखें—(अ) दर्पण का अक्ष, अवतल दर्पण के अक्ष की सीध में हो तथा (आ) नेत्रिका से देखने पर आपको विकर्णी दर्पण की सतह स्पष्ट दिखाई देती रहे.

अगले अंक में आपको दोनों दर्पणों को एक सीध में लाए जाने की प्रक्रिया अर्थात् समांतरण (कालिमेशन) के विषय में विस्तारपूर्वक बताया जाएगा. ☐

संख्याओं के आश्चर्यजनक रिश्ते

❑ डा० पी०के० मुखर्जी

❑ रिश्ते केवल मानव संबंधों में ही नहीं पाए जाते बल्कि संख्याओं के भी आपस में आश्चर्यजनक रिश्ते होते हैं. अब क्रमागत संख्याओं 1, 2, 3, 4, 5, ... को ही लें. इनके बीच के संबंधों को देखकर सचमुच दंग रह जाना पड़ता है. यह देखकर आश्चर्य होता है कि इन संख्याओं के आपस में ऐसे मनोरंजक संबंध भी हो सकते हैं:

$1+2=3$

$4+5+6=7+8$

$9+10+11+12=13+14+15$

$16+17+18+19+20=21+22+23+24.$

आप देखेंगे कि हर अगले उदाहरण ों दोनों तरफ एक-एक संख्या बढ़ जाती . पर सबसे अधिक गौर करने वाली ात यह है कि हर उदाहरण के बाईं रफ की प्रथम संख्या दाईं तरफ आने ाले कुल संख्याओं के वर्ग के बराबर है. सि, दूसरे उदाहरण में दाईं तरफ कुल ो संख्याएं हैं और बाईं तरफ की पहली ख्या 2 के वर्ग के बराबर है. इसी तरह ीसरे उदाहरण में बाईं तरफ की पहली ख्या 9 है जो दाईं तरफ की कुल ख्याओं यानी 3 के वर्ग के बराबर है.

गौर करने पर एक और महत्वपूर्ण ण आप देख सकते हैं. दाईं तरफ की पेक्षा बाईं तरफ एक संख्या अधिक है. ब इन गुणों को ध्यान में रखकर ऐसे दाहरणों को आप बड़ी सहजता से ख सकते हैं. मान लीजिए कि दाहिनी रफ आपको आठ क्रमागत संख्याएं ी हैं तो बाईं तरफ की पहली संख्या का वर्ग यानी 64 होगी. बाईं तरफ दाईं तरफ से एक अधिक यानी नौ संख्याएं आपको लेनी होगी. अब 64 से शुरू करके नौ संख्याएं आप बाएं तरफ लिखिए और बाकी आठ संख्याएं दाहिनी तरफ:

$64+65+66+67+68+69+70+71+72$
$=73+74+75+76+77+78+79+80$

इस तरह और भी उदाहरण आसानी से दिए जा सकते हैं. आपने ऊपर देखा कि दाईं तरफ **क** संख्याएं हैं तो पहली संख्या **क** का वर्ग यानी **क**^{2} होगी. किसी भी उदाहरण में कुल (क+1) + क = 2 क+1 संख्याएं होंगी. मजे की बात यह है कि बाईं तरफ की पहली संख्या के वर्ग से अगर हम एक घटाएं और परिणाम में कुल संख्या के मान को जोड़ें तो हमें दाहिनी तरफ की अंतिम संख्या प्राप्त हो जाएगी. यानी अंतिम संख्या होगी:

क^2 − 1+2**क**+1=**क**(**क**+2)

ऊपर के उदाहरण में चूंकि दाहिनी तरफ आठ संख्याएं हैं इसलिए अंतिम संख्या $8 \times (8+2)=80$ होगी.

पाइथागोरस प्रमेय से तो आप सब भली-भांति परिचित हैं. इस प्रमेय के अनुसार किसी भी समकोण त्रिभुज के कर्ण का वर्ग उसके बाकी दोनों भुजाओं के वर्ग के बराबर होता है. अगर कर्ण का मान 5 इकाई हो तथा बाकी दोनों भुजाओं के मान क्रमशः 3 व 4 इकाई हों तो इस प्रमेय के अनुसार:

$3^2+4^2=5^2$

ऊपर के उदाहरण में तीन क्रमागत संख्याओं का इस्तेमाल हुआ है. क्या ऐसे अन्य उदाहरण आप दे सकते हैं? तीन क्रमागत संख्याओं द्वारा तो ऐसे अन्य उदाहरण देना संभव नहीं पर पांच, सात, आठ आदि क्रमागत संख्याओं के इस्तेमाल से ऐसे कई उदाहरण दिए जा सकते हैं:

$10^2+11^2+12^2+=13^2+14^2$

$21^2+22^2+23^2+24^2=25^2+26^2+27^2$

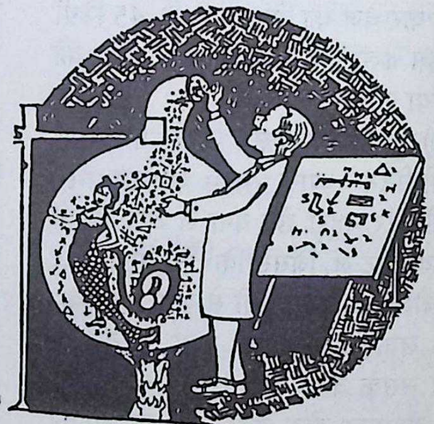
$36^2+37^2+38^2+39^2+40^2=41^2+42^2+43^2+44^2$

अन्य उदाहरणों को लिखने के लिए कुछ गुणों को हमें ध्यान में रखना होगा. अगर दाईं तरफ **क** संख्याएं हैं तो बाईं तरफ **क**+1 संख्याएं होंगी. बाईं तरफ की पहली संख्या **क** (2**क**+1) तथा दाईं तरफ की अंतिम संख्या **क** (2**क**+3) होगी. अतः अगर दाईं तरफ हमें पांच संख्याएं लेनी हैं तो बाईं तरफ की पहली संख्या $5 \times (2 \times 5+1)=55$ तथा दाईं तरफ की अंतिम संख्या $5 \times (2 \times 5+3)=65$ होगी. इस तरह हम इस उदाहरण को लिख सकते हैं:

$55^2+56^2+57^2+58^2+59^2+60^2$
$=61^2+62^2+63^2+64^2+65^2$

तब आपके लिए एक के बाद एक ऐसे उदाहरण लिख पाना एकदम सहज है.

आइए अब संख्याओं द्वारा कुछ हल्का-फुल्का मनोरंजन किया जाए. कुछ संख्याओं के जोड़ को अगर हम उल्टा



करें तो हमें उन्हीं संख्याओं का गुणनफल परिणाम प्राप्त हो जाता है:

$9+9=18$; $9 \times 9=81$

$24+3=27$; $24 \times 3=72$

$47+2=49$; $47 \times 2=94$

$497+2=499$; $497 \times 2=994$

कुछ क्रमागत संख्याएं ऐसी हैं जिनका वर्ग लेने पर परिणाम में हूबहू वही के वही अंक मौजूद होते हैं:

$13^2=169$; $14^2=196$

$157^2=24649$; $158^2=24964$

$913^2=833569$; $914^2=835396$

दो अंकों से बनी संख्याओं के कुछ युग्म ऐसे होते हैं कि उन संख्याओं को उलट कर उनका गुणनफल लेने पर परिणाम मूल संख्याओं के गुणनफल के बराबर ही होता है:

$12 \times 42=21 \times 24$; $23 \times 96=32 \times 69$;

$12 \times 63=21 \times 36$; $24 \times 63=42 \times 36$

$12 \times 84=21 \times 84$; $24 \times 84=42 \times 48$

$13 \times 62=31 \times 26$; $26 \times 93=62 \times 39$

$13 \times 93=31 \times 39$; $34 \times 86=43 \times 68$

$14 \times 82=41 \times 28$; $36 \times 84=63 \times 48$

$23 \times 64=32 \times 46$; $46 \times 96=64 \times 69$

1 से लेकर 9 तक के अंकों से बनी संख्या 987654321 में अंकों के बीच धन चिन्हों का प्रयोग करके संख्या 99 को हम दो अलग तरीकों से लिख सकते हैं:

$9+8+7+65+4+3+2+1=99$

$9+8+7+6+5+43+21=99$

सात अंकों की संख्या 1234567 के अंकों के बीच धन चिन्हों के प्रयोग द्वारा भी संख्या 100 को दो तरह से लिखा जा सकता है:

$1+2+34+56+7=100$

$1+23+4+5+67=100$

अब नीचे दिए गए समीकरणों को ध्यान से देखिए. इनमें दोनों तरफ एक से ही अंकों का इस्तेमाल हुआ है:

$42 \div 3=4 \times 3+2$

$63 \div 3=6 \times 3+3$

$95 \div 5=9 \times 5+5$

$\sqrt{121}=12-1$

$\sqrt{64}=6+\sqrt{4}$

$\sqrt{49}=4+\sqrt{9}=9-\sqrt{4}$

$\sqrt{169}=16-\sqrt{9}=\sqrt{16}+9$

$\sqrt{256}=2 \times 5+6$

$\sqrt{324}=3 \times +(2+4)$

$\sqrt{1936}=-1+9+36$

अंक 2 का पांच बार इस्तेमाल करके गणितीय चिन्हों की मदद से 1 से लेकर 10 तक की संख्याओं को आप नीचे दिए गए अनुसार लिख सकते हैं:

$1=2+2+2-\frac{1}{2}$; $3=2+2-2+\frac{2}{2}$

$2=2+2+2-2-2$; $4=2 \times 2 \times 2-2-2$

$5=2+2+2-\frac{2}{2}$; $8=2 \times 2 \times 2 \times 2-1$

$6=2+2+2+2-2$; $9=2 \times 2 \times 2+\frac{2}{2}$

$7=22 \div 2-2-2$; $10=2+2+2+2+2$

इन्हीं संख्याओं को अंक 4 के चार बार प्रयोग द्वारा भी लिखा जा सकता है:

$1=(4-4) \times (4 \div 4)$

$2=(4-4)+(4 \div 4)$

$3=(4+4+4) \div 4$

$4=4+(4-4) \times 4$

$5=(4 \times 4+4) \div 4$

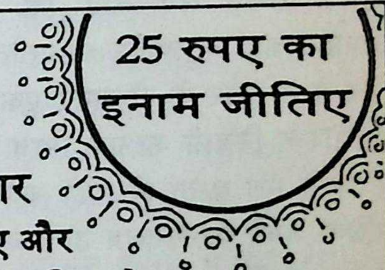
$6=4+(4+4) \div 4$

$7=4+4-4 \div 4$

$8=4+4+4-4$

$9=4+4+4 \div 4$

$10=(44-4)-4$ ❑



सुझाव पुरस्कार

अपना सुझाव भेजिए और

दस भाग्यशाली विजेताओं में शामिल होइए

नाम .... आयु ....

पता ....

....

योग्यताएं ....

व्यवसाय ....

आपको कौन से लेख पसंद आए ....

....

सुझाव, यदि कोई हो तो ....

4/92 पाठक के हस्ताक्षर

कैरियर—डाइ मेकर के रूप में

❑ अशोक सिंह

❑ औद्योगिक उत्पादन के किसी भी क्षेत्र की बात करें, हर वस्तु के उत्पादन में डाइ या सांचा एक विशेष महत्व रखता है. डाइ की बदौलत ही मिनटों में सैकड़ों की संख्या में किसी वस्तु का उत्पादन संभव है. चाहे आप बिजली के विभिन्न प्रकार के स्विच की बात करें या बच्चों के खिलौने हों, ट्रैक्टर, बस, स्कूटर के टायर हों या मोटर गाड़ियों के बड़े-बड़े हिस्से. इन सभी के उत्पादन में डाइ की अहम भूमिका है. अगर डाइ न हो तो एक-एक नग बनाने में इतना अधिक समय लग जाए कि सारा उत्पादन कार्य अनुत्पादक-सा प्रतीत हो. फिर न तो कार के दो टायर एक जैसे हों और न बिजली का एक स्विच दूसरे स्विच से मेल खाता हो. यही नहीं श्रम अधिक लगने का मतलब होगा अधिक दाम. औद्योगिक उत्पादन की गति कितनी मंद हो जाएगी, इससे इसकी कल्पना की जा सकती है.

तो डाइ एक प्रकार का विशेष सांचा होता है, जिसका कार्य प्लास्टिक, रबड़ आदि को एक खास आकार में ढालना होता है. इस कार्य में पहले कच्चे माल (प्लास्टिक के दाने या रबड़) को गर्म करना या पिघलाना आवश्यक है जिससे कि वे डाइ के आकार के अनुरूप आसानी से ढल जाएं. फिर ठंडा होने के बाद उसका आकार हमेशा के लिए ढाले गए रूप के अनुसार हो जाता है. कुछ डाइयां ऐसी होती हैं, जिन्हें गर्म किया जा सकता है. ऐसी डाइयों में सीधे बिना पिघलाए कच्चा माल डालने से ही तैयार माल ढल कर निकलता है.

डाइ बनाने का कार्य इतना आसान नहीं है. डाइ में बारीक काम अधिक होता है, इसलिए अत्यधिक सावधानी और एकाग्रता की आवश्यकता अधिक होती है. थोड़ी सी गलती कई दिनों की मेहनत को बेकार कर सकती है. डाइ में उत्पादित किए जाने वाले अंतिम उत्पाद की समस्त विशेषताएं हू-ब-हू रूप से अंकित होनी चाहिए. क्योंकि उत्पादन इकाई का मालिक डाइ मेकर को अपना पिछला माल दिखा कर उससे उसी माल की नई डाइ बनाने की फरमाइश करता है तो उक्त उत्पाद की लंबाई, चौड़ाई, मोटाई, उसके विभिन्न घुमावदार कोण, उस पर अंकित कोई नाम या अंक, विभिन्न छिद्रों की गोलाई इत्यादि की माप मिलीमीटर के हजारवें भाग तक सही-सही लेने की कोशिश की जाती है.

एक-एक डाइ की कीमत कई हजार से लेकर कई लाख रुपए तक हो सकती है. डाइ में जितना अधिक बारीकी का काम होगा, उसमें उतना ही श्रम लगेगा तथा लागत ज्यादा होगी. पहले लोग डाइ-मेकरों की शागिर्दी करके यह हुनर सीखते थे पर अब 'टूल रूम एंड ट्रेनिंग सेंटर' में उस विशेष परीक्षण की व्यवस्था उपलब्ध है. यह केंद्र डेनमार्क के साथ सहयोग से चलाई जा रही है. प्रशिक्षित विशेषज्ञ यहां नवीनतम उपकरणों की मदद से छात्रों को यह हुनर सिखाते हैं. और तो और कम्प्यूटर का इस्तेमाल करना भी उन्हें इसी प्रशिक्षण कार्यक्रम के अंतर्गत सिखाया जाता है. पाठ्यक्रम की अवधि चार वर्ष है.

दिल्ली प्रशासन के सौजन्य से चल रहे इस प्रशिक्षण केंद्र में छात्रों के लिए 100 रुपए से 200 रुपए प्रतिमाह छात्रवृत्ति भी प्रदान की जाती है. दाखिला प्रवेश परीक्षा के आधार पर ही दिया जाता है. न्यूनतम शैक्षिक योग्यता के तौर पर सीनियर सेकेंडरी या बारहवीं कक्षा में कम से कम 60 प्रतिशत अंक होने आवश्यक हैं, इतना ही नहीं बारहवीं स्तर पर गणित और विज्ञान विषय में उत्तीर्ण होना भी जरूरी है. अमूमन मई-जून माह में प्रवेश परीक्षा का विज्ञापन प्रमुख राष्ट्रीय समाचारों में प्रकाशित होता है और यह परीक्षा जुलाई माह में होती है.

इस पाठ्यक्रम के बाद न सिर्फ थोड़ी पूंजी की सहायता से स्वतंत्र रूप से अपनी वर्कशाप स्थापित कर अच्छी-खासी आमदनी की जा सकती है, बल्कि बड़ी-बड़ी वर्कशाप में आकर्षक वेतन पर रोजगार पाने के अवसर कम नहीं हैं. इसके अतिरिक्त इस प्रकार की टैक्निकल डिप्लोमा धारकों को विभिन्न सरकारी वित्तीय संस्थाओं से रियायती दर पर ऋण वगैरह भी वर्कशाप स्थापित करने के लिए मिल सकता है.

डाइ मेकिंग के उद्योग में अच्छे डाइ मेकरों की मांग रहती है, और उनकी योग्यता एवं कार्यकुशलता के हिसाब से वेतन दिया जाता है. फिर 'टूल रूम एंड ट्रेनिंग सेंटर' जैसे प्रशिक्षण केंद्र का डिप्लोमा होना ही सबसे बड़ा आकर्षण होगा.

पता है :

'टूल रूम एंड ट्रेनिंग सेंटर' (दिल्ली प्रशासन के तहत) वजीरपुर इंडस्ट्रियल एरिया, दिल्ली-110052.

प्रायोजित प्रतियोगिता–7

'आविष्कार' के इस स्तंभ को प्रायोजित प्रतियोगिता के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है. इस प्रतियोगिता के प्रायोजक हैं जूता-निर्माता 'एक्शन शूज' कंपनी. प्रतियोगिता के उस विजेता को जो सर्वाधिक सही उत्तर भेजेगा एक्शन शूज की ओर से सीधे एक जोड़ा एक्शन जूता पुरस्कार स्वरूप पार्सल से भेजा जाएगा. इस कार्यालय में पहुंचने वाले पहले ढाई हजार पत्रों को ही प्रतियोगिता में शामिल किया जाएगा.

एक से अधिक सही उत्तर प्राप्त होने पर 'ड्रा' निकाल कर निर्णय लिया जाएगा. इस संबंध में संपादक का निर्णय अंतिम व मान्य होगा और कोई पत्र व्यवहार नहीं किया जाएगा. पुरस्कार विजेता का नाम और सही हल एक अंक छोड़ कर प्रकाशित किया जाएगा. उत्तर को कागज के एक ओर हाशिया छोड़ कर साफ-साफ लिखा/टाइप किया होना चाहिए. उत्तर के साथ प्रकाशित कूपन अवश्य लगा होना चाहिए जिसमें प्रतियोगिता में भाग लेने वाले का नाम, पूरा पता तथा जूते की माप स्पष्ट लिखी होनी चाहिए. लिफाफे में ऊपर 'प्रायोजित प्रतियोगिता-4/92' अवश्य लिखें.

हमारा पता : **संपादक, 'आविष्कार'**
नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन
20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र, कैलाश कालोनी एक्सटेंशन
नई दिल्ली-110048

अपना वैज्ञानिक ज्ञान परखिए

1. 'ट्रांसडक्शन' लिंगी जनन की एक विधि है, जिसमें एक कोशा से दूसरी कोशा में आनुवंशिक पदार्थ का स्थानांतरण होता है:
(क) T-फेज द्वारा,
(ख) बैक्टीरिया द्वारा,
(ग) बैक्टीरियोफेज द्वारा,
(घ) कवकों द्वारा.

2. हमारे देश के किस राज्य की 70 प्रतिशत से अधिक भूमि पर वन हैं:
(क) केरल, (ख) असम,
(ग) उड़ीसा, (घ) मणिपुर.

3. 'हिस्टोजेन सिद्धान्त' निम्न में से किसने दिया है:
(क) फोस्टर, (ख) श्मीट,
(ग) हेनस्टीन, (घ) बेजामीन.

4. डी एन ए की इकाइयां, जो एक एंजाइम के लिए संश्लेषण की सूचना ले जाती हैं, कहलाती हैं:
(क) म्यूटान, (ख) रेकॉन,
(ग) सिस्ट्रॉन, (घ) प्रोटोन.

5. फर्न (ड्रायोप्टेरिस) में पाई जाने वाली स्टील (रम्भ) कहलाती है:
(क) होमोस्टील,
(ख) प्रोटोस्टील,
(ग) डिक्टियोस्टील,
(घ) साइफोनोस्टील.

6. यूलोथ्रिक्स में लिंगी जनन होता है:
(क) समयुग्मकी,
(ख) विषमयुग्मकी,
(ग) अलिंगी,
(घ) उपरोक्त सभी द्वारा.

7. पाश्चरीकृत दूध में नहीं पाए जाते हैं:
(क) रोगोत्पादक जीवाणु,
(ख) रोगोत्पादक वायरस,
(ग) कवक,
(घ) उपरोक्त में कोई नहीं.

8. प्रकृति में चट्टानों के टूटते रहने से खनिज कण (मिनरल मैटर) का निर्माण होता है. यह क्रिया कहलाती है:
(क) पीडोजिनेसिस,
(ख) पीडोलोजी,
(ग) वेदरिंग (विखण्डन),
(घ) मिनरलाइजेशन.

9. **साइकस** के तने में पाए जाने वाले वैस्कुलर बण्डल होते हैं:
(क) कंज्वाइंट, कोलेटरल तथा बंद,
(ख) कंज्वाइंट,
(ग) बाईकोलेटरल तथा बंद,
(घ) कंज्वाइंट, कोलेटरल तथा खुले.

10. मैजेन्टा है:
(क) क्षारीय फिनोलफ्येलीन,
(ख) मेथिल रेड,
(ग) लाल लिटमस,
(घ) रोज एनीलीन हाइड्रोक्लोराइड.

11. बैनीडिक्ट विलयन में होते हैं:
(क) Ag^{1+}, (ख) Li^{1+},
(ग) Cu^{2+}, (घ) Ba^{2+}.

12. प्रयोगशाला में सर्वप्रथम कौन-सा यौगिक तत्वों से संश्लेषित किया गया था:
(क) यूरिया, (ख) चीनी,
(ग) ग्लिसरीन, (घ) फास्फेट.

13. निम्न में कौन ग्लिसराइड नहीं है:
(क) वसा, (ख) तेल,
(ग) फास्फोलिपिड, (घ) साबुन.

14. CH_3CONH_2 पर $Br_2 + NaOH$ की क्रिया द्वारा प्राप्त होता है:
(क) एसीटिक अम्ल,
(ख) ब्रोमो एसीटिक अम्ल,
(ग) मेथिल एमीन,
(घ) ऐथेन.

15. सबसे दुर्बल क्षार है:
(क) अमोनिया,
(ख) मेथिल एमीन,
(ग) नाइट्रोजन,
(घ) क्लोरीन.

16. किसके कारण इमली खट्टी होती है:
(क) सिट्रिक एसिड,
(ख) टार्टरिक एसिड,
(ग) आक्सैलिक एसिड,
(घ) ऐसीटिक एसिड.

17. प्रथम बार अंतरिक्ष यान से बाहर निकल कर अंतरिक्ष में मुक्त विचरण (स्पेस वाक) करने वाली महिला है:
(क) सैली राइड,
(ख) कैथरिन सुलिवान,
(ग) स्वेतलाना सेवित्स्क्या.

18. कोस्टैंटिन सिवोल्कोवोस्की को अंतरिक्ष विज्ञान के किसी एक विशेष क्षेत्र में जनक के रूप में ख्याति प्राप्त है. इनका कार्यक्षेत्र था:
(क) राकेट विज्ञान,
(ख) उपग्रह निर्माण,
(ग) अंतरिक्ष स्टेशन,
(घ) अंतरिक्ष यात्री प्रशिक्षण.

19. अंतरिक्ष विज्ञान के सन्दर्भ में आर्लीबर्ड है:
(क) दुनिया का प्रथम वैज्ञानिक उपग्रह,
(ख) दुनिया का प्रथम सुदूर संवेदन उपग्रह,
(ग) इंटलसैट संस्था का प्रथम उपग्रह,
(घ) प्रथम रूसी उपग्रह.

20. विश्व का पहला मौसम विज्ञानी उपग्रह था:
(क) टाइरस-1,
(ख) वेस्टार, (ग) ल्यूना-2.

21. अंतरिक्ष में जाने वाला प्रथम जानवर था:
(क) बन्दर, (ख) चूहा,
(ग) कुतिया, (घ) खरगोश.

22. इनवर्टर किस काम में आता है:
(क) AC को DC में बदलते हैं,
(ख) DC को AC में बदलते हैं,
(ग) AC को DC में एवं DC को AC में,
(घ) कोई नहीं.

23. एक तार में एक ही समय में दो धाराएं, एक दिष्ट धारा (डी सी) तथा दूसरी प्रत्यावर्ती धारा (ए सी) प्रवाहित हो रही है. दिष्ट धारा का मान 5 एम्पियर है तथा ज्यावकीय प्रत्यावर्ती धारा का अधिकतम मान 5 एम्पियर है तो तार में प्रत्यावर्ती धारा का वर्गमाध्यमूल आर एम एस मान क्या होगा:
(क) 6.12 एम्पियर,
(ख) 10 एम्पियर,
(ग) 11.75 एम्पियर,
(घ) 12.73 एम्पियर.

24. फ्यूज तार की विशेषता होती है:
(क) ऊंचा द्रवनांक, कम घनत्व,
(ख) ऊंचा गलनांक, कम विशिष्ट प्रतिरोध,
(ग) नीचा गलनांक, ऊंचा विशिष्ट प्रतिरोध,
(घ) अधिक घनत्व, अधिक विशिष्ट ऊष्मा.

25. श्रेणी अनुनाद परिपथ में धारा का मान होता है:
(क) न्यूनतम ,(ख) अधिकतम,
(ग) अनन्त, (घ) शून्य.

26. ट्रांसफार्मर तेल का विशिष्ट प्रतिरोध 27° सेल्सियस से 90° सेल्सियस तक के तापमान के बीच में होता है:
(क) शून्य ओह्म सेंटीमीटर,
(ख) 1000 ओह्म सेंटीमीटर,
(ग) 5×10^{14} ओह्म सेंटीमीटर,
(घ) अनन्त.

27. आयताकार तरंग के आकृति गुणांक का मान होता है:
(क) 1, (ख) 1.11,
(ग) 1.57, (घ) 1.154.

28. एक सीसा संचायक सेल की एम्पियर-घंटा दक्षता होती है:
(क) 30 प्रतिशत से 50 प्रतिशत तक,
(ख) 50 प्रतिशत से 60 प्रतिशत तक,
(ग) 75 प्रतिशत से 80 प्रतिशत तक,
(घ) 90 प्रतिशत से 95 प्रतिशत तक.

29. 500 किलोवोल्ट वोल्टता किससे मापते हैं:
(क) स्थिर विद्युतिकी वोल्टमीटर,
(ख) प्रेरण वोल्टमीटर,
(ग) विद्युत चुंबकीय प्रारूपी वोल्टमीटर,
(घ) तापीय वोल्टमीटर.

30. संधारित्र पर नेट आवेश होता है:
(क) शून्य, (ख) इकाई,
(ग) ऋणात्मक, (घ) अनन्त.

प्रायोजित प्रतियोगिता 5/92 के विजेता

श्री सुधाकर मिश्र
द्वारा बी॰बी॰ पांडेय
15, करनपुर, प्रयाग स्टेशन
इलाहाबाद-211002
(उ॰प्र॰)

नाम ....

पता ....

....

....

जूता माप ....

7/92



प्रायोजित प्रतियोगिता—5/92

उत्तर

1. (ग), 2. (घ), 3. (ग), 4. (ख), 5. (क), 6. (ग), 7. (ग), 8. (क), 9. (क), 10. (ग), 11. (ख), 12. (क), 13. (क), 14. (क), 15. (ख), 16. (ख), 17. (ख), 18. (घ), 19. (ख), 20. (क), 21. (ख), 22. (घ), 23. (ख), 24. (ग), 25. (घ), 26. (ग), 27. (क), 28. (क), 29. (ग), 30. (घ), 31. (क), 32. (ख), 33. (ख), 34. (ग), 35. (ग), 36. (ख), 37. (ख), 38. (क), 39. (घ), 40. (क), 41. (ख), 42. (क), 43. (ख), 44. (घ), 45. (ग), 46. (क), 47. (ख), 48. (ग), 49. (ख), 50. (घ).

सिविल सर्विसेज प्रिलिमिनरि परीक्षा

उपकार गाइड

वस्तुनिष्ठ
सामान्य अध्ययन
एवं
सामान्य विज्ञान
दिग्दर्शन

सिविल सर्विसेज प्रिलिमिनरि परीक्षा

CSPE

में
सही मार्गदर्शन
एवं
सफलता के लिए



विशेषताएँ

☐ पिछले वर्षों के प्रश्न-पत्र हल सहित ☐ सामान्य विज्ञान ☐ सम्पूर्ण आधारभूत तथ्यों का विश्लेषणात्मक अध्ययन ☐ भारत का इतिहास ☐ विश्व का भूगोल ☐ भारतीय अर्थव्यवस्था ☐ भारतीय राज्य शासन विधि ☐ भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन ☐ सामान्य मानसिक योग्यता ☐ राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय घटना-क्रम ☐ विविध तथ्य



YOUR SUCCESS
IS
OUR AIM
SURE SUCCESS
WITH
OUR NAME
THAT IS
UPKAR

उपकार प्रकाशन 2/11 ए, स्वदेशी बीमा नगर, आगरा– 282 002

"भारत के समाचार पत्रों के पंजीयक के कार्यालय
नई दिल्ली में पंजीकृत, पंजीकरण संख्या : आर०एन० 21746/71"

DL-16014/92





नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन, नई दिल्ली के लिए श्री डी०एन० भटनागर द्वारा सम्पादित और प्रकाशित

ISSN 0970-6607

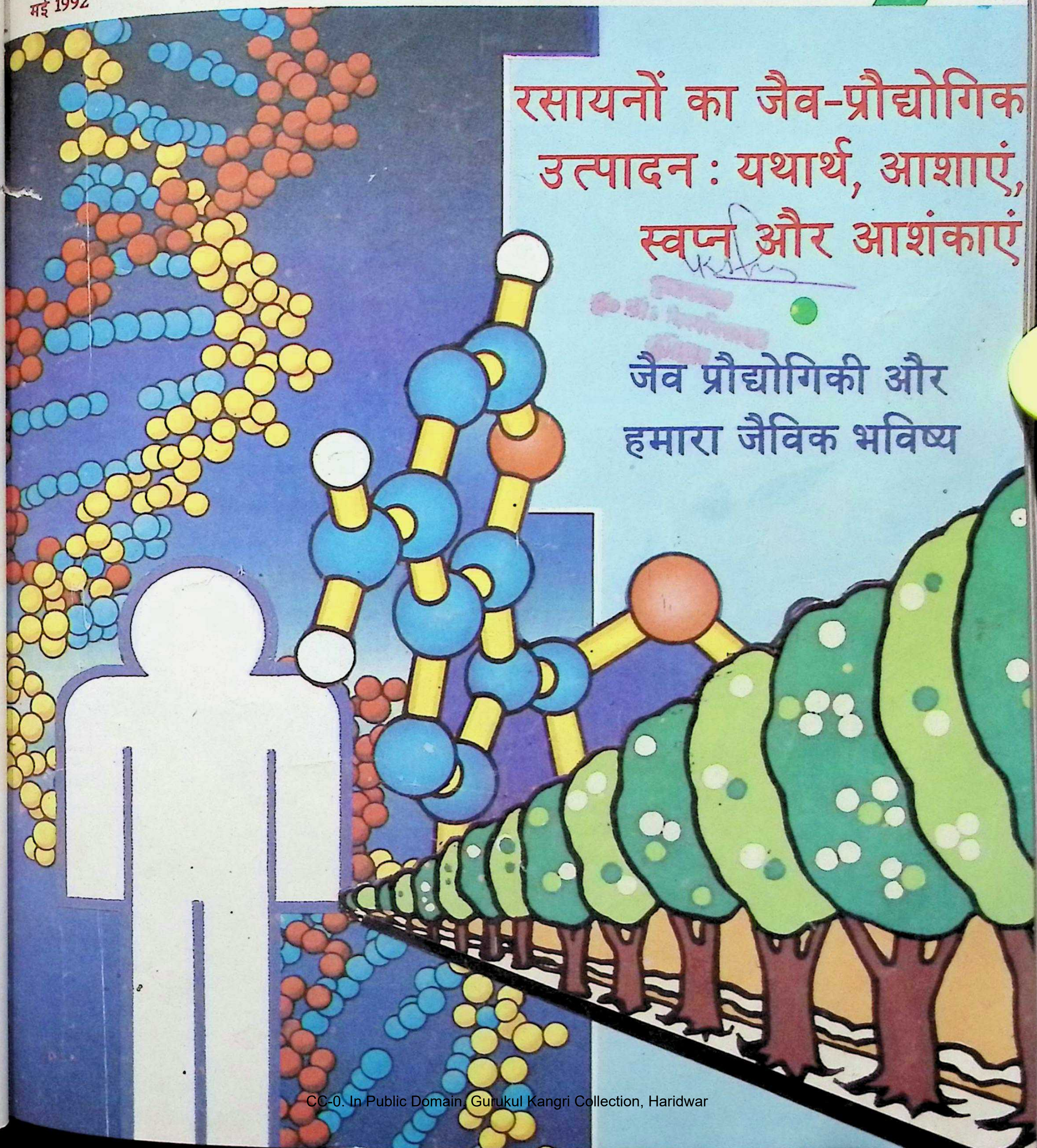
आविष्कार

जनभाषा में रुचिकर विज्ञान की सशक्त अभिव्यक्ति

मई 1992

8 रुपए

ग्राम शिल्प समाचार

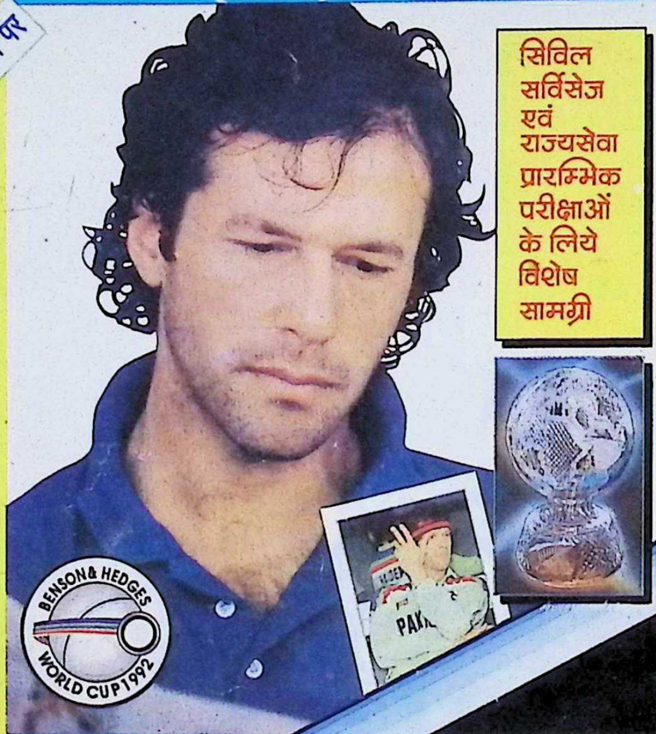


अब बाजार में उपलब्ध

प्रतियोगिता परीक्षाओं के लिए हिन्दी की सर्वाधिक बिकने वाली सामान्य ज्ञान पत्रिका

मई 1992 अंक

आवरण कथा–इमरान का सपना और पाकिस्तान चोटी पर



मूल्य : 12/- रुपए

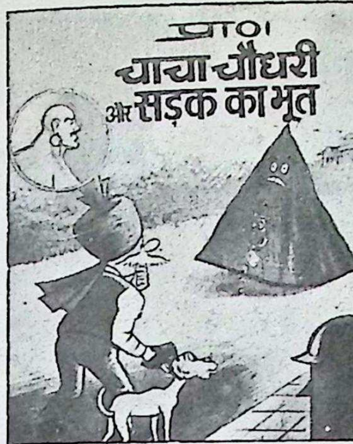
विशेष आकर्षण

- राष्ट्रीय, अन्तरराष्ट्रीय एवं नवीनतम सामान्य ज्ञान
- आर्थिक समीक्षा 1991-92,
- विश्व परिदृश्य,
- भारतीय संविधान
- बिहार – एक दृष्टि में
- सामयिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक, विज्ञान सम्बन्धी आदि महत्वपूर्ण लेख
- बी. एस. आर. बी. (पी. ओ.), सम्मिलित रक्षा सेवा, जूनियर ऑडीटर,
- रुड़की इन्जीनियरिंग, ए. आई. आई. एम. एस., स्टेनोग्राफर्स 'डी',
- सब-इन्सपेक्टर पुलिस आदि परीक्षाओं के लिए विशेष उपयोगी
- साथ में अन्य सभी स्थायी स्तम्भ

डायमण्ड कॉमिक्स

विश्वभर में कम्प्यूटर से तेज दिमाग वाला एक मात्र व्यक्ति-चाचा चौधरी और ज्यूपिटर वासी साबू एक बार फिर आये हैं।मनोरंजन और एक्शन से भरपूर नयी कॉमिक्स

चाचा चौधरी और सड़क का भूत



1 मई 1992 को प्रकाशित अन्य कामिक्स

प्राण का-दाबू और जकारियस सम्राट	6.00
फौलादी सिंह और शून्य का घेरा	6.00
पलटू और अनोखा पक्षी	6.00
लम्बू मोटू और हत्या की साजिश	6.00
जेम्स-बाण्ड-6	6.00
मैण्ड्रेक-6 (डाइजेस्ट)	15.00
राजन इकबाल-6 (डाइजेस्ट)	15.00

नये डायमण्ड मिनी कामिक्स

मोटू छोटू और गैण्डा सिंह	2.50
लम्बू मोटू और डाक्टर डूम	2.50
चीनू और अनोखा यान	2.50
झुमरू और समुद्री दानव	2.50

NEW DIAMOND COMICS (MAY 1st)

Pran's—Chacha Chaudhary & The Roadside Ghost	8.00
Pran's—Daabu & Jakarius Emperor	6.00
Fauladi Singh & The Ring of Vacuum	6.00
Lambu Motu & The Conspiracy of the Shadow	6.00
James Bond-6	6.00
Mandrake-6 (Digest)	15.00

नये डायमण्ड कामिक्स 15 मई 92 को प्रकाशित

प्राण का-चन्नी चाची की दुनिया	6.00
प्राण का—रमन और लिफ्ट	6.00
प्राण का—अंकुर और फिल्म शो	6.00
राजन इकबाल और हीरों की चोरी	6.00
मामा भांजा और चालाक गिलहरी	6.00
छोटू लम्बू और लखना डकैत	6.00
बिल्लू-6 (डाइजेस्ट)	15.00
मोटू छोटू-3 (डाइजेस्ट)	15.00

NEW DIAMOND COMICS (MAY 15th 92)

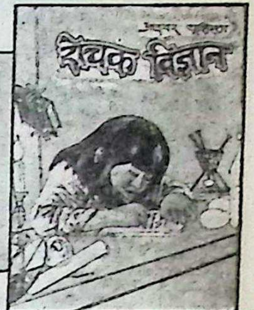
Pran's—World of Channi Chachi	6.00
Pran's—Raman & Lift	6.00
Billoo-6 (Digest)	15.00

डायमण्ड कामिक्स प्रा. लि. 2715, दरियागंज नई दिल्ली- 2

डायमण्ड कॉमिक्स प्रस्तुत करते हैं

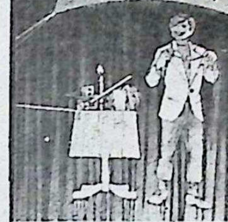
पुस्तकों के ढेर में अपनी जगह अलग बनाए रखने वाली रोचक श्रृंखला की बेहद उपयोगी और दिलचस्प पुस्तकें

लेखक : आइवर यूशिएल



रोचक विज्ञान

विज्ञान के प्रति रुचि जगा देने वाली एक ऐसी पुस्तक जो बाल-पाठकों के मन में इस विषय के प्रति बैठे डर को भगाकर खेल ही खेल में उन्हें इसके करीब ले आएगी।



रोचक जादू

जादू जैसे मजेदार लेकिन रहस्य से भरे विषय को बेहद सरल तरीके से बाल-पाठकों तक पहुंचा देने वाली हिन्दी की बिलकुल अनूठी पुस्तक।



रोचक सत्य

ऐसे अनेक सत्यों से भरी पुस्तक जिसकी रोचकता और प्रामाणिकता ने इसे पठनीय बनाया है और सुन्दर साज-सज्जा ने दर्शनीय।



रोचक गणित

गणित जैसे नीरस और जटिल समझे जाने वाले विषय के प्रति बाल-पाठकों के मन में रुचि और रुझान पैदा करने वाली पहली बेहद दिलचस्प पुस्तक।

बहुरंगी आकर्षक आवरण ● सम्पूर्ण पुस्तक दो रंगों में मुद्रित ● मूल्य : मात्र 8 रुपये ● डाकखर्च अलग

इस रोचक श्रृंखला की आगामी पुस्तकें

रोचक प्रश्न ● रोचक खेल ● रोचक खिलौने



डायमण्ड कामिक्स प्रा. लि.
2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002

ग्राहक फार्म

उत्पादन अधिकारी
नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन
20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र,
कैलाश कालोनी एक्सटेंशन
नई दिल्ली-110048

महोदय,

कृपया मुझे आविष्कार का एक वर्ष के लिए मास .... 199 से ग्राहक बना लीजिए. मैं नया/पुराना ग्राहक हूं. पत्रिका का चंदा .... रुपए मनीआर्डर/डिमांड ड्राफ्ट द्वारा भेज रहा हूं. कृपया प्राप्ति स्वीकार करें.

नाम ....

ग्राहक संख्या (यदि कोई हो) ....

पूरा पता ....

....

....

भवदीय

....

5/92 हस्ताक्षर

- **रियायती मूल्य : एक वर्ष 80 रुपए**
- **पत्रिका का शुल्क मनीआर्डर द्वारा 'नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन' को उपरोक्त पते पर भेजिए. मनीआर्डर कूपन पर पत्रिका का नाम, शुल्क की राशि, अवधि (एक साल, दो साल, तीन साल) स्पष्ट लिखें. मनीआर्डर फार्म के पीछे दिए गए स्थान पर "भेजने वाले का नाम और पता" के अंतर्गत बड़े अक्षरों में पूरा नाम और पता साफ साफ लिखें.**
- **शुल्क का नवीकरण कराते समय या पत्र व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक संख्या का उल्लेख अवश्य कीजिए. नवीकरण काफी समय पहले कराइए ताकि पत्रिका मिलने में रुकावट न आए.**
- **शुल्क अदा करने के बाद पत्रिका की प्रथम प्रति प्राप्त करने के लिए कम से कम छः सप्ताह तक इंतजार कीजिए.**



आविष्कार

मई 1992 वर्ष 22, अंक 5

■ 'आविष्कार' नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन (एन आर डी सी) द्वारा प्रकाशित विज्ञान और प्रौद्योगिकी की लोकप्रिय मासिक पत्रिका है.

■ लेखकों के कथनों व मतों के लिए कारपोरेशन उत्तरदायी नहीं है.

■ 'आविष्कार' में प्रकाशित सामग्री का किसी भी रूप में उपयोग करने से पूर्व सम्पादक की अनुमति लेना जरूरी है.

■ 'आविष्कार' में प्रकाशित विज्ञापनों की 'आविष्कार' के सम्पादकीय दृष्टिकोण से सहमति आवश्यक नहीं.

एक प्रति : 8 रुपए
वार्षिक मूल्य : 80 रुपए
फोन : 6418615, 6419929, 6419945, 6419947, टेलेक्स : 031-71358
टेलीग्राम : 'अनुसंधान विकास'
फैक्स : 091-11-6449401

इस अंक में

विज्ञान प्रदर्शनी/मेलों में भाग लेने वाली शिक्षण संस्थाएं/विद्यार्थी कृपया ध्यान दें

राष्ट्रीय, राज्य, जिला और क्षेत्रीय स्तरों पर आयोजित विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों की विज्ञान प्रदर्शनियों/मेलों में पुरस्कृत मॉडलों, युक्तियों आदि पर 'आविष्कार' में प्रकाशन के लिए विचारार्थ प्रलेख आमंत्रित हैं.

प्रलेख पुरस्कार प्राप्त विद्यार्थी द्वारा स्वयं लिखा होना चाहिए और संबद्ध शिक्षण संस्था के प्राचार्य/प्रधानाचार्य द्वारा अग्रसारित किया जाना चाहिए. साथ में 'पुरस्कार प्रमाण पत्र' की फोटो प्रति भी भेजी जानी चाहिए.

प्रलेख में पुरस्कृत मॉडल, युक्ति आदि को बनाने की संपूर्ण जानकारी का तरतीबवार विवरण होना चाहिए और यह भी बताया जाना चाहिए कि उक्त माडल, युक्ति आदि को बनाने का विचार विद्यार्थी के मस्तिष्क में कैसे उपजा और उसे बनाने के लिए विद्यार्थी ने तकनीकी जानकारी कैसे जुटाई.

प्रलेख की दो प्रतियां भेजें जो कागज के एक ओर हाशिया छोड़कर टाइप की गई हों अथवा साफ-साफ लिखी हों. चित्र सफेद ड्राइंग कागज पर साफ-साफ बने होने चाहिएं. चित्रों की भी दो प्रतियां भेजें.

जिस लिफाफे में प्रलेख भेजा जाए उसके बाईं ओर मोटे अक्षरों में 'विज्ञान प्रदर्शनी/मेले में पुरस्कृत मॉडल' लिखें.

जिन प्रलेखों को प्रकाशन के लिए स्वीकार किया जाएगा उनकी सूचना संबद्ध शिक्षण संस्था/विद्यार्थी को उपयुक्त समय पर कार्यालय द्वारा स्वयं भेज दी जाएगी. अस्वीकृत रचनाओं के बारे में किसी प्रकार का पत्र व्यवहार नहीं किया जाएगा.

प्रलेख वरिष्ठ सम्पादक, 'आविष्कार', नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन, 20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र, कैलाश कालोनी एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110048 को भेजा जाना चाहिए.

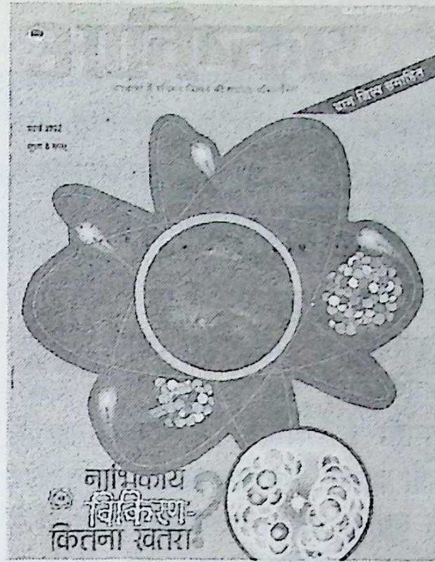
आपकी प्रतिक्रियाएं

❑ **एड्स का प्रकोप:** 'आविष्कार' के दिसम्बर 1991 के अंक में विज्ञान के विविध आयाम विषयों से संबंधित रोचक एवं ज्ञानवर्धक लेख पढ़े. इस अंक में भूकम्प के बारे में काफी जानकारी मिली. एड्स के प्रकोप के बारे में विवरणात्मक विस्तृत लेख पढ़ कर उससे सतर्क रहने का संदेश मिला. इसकी भाषा इतनी सुगम है कि साधारण लोग भी 'आविष्कार' के पाठक बनकर लाभ उठा सकते हैं. 'प्राचीन भारत में गणित' अति रोचक है. सुझाव है कि प्राचीन भारत में विज्ञान (वैद्यशास्त्र, रसायन, रत्न शास्त्र, वास्तु इत्यादि के बारे में नियमित जानकारी 'आविष्कार' में दी जाए तो यह पत्रिका सर्वोपयोगी सिद्ध होगी. [डा॰ (श्रीमती) राधाकृष्णमूर्ति सहसंपादिका, हिन्दी प्रचारवाणी, कर्नाटक महिला हिन्दी सेवा समिति, चामराजपेट, बैंगलोर-560018]

❑ **इंटरकाम:** कुछ समय पूर्व आविष्कार में प्रकाशित इंटरकाम में कुछ संशोधन कर उसमें से निकलने वाली आवाज को तेज व साफ कर लिया है. इसमें परिवर्तन इस प्रकार हैं: 470 ओह्म के स्थान पर 100 ओह्म, 150 के स्थान पर 56 ओह्म का प्रतिरोध लगाएं तथा 2 बैंड स्विच के स्थान पर डी पी डी टी स्विच का उपयोग करें.

कृपया ऐसे ट्रांसमीटर का सर्किट प्रकाशित करें जिसके द्वारा हम 5 किलोमीटर के दायरे में कहीं भी रेडियो संपर्क स्थापित कर सकें.

कृपया ऐसा छोटा सस्ता मीडियम वेव रेडियो का परिपथ प्रकाशित करें जो लगभग 200 किलोमीटर तक की रेडियो तरंगों को पकड़ सके. [अनुराग कलंत्री भारतीय स्टेट बैंक के सामने, सोरों गेट कासगंज-207123 उत्तर प्रदेश]



❑ **शोध की आवश्यकता है:** 'आविष्कार' के जनवरी 1992 अंक में सदैव की भांति उत्कृष्ठ सामग्री अध्ययन करने हेतु प्राप्त हुई. सन् 1991 वर्ष का लेखा जोखा जो आपने लेख के माध्यम से प्रस्तुत किया उस हेतु धन्यवाद.

'सर्दी का हाल: आदमी बेहाल' निस्संदेह एक उत्तम लेख था जिसने हम सभी की जानकारी को बढ़ाया.

'क्या मनुष्य अफ्रीका निवासी आद्य नारी की संतान है?' लेख ने पुराने तथ्यों पर शोध कर वैज्ञानिक आधार की कसौटी पर सत्यता को परखा है. यह एक प्रशंसनीय कदम है वर्तमान के वैज्ञानिकों का, जो कि अपने प्राचीन धर्मग्रन्थों व मान्यताओं पर शोध कर

इन्हें आज के नास्तिक भू जीवन के क्षेत्र में सत्य साबित कर रहे हैं.

मानव उत्पत्ति 'अमीबा' से या 'आदम हब्बा' से हुई, यह विषय विवाद का नहीं बल्कि आज के परिप्रेक्ष्य में जब कि भारत अपने प्राचीन वैदिक व धार्मिक सिद्धांतों की ओर उन्मुख हो रहा है, आवश्यकता है शोध की. उस पवित्र शोध पर क्रियान्वयन अपने भारतभू के महान वैज्ञानिकों द्वारा हो और वह विश्व को सिद्ध कर सकें कि वह सर्वाधिक प्राचीन सभ्यता व संस्कृति से पूर्ण भारत के प्राचीनतम ऋषि मुनि (इनमें मनु भी अवश्यम्भावी है) की संताने हैं. **[हिमेन्द्र प्रताप सिंह तोमर, 5/150 विकासनगर, लखनऊ-20 उ०प्र०]**

❑ इलेक्ट्रोनिक उपकरणों की जानकारी: 'आविष्कार' में प्रकाशित सभी लेख व जानकारी काफी अच्छी होती है. इस पत्रिका में और अधिक निखार लाने के लिए मेरा सुझाव है कि कृपया 'आविष्कार मंच' में आप सिर्फ इलैक्ट्रोनिक उपकरण जैसे एल०डी०आर० रिले तथा इसी से संबंधित जानकारी प्रकाशित किया करें. व 'हम सुझाएं आप बनाएं' में नई युक्तियां. इससे पाठकों को पूर्ण रूप से जानकारी प्राप्त होगी. दिसंबर 1992 के अंक में एल०ई०डी० के बारें में जानकारी प्रकाशित करने का बहुत-बहुत धन्यवाद. कृपया भविष्य में भी इसी तरह की अन्य जानकारी भी प्रकाशित करें. **[महेन्द्र पाल सिंह नेगी. पुत्र श्री टी०एस० नेगी, सितारगंज, नैनीताल]**

❑ आविष्कार मंच: मैं 'आविष्कार' का पांच साल पुराना पाठक हूं. मैं इस पत्रिका को इसके केवल दो स्तंभ 'आविष्कार मंच' एवं 'हम सुझाएं आप बनाएं' के लिए खरीदता हूं. मुझे इलेक्ट्रोनिक्स में काफी रुचि है. अभी तक छपे लेखों में कई युक्तियां बना चुका हूं. **[प्रकाश चन्द्र पालीवाल, गांव लखवली, उदयपुर (राजस्थान)]**

❑ हम सुझाएं आप बनाएं: मैं 'आविष्कार' का नया पाठक हूं. मुझे आविष्कार का प्रत्येक अंक अच्छा लगता है. व्योमविहार मेरी समझ में नहीं आता. मैंने नवम्बर के आविष्कार से सूर्य से चलने वाला रेडियो बनाया है लेकिन सेलीनियम फोटो सेल की वजह से वह अधूरा पड़ा है. अब वह सेल से चालू कर रखा है. मैं और भी बहुत से सर्किट बना चुका हूं जैसे इलेक्ट्रोनिक ध्रुव सूचक, संगीतमय हॉर्न आदि. अब आप 200 मीटर रेंज के ट्रांसमिटर का सर्किट प्रकाशित करें. जनवरी 1992 के अंक में 'हम सुझाएं आप बनाएं' के अन्तर्गत 'आओ दूरदर्शी बनाएं' बहुत ही रोचक लगा. **[कमलेश कुमार शाक्य पुत्र श्री रामभरोसे, आइ जी एन पी कालोनी, लखुवाली (हैड) श्री गंगा नगर, राजस्थान-335524]**

❑ व्योमविहार और आओ दूरदर्शी बनाएं: 'आविष्कार' का जनवरी 1992 का अंक नई साज सज्जा सहित प्राप्त हुआ. मुझे विशेष रूप से स्तम्भ 'व्योमविहार', 'हम सुझाएं आप बनाएं' तथा 'आविष्कार मंच' बहुत पसंद हैं. पर इस माह के अंक में 'हम सुझाएं आप बनाएं' स्तम्भ ने चार चांद लगा दिए क्योंकि आपने इस स्तंभ में नई लेखमाला 'आओ दूरदर्शी बनाएं' आरम्भ कर दी है जिसकी 'आविष्कार' के पाठकों को बहुत दिनों से प्रतीक्षा थी.

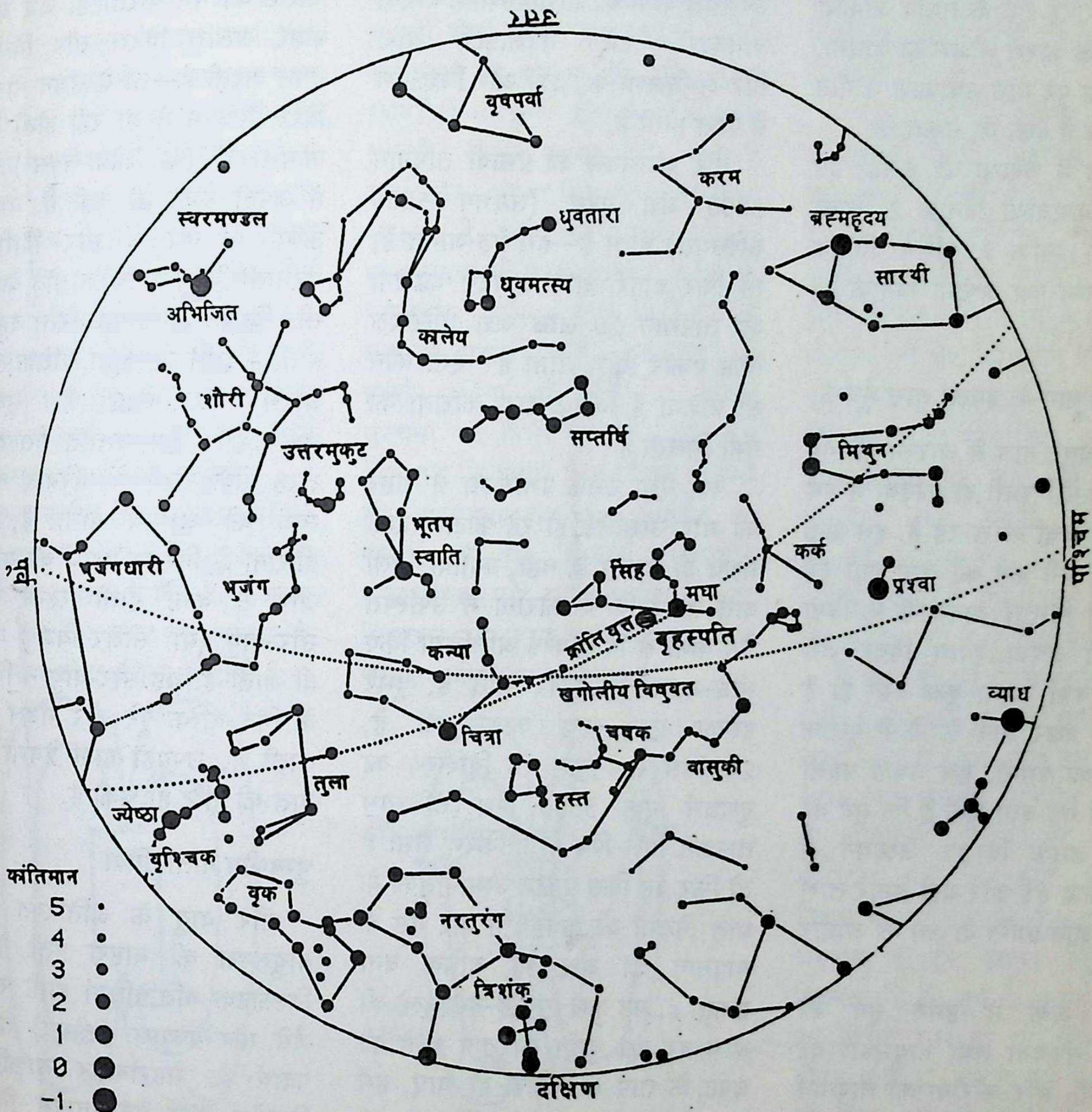
जनवरी 1992 से इस पत्रिका में मूल्य में जो वृद्धि हुई है पत्रिका को देखते हुए वह शायद पाठकों को नहीं खलेगी. मेरा विचार है कि इस पत्रिका की लोकप्रियता में कोई कमी नहीं आएगी. मैं बहुत समय से 'ब्लैक होल' की जानकारी चाहता था. वह भी इस अंक में मिल गई. लेख 'सर्दी का हाल आदमी बेहाल' बहुत पसंद आया. ऐसे ही वैज्ञानिक लेखों द्वारा यह पत्रिका लोकप्रियता की चरम सीमा तक पहुंच रही है. 'गणित में मनोरंजन' के अन्तर्गत लेख 'संख्याओं के सुन्दर पैटर्न' मनोरंजन तो लगा परन्तु इसे विस्तार से नहीं समझाया गया इसलिए इसे समझने में थोड़ी असुविधा हुई. **[शोएब-उर-रहमान रिजवी (संजू) सुपुत्र श्री हबीब-उर-रहमान रिजवी, मुहल्ला सोथा, बदायूं-24360, उत्तर प्रदेश]**

❑ पत्रिका के 'आपकी प्रतिक्रियाएं' स्तंभ में प्रकाशन के लिए हमें अपने पाठकों से हर रोज ढेर सारे पत्र मिलते रहते हैं. इनमें से अधिकांश हमारा उत्साह बढ़ाते हैं तो कुछ हमारा ध्यान हमारी कमियों की ओर दिलाते हैं. ये सभी पत्र हमारे लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है और हम इनका स्वागत करते हैं. सच मानिए आपकी 'प्रतिक्रियाएं' ही हमें पत्रिका में निरंतर सुधार लाने के लिए दिशा निर्देश देती हैं. इनमें से कुछ प्रतिनिधि पत्रों को हम हर महीने 'आपकी प्रतिक्रियाएं' स्तंभ में शामिल कर लेते हैं. चाहते हुए भी सभी पत्रों को इस स्तंभ में छाप पाना संभव नहीं. अतः वे मित्र जिनके पत्र इस स्तंभ में अभी तक छपे नहीं हैं, निराश होकर हमें पत्र लिखना बंद न करें. हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि पाठकों के पत्र हमारे लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं और सभी पत्र अपना कुछ न कुछ योगदान अवश्य देते हैं चाहे ये न छपें. रचनात्मक टिप्पणियों और विचारों की हमें विशेष प्रतीक्षा रहती है. अतः आप जो भी महसूस करें हमें अवश्य लिखें.

—वरिष्ठ संपादक

□ पीयूष पाण्डेय

व्योमविहार के इस स्तंभ में हम आपका परिचय मई, 1992 के माह के आकाश में उपस्थित तारामंडलों से करा रहे हैं. इस मास भी संध्याकाश में केवल एक ग्रह है. बृहस्पति सिंह राशि के तारों के सामने स्थित है. शनि ग्रह अर्धरात्रि के बाद उषा पर्यन्त मकर राशि में देखा जा सकता है.



❑ मास के मध्य तक बुध ग्रह उषाकाश में मीन-मेष के क्षेत्र में देखा जा सकता है, उसके बाद सूर्य के अत्यन्त समीप स्थित होने के कारण यह ओझल हो जाएगा.

शुक्र ग्रह उषाकाश में मेष-वृष के क्षेत्र में गतिमान है, इसे केवल 11 मई तक देखा जा सकेगा. बाद में यह भी बुध की ही तरह सूर्य के समीप आकाश में आ जाने के कारण ओझल हो जाएगा.

मंगल ग्रह पूरे मास उषाकाश में मीन राशि के क्षेत्र में देखा जा सकता है.

मई मास में चन्द्रमा की कलाएं इस प्रकार हैं: अमावस्या दिनांक 2, शुक्ल पक्ष अष्टमी दिनांक 9, पूर्णिमा दिनांक 16 तथा कृष्ण पक्ष अष्टमी दिनांक 24 मई को है.

श्याम विवर भाग-4: हमारा तारा सूर्य-3

श्याम विवर नाम से आरम्भ की गई इस श्रृंखला में पिछली दो कड़ियों में हम सूर्य की ही चर्चा करते रहे हैं. इस अंक में भी हम उसी क्रम को आगे बढ़ा रहे हैं. सूर्य की विस्तृत जानकारी के बिना अन्य तारों अथवा श्याम विवर जैसे पिंडों की चर्चा करना कुछ वैसा ही है जैसे बिना अक्षर ज्ञान के किसी पुस्तक को पढ़ने का प्रयास. हम अपनी पहली ही कड़ी में यह बता चुके हैं कि सूर्य की निकटता उसके विस्तृत अध्ययन में सहायक सिद्ध हुई और यही हमारे तारों के बारे में ज्ञान प्राप्ति के क्रम की आधार शिला बनी.

पिछले अंक में हमने सूर्य की आन्तरिक संरचना तथा वायुमंडल की चर्चा की थी. सौर कोरोना का तापमान लगभग 20 लाख अंश सेल्सियस आंका गया है. इस उच्च ताप का अर्थ है यहां उपस्थित गैस एक्स-किरणें उत्पन्न करने में भी सक्षम हैं और यह सच है कि सूर्य क्ष-किरणों एक्स-किरणों का उत्पादन करता भी है. इससे उत्सर्जित होने वाली क्ष-किरणों में लिया गया सूर्य का चित्र, श्वेत प्रकाश में लिए गये सामान्य चित्रों से एकदम भिन्न दिखाई देता है. आजकल सौर-किरीट के संबंध में बहुत सारी सूचना, उसकी संरचना तथा उसमें उपस्थित कणों की गत्यावस्था के बारे में जानकारी हमें सैटेलाइटों द्वारा सौर-क्ष-किरणों के चित्रों और विश्लेषण से प्राप्त होती है.

सौर प्रभामंडल का प्रभावी तापमान 5800 अंश परम (लगभग 5500 सेल्सियस) होता है—हम यह जानते हैं, तो फिर बाहरी झीने आवरण कोरोना का तापमान 20 लाख अंश सेल्सियस किस प्रकार पहुंच जाता है? ऐसी कौन सी प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोरोना को गर्मी मिलती है?

क्या ऐसा उसके प्रभामंडल से बाहर की ओर उत्सर्जित हो रहे फोटोनों द्वारा संभव हो सकता है. नहीं, क्योंकि पहली बात तो ये कि वे कोरोना में उपस्थित गैस कणों से बिना कोई अभिक्रिया किए सीधे-अप्रभावित गुजर जाते हैं. दूसरे इसका एक अन्य कारण भी है, प्रभामंडल से निकल रहे विकिरण का गुणधर्म एक 5500 अंश सेल्सियस तापक्रम वाले पिंड के विकिरण जैसा है तो फिर वह किस प्रकार उष्मागतिकी के ज्ञात नियमों की अवहेलना कर गैस के तापमान को और भी अधिक बना सकता है. यह कुछ ऐसा है जैसे चूल्हे की आंच पर रखे बर्तन का ताप चूल्हे की लपट के ताप से अधिक हो जाए. हमें ज्ञात नियमों के अनुसार गर्मी एक उच्च तापक्रम वाले पिंड से निम्न तापक्रम वाले पिंड की ओर बहती है, न कि विपरीत दिशा में. अतः हम कह सकते हैं कि सौर किरीट के उच्च तापक्रम का कारण प्रभामंडल से उत्सर्जित होने वाले फोटोन नहीं हो सकते हैं.

कुछ खगोलशास्त्री ऐसा मानते हैं कि सौर प्रभामंडल के नीचे स्थित सूर्य के संवहन क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली हलचल (यांत्रिक) तथा ध्वनि तरंगें सौर किरीट को गर्म करती हैं. जब ये तरंगें बाहर अत्यंत विरल सौर किरीट में गमन करती हैं—तो ये सघन माध्यम से विरल माध्यम में जा रही होती हैं तथा कम्प-तरंगों (या 'शोक-वेक्स') के रूप में अपनी ऊर्जा खो देती हैं. यह ऊर्जा ऊष्मा के रूप में सौर किरीट को गरमाती है. चूंकि विरल होने के कारण सौर किरीट की उष्माधारिता बहुत कम होती है इससे वह बहुत अधिक तापमान धारण कर लेता है. सूर्य का गुरुत्वाकर्षण इस उत्तप्त गैस को पूरी तरह रोके रखने में परिबद्ध करने में स्वयं को असमर्थ पाता है, फलतः कोरोना से निरंतर पदार्थ की बाहर की ओर से कमी होती रहती है—इसे सौर-वायु (या 'सोलर विंड') की संज्ञा दी जाती है. यह सौर-वायु न सिर्फ सूर्य के गिर्द बल्कि पूरे सौर मंडल में फैल जाती है, उपग्रहों द्वारा प्रेषणों से इस बात की पुष्टि हो चुकी है.

चुम्बकीय गतिविधियां

सौर वायु के अतिरिक्त सूर्य के वायुमंडल की बाहरी पर्तों में अनेक विस्फोटक गतिविधियां होती रहती हैं जैसे सौर प्रज्वाल (फ्लेयर) तथा सौर पदार्थ के मेहराबदार आकृतियों के विस्फोट तथा पुनः वापस गिरने की प्रक्रियाएं. इन गतिविधियों द्वारा सौर किरीट में पर्याप्त ऊर्जा तथा कणों

समागम होता है जिससे सौर किरीट-सौर वायु के रूप में फैलता है. देखा गया कि सौर हलचलों या गतिविधियों के सक्रिय क्षेत्रों और वहां चुम्बकीय क्षेत्र की उपस्थिति में गहरा संबंध है. सौर चुम्बकीय गतिविधि का निरीक्षण सूर्य कलंकों (सनस्पॉट्स) को लगातार देखकर और उनकी स्थिति को नोट कर किया जा सकता है, अथवा अधिक विस्तृत रूप से यह कार्य सौर वर्णक्रम में वर्णरेखाओं के अध्ययन द्वारा किया जाता है. चुम्बकीय क्षेत्र की उपस्थिति में वर्णक्रम रेखाएं कई वर्णक्रम रेखाओं में विभक्त हो जाती हैं. इसे जीमान प्रभाव कहा जाता है. इसकी माप जोख द्वारा कारक चुम्बकीय क्षेत्र की तीव्रता ज्ञात की जाती है. यह एक बड़ी प्रभावशाली विधि है जिससे पृथ्वी पर बैठे सूर्य तथा सुदूर तारों के वर्णक्रमों को नापकर वहां उपस्थित चुम्बकीय क्षेत्रों की सूचना प्राप्त हो जाती है.

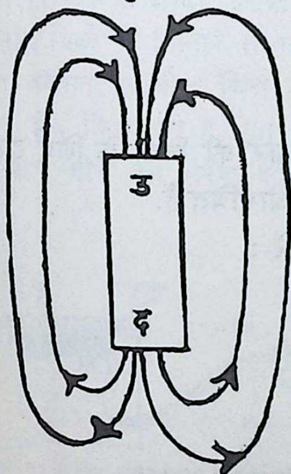
सूर्य के चुम्बकीय क्षेत्र का स्रोत क्या है? यह कैसे उत्पन्न होता है? इस प्रश्न की बारीकियों को समझने के लिए पहले आइए यह याद करें कि एक छड़ चुम्बक के चुम्बकीय क्षेत्र की प्रकृति कैसी होती है.

छड़ चुम्बक और विद्युत कुंडली के चुम्बकीय क्षेत्रों की प्रकृति में पर्याप्त समानता है. यहां दिए चित्र में छड़ चुम्बक और विद्युत कुंडली के चुम्बकीय क्षेत्रों की समानता इस बात की ओर संकेत करती है कि एक छड़ चुम्बक के चुम्बकत्व का स्रोत क्या होता होगा. इसका अर्थ है पदार्थ के कणों में भी इसी प्रकार विद्युत धारा के बहाव की कोई प्रणाली होती होगी. हम जानते हैं कि परमाणुओं में नाभिक की परिक्रमारत इलेक्ट्रोनों के झुण्ड होते हैं और चूंकि इलेक्ट्रोन विद्युत आवेश लिए रहते हैं अतः उनका घूमना विद्युतधारा के प्रवाह के तुल्य है. इसी लिए प्रत्येक परमाणु एक चुम्बक की तरह व्यवहार करता है. परन्तु इन परमाणुओं से निर्मित कोई सामान्य पदार्थ अपने चुम्बकत्वं का प्रदर्शन करेगा या नहीं—यह उसकी संरचना पर निर्भर करेगा—यानि इस बात पर कि उसमें परमाण्विक चुम्बकों की आयोजना क्या है. आमतौर पर पदार्थों में ये 'चुम्बक' बेतरतीब अव्यवस्थित पड़े रहते हैं जिससे कुल मिलाकर वह पदार्थ अचुम्बकीय (अथवा चुम्बकत्वहीन) प्रतीत होता है.

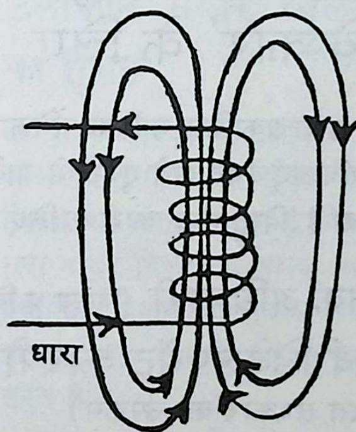
पैरामैगनैटिक पदार्थों में यह गुण होता है यदि हम उन्हें किसी चुम्बकीय क्षेत्र में रखें (जैसे किसी छड़ चुम्बक के पास अथवा किसी विद्युत कुंडली के अन्दर) तो उनके परमाण्विक चुम्बक एक दिशा में आयोजित हो जाते हैं जिससे चुम्बकीय क्षेत्र की तीव्रता यकायक बढ़ जाती है. इसीलिए ऐसे पदार्थों का उपयोग विद्युत-चुम्बक बनाने में किया जाता है (एक कुण्डली को ऐसे पदार्थ के ऊपर लपेटा जाता है).

परन्तु इनसे भी अधिक चमत्कारिक घटना उन पदार्थों में होती है जिन्हें 'लौह चुम्बकीय' अथवा फैरोमैग्नैटिक कहते हैं. ये पदार्थ सामान्य तापमानों पर चुम्कत्व का प्रदर्शन करते हैं, चुम्बकीय क्षेत्र में रखने से इनमें चुम्बकत्व आ जाता है जो क्षेत्र को हटाने पर नष्ट नहीं होता. परन्तु यदि इन्हें पर्याप्त गर्म कर दिया जाए तो परमाण्विक चुम्बक पुनः अव्यवस्थित हो जाते हैं और इस तापमान को 'क्यूरी बिन्दु' कहते हैं—यह लगभग 500 अंश सेल्सियस के आसपास होता है. ऐसे पदार्थों का उपयोग छड़ चुम्बक बनाने में किया जाता है.

निश्चय ही सूर्य के अन्दर छड़ चुम्बक नहीं हो सकता, क्योंकि वहां तापमान क्यूरी बिन्दु से बहुत-बहुत ऊपर है. अतः परमाण्विक चुम्बकों के सदैव एक दिशा में आयोजित बने रहने की कोई संभावना नहीं है. यदि परमाण्विक विद्युत धाराएं सूर्य को चुम्बकत्व देने में असमर्थ है तो इसका निष्कर्ष यह निकलता है कि सूर्य के अन्दर स्थूल तल पर विद्युत धाराओं का संचरण होता होगा. प्रति 11 वर्ष में सूर्य में चुम्बकत्व की दिशा पलटती रहती है, यानि जो अब तक उत्तरी ध्रुव था, वह दक्षिणी ध्रुव बन जाता है.



क. छड़ चुम्बक



ख. विद्युत कुंडली

चित्र- छड़ चुम्बक और विद्युत कुंडली के चुम्बकीय क्षेत्रों की प्रकृति में पर्याप्त समानता है

सूर्य के इस 11 वर्ष के चक्र के साथ इसमें प्रज्वाल फूटने तथा सूर्य कलंकों की घटती बढ़ती संख्या का बड़ा गहरा संबंध है. प्रत्येक ग्यारह वर्ष बाद सूर्य की हलचलों तथा उसमें सूर्य-कलंकों की संख्या महतम हो जाती है. चूंकि यह देखा गया है कि सूर्य कलंक स्वयं तीव्र चुम्बकत्व वाले क्षेत्र होते हैं. अतः इस ग्यारह वर्षीय चक्र का कोई न कोई संबंध उस प्रक्रिया से अवश्य होना चाहिए जो सूर्य में चुम्बकीय क्षेत्र उत्पन्न करती है. इस बारे में अब तक प्रचलित मुख्य अवधारणा यह है कि सूर्य के अन्दर एक डायनेमों जैसी प्रक्रिया चलती रहती है जो मुख्यतः सूर्य के अपनी धुरी पर घूर्णन तथा उसके अंदर संवध्न प्रक्रियाओं का संयुक्त परिणाम है. इस विषय में अब भी विश्व भर में शोध कार्य चल रहा है, हम पूरी तरह सूर्य के इस रहस्यमय पहलू को समझ नहीं पाए हैं. इस विषय की बारीकियों की ओर अधिक चर्चा करना इस स्तम्भ के लिए उपयुक्त नहीं होगा.

सूर्य का अन्य तारों से संबंध तथा हमसे नाता

सूर्य के सान्निध्य के कारण, हमारे जीवन के लिए उसकी आवश्यकता के कारण हम उसे—खरबों तारों में से एक कहकर टाल नहीं पाते. फिर प्रश्न यह भी उठता है यदि सूर्य के अध्ययन का इतना महत्व है तो फिर हम तारों आदि के अध्ययन में धन, श्रम और समय को क्यों व्यर्थ गंवाते हैं. इस प्रश्न के दो उत्तर हैं—एक उत्तर तो सीधा, सरल और सुन्दर है—कि कोई भी सभ्यता शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति को अपव्यय नहीं समझती. अमेरिकी वैज्ञानिक राबर्ट विल्सन के सामने जब यह सवाल रखा गया कि 'कण भौतिकी' (पार्टिकल-फिजिक्स) का देश की प्रतिरक्षा में क्या योगदान है? उनका उत्तर था—चूंकि कण भौतिकी है इसीलिए देश की प्रतिरक्षा करना आवश्यक है—नहीं तो बचाने के लिए हमारे पास है ही क्या?

दूसरा पहलू यह है कि चाहे बहुत बाद में ही सही प्रत्येक शुद्ध वैज्ञानिक शोध ने सदैव मानवता की भलाई में कोई न कोई योगदान अवश्य दिया है. चन्द्र-अभियानों को एक बनाने में मात्र विशुद्ध-विज्ञान और फिजूलखर्ची समझा जाता था—पर इन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से इलैक्ट्रोनिक्स, राकेटरी तथा कम्प्यूटर के क्षेत्र में क्रान्ति का सूत्रपात किया जिसका लाभ हम सबको मिला.

सूर्य को समझकर शायद हम एक दिन तापनाभिकीय संलयन की प्रक्रिया को धरती पर नियंत्रित रूप में दुहराकर अपने ऊर्जा संकट का समाधान पा सकें. अल्ट्रावायलेट तथा एक्स किरण एस्ट्रोनोनी का विकास आरंभ में मुख्यतः तारों के अध्ययन के लिए किया गया था, तब कभी कल्पना भी नहीं की गई थी कि इनके द्वारा सूर्य का अध्ययन करने पर हमें उन ढेर सारी प्रक्रियाओं की जानकारी मिलेगी जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पृथ्वी की अवस्था (तापमान आदि) को नियंत्रित करती हैं—और एक तरह से हमारे अस्तित्व के प्रश्न से बड़े अंतरंग रूप से जुड़ी हैं.

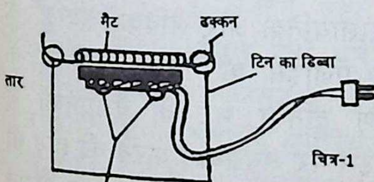
विज्ञान हमें इतना आकर्षक इसीलिए लगता है क्योंकि हमारे पास यह बताने का कोई तरीका नहीं है कि भविष्य के गर्भ में कौन-कौन सी कौतुहलपूर्ण घटनाएं, खोजें और विकास होने हैं. यही जानने की अभिलाषा वैज्ञानिकों को उनके कार्य की ओर प्रवृत्त करती है.

मच्छर भगाने वाली मैट के लिए सस्ता हीटर

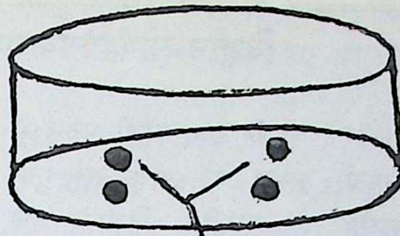
❑ 'आविष्कार मंच' में प्रकाशित कम खर्च में मच्छरों का सफाया ऐसे करें (आविष्कार, मई 1990) शीर्षक पत्र में वर्णित विधि मुझे खर्चीली एवं खतरनाक लगी. उसमें ऊर्जा का व्यय भी अधिक है. पर मैंने जो तरीका अपनाया है उसमें ऐसी बात नहीं है.

मेरी युक्ति लगभग दस-बारह रुपए में बन जाती है. इसमें मैंने सोल्डरिंग आयरन में लगने वाले कम वाट के छोटे से हीटिंग एलिमेंट को इस्तेमाल किया है. इसे बनाने के लिए मुझे इस सामान की आवश्यकता हुई: (1) छोटा टिन का डिब्बा (ढक्कन सहित); (2) सोल्डरिंग आयरन में लगने वाला सबसे कम वाट का हीटिंग एलिमेंट (यह किसी इलेक्ट्रोनिक घटक बेचने वाली दुकान से मिल जाता है); (3) डेढ़ मीटर लंबा बिजली का तार; (4) बिजली का प्लग; (5) लोहे का टुकड़ा; और (6) थोड़ी सी लोहे की पतली तार.

इस सारे सामान को मैंने चित्र-1 में दिखाए गए तरीके से जोड़ा. इसके लिए ढक्कन और डिब्बे के किनारे तीन-तीन छेद तथा ढक्कन के बीच चित्र-2 की तरह चार छेद किए गए हैं. इन चारों छेदों के बीच नीचे की तरफ लोहे के



तार, जिससे लोहे का टुकड़ा और क्वाइल को ढक्कन से बांधा गया है



टुकड़े और सोल्डरिंग आयरन के हीटिंग एलिमेंट को साधारण तार की मदद से बांधा गया है. फिर हीटिंग एलिमेंट के साथ बिजली के तार और प्लग को जोड़ने के बाद ढक्कन और डिब्बे के तीनों छेदों में लोहे की पतली तार डाल कर उन्हें आपस में कस कर बांध दिया गया है. इस तरह यह युक्ति तैयार हो गई.

इसे इस्तेमाल करने के लिए मच्छर भगाने की 'मैट' को ढक्कन के ऊपर रखा जाता है और प्लग को मेन्स विद्युत के साकेट में लगा कर चालू कर दिया जाता है.

विक्रम सिंह देवांगन
ग्राम—पतोरा
पोस्ट—उतई
जिला—दुर्ग (मध्य प्रदेश).

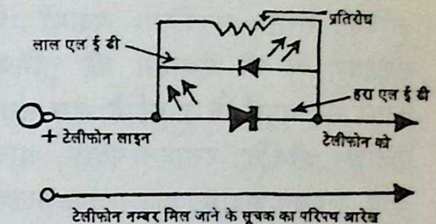
टेलीफोन नम्बर मिल जाने का सूचक

❑ आपने सार्वजनिक टेलीफोन बूथों में लाल-हरे रंग के ऐसे सूचक देखे होंगे जिनसे यह पता लगता है कि घुमाया गया नम्बर मिल गया अथवा नहीं. यहां एक इसी प्रकार के सूचक के बारे में बताया जा रहा है जो सस्ता और सरल है.

इस सूचक में सिर्फ ये तीन इलेक्ट्रोनिक घटक लगते हैं—लाल रंग का प्रकाश उत्सर्जक डायोड (एल ई डी), हरे रंग का प्रकाश उत्सर्जक डायोड और 220 ओह्म का प्रतिरोधक (रजिस्टर).

इसमें, जैसे ही रिसीवर उठाया जाता है लाल रंग का डायोड जलने लगता है. जब हम टेलीफोन मिलाते हैं तो डायल घूमने के साथ-साथ दोनो डायोड क्रमशः जलते-बुझते हैं, दूसरी ओर रिसीवर उठा लिए जाने पर लाल डायोड तो बुझ जाता है और हरा जलने लगता है. कहीं से फोन आने पर दोनों डायोड क्रमशः जलने-बुझने लगते हैं.

इस सूचक को बनाने का तरीका काफी आसान है. हरे और लाल डायोड



टेलीफोन नम्बर मिल जाने के सूचक का परिपथ आरेख

को चित्रानुसार उल्टे समांतर क्रम में जोड़ते हैं यानी धनात्मक सिरे ऋणात्मक सिरे से जोड़े जाते हैं. इनके समांतर क्रम में ही 220 ओहम् का प्रतिरोधक लगा देते हैं. अब तीनों घटकों का एक-एक सिरा टेलीफोन लाइन के धनात्मक सिरे से तथा दूसरे सिरे को टेलीफोन यंत्र से जोड़ देते हैं. बस सूचक काम करने के लिए तैयार हो गया. आप चाहें तो घटकों को टेलीफोन पर एल ई डी होल्डर द्वारा फिट कर सकते हैं.

बिरज कुमार
द्वारा श्री विनय कुमार सिन्हा
स्टेट बैंक ऑफ इंडिया,
कृषि विकास शाखा, हसनपुर रोड,
जिला—समस्तीपुर-848101 (बिहार).

एंजाइम के चमत्कारी प्रभाव

भारत जैसे विकासशील देशों की ऊर्जा संरक्षण और पर्यावरण प्रदूषण की उत्तरोत्तर गंभीर होती जा रही समस्या का समाधान 'एंजाइम' के चमत्कारी प्रभावों द्वारा ढूंढा जा सकता है. बायोगैस संयंत्र, वाहित मल अभिक्रिया संयंत्र में एंजाइम का उपयोग काफी महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है, जिससे ऊर्जा संकट के समाधान की आशा की किरण दिखती है. इसके अलावा एंजाइम के उपयोग द्वारा अनेक कीटनाशक एवं शाकनाशक औषधियों का निर्माण भी संभव हो गया है. असाध्य रोगों के निदान के लिये विशेष कार्बनिक पदार्थों के निर्माण और कृत्रिम तथा अकृत्रिम पदार्थों के संश्लेषण में भी एंजाइम की भूमिका काफी महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है. इस समय एंजाइम औषधि, रसायन पदार्थ, खाद, कृषि रसायन पदार्थ, अपमार्जक पदार्थ, वस्त्र और चर्म वस्तुओं के उद्योग में इस्तेमाल में लाए जा रहे हैं. खाद्य पदार्थों के संसाधन में भी रूपांतरक एवं परिरक्षक पदार्थों का स्थान अब सूक्ष्म जीवों के निकाले जाने वाले एंजाइम ने ले लिया है.

वास्तव में एंजाइम प्रौद्योगिकी का विकास काफी क्रांतिकारी प्रभावों वाला सिद्ध हुआ है. एंजाइम एक प्रकार के प्रोटीन की श्रेणी है, जो 'एमिनो एसिड' का बना होता है. इसका अणुभार काफी अधिक होता है और यह मुख्यतः जीवों में पाया जाता है. लेकिन आज के वैज्ञानिक युग में बहुत से एंजाइम व्यावसयिक तौर पर संवर्धित सूक्ष्म जीवों से निकाले जाते हैं. एंजाइम विशेष क्रियाओं में एक खास तापमान पर तथा अन्य सह-एंजाइम की उपस्थिति में कार्य करते हैं. सबसे बड़ी बात है कि एंजाइम एक या एक से अधिक अणुओं को मिलाकर एक नए पदार्थ का निर्माण करते हैं. इनकी उपस्थिति में रासायनिक क्रियाओं की गति काफी तेज हो जाती है.

वैज्ञानिकों के अनुसार पृथ्वी पर लगभग सात हजार श्रेणियों के एंजाइम विद्यमान हैं. इनमें से लगभग दो-तिहाई पहचाने जा चुके हैं. आजकल विशेष प्रकार की औषधियों को एंजाइम की सहायता से बहुत बड़ी मात्रा में और शीघ्रता से बनाया जा सकता है. इसके लिए एंजाइम को भी काफी कम मात्रा में इस्तेमाल करना पड़ता है. एंजाइम के उपयोग की एक मुख्य विशेषता यह है कि यह अपना कार्य जल विलयन में विशेष तापमान पर करते हैं. अपने इस खास गुण के कारण बहुत से कठिन रासायनिक पदार्थ एक-दूसरे से सामान्य अवस्था में क्रिया करते हैं, जिससे ऊर्जा की भारी बचत होती है.

कुछ रोगों के उपचार में इस्तेमाल की जाने वाली विशेष औषधियों जैसे 'स्ट्रेप्टोमॉइसिन', 'पैनसिलीन' आदि के अलावा मधुमेह में इस्तेमाल की जाने वाली इंसुलिन और कैंसर जैसे जानलेवा रोगों के उपचार के लिए एंजाइम के उपयोग से कई महत्वपूर्ण रासायनिक पदार्थ बनाए जाते हैं.

रासायनिक और जैविक क्रियाओं के मध्य एंजाइम की विशेष भूमिका के कारण दुनिया भर के वैज्ञानिकों में एंजाइम पर अनुसंधान करने की होड़ सी लगी हुई है. पिछले पांच वर्षों के दौरान यह होड़ और तेज हुई है. पांच वर्ष पूर्व पूरे विश्व में मात्र एक दर्जन से कुछ

विज्ञान लोकप्रियकरण हेतु राष्ट्रीय पुरस्कार

नई दिल्ली के टैक्नोलॉजी भवन में 3 मार्च, 1992 को आयोजित एक समारोह में राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद् (एन सी एस टी सी) के वर्ष 1986 से 1990 तक की पांच वर्षों की अवधि के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी संचार के क्षेत्र में राष्ट्रीय पुरस्कार प्रदान किए गए. पुरस्कारों का वितरण मुख्य अतिथि डा० वी० एस० अरुणाचलम, विज्ञान सलाहकार, रक्षा मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा किया गया.

विज्ञान और प्रौद्योगिकी लोकप्रियकरण हेतु एक लाख रुपए का राष्ट्रीय पुरस्कार संयुक्त रूप से मराठी विज्ञान परिषद्, बंबई और मध्य प्रदेश विज्ञान सभा, भोपाल को प्रदान किया गया.

जन संचार माध्यमों में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के सर्वोत्तम कवरेज हेतु पचास हजार रुपए का राष्ट्रीय पुरस्कार संयुक्त रूप से कलकत्ता के श्री समर के बागची और डा० पार्थ घोष को प्रदान किया गया.

बच्चों में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के लोकप्रियकरण हेतु पचास हजार रुपए का राष्ट्रीय पुरस्कार संयुक्त रूप से प्रोफेसर शंकरण नायर शिवदास, कोट्टयम केरल और डा० एम० नलिनी मोहन राव, नई दिल्ली को प्रदान किया गया.

विजेताओं को प्रत्येक पुरस्कार के साथ कांस्य पदक तथा प्रशस्ति पत्र भी प्रदान किए गए.

अधिक वैज्ञानिक संस्थाएं एंजाइम पर कार्य कर रही थीं, लेकिन आज इनकी संख्या 200 के ऊपर पहुंच चुकी है.

मवेशियों की आबादी बढ़ने से पर्यावरण को नुकसान

अमेरिकी वर्ल्डवाच इंस्टिट्यूट द्वारा किए गए एक ताजा अध्ययन से पता चला है कि पालतू मवेशी भी सारे विश्व में पर्यावरण के लिए अच्छा खासा खतरा बनते जा रहे हैं. इस समय विश्व में मनुष्य और इन पशुओं का अनुपात एक और तीन का है.

पर्यावरण विशेषज्ञों के अनुसार हरियाली जमीन के धीरे-धीरे रेगिस्तानी बनने की प्रक्रिया भी पशुओं द्वारा बहुत अधिक चराई के कारण है. हरी घास की अत्यधिक चराई के कारण वहां खरपतवार और कंटीली झाड़ियां उगनी आरंभ हो जाती हैं जिनकी जड़ें मिट्टी को पूरी तरह पकड़ने में असमर्थ हो जाती हैं. अत्यधिक चराई से भूमि की ऊपरी सतह सख्त हो जाती है जिससे वारिश का पानी जमीन के अंदर नहीं पहुंच पाता.

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम द्वारा एकत्र आंकड़ों के अनुसार सारे विश्व की 330 करोड़ हेक्टेयर शुष्क भूमि में से 73 प्रतिशत रेगिस्तान में तब्दील होती जा रही है. हालांकि सहारा रेगिस्तान से लगे देशों में रेगिस्तान बनने की प्रक्रिया ज्यादा जोर पर है लेकिन बहुत से आधुनिक देश भी इससे नहीं बचे हैं. अमेरिकी लैंड ब्यूरो मैनेजमेंट की 1990 की एक रिपोर्ट के अनुसार अमेरिका के पश्चिमी हिस्से में पशुओं के चारागाह के तौर पर इस्तेमाल होने वाली कुल जमीन का केवल 33 प्रतिशत या 230 लाख हेक्टेयर जमीन ही ठीकठाक हालत में है. लैटिन अमेरिकी देश पशुओं की चराई से सर्वाधिक प्रभावित हुए हैं. ब्राजील, बोलीविया और कोलम्बिया जैसे देशों में पिछले लगभग 21 सालों में किसानों और पशुपालकों ने दो करोड़ हेक्टेयर से भी अधिक जमीन पर खड़े हरियाले जंगल चरागाहों में बदल दिए हैं जिनके कारण वहां की जलवायु भी प्रभावित हुई है.

दवाएं कैसे रोकती हैं मलेरिया

मैनहेसेट, न्यूयार्क स्थित पिकोवर इंस्टिट्यूट फार मेडिकल रिसर्च में मलेरिया के नए उपचार ढूंढने के लिए प्रयत्नशील वैज्ञानिकों को कुछ नई सफलता हासिल हुई है. वे इस बात का अध्ययन कर रहे हैं कि मलेरिया की स्टेंडर्ड दवाएं किस प्रकार काम करती हैं.

विज्ञान पत्रिका 'नेचर' के 9 जनवरी 1992 के अंक में प्रकाशित इन वैज्ञानिकों की रिपोर्ट में बताया गया है कि क्लोरोक्वीन नामक प्रचलित दवा वास्तव में एक महत्त्वपूर्ण एंजाइम का प्रभाव रोकती है. अध्ययन से प्राप्त जानकारी के आधार पर ऐसी नई दवाएं भी तैयार की जा सकती हैं जो इस एंजाइम का प्रभाव रोक सकें.

उल्लेखनीय है कि मलेरिया अभी भी विश्व में हर साल लगभग 15 लाख लोगों की मौत के लिए जिम्मेदार है. यू०एस० इंस्टिट्यूट आफ मेडिसन ने गत साल अक्तूबर में एक रिपोर्ट जारी कर लोगों को सावधान किया था कि मलेरिया के कीटाणुओं ने क्लोरोक्वीन जैसी दवाओं की प्रतिरोधक क्षमता विकसित कर ली है इसीलिए इन दवाओं का अब पहले जैसा असर नहीं रहा.

नई सूक्ष्म प्रौद्योगिकी

बर्कले स्थित कैलिफोर्निया के स्नातक लांग-शेंग फ्रान और यू-चांग ताई को सूक्ष्मता के संसार में एक महान उपलब्धि हासिल हुई है.

इन दोनों ने 0.1 मिलीमीटर से भी छोटे एक उपकरण की सहायता से ऐसी पहली सूक्ष्म वैद्युत-मोटर तैयार की है जिसे देखने के लिए इलेक्ट्रान माइक्रोस्कोप (सूक्ष्मदर्शी) का सहारा लेना पड़ता है.

एक कंप्यूटर चिप की तरह बनाई गई इस मोटर में कागज जैसा पतला

एस्प्रिन से बड़ी आंत के कैंसर का खतरा कम

एक नए अध्ययन से पता चला है कि आम तौर से दर्दनाक दवा के रूप में इस्तेमाल की जाने वाली एस्प्रिन के नियमित उपयोग से बड़ी आंत के कैंसर का खतरा कम हो सकता है. अमेरिका में फेफड़े के कैंसर के बाद यह दूसरे नम्बर का सबसे घातक कैंसर है जिससे हर साल 50,000 मौतें होती हैं.

अमेरिकन कैंसर सोसायटी के शोधकर्ताओं ने 'न्यू इंग्लैंड जर्नल आफ मेडिसिन' के गत पांच दिसंबर के अंक में अपने परीक्षणों के बारे में लिखा है. उनका निष्कर्ष है कि जो लोग महीने में कम से कम 16 बार एस्प्रिन का सेवन करते हैं उनमें बड़ी आंत के कैंसर से मौतों की संख्या लगभग आधी हो जाती है. अभी भारत में इस प्रकार के किसी अध्ययन के समाचार नहीं मिले हैं.

सिलिकन का एक टुकड़ा जो 10 सेंटीमीटर का होता है, एक कांच (सिलिकान डाइऑक्साइड) में बंद कर दिया जाता है और उस पर एक तरल प्लास्टिक प्रकाश प्रतिरोधी पदार्थ का लेप किया जाता है. यह रोशनी आते ही सूक्ष्म खंडों में टूट जाता है, उत्कीर्णन रसायन कांच की परत के अरक्षित हिस्सों को घुला देते हैं, जिससे सिलिकान के टुकड़े पर सर्किट उभर आते हैं. इस क्रिया को बार बार दोहरा कर चिप कर परस्पर संबद्ध सर्किटों की परत दर पतर बनाई जाती है. इसके बाद एक सिलिकान आधार व रोटर बनाकर उनके मध्य कांच की परत को एक अम्ल उत्कीर्णक गला कर मोटर बनाई गई.

फ्रान और ताई का कहना है कि इस नए प्रयोग का अर्थ है कि हर परत लगभग 200 चिप तक रखी जा सकती है और हर चिप सौ से अधिक माइक्रोमशीनें वहन कर सकती है. इस नवीन तकनीक के साथ हम एक ही चिप पर एक कंप्यूटर मस्तिष्क एवं सूक्ष्म यंत्र संवेदी और कारक बना सकते हैं जो कंप्यूटर की आंख, कान और हाथ का काम करेंगे.

इस खोज का व्यवहारिक उपयोग क्या है? अमेरिका के वाशिंगटन स्थित नेशनल साइंस फाउंडेशन के अनुसंधान इंजीनियर जार्ज हैजलरिंग के अनुसार एक दशक के अंदर ही डाक्टर माइक्रोस्कोपिक कटर्स एवं हस्त कौशल वाले ऐसे उपकरण इस्तेमाल कर सकेंगे जिससे भारी शल्य चिकित्सा भी, जो अभी चीर फाड़ करके की जाती है, बिना चीर फाड़ के ही जा सकेगी.

एड्स जैसे वायरस से बंदरों की रक्षा के लिए टीका बना

दीर्घकालीन अनुसंधानों से ऐसे संकेत मिले हैं कि भविष्य में मनुष्यों में एड्स की रोकथाम के लिए कारगर दवा ईजाद करना संभव हो सकेगा. अमेरिकी वैज्ञानिकों ने जेनेटिक इंजीनियरी के इस्तेमाल से एड्स जैसी एक बीमारी से बंदरों की सुरक्षा करने में सक्षम एक टीका विकसित किया है.

अमेरिकी विज्ञान पत्रिका 'साइंस' के 24 जनवरी 1992 के अंक में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार छोटी पूंछवाले चार बंदरों को एस०आई०वी० यानि सिमियन इम्यूनोडेफिशियेन्सी वाइरस के प्रतिरोधक टीके लगाए गए. एस०आई० वी० मानव में एड्स रोग फैलाने वाले एच०आइ०वी० याने ह्यूमन इम्यूनोडेफिशियेन्सी वाइरस का नजदीकी रिश्तेदार है.

रिपोर्ट में बताया गया कि टीका लगाने से चारों बंदरों में ऐसे प्रतिरोधक तत्व पैदा हो गए जिनके कारण वे एक साल तक एस०आइ०वी० से पूरी तरह सुरक्षित रहे. चार बंदरों के एक अन्य दल में भी एस०आइ०वी० सीधे प्रविष्ठ कराए गए लेकिन कोई टीका नहीं लगाया गया. यह दल कुछ ही सप्ताहों में पूरी तरह रोगग्रस्त हो गया. बंदरों पर यह सीमित सफलता प्राप्त करने वाले अमेरिकी वैज्ञानिक ब्रिस्टल-मेयर्स स्क्विच फार्मास्यूटिकल रिसर्च इंस्टिट्यूट, वाशिंगटन विश्वविद्यालय, ड्यूक विश्वविद्यालय और नेशनल कैंसर इंस्टिट्यूट से थे.

ड्यूक विश्वविद्यालय के सेंटर फार रिसर्च के वैज्ञानिक डा० दानी बोलोनोंजी के अनुसार उपरोक्त परिणाम इस दावे का समर्थन करते हैं कि जेनेटिक इंजीनियरी द्वारा तैयार टीके से मानव एड्स की रोकथाम में भी सफलता मिल सकती है. इसलिए अब मानव स्वयंसेवकों पर भी परीक्षण किए जा रहे हैं और उनसे उत्साहजनक संकेत मिल रहे हैं.

एजेंट कृपया ध्यान दें

पत्रिका की बिक्री करने वाले एजेंटों से निवेदन है कि वे कृपया पत्रिका की प्रतियों का आर्डर अग्रिम दें. संबंधित अंक के प्रकाशन से कम से कम एक महीने पहले आर्डर कार्यालय में पहुंच जाना चाहिए. इसके लिए यह आवश्यक है कि आर्डर की गई प्रतियों का मूल्य (कमीशन काट कर) पहले ही कार्यालय में जमा करा दिया गया हो. पत्रिका का अंक प्रकाशित हो जाने के बाद आर्डर में वृद्धि नहीं की जा सकती है. कृपया अपने आर्डर में निकटतम रेलवे स्टेशन का उल्लेख अवश्य करें ताकि पार्सल भेजने में सुविधा हो और आपको प्राप्त करने में विलंब न हो. कृपया ध्यान रहे कि आप उतनी ही प्रतियों का आर्डर दें जितनी आप आसानी से बेच सकते हैं, क्योंकि एक बार आर्डर की गई पत्रिकाओं को वापस लेने की व्यवस्था नहीं है.

—कनिष्ठ वैज्ञानिक अधिकारी

शांति और आदमी की विचारशक्ति को बढ़ावा

□ हरीश अग्रवाल

□ कोई बड़ा समाचार-पत्र भविष्य के बारे में गलत अनुमान लगा सकता है. इसी तरह 1903 में न्यूयार्क टाइम्स ने प्रो० लेंगले को एक महान वैज्ञानिक बताते हुए कहा था कि वे अपना मूल्यवान समय उड़ान (बाद में हवाई जहाज का आविष्कार हुआ) के प्रयोगों में बर्बाद कर रहे हैं. वे इससे कहीं अधिक काम के प्रयोग कर सकते हैं. जीवन छोटा है, वे मानवता के लिए हवाई प्रयोगों से कहीं अधिक बड़ी सेवाएं प्रदान कर सकते हैं.

भविष्य का आविष्कार करने के लिए नियुक्त कंपनी मैनेजर लाभदायक आविष्कार कर सकते हैं. मसलन सुपर कंप्यूटर विश्वव्यापी संचार के भविष्य को बता सकते हैं. वे मौसम की भविष्यवाणी कर सकते हैं, विमानों की रूपरेखा बना सकते हैं और भूगर्भिक खोज कर सकते हैं. बाइबल का संदर्भ ग्रंथ बनाने में विद्वानों को 17 साल लगे थे. अब उसी को सुपर कंप्यूटर 20 सेकेंड में बता सकते हैं. वे एक सेकेंड में अरबों गणनाएं कर सकते हैं. 1992 तक इससे एक हजार गुना अधिक गणना करने वाला सुपर कंप्यूटर आ जाएगा. लेकिन सबसे बड़ी सफलता जापान को ही प्राप्त होगी.

प्रो० लेंगले ने एक छोटे-से विमान में एक हल्का इंजन लगाया था, जिससे वह आदमी को लेकर उड़ सके. प्रारंभिक असफलताओं का मजाक— 'न्यूयार्क टाइम्स' व अन्य अखबारों ने उड़ाया था. 1914 में लेंगले का विमान उड़ा. अब उन सामाजिक, राजनीतिक, वित्तीय तथा सैनिक परिवर्तनों का अनुमान लगाना कठिन है, जो विमान तथा संबद्ध उद्योगों के कारण तब से हुए हैं. 1903 में 'आदमी को उड़ाने वाली मशीन' पर 50 हजार डालर का संघीय खर्च राष्ट्र की सबसे बड़ी लागत रही होगी.

विमान की तरह बैल के टेलीफोन के आविष्कार पर किसी को विश्वास नहीं हुआ. 1876 में आदमी यह मानने को तैयार नहीं था कि उसकी आवाज एक जगह से दूसरी जगह सुनी जा सकेगी. अब देखिए फाइबर ऑप्टिक टेलीफोन तार 40 हजार ध्वनि तथा कंप्यूटर कॉल साथ-साथ ले जाने के लिए लेसर प्रकाश का प्रयोग करती है. यह प्रणाली 1988 में एटलांटिक के आरपार शुरू हुई. टेलीफोन से हर देश का सामाजिक ढांचा बदल गया. 1920 के दशक में टेलीफोन को एक लोकतंत्री शक्ति समझा गया जो 'व्यक्तियों के बीच तुरंत अंतरक्रिया' संभव बना देगा. अब संसार एक नए युग की ओर जा रहा है, जिसमें संचारकर्ताओं के आविष्कारों और स्वप्नों की परीक्षा होगी, व्यापार बाधाएं समाप्त हो जाएंगी. केवल माल ही नहीं, सेवाएं, पूंजी तथा आदमी की कुशलता मूल रूप से एक स्थान से दूसरे स्थान को जा सकेंगी. हर प्रकार की सूचना कंप्यूटर और दूरसंचार के द्वारा पहले से तेज गति से अपार मात्रा में भेजी जा सकेंगी. आई०बी०एम० का अनुमान है कि 1990 के दशक के मध्य तक संसार में एक अरब कंप्यूटर होंगे जो एक-दूसरे से या एक संजाल से जुड़े होंगे, जिस तरह आज टेलीफोन एक विश्वव्यापी दूरसंचार संजाल से जुड़े हुए हैं.

केनेथ बूल्डिंग सूचना और ज्ञान को वह नाम देते हैं, जिससे 'अनिश्चितता कम होती है'. नई संचार प्रणालियां घर तथा कार्यालय के कामकाज में निरंतर परिवर्तन लाएंगी. आई०एस०डी०एन० से 'एक नई विश्व सूचना तथा संचार व्यवस्था' बनेगी. इस सूचना शक्ति में भाग लेने के लिए राजनीतिक इच्छा अवश्यम्भावी होगी. कुछ ही साल में टेलीविजन संवाददाता विदेशों से समाचार भेजने के लिए चल उपग्रह संपर्क प्रणाली का इस्तेमाल करेंगे, जिससे वे एक ट्रांसपोंडर पर समय ले सकेंगे और दूसरे महाद्वीप को 'लाइव' चित्र भेज सकेंगे. 1988 के राष्ट्रपति के चुनाव के समय 'वाशिंगटन पोस्ट' का पत्रकार विमान में एक लेपटॉप कंप्यूटर तथा मोडेम, केसेट रिकार्डर, सेलुलर फोन, सचल प्रिंटर, अलार्म घड़ी और टेलीफोन नम्बरों की 'मेमोरी' साथ ले गया. अब हम इसे 'टेक्नीट्रॉनिक सोसायटी' कहते हैं. दूरी अब कोई बाधा नहीं है. हर कस्बा और नगर हर अन्य स्थान से बराबर दूरी पर है. उपग्रह के द्वारा हम 22,300 मील और दो सेकेंड दूर हैं.

चिप्स समूचे नए उद्योगों को जन्म दे रहे हैं. नए संचार मार्ग लोगों, मशीनों, भवनों तथा अनेक जड़ पदार्थों के बीच खुल रहे हैं. भवन दूसरे भवनों के साथ 'बातचीत' करेंगे. घरेलू उपकरण दूसरे उपकरणों से संपर्क स्थापित करेंगे—यह सब-कुछ आदमी के हस्तक्षेप के बिना होगा. चिप्स के द्वारा विभिन्न चीजों में अपार सूचना टेक्नोलोजी भरी जा रही है. इस दशक के मध्य तक एक महत्वपूर्ण एक्स-किरण टेक्नोलोजी के द्वारा कंप्यूटर चिप्स बनाए जाएंगे. सेमीकंडक्टर (चिप्स) कंप्यूटरों के मूल तत्व हैं. इस समय सिलिकन के बने बेफर्स पर प्रकाश केन्द्रित करके सर्किट

छापे जाते हैं. चिप्स एक करोड़ 60 लाख सूचना टुकड़े (बिट्स) अपने अंदर समा सकते हैं. एक बिट एक अंक होता है जो मिलकर शब्द या संख्या बनाता है. एक्स-किरण लिथोग्राफी के इस्तेमाल से हाथ के नाखून के आकार के एक चिप पर लगभग एक हजार टाइपलिखित पेज समा सकते हैं. जापान ने एक संयुक्त सरकार-उद्योग कार्यक्रम शुरू किया है, जिसमें सेमीकंडक्टिंग प्रक्रिया में एक्स-किरण लिथोग्राफी के प्रयोग किए जाएंगे. इस पर एक खरब डालर खर्च आएगा. ये प्रयोग कंप्यूटर विकास की अगली पीढ़ी के लिए आवश्यक हैं. अमेरिका में केवल आई०बी०एम० इस प्रकार के कार्यक्रम पर अनुसंधान कर रहा है. अब वर्तमान चिप-निर्माण टेक्नोलोजी पुरानी हो गई है. नेशनल साइंस फाउंडेशन के निर्देशक एरिक ब्लॉक का कहना है—''यहां यदि हम चूक गए तो वह उसी समान होगा जैसी बीसवीं शताब्दी के आरंभ में आंतरिक दहन इंजनों के डिजाइन व निर्माण कार्य में भाग न लेना''.

जार्ज ऑरवैल ने शैशवावस्था की संचार क्रांति को प्रति क्रांति की संज्ञा दी थी—बुरे सत्ताधारियों का निस्सहाय जनसाधारण पर अंतिम आधिपत्य. उन्होंने सबसे पहले 1930 के दशक में स्पेन की बात कही थी जहां जनता को मुक्ति दिलाने का बहाना करने वाली शक्तियों ने उसी का नरसंहार किया.

प्रश्न उठता है क्या आई०एस०डी०एन० शांति तथा आदमी की विचारशक्ति को बढ़ावा देगा? 1926 में 'द टेलीफोन आइडिया' में आर्थर पाउंड ने कहा था—''यदि टेलीफोन प्रणाली 1861 से पहले आज के उच्च स्तर पर होती तो गृह युद्ध (सिविल वार) न होता''. शायद वे चाहते हैं कि माउंट एवरेस्ट की चोटी से न्यूयार्क के शयन कक्ष में दूरदर्शन पर दृश्य दिखाए जाते और इससे शांति की संभावना बढ़ती. मई, 1988 में ब्रिटिश पर्वतारोहियों ने ऐसा ही किया. वे अपने साथ एक लघु उपग्रह संचार भू-स्टेशन ले गए थे. इस तरह इस प्रकार के स्वतंत्र संचार से अंतरराष्ट्रीय सद्भावना बढ़ सकती है और देशों के बीच तनाव कम किया जा सकता है.

दूरसंचार के गुरू आर्थर सी० क्लार्क ने 1983 में आशावादी बात कही थी. उन्होंने कहा था कि पत्रकार दस वर्ष में राष्ट्रीय संचार प्रणालियों से स्वतंत्र हो जाएंगे. समाचार लेने वाले माध्यम सेंसरों या अकुशल (कभी-कभी जिनका अस्तित्व भी नहीं होता) डाक व तार सेवाओं की दया पर निर्भर नहीं रहेंगे. इसका अर्थ है संसार का एकीकरण. क्लार्क ने इस ख्याल को गलत बताया कि अनेक देश इन मशीनों को अपने यहां नहीं आने देंगे. वे इस तरह अपनी ही आर्थिक आत्महत्या करेंगे क्योंकि उनके यहां न कोई विदेशी सैलानी आएंगे और न कोई व्यापारी विदेशी मुद्रा देगा. उन्होंने कहा है कि सूचना के मुक्त प्रसार का पुराना विवाद शीघ्र ही ''राजनीतिकों द्वारा नहीं बल्कि इंजीनियरों द्वारा हल किया जाएगा जिस तरह अब जनरल नहीं बल्कि भौतिक शास्त्री रणनीति का फैसला करते हैं''.

यहां यह स्मरणीय है कि यूनेस्को की स्थापना 1946 में केवल ज्ञान बढ़ाने के लिए नहीं बल्कि शांति को बढ़ावा देने के एक साधन के रूप में हुई थी. तब विद्वानों ने कहा था कि शांति या अन्य किसी उद्देश्य के लिए ज्यादा से ज्यादा शिक्षा 'सामूहिक शिक्षा के आधुनिक यंत्रों—प्रेस, रेडियो तथा चलचित्रों के द्वारा ही दी जा सकती है. ❑

प्रकृति में खनिज तेल तथा गैस का निर्माण

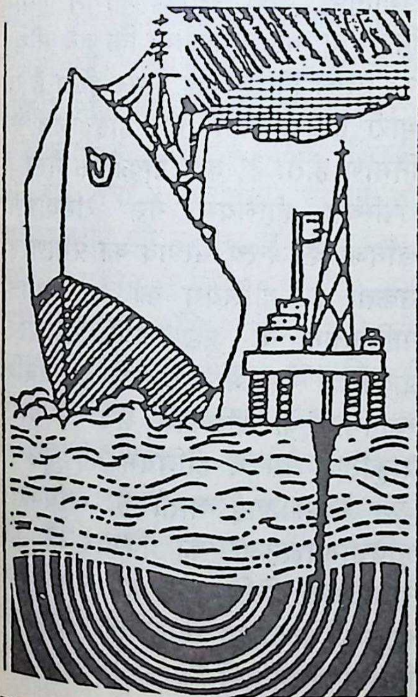
❑ डा० विजय कुमार उपाध्याय

❑ आज संसार के लगभग सभी भूविज्ञानवेत्ता इस विचार से सहमत हैं कि खनिज तेल एवं गैस की उत्पत्ति कार्बनिक पदार्थों से हुई है. इस विचार के पक्ष में कुछ ठोस प्रमाण हैं: अधिकतर खनिज तेलों में उस तरह के गुण पाए जाते हैं जो जीवित प्राणियों से प्राप्त पदार्थों में पाए जाते हैं जैसे प्रकाश सक्रियता और कुछ जटिल कार्बनिक पदार्थ, जैसे पर्णहरित, पौरफाइरिन इत्यादि. 99 प्रतिशत से अधिक खनिज तेल अवसादी चट्टानों में पाया जाता है, तथा 95 प्रतिशत से अधिक तेल-क्षेत्र समुद्री अवसादों में पाए गए हैं.

ऐसी संभावना है कि तेल-निर्माण के लिए मूल स्रोत पदार्थ कुछ वैसे छोटे पौधे तथा जंतु हैं जो पानी के ऊपर तैरते रहते हैं. इनमें से अधिकतर जीव छिछले पानी में ही जन्म लेते, बढ़ते तथा फलते-फूलते हैं, क्योंकि छिछले पानी में सूर्य का प्रकाश भीतर तक घुस सकता है. स्रोत पदार्थों में कुछ वैसे पौधे तथा जन्तु भी शामिल हैं जो काफी गहरे पानी में समुद्र की तलहटी पर निवास करते हैं. तैरने वाले (प्लैंकटन्स) जीव अधिकतर छिछले पानी में समुद्र के किनारे के जल में निवास करते हैं. एफ०डब्ल्यू० वीक्स के मतानुसार तैरने वाले जंतुओं (जूप्लैंकटन्स) में बहुत ही सूक्ष्म जंतु जैसे कोपपौड शामिल हैं, जब तैरने वाले पौधों (फाइटोप्लैंकटन्स) में

मुख्यतः डायटम शामिल हैं. हालांकि अधिकांश भूवैज्ञानिकों का मत है कि खनिज तेल की उत्पत्ति के लिए मातृ-पदार्थ तैरने वाले पौधे ही हैं फिर भी इस संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता कि इसमें कुछ तैरने वाले जंतु तथा गहरे पानी में रहने वाले कुछ जंतु भी शामिल हैं.

सभी तैरने वाले जीव मृत्यु के उपरांत धीरे-धीरे नीचे की ओर पानी में उतरते हैं. यदि पानी की गहराई बहुत अधिक रही तो ऐसी सम्भावना रहती है कि समुद्र की पेंदी पर पहुंचने के पूर्व ही उनका पूर्ण रूपेण विघटन तथा क्षय हो जाता है. यदि पानी में हलचल रहती है तो कम गहराई के बावजूद मृत जीवों का आक्सीकरण या विनाश संभव है. परंतु यदि जल शान्त है तथा पानी की गहराई कम है तो ऐसी संभावना रहती है कि मृत जीव के शरीर पूरी तरह नष्ट नहीं हों, वरन् उनका कुछ अंश समुद्र की पेंदी पर जमा होने लगता है. मृत जीवों के जमा होने के बाद यह आवश्यक है कि उनका संरक्षण हो. संरक्षण के लिए

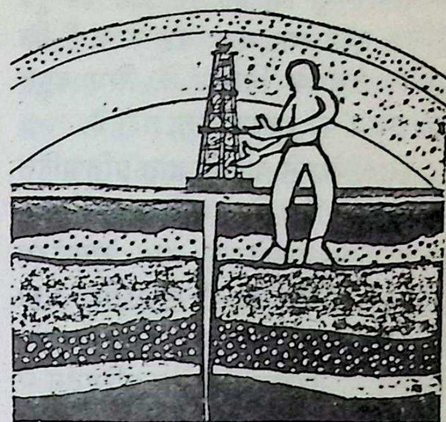


यह अत्यावश्यक है कि मृत जीवों के संग्रहण के साथ-साथ खनिज-कणों का अवसाद भी संग्रहित होता रहे.

अब प्रश्न उठता है कि जीवों के विघटन से खनिज तेल का निर्माण कब होता है. इस सम्बन्ध में दो प्रकार के मत प्रकट किए गए हैं. एक प्रकार के मत के अनुसार अवसाद के जमा होने के दौरान ही जीवों का विघटन चलते रहता है तथा तेल का निर्माण होते रहता है. परंतु दूसरे मत के अनुसार मृत जीवों के शरीर जब अवसाद से पूरी तरह आच्छादित एवं संरक्षित हो जाते हैं तो उसके बहुत लम्बे समय के बाद धीरे-धीरे मृत जीवों का विघटन तथा तेल का निर्माण सम्भव हो पाता है. इस दौरान अवसाद चट्टानों में परिवर्तित हो जाते हैं.

भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण के भूवैज्ञानिक मुर्रे स्टुअर्ट के मतानुसार मृदा-कणों के अवसादन के साथ-साथ जीवों के विघटन से तेल निर्मित होता रहता है, तथा जमा होने वाले अवसाद में समसर्वत्र रूप से बिखरता जाता है. जब कुछ समय के बाद अवसाद के कण दबकर चट्टानों का रूप लेते हैं तो उसमें मिला हुआ तेल दाब के प्रभाव से बाहर निकल जाता है तथा नवनिर्मित चट्टानों के बीच कोई अनुकूल स्थान पाकर भंडार के रूप में जमा हो जाता है.

संयुक्त राज्य अमेरिका में समुद्र में किनारे से थोड़ी ही दूर पर समुद्र की पेंदी में बेधन (ड्रिलिंग) किया गया तथा प्राप्त केंद्र के विश्लेषण से पता चला कि इन नमूनों में द्रव हाइड्रोकार्बन की कुछ प्रतिशत मात्रा मिली हुई थी. इसी प्रकार का निष्कर्ष उन क्रोड के नमूनों के विश्लेषण से भी निकला जो मिनेसोटा तथा विस्कौंसिन में झील निर्मित चट्टानों में बेधन से पाए गए. पी०वी०



स्मिथ का विचार है कि यद्यपि उपर्युक्त क्रोड नमूनों में हाइड्रोकार्वन की मात्रा बहुत ही कम थी फिर भी अनुकूल अवसर तथा अनुकूल माहौल पाकर इनसे काफी बड़े तेल भंडार का निर्माण संभव हो सकता है. लाउसियाना, संयुक्त राज्य अमेरिका के निकट, किनारे से समुद्र के भीतर लगभग 10 किलोमीटर पर वेधन से प्राप्त क्रोड के विश्लेषण से प्राप्त आंकड़े इस प्रकार हैं:

गहराई (मी०)	मुक्त हाइड्रोकार्बन
0.90-1.20	7.5 प्रतिशत
5.50-6.70	20.4 प्रतिशत
15.85-16.15	27.5 प्रतिशत
31.00-31.40	30.9 प्रतिशत

उपर्युक्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि गहराई के साथ-साथ हाइड्रोकार्बन की प्रतिशत मात्रा बढ़ती जाती है, तथा यह बढ़ना एक सीमा तक जारी रहता है. इन आंकड़ों के अध्ययन के उपरान्त स्मिथ ने निष्कर्ष निकाला कि दबे हुए कार्बनिक पदार्थ का खनिज तेल में परिवर्तन की मात्रा गहराई तथा समय के अनुसार बढ़ती जाती है. कुछ नमूनों से प्राप्त हाइड्रोकार्बन की आयु का निर्धारण कार्बन-14 विधि से किया गया

तो पाया गया कि यह 12,300 वर्ष पूर्व निर्मित हुआ था. अतः यह स्पष्ट है कि खनिज तेल के निर्माण के लिए बहुत लंबे समय की आवश्यकता नहीं है.

इस संबंध में कई सिद्धांत प्रतिपादित किए गए हैं जैसे कि, कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन, तथा फास्फोरस जो मूल जैविक पदार्थों में प्रोटीन, वसा आदि के रूप में उपस्थित थे, हाइड्रोकार्बन के रूप में परिणत हुए. इस परिवर्तन में ताप, दाब, उत्प्रेरण, प्राकृतिक स्रवण, जीवाणु-सक्रियता तथा रेडियोधर्मिता की काफी बड़ी भूमिका रही होगी. मुर्रे स्टुअर्ट ने राय जाहिर की कि म्यानमार (बर्मा) के येनान्मा क्षेत्र, पोटवार के खोर क्षेत्र तथा पाकिस्तान के साल्ट रेंज के तेल एवं गैस आदि नूतन काल के लिग्नाइट में उपस्थित वाष्पशील पदार्थों से उत्पन्न हुए हैं. इन चट्टानों में बहुत बड़े पैमाने पर भ्रंशन के कारण तापक्रम बढ़ जाने से लिग्नाइट के वाष्पशील पदार्थ अलग हो गए जिनसे खनिज तेल के घटकों का निर्माण हुआ. परन्तु ये सिद्धांत संतोषजनक नहीं मालूम पड़ते क्योंकि इसके लिए बहुत ही उच्च तापक्रम चाहिए जिससे खनिज तेल का प्राकृतिक स्रवण हो सके. फिर इन क्षेत्रों में झामा किस्म की चट्टानें अनुपस्थित हैं जो यह प्रणाणित करें कि यहां कभी आवश्यक उच्च तापक्रम उपलब्ध हुआ होगा.

कुछ प्राकृतिक पंक (क्ले) तेल शोधक कारखानों में भारी तेल को हल्के तेल में परिवर्तित करने के लिए उत्प्रेरक का काम करते हैं. संश्लेषित उत्प्रेरक, जिसमें 12.5 प्रतिशत अल्युमिना तथा 87.5 प्रतिशत सिलिका रहता है, उपर्युक्त कार्य के लिए प्रायः उपयोग में लाया जाता है. पंक का यह गुण कच्चे खनिज तेल के संघटन की विभिन्नताओं की व्याख्या के लिए कई संतोषजनक सिद्धांत प्रस्तुत करता है, परंतु इससे इस बात की व्याख्या नहीं हो पाती कि मूल जैविक पदार्थों से खनिज तेल कैसे निर्मित हुआ.

पी०डी० ट्रास्क के मतानुसार तैरने वाले जीवों के औसत रासायनिक संघटन में 24 प्रतिशत प्रोटीन, 3 प्रतिशत वसा तथा 73 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट रहता है. उसके मतानुसार साधारण प्रोटीन, वसा तथा सेल्युलोज से तेल की उत्पत्ति नहीं होती, वरन जटिल प्रोटीन ही तेल-उत्पत्ति के मूल स्रोत हैं. मूल कार्बनिक पदार्थ के टूटने में प्रथम चरण में उन जीवाणुओं की सक्रियता शामिल है जो अवायवीय स्थिति में रहते हैं. इस प्रकार के जीवाणु सल्फेट को सल्फाइड में बदल देते हैं जिससे जल-अपघटन द्वारा हाइड्रोजन सल्फाइड गैस बनती है. ये जीवाणु झील तथा दलदल के स्थिर पानी में जो लगभग आक्सीजन रहित है, विघटनशील कार्बनिक पदार्थों से मीथेन गैस मुक्त करते हैं:

सी०ई० जोवेल ने समुद्र की सतह से 915 मीटर की गहराई से पंक का नमूना प्राप्त कर उसकी जांच से पाया कि यह पंक उपर्युक्त प्रकार के जीवाणु से भरपूर है. समुद्री अवसाद में उपस्थित जीवाणु में यह गुण रहता है कि वे प्राकृतिक वसा अम्ल यानी फैटी एसिड तथा उसी प्रकार के अन्य कार्बनिक पदार्थों से तेल के समान पदार्थ उत्पन्न करते हैं. समुद्र की तलहटी में जीवाणु की आबादी पंक की सतह तथा उससे कुछ सेंटीमीटर नीचे तक फैली रहती है. अतः जीवाणु द्वारा उत्पन्न कोई भी जैव रासायनिक परिवर्तन बहुत ही कम गहराई तक सीमित रहता है. हालांकि यह ज्ञात है कि अवायवीय जीवाणु विघटनशील कार्बनिक पदार्थों से आक्सीजन, नाइट्रोजन, सल्फर तथा फास्फोरस मुक्त करता है और साथ ही मीथेन भी उत्पन्न करता है, परंतु अभी तक यह प्रमाणित नहीं हो पाया है कि वे उस प्रकार के हाइड्रोकार्बन उत्पन्न करें जैसा द्रव पैट्रोलियम में पाए जाते हैं, विशेषकर जब कार्बनिक पदार्थ अवसाद से ढक जाता है. भूवैज्ञानिकों ने ऐसी संभावना व्यक्त की है कि उपर्युक्त जीवाणु विघटनशील जैव पदार्थों को ऐसे पदार्थों में परिवर्तित कर देते हैं जो लंबे भूवैज्ञानिक कालक्रम में रासायनिक तथा उत्प्रेरक प्रक्रियाओं के प्रभाव से वैसे हाइड्रोकार्बन में परिवर्तित हो जाता हो जिनसे पैट्रोलियम का निर्माण हो सके.

रेडियोधर्मिता सिद्धांत के अनुसार विघटनशील जैवीय पदार्थ पर रेडियोधर्मी खनिजों द्वारा विकीर्ण किरणों का प्रहार होता है जिससे पैट्रोलियम की उत्पत्ति होती है. ऐसे खनिजों में शामिल हैं यूरेनियम, थोरियम तथा पोटेशियम के यौगिक जो अवसादी चट्टानों में अल्प मात्रा में उपस्थित रहते हैं. इस संबंध में वैज्ञानिकों द्वारा प्रयोगशाला में प्रयोग किए गए. यह पाया गया कि जब मीथेन पर ऐल्फा किरणों का प्रहार होता है तो भारी हाइड्रोकार्बन तथा हाइड्रोजन का निर्माण होता है, कुछ प्राकृतिक गैसों में उपस्थित हीलियम गैस रेडियोधर्मी खनिजों के अन्त्यं उत्पाद का प्रमाण हो सकता है. हीलियम की अल्प मात्रा पाकिस्तान के कुछ क्षेत्रों से प्राप्त प्राकृतिक गैस में पाई गई है, जबकि म्यानमार के अधिकांश क्षेत्रों से प्राप्त प्राकृतिक गैस में हीलियम की कुछ न कुछ मात्रा पाई जाती है. अधिकतर भूविज्ञानवेत्ताओं का विचार है कि रेडियोधर्मी विधि द्वारा बड़े पैमाने पर खनिज तेल एवं प्राकृतिक गैस का निर्माण संभव नहीं है. □

वैज्ञानिकों की कर्मभूमि रही है कलकत्ता नगरी

❑ चक्रेश जैन

❑ जाब चारनॉक ने 24 अगस्त, 1690 को कलकत्ता की नींव रखते हुए शायद सपने में भी यह नहीं सोचा होगा कि कलकत्ता भारतीय वैज्ञानिकों की कर्मभूमि बनेगा. विज्ञान के क्षेत्र में एक-से-एक प्रतिभाएं कलकत्ता से निकलीं. जगदीश चन्द्र बसु, महेन्द्रलाल सरकार, प्रफुल्लचन्द्र राय, सी०वी० रमण, सत्येन्द्रनाथ बसु, मेघनाद साहा, पी०सी० महालनबीस आदि वैज्ञानिकों ने विश्व भर में कलकत्ता की ख्याति फैलाई.

उत्तरी कलकत्ता स्थित जोडासांको वाले घर की स्मृतियां प्रसिद्ध कवि और साहित्य के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित रवीन्द्रनाथ ठाकुर से जुड़ी हैं तो 210, बो बाजार स्ट्रीट के यादों का सरोकार वैज्ञानिक तथा भौतिकी के नोबेल विजेता सी०वी० रमण से है. जून 1907 में सी०वी० रमण वित्त विभाग में नौकरी मिल जाने के कारण कलकत्ता चले आए. कलकत्ता ने उनकी जिंदगी को एक नया मोड़ दिया. उन्होंने बो बाजार स्ट्रीट की स्काउट लेन में किराए पर एक मकान ले लिया. एक दिन जब रमण ट्राम से ऑफिस जा रहे थे तो रास्ते में उन्हें एक साइन बोर्ड दिखाई दिया. इस पर लिखा था: 'दि इंडियन एसोसिएशन फार द कल्टीवेशन आफ साइंस', 210 बो बाजार स्ट्रीट. यह एक वैज्ञानिक संस्थान था और इसकी स्थापना 1876 में डा० महेन्द्रलाल सरकार ने की थी. वे चाहते थे कि युवा लोग वहां आकर शोधकार्य करें. संयोग से रमण की मुलाकात संस्थान के सचिव अमृतलाल सरकार से हो गई. वे रमण की प्रतिभा से प्रभावित हुए और उन्हें वहां शोधकार्य करने की सुविधाएं मिल गईं. यह संस्थान आगे चलकर उस समय ऐतिहासिक संस्थानों की श्रेणी में आ गया, जब 1930 में रमण को भौतिकी का नोबेल पुरस्कार मिला. उन्होंने 'रमण प्रभाव' की खोज इसी भवन के एक कक्ष में की थी. सी०वी० रमण राजनीति से कोसों दूर रहे और उन्होंने उपराष्ट्रपति का पद भी अस्वीकार कर दिया था.

जगदीश चन्द्र बसु की प्रतिभा कलकत्ता में ही चमकी. वे ग्यारह वर्ष की उम्र में कलकत्ता आ गए थे. बसु ने 1895 में कलकत्ता में पहली बार विद्युत तरंगों से करीब 24 मीटर दूर रखी एक घंटी बजाई. वास्तव में हर्ट्ज के रेडियो तरंगों संबंधी खोज कार्य को जगदीश चन्द्र बसु ने ही आगे बढ़ाया था. बसु के प्रयोगों के बाद ही मारकोनी ने विद्युत तरंगों से अधिकाधिक दूरी तक संदेश भेजने में सफलता हासिल की थी. आगे चलकर रेडियो तरंगें संचार व्यवस्था का विश्व-व्यापी साधन बन गईं. उन्होंने पेड़-पौधों की वृद्धि को नापने के लिए 'क्रेस्कोग्राफ' नाम के यंत्र का आविष्कार किया. जगदीश चन्द्र बसु के जैव-भौतिकी संबंधी शोधकार्यों की सराहना करते हुए ऑस्ट्रिया तथा जर्मनी के वैज्ञानिकों ने कहा था: 'अनुसंधान की इस नई दिशा में कलकत्ता के वैज्ञानिक हमसे कहीं आगे हैं.' उन्होंने बंगला कविताएं और ज्ञान-विज्ञान के बारे में कई लेख लिखे. शायद कुछ को ही यह मालूम होगा कि कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर संध्या के समय अपनी रचनाएं जगदीश चन्द्र बसु को सुनाया करते थे.

यह वही कलकत्ता नगरी है जो राष्ट्रभक्त और रसायनज्ञ आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय की उपलब्धियों का मंच बना. उन्होंने 'नाइट्राइट' यौगिकों पर शोध किया और मर्क्यूरस नाइट्राइट यौगिक बनाकर विश्वभर में कलकत्ता को ख्याति दिलाई. सच पूछा जाए तो रसायन उद्योग को देश में ही, बढ़ावा देने में प्रफुल्ल चन्द्र राय का महत्वपूर्ण योगदान है. उन्होंने मुट्ठी भर लोगों के सहयोग से कलकत्ता में 'बंगाल केमिकल्स एंड फार्मास्यूटिकल वर्क्स' की स्थापना की. प्राचीन भारत में रसायन विद्या की उपलब्धियों के बारे में प्रफुल्ल चन्द्र राय ने 'द हिस्ट्री ऑफ हिन्दू केमेस्ट्री' नामक प्रामाणिक ग्रंथ लिखा. प्रफुल्ल चन्द्र राय दो वर्षों तक बंगीय साहित्य परिषद् के अध्यक्ष भी रहे.

यह वही कलकत्ता है जहां देशभक्त, वैज्ञानिक और प्रखर विचारक मेघनाद साहा की प्रतिभा प्रस्फुटित हुई. उनकी शिक्षा यहीं पूरी हुई. साहा ने 1991 में कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कालेज में प्रवेश लिया. राजेन्द्र बाबू और सुभाषचन्द्र वोस साहा के कालेज के साथी थे. साहा सौर-भौतिकी के अध्येता थे. उन्होंने तारों, परमाणु तथा आयन पर शोध किया और परमाणु सिद्धांत की मदद से तारकीय वर्णक्रम के रहस्य को समीकरण के रूप में व्यक्त किया. यह समीकरण 'साहा समीकरण' के नाम से प्रसिद्ध है. मेघनाद साहा को नदियों से बड़ा लगाव था. उन्होंने भारत की नदियों और बाढ़ से उत्पन्न होने वाली समस्याओं का गहराई से अध्ययन किया और नदियों के वैज्ञानिक ढंग से नियंत्रण करने की कई बड़ी योजनाओं को तैयार करने में योगदान दिया. देशभक्ति,

प्रतिभा और ईमानदारी के कारण कलकत्तावासी साहा को इतना अधिक चाहते थे कि 1952 में स्वतंत्र रूप से चुनाव लड़ने के बावजूद वे भारी बहुमत से लोकसभा के लिए चुने गए.

भारत सरकार को विश्व के सांख्यिकी मानचित्र पर रखने का श्रेय कलकत्ता के प्रशांतचन्द्र महालनबीस को जाता है. महालनबीस मानते थे कि इंजीनियरी की भांति सांख्यिकी भी एक व्यावहारिक विज्ञान है. आर्थिक विकास के प्रश्नों पर नेहरुजी उनसे परामर्श लेते थे. महालनबीस के दो और चार सेक्टर मॉडल बड़े प्रसिद्ध हैं जिनके द्वारा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था से जुड़े विभिन्न पक्षों की अधिकतम लागत ज्ञात की जाती है.

कलकत्ता में वैज्ञानिक शोध संस्थानों की दुनिया भी समृद्ध से समृद्धतर होती चली गई. विलिय़म जोन्स 1783 में जब सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश होकर कलकत्ता आए तो उन्होंने अनुभव किया कि इस देश का अतीत किसी समय अत्यंत समृद्ध रहा होगा. इस भव्य और समृद्ध परंपरा की खोज को एक सामूहिक गतिविधि का आकार देने के लिए जोन्स ने 15 जनवरी, 1784 को 'एशियाटिक सोसायटी' की स्थापना की. दुनिया भर में यह अपनी तरह की पहली सोसायटी थी. इस सोसायटी की स्थापना रायल सोसायटी की तर्ज पर की गई थी. सोसायटी द्वारा किए गए अध्ययनों से पूर्व कोई नहीं मानता था कि प्राचीन भारत में ज्योतिष अंकगणित चिकित्सा जैसे विज्ञानों का अस्तित्व था. सन् 1820 में कलकत्ता में कुछ और वैज्ञानिक सोसायटियों का जन्म हुआ. इनमें 'एग्रीकल्चर सोसायटी' और 'मेडिकल एंड फिजिकल सोसायटी' शामिल है.

कलकत्ता में भारतीय शोध संस्थानों के पुरोगामी डॉ॰ महेन्द्रपाल सरकार थे. उन्होंने जनवरी 1876 में 'इंडियन एसोसिएशन फार द कल्टीवेशन आफ साइंस' नाम की संस्था स्थापित की. सन् 1913 में मुट्ठी भर वैज्ञानिकों ने मिलकर 'इंडियन साइंस कांग्रेस एसोसिएशन' की स्थापना की. यह पहली संस्था है जिसके माध्यम से देश भर के वैज्ञानिक वर्ष में एक बार एक स्थान पर जमा हो कर शोधकार्यों पर चर्चा करते हैं. 'एशियाटिक सोसायटी' के प्रांगण में ही 7 जनवरी, 1935 को भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी की नींव रखी गई. अब यह संस्था नई दिल्ली में है.



कलकत्ता नगरी के महान वैज्ञानिक

कलकत्ता का विज्ञान पत्रकारिता से भी गहरा संबंध है. मेघनाद साहा वर्षों तक 'साइंस एंड कल्चर' पत्रिका के संपादक रहे. सत्येंद्र नाथ बसु ने बंगला भाषा में 'विज्ञान परिचय' नामक एक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया. महेन्द्रलाल सरकार ने होम्योपैथी प्रणाली की श्रेष्ठता सिद्ध करने के उद्देश्य से 1868 में 'कलकत्ता मेडिकल जर्नल' निकाला. 'इंडियन साइंस कांग्रेस एसोसिएशन' ने वैज्ञानिक कार्यों को प्रोत्साहन देने के लिए 'एवरीमैन साइंस' पत्रिका का प्रकाशन किया.

यह वही कलकत्ता नगरी है जहां रोनाल्ड रॉस ने 1897 में एक छोटी-सी प्रयोगशाला में एनाफिलिस जाति के मच्छर से फैलने वाले मलेरिया परजीवी—प्लाजमोडियम को खोज निकाला. उन्हें इस खोज के लिए 1902 में चिकित्सा का नोबेल पुरस्कार मिला था. रोनाल्ड रॉस केवल वैज्ञानिक ही नहीं एक अच्छे उपन्यासकार भी थे.

यह वही कलकत्ता है जहां के तीन युवा वैज्ञानिकों ने वर्ष 1987 में आइंस्टाइन के सापेक्षता सिद्धांत को चुनौती दी और चर्चा का विषय रहे. ये तीनों अध्येता हैं: डॉ॰ अमिताब राय चौधरी, डॉ॰ अमिताव दत्त तथा डॉ॰ दीपंकर होम. इन तीनों वैज्ञानिकों के शोधकार्यों से यह निष्कर्ष निकला कि मोर्स संकेतों से सूचनाओं को प्रकाश से भी अधिक तेज गति से भेजा जा सकता है. ☐

आलू की परिपूर्ण किस्म का विकास

☐ डा॰ विजय कुमार श्रीवास्तव

☐ दुनिया भर में आलू को मनुष्य द्वारा उगाई जाने वाली फसलों में महत्वपूर्ण और विशेष स्थान प्राप्त है. दुनिया के अनेक भागों में आलू ने बहुत बार लोगों को भुखमरी की मार से बचाया है.

प्रसिद्ध बोहेमियन युद्ध के दौरान आलू ने ही वहां के निवासियों का पेट भरा था. इसी तरह प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान भी आलू ने कई देशों को भुखमरी से बचाया था. दुनिया के अनेक देशों के साथ-साथ हमारे देश के जवान भी आलू के सहारे दूर दराज के मोर्चों पर डटे रहते हैं. कुछ समय पहले तक आलू हमारे देश में गरीब और मध्यमवर्गीय लोगों का प्रमुख भोजन माना जाता था. परंतु अब तो चिप्स, वेफर्स आदि के रूप में धनाढ्य वर्ग में इसकी खपत बढ़ती जा रही है.

अधिकांश वैज्ञानिक दक्षिण अमेरिका में पेरू देश की एंडीज पहाड़ियों को आलू की जन्म स्थली मानते हैं. कुछ वैज्ञानिक चिली को आलू की जन्म स्थली मानते हैं, तो कुछ उत्तरी अमेरिका में वर्जीनिया को आलू की उत्पत्ति का केंद्र मानते हैं.'आलू की उत्पत्ति के ये तीनों ही स्थल जिनको लेकर विवाद है, नई दुनिया में हैं. इस तरह यह तय है कि आलू नई दुनिया की ही देन है. नई दुनिया से आलू, पेरू पर आक्रमण करने वाले स्पेनी हमलावरों के साथ बाहर आया. स्पेन से यह इटली पहुंचा. वहां से यह उत्तरी यूरोप से बरमूदा होते हुए वर्जीनिया गया. पुर्तगाल के व्यापारियों के साथ आलू सत्रहवीं शताब्दी में भारत पहुंचा. वैज्ञानिकों ने शुरू में ही आलू के महत्व को समझ लिया था और तभी से वे इसे आहार के रूप में लोकप्रिय करने के प्रयास करने लगे थे.

नतीजा यह है कि आज लगभग पूरी दुनिया पर आलू का राज है. इस समय आलू विश्व भर में 130 से भी अधिक देशों के निवासियों की दैनिक आहार का महत्वपूर्ण अंग है. उत्पादन के मामले में आलू इस समय गेहूं, मक्का और धान के पश्चात विश्व को चौथी सबसे महत्वपूर्ण फसल है और यदि आलू के रोगों पर विजय प्राप्त कर ली जाए तो इसका स्थान और भी ऊंचा हो सकता है.

फिलहाल दुनिया में सबसे ज्यादा आलू रूस में पैदा होता है. रूस के बाद चीन, पौलेंड, संयुक्त राज्य अमेरिका और भारत का स्थान है. हमारे देश में 1989-90 में नौ लाख सत्तावन हजार हेक्टेयर जमीन पर आलू उगाया गया और इससे एक करोड़ इक्यावन लाख टन से भी अधिक आलू पैदा हुआ. इस तरह आलू की औसत उपज 15.8 टन प्रति हेक्टेयर थी. हमारे देश में खेती की जाने वाली कुल भूमि के लगभग 0.68 प्रतिशत हिस्से पर आलू की खेती होती है. देश में केरल को छोड़कर लगभग सारे राज्यों में आलू की खेती की जाती है. इस समय विश्व में भारत का आलू उत्पादन की दृष्टि से पांचवां और क्षेत्रफल की दृष्टि से चौथा स्थान है. फिर भी जहां तक खपत का प्रश्न है वह विश्व के औसत 65 किलोग्राम प्रतिवर्ष की तुलना में भारत में खपत केवल 17.69 किलोग्राम ही है.

विविधता के मामले में भी आलू का कोई जवाब नहीं है. इस समय इसकी कुल ज्ञात प्रजातियों की संख्या 235 है. इनमें इसकी खेती की जा सकने वाली और जंगली दोनों ही किस्में शामिल हैं. आलू की जहां कुछ प्रजातियां शून्य से भी कम तापमान पर फलती-फूलती हैं तो कुछ गर्म इलाकों में अच्छी उपज देती हैं. कुछ प्रजातियां पहाड़ियों पर, कुछ वर्षा वनों में तो कुछ रेगिस्तानी क्षेत्रों में उगती हैं.

आलू सोलेनम कुल का पौधा है. दुनिया भर में इसकी सात जातियों की खेती होती है. इनमें से सोलेनम ट्यूबरोसम जाति के आलू की खेती सबसे ज्यादा क्षेत्र में होती है. आलू की एक जंगली प्रजाति सोलेनम स्पार्सिपिलम और पहले खेती की जाने वाली एक जाति सोलेनम स्टेनोटोमय के बीच प्राकृतिक रूप से संकरण के फलस्वरूप सोलेनम ट्यूबरोसम प्रजाति का जन्म हुआ था.

आलू का उत्पादन बढ़ाने के लिए भारत में वैज्ञानिक अनुसंधान पहली अप्रैल 1935 को शिमला में आलू प्रजनन केंद्र खोलने के साथ प्रारंभ हुआ था. इसके बाद भुवाली और कुफ्री की पहाड़ियों में आलू के बीज उत्पादन के दो केंद्र खोले गए. इसके पश्चात आलू पर अनुसंधान के महत्व को देखते हुए 1949 में पटना में केंद्रीय आलू अनुसंधान संस्थान स्थापित किया गया जिसे बाद में स्थानांतरित करके शिमला ले आया गया. तब से आज तक देश भर में आलू पर अनुसंधान इसी संस्थान की देख-रेख में होता है.

केंद्रीय आलू अनुसंधान संस्थान ने आलू की खेती की वैज्ञानिक विधियों के विकास के साथ ही आलू की अनेक उन्नत और सुधरी हुई किस्में भी विकसित की हैं. साथ ही संस्थान ने काफी मात्रा में आलू के प्रजनक बीज भी किसानों को उपलब्ध कराए हैं. संस्थान प्रतिवर्ष 1600 टन से भी अधिक रोग मुक्त प्रजनक बीज किसानों को उपलब्ध कराता है. संस्थान ने अब तक आलू की 25 से भी अधिक सुधरी हुई उन्नत किस्में जारी की हैं.

आलू के बीज का मतलब आलू के पूरे कंद से है जिसे हम खाते हैं. इस तरह केवल बीज के रूप में ही आलू के कुल उत्पादन का लगभग 20 प्रतिशत हिस्सा (लगभग ढाई करोड़ क्विंटल)

आलू को दुनिया भर में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है. इसे चक्रवती और सब्जियों का राजा जैसे विशेषणों से संबोधित किया जा चुका है. यह अमीर-गरीब सभी वर्ग के लोगों का आहार है. अब वैज्ञानिक आनुवंशिक इंजीनियरी का सहारा लेकर आलू की ऐसी किस्म के विकास की दिशा में प्रयासरत हैं जिसमें मनुष्य के लिए अति आवश्यक सभी आठ अमिनो एसिड हों तथा यह सभी प्रकार के रोगों का भी बखूबी मुकाबला कर सकती हो. वैसे सभी आठों अमीनो एसिड किसी एक शाकाहार में इकट्ठे नहीं पाए जाते हैं. हां मांसाहार में ये सभी जरूर मिलते हैं.

खर्च हो जाता है. इस तरह से आलू की खेती पर आने वाले खर्च का लगभग 40 प्रतिशत केवल बीज पर खर्च हो जाता है. बीज के साथ जुड़ी हुई अन्य समस्याएं हैं—इतनी मात्रा में बीज को सुरक्षित रूप से भंडारित रखना, उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाना और रोगों से उनका बचाव करना. इसीलिए वैज्ञानिक 1979 से ही आलू का एक ऐसा 'सच्चा बीज' तैयार करने की दिशा में प्रयासरत थे जो अन्य फसलों के बीजों की तरह कम स्थान घेरे और साथ ही बीज के रूप में आलू की अधिक मात्रा न खर्च हो. इस दिशा में वैज्ञानिकों का प्रयास सफल हुआ और दिल्ली में पूसा परिसर में स्थित अंतरराष्ट्रीय आलू अनुसंधान केंद्र के वैज्ञानिकों ने ऊतक संवर्धन विधि द्वारा आलू का सच्चा बीज तैयार करने में सफलता पाई है. इस बीज के उपयोग से कई लाख टन बीज के स्थान पर केवल कुछ टन बीज में देश भर में आलू की बुआई हो जाएगी.

आलू की किस्मों की सुधार की दिशा में संयुक्त राज्य अमेरिका की आउसियाना स्टेट यूनीवर्सिटी के जैव रसायन विभाग के वैज्ञानिक डा० जेसी जेनीस और पेरू में लीमा स्थित अंतरराष्ट्रीय आलू केंद्र के वैज्ञानिक डा० जान डाड्स ने अत्यधिक महत्वपूर्ण अनुसंधान किए हैं और वे अपने अनुसंधानों के माध्यम से सफलता की नई बुलंदियां प्राप्त करने की दिशा में लगातार प्रयत्नशील हैं. ये दोनों वैज्ञानिक एक ओर तो आलू के पौष्टिक गुणों को बढ़ाने की दिशा में प्रयासरत हैं तो दूसरी ओर वे आलू में रोगों से लड़ने की क्षमता कूट-कूट कर भर रहे हैं.

विश्व भर के पोषण वैज्ञानिक इस बात पर एकमत हैं कि हम सभी के लिए आठ अमीनो एसिड बहुत ही आवश्यक हैं ये हैं—आइसो ल्युसिन, लियुसिन, वैलीन, थ्रिओनीन, ट्रिप्टोफैन, लाइसिन, मेथियोनीन और फेनिलएलेनीन. हमारे आहार में इन सभी अमीनो एसिडों की उपस्थिति ही उसे संपूर्ण आहार बनाती है. हमें ज्ञात है कि प्रोटीन का निर्माण अमीनो एसिडों से ही होता है अथवा दूसरे शब्दों में अमीनो एसिड ही प्रोटीन के निर्माता होते हैं. वैज्ञानिकों को यह भी पता है कि शाकाहार की श्रेणी में आने वाले किसी भी एक आहार में ये आठों अमीनो एसिड नहीं पाए जाते हैं. हां, मांसाहार में ये सारे के सारे अमीनो एसिड अवश्य मौजूद होते हैं. डा० जेनीस और डा० डाड्स आनुवंशिक इंजीनियरी तकनीकों की सहायता से आलू में ऐसी जीन प्रवेश कराने का प्रयास कर रहे हैं जो इन सभी अमीनो एसिडों के निर्माण को प्रेरित करे. अपने प्रयासों में इन वैज्ञानिकों को काफी सफलताएं हासिल हुई हैं.

वैज्ञानिकों के अनुसार पादप खाद्य पदार्थों में अधिकतर आइसोल्यूसिन, थ्रिओनीन, मेथियोनीन, ट्रिप्टोफैन और लाइसीन अमीनो एसिडों की कमी पाई जाती है. और डा० जेनीस तथा डा० डाड्स में सर्वप्रथम इन अमीनो एसिडों के निर्माण को प्रेरित करने वाली जीन को आलू में प्रविष्ट कराया. परिणाम आशाजनक रूप से अनुकूल रहे. इस तरह विकसित आलू में उन्हें 23 प्रतिशत लाइसीन, 12 प्रतिशत मेथियोनीन और 6 प्रतिशत ट्रिप्टोफैन तथा आइसोल्यूसीन एसिड प्राप्त हुआ. अब ये दोनों वैज्ञानिक बाकी बचे हुए तीन शेष अमीनो एसिडों के निर्माण को प्रेरित करने वाली जीनों को आलू में प्रविष्ट कराने की दिशा में प्रयासरत हैं. इस तरह से विकसित आलू अंततः शाकाहार होते हुए मांस के पौष्टिक गुणों से लैस होगा. उसमें आलू के अपने अन्य पौष्टिक गुण तो होंगे ही परंतु यह मांसाहार की अन्य बुराइयों से मुक्त होगा. आलू के बाद डा० जेनीस और डा० डाड्स अधिक लोगों द्वारा खाए जाने वाले अन्य पादप आहार को पौष्टिक गुणों से लैस करने का इरादा रखते हैं. कसावा इनमें से प्रमुख है.

वैसे फसलों में सुधार लाने तथा उनमें रोगों से लड़ने की क्षमता पैदा करने के लिए वैज्ञानिक सदियों से प्रजनन तकनीकों का सहारा लिया करते थे. परंतु आलू में प्रजनन विशेष रूप से अत्यधिक समय लेने वाली और जटिल प्रक्रिया है क्योंकि आलू की कोशिकाओं में क्रोमोजोम यानी (गुणसूत्र) दो के जोड़ों में न होकर चार-चार में होते हैं.

परंतु हाल के वर्षों में आणविक जैविकी के क्षेत्र में हुई प्रगति से आलू में भी प्रजनन और संकरण का काम आसान हो गया है.

पादप जैविकी के क्षेत्र में आणविक जैविकी के विकास की गति काफी धीमी रही है. इसकी शुरूआत 1940 के दशक के उत्तरार्द्ध से मानी जा सकती है. उन दिनों वैज्ञानिक पौधों में ट्यूमर पैदा होने के कारणों की खोज का प्रयास कर रहे थे. अचानक उन्होंने पाया कि एग्रोबैक्टीरियम, ट्यूमेफेसिएन्स नाम का जीवाणु इसके लिए जिम्मेदार है. यह स्वयं आनुवंशिक इंजीनियर के रूप में कार्य करके ट्यूमर उत्पन्न करता है. वैज्ञानिकों ने पाया कि जब यह जीवाणु किसी पौधे को संक्रमित करता है वैसे ही यह अपने आनुवंशिक पदार्थ यानी डी एन ए का एक छोटा-सा गोल टुकड़ा, जिसे प्लैज्मिड कहते हैं, पौधे के डी एन ए में डाल देता है. यह विदेशी डी एन ए एक बार पौधे के आनुवंशिक पदार्थ में शामिल होकर इस तरह कार्य करने लगता है.

जैसे कि वह पहले से उस पौधे की जीन में रहा हो. पादप आनुवंशिकविदों के लिए यह खोज अत्यधिक रोमांचकारी थी. इससे वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि वे एग्रोबैक्टीरियम के प्लौजिम्ड का इस्तेमाल पौधे की कोशिकाओं में कोई विदेशी जीन पहुंचाने में कर सकते हैं परंतु यह तकनीक केवल उन्हीं पौधों के साथ कारगर हो सकती है जो एग्रोबैक्टीरियम से संक्रमित हो पाते हैं. इसके बाद दूसरी प्रक्रिया होती हैं इस प्रकार से तैयार की गई नई कोशिका से ऊतक संवर्द्धन तकनीक द्वारा पूरा नया पौधा उगाना. एक बीज पत्री पौधों में यह दोनों ही काम कठिन होते हैं परंतु आलू कुल के पौधों पर इन तकनीकों का सफलतापूर्वक उपयोग किया जा सकता है.

पेरू में अंतरराष्ट्रीय आलू केंद्र और संयुक्त राज्य अमेरिका की लाउसियाना स्टेट यूनीवर्सिटी में वैज्ञानिकों ने आलू की अधिक पौष्टिक और रोग सह्य किस्म तैयार करने के लिए इसी विधि का सहारा लिया है.

और तो और इस कार्य के लिए वैज्ञानिकों ने प्रयोगशाला में संश्लेषित जीन की रचना कर डाली. वैज्ञानिकों के अनुसार प्रयोगशाला में निर्मित जीन के उपयोग से दो लाभ मिलते हैं. एक तो वे पोषक पौधे में पहुंच कर इच्छित प्रोटीन के निर्माण को प्रेरित करती है. दूसरे वे सभी ऐसी जीन जिनमें निहित आनुवंशिक आदेश से प्रोटीन निर्माण प्रेरित होता है—मध्यस्थ उत्पाद के रूप में मेसेंजर अर्थात संदेशवाहक आर एन ए—को जन्म देती है. बहुत बार यह मेसेंजर आर एन ए कोशिका के अन्दर अन्य जीनों को आन या ऑफ अर्थात सक्रिय या निष्क्रिय करके एक नियामक की भूमिका निभाता है.

वैज्ञानिक अब इस नई जीन नियंत्रण प्रक्रिया जिसे वे 'वेमिक आर एन ए नियंत्रण' कहते हैं—का लाभ उठाना चाह रहे हैं. इस प्रकार निर्मित संदेशवाहक आर एन ए प्रोटीन में रूपांतरित नहीं होता है. वरन इसकी लड़ियों में पिरोए हुए बेसों की श्रृंखला ऐसी होती है कि वह किसी जीन से जुड़कर उसे निष्क्रिय करके प्रोटीन संश्लेषण के मार्ग से दूर हटा देती है. इसी गुण के कारण इस संदेशवाहक आर एन ए को कभी-कभी 'एंटीसेंस' आर एन ए भी कहा जाता है.

डा० जेनीस और डा० डाड्स को आशा थी कि वे जीन नियंत्रण की इस अद्भुत प्रक्रिया का उपयोग आलू में रोग उत्पन्न करने वाले विषाणुओं की संख्या वृद्धि को रोकने में कर सकते हैं. इन वैज्ञानिकों को संदेशवाहक आर एन ए का निर्माण करने वाली ऐसी जीन के संश्लेषण में सफलता मिल ही चुकी थी जो आलू के आनुवंशिक पदार्थ में छिपी किसी भी विषाणु जीन से जुड़कर उसे निष्क्रिय करने की क्षमता रखती थी. इस प्रकार विषाणु जीन के निष्क्रिय हो जाने से विषाणु की संख्या में वृद्धि रुक जाती है फलस्वरूप उस विषाणु से होने वाले रोग की संभावना भी समाप्त हो जाती है. इस प्रकार प्रयोगशाला में तैयार की गई विषाणुरोधी जीन विषाणु विशिष्ट होती है. अतः अलग-अलग रोगजनक विषाणुओं के विरुद्ध तैयार की गई जीनों के उपयोग से आलू को पूरी तरह विषाणु रोगमुक्त किया जा सकेगा.

डा० जेनीस और डा० डाड्स ने अपने पहले प्रयोग में पोटेटो लीफ रोल वायरस को निशाना बनाया. विकासशील देशों में यह विषाणु आलू की उपज को 80 प्रतिशत तक कम करने की क्षमता रखता है. केवल 30 बेस की श्रृंखला से तैयार मिक आर एन ए से प्रयोगशाला में इस विषाणु की संख्या में वृद्धि को 98 प्रतिशत तक कम करने में सफलता मिली है. इसके पश्चात् अब ये दोनों वैज्ञानिक आलू के अन्य रोगजनक विषाणुओं पर इस तकनीक को आजमाने में लगे हैं. विषाणु रोगों के पश्चात् आलू में रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणु, कवक और कीट भी डा० जेनीस और डा० डाड्स के लक्ष्य हैं. उन्हें आशा है कि ये शीघ्र ही हर प्रकार के रोगों का सामना करने में सक्षम और मांसाहार में मौजूद सभी अमीनो एसिडों से युक्त 'सुपर आलू' के विकास में सफल होंगे. ☐

रसायनों का जैव-प्रौद्योगिक उत्पादन : यथार्थ, आशाएं स्वप्न और आशंकाएं

□ चन्दना चक्रवर्ती और

□ पुष्प एम० भार्गव

□ रूपान्तरकार : चन्द्रभान शर्मा

आनुवंशिक इंजीनियरी और कोशिका संवर्धन तकनीकों के हाल में विकास के परिणामस्वरूप अब वैज्ञानिक जीवित प्रणालियों को ऐसे कार्य करने के लिए प्रेरित कर सकने में सक्षम हो गए हैं जिन्हें इन प्रणालियों द्वारा अब से पहले कभी नहीं करवाया जा सकता था. सूक्ष्म जीवों के अलावा वनस्पति तथा पशु कोशिकाओं को तरह-तरह के उपयोगी रसायन उत्पादित करने के लिए प्रयुक्त किया जाने लगा है. इस दिशा में और भी महत्वपूर्ण उपलब्धियों की सम्भावना है. जैव-प्रौद्योगिकी के इन्हीं रोचक पहलुओं पर 'इम्पैक्ट आफ साइंस आन सोसायटी' के सौजन्य से प्रस्तुत चन्दना चक्रवर्ती और पुष्प एम० भार्गव के लेख 'कैमिकल्स थ्रू बायोटेक्नोलोजी : फैक्ट्स, होप्स, ड्रीम्स एंड डाउट्स' के हिन्दी रूपान्तरकार हैं—चन्द्रभान शर्मा.

□ मनुष्य जीवन में जिस प्रकार घटनाएं आती रहीं हैं उसी प्रकार विज्ञान के इतिहास में भी घटनाएं आती रही हैं. प्रौद्योगिकी का विकास भी एक ऐसी ही घटना है. जब भी मानव को प्रकृति की किसी पद्धति की रचना और कार्य का पता लगा है, वह सदैव उसे व्यावहारिक उपयोग में लाया है. रसायन-शास्त्र पर आधारित प्रौद्योगिकियों के विकास का, जिन्होंने 17वीं और 18वीं सदी की औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया, यही आधार था. इसी प्रकार इस शताब्दी के पूर्वार्ध में भौतिकी पर आधारित प्रौद्योगिकियों का तथा (शताब्दी के उत्तरार्ध में) आकाशीय-भौतिकी पर आधारित अन्तरिक्ष प्रौद्योगिकी का विकास हुआ है.

चार आधारभूत मूल विज्ञानों में जीव-विज्ञान का विकास सबसे बाद में हुआ. 1950वें दशक के आरम्भ में डी एन ए की रचना की जानकारी के बाद जीव-विज्ञान के क्षेत्र में अभूतपूर्व जानकारी बढ़ी है. ऐसा लगा मानों किसी बड़ी पहेली की सभी गुत्थियां एक साथ सुलझ गई हों और एक स्पष्ट छवि उभर कर आ गई हो. अतः वर्ष 1960 के अन्त तक विज्ञान की जानकारी रखने वालों ने उस समय की विश्व स्थिति देखकर यह भविष्यवाणी कर दी थी कि शीघ्र ही इस जानकारी से व्यावहारिक लाभ होगा, और हुआ भी ऐसा ही, जैव-प्रौद्योगिकी का उद्भव अपने में एक करिश्मा था.

इस सीमित लेख में हमने जैव-प्रौद्योगिकी द्वारा रासायनिक पदार्थों के निर्माण में जो कार्य हुआ है, आने वाले समय में जो कुछ होना है तथा जिसके व्यावहारिक लाभ अगली शताब्दी के आरम्भ में प्राप्त होने लगेंगे, उसका वर्णन करने का प्रयास किया है. साथ ही हमने उन अनुत्तरित प्रश्नों को भी परखा है जो आने वाले समय में जैव-प्रौद्योगिकी द्वारा रसायनों के उत्पादन से संबंध रखते हैं. साथ ही जैव-प्रौद्योगिकी द्वारा बड़े पैमाने पर रासायनिक पदार्थों के निर्माण से उत्पन्न समस्याओं पर भी थोड़ा प्रकाश डाला है.

आनुवंशिक प्रौद्योगिकी की देन

आनुवंशिक अभियांत्रिकी का संबंध किसी जीवित कोशिका या जीव के आनुवंशिक गुणों को उसमें बाहर से आनुवंशिक पदार्थ मिलाकर बदलने या उनमें सुधार करने से है अर्थात, उस कोशिका या जीव को उन पदार्थों को निर्माण करने के योग्य बनाना जिन्हें वह

ग्राम शिल्प

मई 1992

2 रुपए







- ग्रामीण इलाकों में पानी की पहुंच
- भारतीय गुलाब लगाइए

भारतीय गुलाब लगाइए

❑ काशीराम

❑ संसार के सर्वाधिक लोकप्रिय पुष्पों में गुलाब का स्थान प्रथम है. गुलाब की सुगंध और इसके विभिन्न मनभावन रंग मन को मोहित कर लेते हैं. यही कारण है कि समस्त विश्व में गुलाब को सौन्दर्य और सुगंध का प्रतीक माना जाता है. गुलाब की इन्हीं विशेषताओं के कारण इस फूल पर अनेक देशों में अनुसंधान कार्य किए गए हैं और परिणामस्वरूप आज विश्व में गुलाब की लगभग 30 हजार किस्में विद्यमान हैं जिनमें अनेक रंगों-छटाओं वाले फूल खिलते हैं. हमारे देश में गुलाब की नई उन्नतशील किस्मों को विकसित करने के लिए प्रजनन कार्य लगभग 1950 में आरम्भ हुआ था और इन प्रयासों के परिणामस्वरूप लगभग 500 भारतीय किस्में विकसित की गई हैं.

गुलाब के फूलों की विविधता के कारण इन्हें कई वर्गों में विभाजित किया गया है. किसी में एक शाखा पर एक फूल निकलता है तो कुछ किस्मों में फूल गुच्छों में निकलते हैं. इस विविधता के कारण गुलाब की किस्मों को कई वर्गों में बांटा गया है जैसे—हाइब्रिड टी, पोलीएन्था, फ्लोरीबन्डा, मिनिएचर (लघु गुलाब) व क्लाइम्बिंग (आरोही) गुलाब.

भारतीय किस्में

भारत में विकसित की गई प्रमुख किस्में इस प्रकार हैं:

हाइब्रिड टी : इस वर्ग के गुलाब बहुत ही शोभाकारी होते हैं. इनकी एक शाखा से एक फूल निकलता है जिसके कारण फूल आकार में बड़ा सुन्दर होता है जैसे भीम, गंगा, डा० होमी भाभा आदि.

पोलीएन्था : इस वर्ग के गुलाब में फूल गुच्छों में लगते हैं तथा फूल छोटे होते हैं जैसे अन्जनी, प्रीति, स्वाति.

फ्लोरीबन्डा : इस वर्ग के गुलाब हाइब्रिड टी व पोलीएन्था के मेल से निकाले गए हैं. यह हाइब्रिड टी से भी अधिक संख्या में फूल देते हैं. इसके फूल पोलीएन्था से आकार में फूल बड़े होते हैं और गुच्छों में लगते हैं जैसे बन्जारन, अरुणिमा, लोरी आदि.

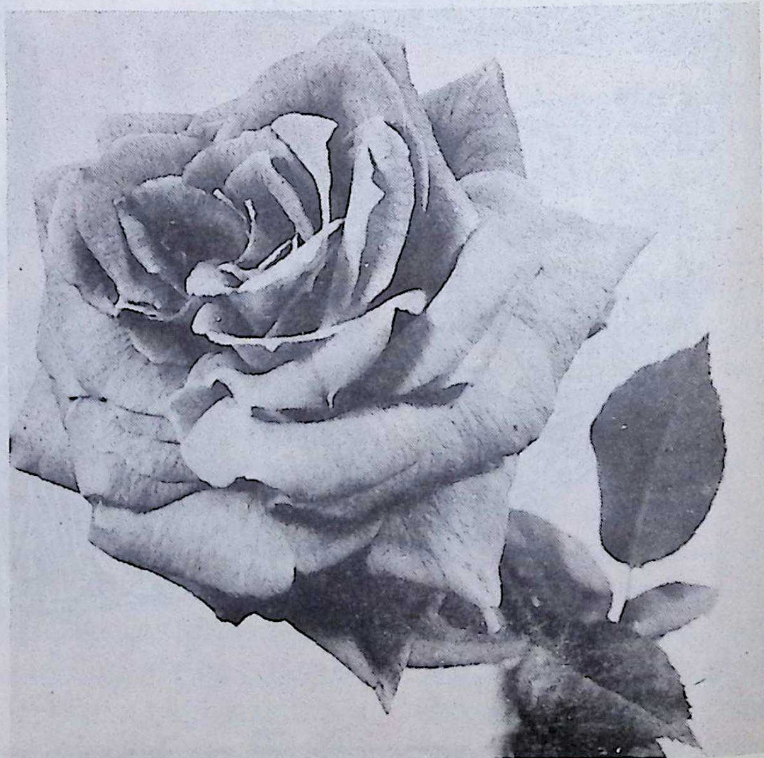
मिनिएचर (लघु गुलाब) : इन गुलाबों को मिनी गलाब भी कहते हैं. इनके पौधे, पत्तियां व फूल छोटे होते हैं. इनकी खास महत्ता यह है कि इस प्रकार के गुलाब गमलों में व खिड़कियों की आगे की क्यारियों में आसानी से उगाए जा सकते हैं, जैसे—पुसकला, चन्द्रिका.

क्लाइम्बिग गुलाब (लता गुलाब) : इन गुलाबों की शाखाएं बेलों की भांति बढ़ती हैं. इस कारण इन्हें लता गुलाव कहा जाता है जैसे डेल्ही पिंक पर्ल, डेल्ही व्हाइट पर्ल आदि.

गुलाब उगाने की विधि

गुलाब उगाने के लिए स्थान खुला होना चाहिए जहां पौधों को धूप व हवा भलिभांति मिल सके. पौधे लगाने के लिए वह भूमि उपयुक्त होती है जिसमें पानी के निकास का समुचित प्रबंध हो और मिट्टी में कंकड़ पत्थर न हों.

क्यारियों की तैयारी : क्यारियों को अप्रैल/मई के माह में 1 मीटर गहरा



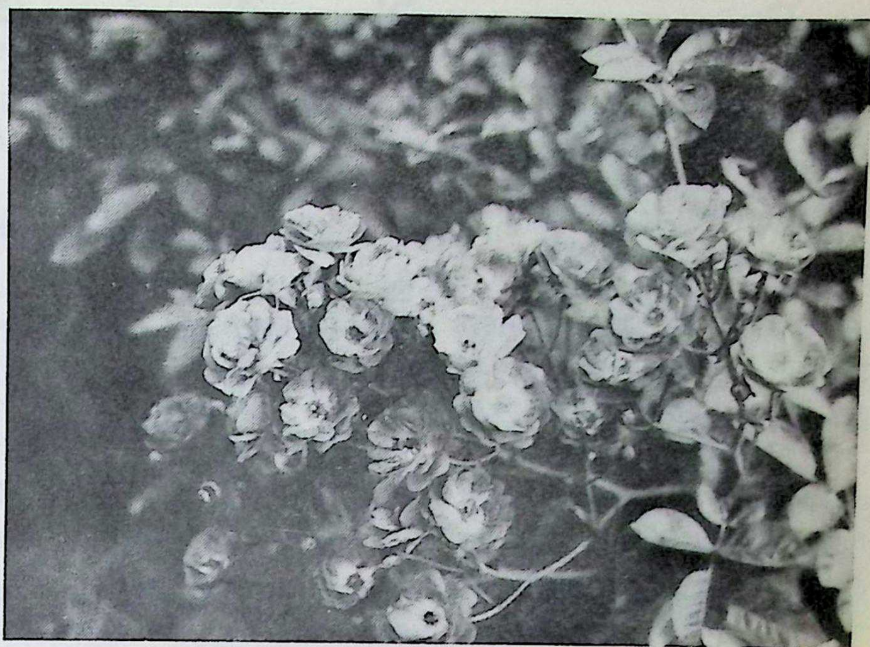
खोदकर करीब 15-20 दिन तक खुला छोड़ देना चाहिए. इसके बाद 30 सेंटीमीटर तक सूखी पत्तियों से भर देना चाहिए, फिर क्यारियों को खोदी हुई मिट्टी से पुनः भर देना चाहिए. सबसे ऊपर 20 सेंटीमीटर गोबर की खाद डालकर क्यारियों की 45 सेंटीमीटर तक गुड़ाई करनी चाहिए. इसके बाद क्यारियों में अच्छी तरह पानी भर देना चाहिए. पौधों को दीमक से बचाने के लिए भूमि में 5 ग्राम प्रति वर्गमीटर की दर से 5 प्रतिशत डी डी टी या बी एच सी डालना आवश्यक है.

पौधरोपण : गुलाब के पौधों को लगाने का उपयुक्त समय जुलाई-अगस्त या नवम्बर माह है. पौधों को लगाने के बाद मिट्टी को खूब अच्छी तरह दबाकर सिंचाई कर देनी चाहिए.

सिंचाई : पौधों में सिंचाई की आवश्यकता भूमि व मौसम पर निर्भर करती है. साधारणतया गर्मी के मौसम में सिंचाई 5 दिन व सर्दी के मौसम में 10 दिन के अंतर पर करनी चाहिए. गमलों में लगे गुलाबों की गर्मी में नित्य सिंचाई करना आवश्यक है.

कटाई-छंटाई : गुलाब के पौधों की काट-छांट पौधे लगाने के 1 वर्ष बाद करनी चाहिए. कटाई-छंटाई का मुख्य उद्देश्य, पुरानी सूखी व रोगग्रस्त टहनियों को काटकर पौधों को सही आकार देकर स्वस्थ बनाना है जिससे नई स्वस्थ कलियां निकल सकें तथा फूल बड़े व अधिक समय तक आ सकें. अक्तूबर का तीसरा सप्ताह कटाई-छंटाई के लिए उपयुक्त होता है.

खाद : गुलाब की कटाई-छटाई के बाद भूमि को 15 सेंटीमीटर गहरा खोदकर 3-4 दिन तक खुला छोड़ देना चाहिए.



गुलाब की विभिन्न किस्में

इसके बाद गोबर की खाद 10 किलोग्राम प्रति पौधे की दर से मिट्टी में अच्छी प्रकार मिलाकर सिंचाई कर देनी चाहिए. 15 दिन बाद 200 ग्राम नीम की खली, 20 ग्राम यूरिया, 50 ग्राम सुपर फासफेट, 30 ग्राम क्यूरिएट आफ पोटाश का मिश्रण प्रति पौधे की दर से पौधे के तने से लगभग 20 सेंटीमीटर की दूरी पर बिखेर कर भूमि में अच्छी प्रकार मिला देना चाहिए इसके पश्चात भली प्रकार सिंचाई कर देनी चाहिए.

कीट एवं रोग

गुलाब के पौधे को मुख्यतः 4 प्रकार के कीड़े नुकसान पहुंचाते हैं जैसे रेड स्केल, रोज चेफर, दीमक एवं डिगरवाष्प.

रेड स्केल : यह कीड़े अधिकतर अगस्त-सितम्बर के माह में दिखाई पड़ते हैं. यह टहनियों के चारों तरफ एक मोटी लाल पपड़ी बना लेते हैं तथा पौधों का रस चूस लेते हैं. इसके प्रकोप को समाप्त करने के लिए 0.1 प्रतिशत रोगर अथवा मेटासिड-50 छिड़काव करना चाहिए.

रोज चेफर : यह कीड़े गुलाब की पत्तियों को अधिकतर रात में खाते हैं और दिन में आसपास की घास में छिपे रहते हैं. यह अधिकतर जुलाई-अगस्त माह में दिखाई पड़ते हैं. इसकी रोकथाम के लिए 0.1 प्रतिशत मोनोक्रोटोफास या मेटासिड–50 छिड़कना चाहिए.

दीमक के प्रकोप को समाप्त करने के लिए भूमि में थिमेट-10 जी अथवा फ्यूराडान 2 ग्राम प्रति वर्गमीटर डालना चाहिए.

रोग

डाइबैक : यह रोग गुलाब के पौधों में कटाई-छंटाई होने के बाद शीर्ष से प्रारंभ होकर नीचे की ओर फैलता है. पौधों के तने काले होकर मर जाते हैं. इसकी रोकथाम के लिए छंटाई किए गए तने

(शेष पृष्ठ 7 पर)

ग्रामीण इलाकों में पानी की पहुंच

❑ डा॰ जगदीप सक्सेना

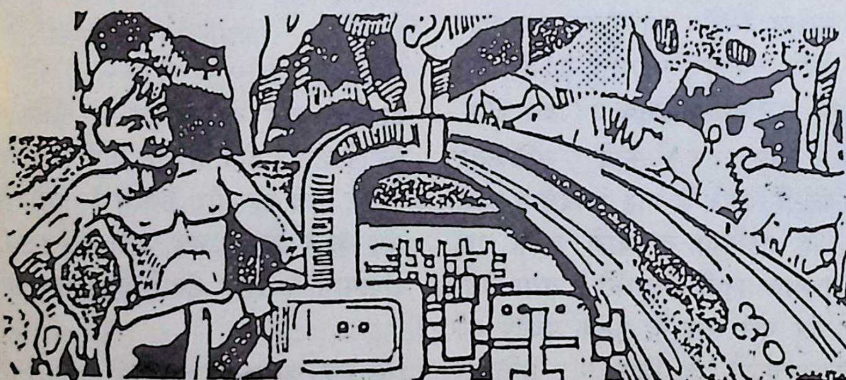
साफ हवा और साफ पानी आदमी की पहली जरूरत है. दुर्भाग्य से दोनों की दुर्लभता दिनोंदिन बढ़ती जा रही है. तेजी से बढ़ते वायु प्रदूषण ने हवा की हालत खराब कर दी है. पानी पर भी प्रदूषण का कहर है. पानी के साथ जुड़ी एक समस्या और है. लोगों तक साफ पानी पहुंचाने की समस्या. यह केवल हमारे देश की बात नहीं है. दुनिया के अनेक देश इस समस्या से त्रस्त हैं. प्रस्तुत है हमारे देश में इस ओर किए गए प्रयासों की झांकी.

❑ दुनिया भर में पेय जल की समस्या को देखते हुए संयुक्त राष्ट्र के तत्वावधान में 'यूनेस्को' ने सन् 1977 में मार डेल प्लाटा (अर्जेंटीना) में पेयजल और सफाई पर अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया. इसमें सन् 1990 तक हर देश के हर नागरिक को साफ पानी मुहैया कराने का संकल्प लिया गया. इस संकल्प को पूरा करने के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर रणनीति तैयार की गई. इसी के तहत नौवें दशक (1981-90) को 'अंतरराष्ट्रीय पेयजल और स्वच्छता दशक' घोषित किया गया. भारत समेत अनेक देश इस लक्ष्य को पूरा करने में जुट गए. इस काम में 'यूनेस्को', 'विश्व बैंक' 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' आदि अनेक अंतरराष्ट्रीय संगठनों और संस्थाओं ने मदद की.

कितना पानी

सौभाग्य से हमारे देश में पानी की कमी नहीं है. नदियों में भरपूर पानी है और बरसात भी पर्याप्त होती है. इसके अलावा भूमिगत जल का भी विशाल भंडार है. हमारे देश में हर साल 50 इंच से ज्यादा वर्षा होती है, जो दुनिया में सबसे ज्यादा है. एक अनुमान के अनुसार इस तरह कोई 40 करोड़ हैक्टर मीटर पानी उपलब्ध होता है. इसमें से सात करोड़ हैक्टर मीटर वायु द्वारा सोख लिया जाता है; और ग्यारह करोड़ हैक्टर मीटर सागर में चला जाता है; और बाकी साढ़े इक्कीस करोड़ हैक्टर मीटर मिट्टी द्वारा सोख लिया जाता है.

हमारी नदियों में 18 करोड़ हैक्टर मीटर पानी उपलब्ध है, जिसमें से सात करोड़ हैक्टर मीटर का उपयोग संभव है. अनुमान है कि इससे कुल मिलाकर 11 करोड़ 30 लाख हैक्टर धरती को सींचा जा सकता है. साढ़े पांच करोड़ हैक्टर को लघु सिंचाई योजनाओं से और 5 करोड़ 80 लाख हैक्टर को मंझोली तथा बड़ी सिंचाई योजनाओं से.



समस्या पहचानी गई

सन् 1977 में 'यूनेस्को' सम्मेलन के बाद जल-दशक कार्यक्रम को लागू करने में सबसे बड़ी समस्या आई जानकारी के अभाव की. हमारे पास पेयजल की समस्या के प्रामाणिक आंकड़े नहीं थे. इसलिए सन् 1981 की जनगणना में घर-घर से पेयजल के स्रोत के बारे में भी जानकारी इकट्ठा की गई. इसमें नल के पानी और हैंडपंप तथा नलकूप के पानी को ही सुरक्षित पेयजल माना गया. जनगणना से चौंकाने वाले नतीजे मिले.

पता चला कि देश के ग्रामीण इलाकों में केवल 26 फीसदी घरों को ही साफ पेयजल मिल रहा है. कुल 397 ग्रामीण जिलों में से 335 जिलों के लगभग 50 फीसदी घरों को साफ पेयजल की सुविधा उपलब्ध थी. सवा सौ जिलों के 95 फीसदी से ज्यादा घरों को पेयजल उपलब्ध नहीं था. इनमें से 33 जिले मध्य प्रदेश में, 17 उत्तर प्रदेश में, 11-11 राजस्थान और उड़ीसा में, 10

केरल में, सात आन्ध्र प्रदेश में और 6-6 बिहार तथा महाराष्ट्र में थे.

समुचित कार्रवाई

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90) में पेयजल की समस्या को उच्च प्राथमिकता दी गई. इसी दौरान सन् 1986 में सरकार ने पेयजल प्रौद्योगिकी मिशन भी शुरू किया. मिशन का उद्देश्य था कि सन् 1990 तक देश के हर क्षेत्र में हर व्यक्ति को प्रतिदिन 40 लीटर पेयजल उपलब्ध कराया जाए. साथ ही रेगिस्तानी इलाकों में हर व्यक्ति को 30 लीटर पेयजल पशुओं के लिए उपलब्ध कराना भी इसकी जिम्मेदारी थी. सातवीं योजना के चार वर्षों में इस कार्य पर सरकार ने 1466 करोड़ रुपए खर्च किए. उम्मीद है कि सन् 1989-90 में इस मद पर 500 करोड़ रुपए से ज्यादा खर्च हुए होंगे.

समस्याग्रस्त गांव

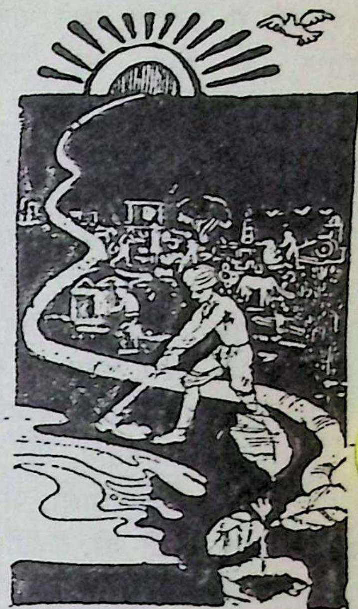
मिशन ने सबसे पहले समस्याग्रस्त गांव को पहचाना. समस्याग्रस्त गांव उसे कहा गया, जिसमें पेयजल का स्रोत डेढ़ किलोमीटर दूर था या 100 मीटर ऊंचाई पर था. इसके अलावा पानी की कमी से त्रस्त और रासायनिक या जैविक रूप से संदूषित पानी वाले गांवों को भी समस्याग्रस्त गांव कहा गया. ऐसे गांवों की तादाद 1,61,722 आंकी गई.

इन तमाम गांवों की विविध समस्याओं को देखते हुए पेयजल मिशन ने पांच क्षेत्रों पर विशेष ध्यान देने की सोची और इसके लिए पांच उप-मिशनों का गठन किया. पहला मिशन पानी इकट्ठा करने और इसके संरक्षण से जुड़ा था. बाकी चार इस प्रकार थे—गिनीवर्म (नारु) की समस्या को खत्म करना, फ्लुओरोसिस पर काबू पाना, खारेपन पर काबू पाना और ज्यादा लौह को खत्म करना.

उप-मिशन

पहले उप-मिशन का काम बहुत व्यापक था. देश की भौगोलिक विविधता के कारण हर क्षेत्र के लिए पानी खोजने और उपलब्ध कराने के लिए अलग अलग तकनीकें विकसित करनी पड़ीं. यही हाल पानी इकट्ठा करने की तकनीकों का भी रहा. मिशन ने इस काम में राज्यों के जन-स्वास्थ्य इंजीनियरी विभागों को भी शामिल किया. इस संबंध में नीतियां तैयार करने के लिए विशेषज्ञों की एक समिति का गठण किया गया. इस समिति को देश भर में पानी इकट्ठा करने की उपयुक्त तकनीकें सुझाने की जिम्मेदारी भी सौंपी गई. समस्याग्रस्त गांवों की तादाद कम करने में इस उप-मिशन ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई.

दूसरे उप-मिशन ने नारू की समस्या को खत्म करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है. सन् 1984 में इस समस्या से ग्रस्त गांवों की तादाद 12,840 थी. सन् 1989 तक इनकी तादाद लगभग एक-चौथाई रह गई. पेयजल मिशन को आशा थी कि सन् 1990 के अंत तक यह समस्या पूरी तरह खत्म हो जाएगी. पर शायद ऐसा हो नहीं पाया. पेयजल मिशन ने रोगवाहक के नियंत्रण के लिए 'टेम्फोस' का उपयोग किया. लोगों को रोग बचाव के तरीके भी सुझाए गए. नारू की समस्या को जड़ से खत्म करने के लिए गांवों में पानी के वैकल्पिक स्रोत की व्यवस्था की गई. पुराने कुओं को साफ-सुथरे कुओं में बदला गया. साथ ही



गांव के लोगों को शिक्षित करने के लिए कई कार्यक्रम चलाए गए.

फ्लुओरोसिस से त्रस्त गांव देश के तेरह राज्यों में फैले हैं. इनकी तादाद लगभग 8700 है. इस समस्या पर नियंत्रण पाने के लिए उप-मिशन ने पानी के नए स्रोत तलाशने के साथ ही फ्लुओरोसिस पैदा करने वाले पानी के स्रोतों का उपचार भी किया. ऐसे पानी के उपचार के लिए नागपुर स्थित राष्ट्रीय पर्यावरण इंजीनियरी अनुसंधान संस्थान ('नीरी' के नाम से मशहूर) द्वारा विकसित तकनीक काम में लाई गई. इसकी लागत कम है और यह रखरखाव में भी आसान है. 'नीरी' ने घर में पानी के उपचार के लिए रसायनों का इस्तेमाल सुझाया है. ये रसायन 20-30 मिनट तक पानी में घोले जाते हैं. कुछ देर बाद ये तलहटी में बैठ जाते हैं. ऊपर का साफ पानी पीने योग्य होता है. इस तकनीक को लोकप्रिय बनाया जा रहा है.

खारे पानी की समस्या से ग्रस्त गांवों की तादाद 17,500 है. ये देश के

14 राज्यों में फैले हैं. खारे पानी के उपचार के लिए कई उपयुक्त प्रौद्योगिकियों का इस्तेमाल किया गया, जैसे विपरीत परासरण (रिवर्स ऑसमोसिस), विद्युत डायलिसिस, सौर-भभका आदि. इस काम में उप-मिशन ने राष्ट्रीय स्तर के कई वैज्ञानिक संगठनों का सहयोग लिया जैसे भावनगर स्थित केंद्रीय लवण एवं समुद्री रसायन अनुसंधान संस्थान, बम्बई का भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र और जोधपुर की रक्षा प्रयोगशाला. पानी से खारापन खत्म करने की तकनीक के प्रदर्शन के लिए उप-मिशन ने एक चल प्रयोगशाला बनाई है. इससे काफी लाभ हो रहा है.

देश के 2900 गांवों के पानी में ज्यादा लौह की समस्या है. इस पर काबू पाने के लिए उप-मिशन ने 'नीरी' द्वारा विकसित कई तकनीकों का इस्तेमाल किया है. एक तकनीक में पानी को कोयला बिछे 'चैम्बर्स' में प्रवाहित किया जाता है और उसमें हवा गुजारी जाती है. इसके बाद पी.एच. मान सही करके बालू से छाना जाता है. 'नीरी' ने घर में पानी के उपचार के लिए रसायनों का इस्तेमाल सुझाया है. कुछ ऐसे 'हैंडपंप' भी तैयार किए गए हैं, जिनमें पानी छानने और हवा गुजारने का बंदोबस्त रहता है.

ऊपर बताए गए उप-मिशनों के अलावा जिला विशेष की समस्याओं को सुलझाने के लिए पेयजल मिशन द्वारा 55 लघु-मिशन चलाये जा रहे हैं. ये देश के 25 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में फैले हैं. अंतरिक्ष विभाग ने इन जिलों के जल-भू स्थिति मानचित्र बनाए हैं.

इन मिशनों के अलावा देश की ग्रामीण पेयजल व्यवस्था सुधारने के लिए मिशन ने और भी कई महत्वपूर्ण कार्य किए हैं.

कुछ नतीजे

तमाम समस्याओं (जिनका जिक्र आगे किया जाएगा) के बावजूद पेयजल मिशन ने गांव में पीने के पानी की समस्या सुलझाने में महत्वपूर्ण योगदान किया है. सन् 1985-86 के दौरान 24,567 समस्याग्रस्त गांवों तक पेयजल पहुंचाया गया. सन् 1986-87 और 1987-88 के दौरान क्रमशः 44,102 गांवों और 46,465 गांवों की प्यास बुझाई गई. आशा है सातवीं योजना के अंत तक कुल 1,58,375 समस्याग्रस्त गांवों में पीने का पानी उपलब्ध होगा. इस तरह वर्तमान दशक के शुरू में लगभग 3,400 समस्याग्रस्त गांव प्यासे होंगे. यानी मिशन अपने काम में पूरी तरह से सफल नहीं हुआ. साथ ही पेयजल दशक का उद्देश्य भी पूरा नहीं हो पाया. इसके कई कारण हैं:

समस्याएं

आमतौर पर इतने बड़े कार्यक्रम को चलाने के लिए धन की समस्या आती है. पर यहां यह समस्या नहीं है. विश्व बैंक पूरी मदद कर रहा है. पेयजल मिशन को सामाजिक और संगठनात्मक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है. सन् 1987 के भयंकर सूखे ने भी पेयजल मिशन को बड़ा धक्का पहुंचाया है. सूखे से पहले गांवों में पीने के पानी की समस्या खत्म हो गई थी, वे सूखे के बाद फिर से समस्याग्रस्त हो गए, क्योंकि पानी के स्रोत ही सूख गए.

अलग-अलग राज्यों की सरकारों के गलत रवैये के कारण भी मिशन को पूरी सफलता नहीं मिल पाई: आन्ध्र प्रदेश, असम, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक और तमिलनाडु की राज्य सरकारों ने गांवों तक पानी पहुंचाने के लिए दिया गया धन अन्य कार्यों में खर्च कर दिया. सूखे के अगले साल अच्छी बरसात होने से भी कुछ राज्य सरकारें इस ओर उदासीन हो गईं.

हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, मेघालय, मिजोरम और नागालैंड में काम करने का मौसम बहुत कम अवधि तक रहता है. इसलिए तेजी से काम नहीं चल पाता. दूसरे इन राज्यों के पास मूलभूत ढांचे और साधनों की कमी भी है. राजस्थान, गुजरात, बिहार, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और केरल में अच्छी प्रगति हुई है. उम्मीद है ये राज्य मिशन का उद्देश्य पूरा कर लेंगे.

गांवों में पेयजल आपूर्ति पर बराबर निगाह रखने और समय-समय पर हैंडपंप आदि की मरम्मत करने की कोई समुचित व्यवस्था नहीं है. हैंडपंप लगाकर ही काम को खत्म हुआ समझ लिया जाता है. इसीलिए हजारों गांवों में बेकार हैंडपंप लगे दिखाई देते हैं. इसलिए जिन गांवों में साफ पेयजल की उपलब्धता की बात कही जाती है, वे भी वास्तविकता में इस समस्या से ग्रस्त पाए जाते हैं. ज्यादातर जलआपूर्ति योजनाओं को लागू करने का काम ठेकेदारों को सौंप दिया जाता है, जिनका मूल उद्देश्य ज्यादा से ज्यादा धन कमाना होता है. इस तरह कार्यक्रम को लागू करने की जड़ में ही खराबी है.

जल आपूर्ति योजनाओं की लागत की एक समस्या है. मिशन के अनुसार साज-सामान पर ही 60-65 फीसदी धन खर्च हो जाता है. इस तरह देखरेख और शिक्षा अभियान चलाने के लिए पर्याप्त धन नहीं बचता.

सारे गांवों तक पीने का पानी पहुंचाने में एक पर्यावरणीय समस्या भी है. मिशन के अनुसार इससे भूजल धीरे-धीरे खत्म हो जाएगा. इसलिए जरूरी यह है कि बरसात के पानी को वैज्ञानिक ढंग से इकट्ठा करके, उसका समुचित उपयोग किया जाए. भूजल और वर्षा जल का मिलाजुला उपयोग इसका सही हल है.

सुझाव

देश की पेयजल समस्या को सुलझाने के लिए पेयजल मिशन ने कई नीतिगत परिवर्तनों की सिफारिश की है, जैसे राष्ट्रीय पेयजल बोर्ड का गठन, जल प्रबंध के लिए कानून बनाना, सिंचाई की सभी योजनाओं में पीने के पानी का बंदोबस्त रखना, विस्तृत भूभौतिकी/भूजलविज्ञानी सर्वेक्षणों के बिना नलकूप न लगाना, पानी की कमी वाले क्षेत्रों में ज्यादा पानी चाहने वाली फसलें न लगाना, राज्य सरकारों और लागू करने वाली एजेंसियों पर नियंत्रण रखना तथा राज्यों व केंद्र शासित क्षेत्रों के विभिन्न विभागों द्वारा मिलजुल कर काम करना.

पेयजल मिशन ने अपने अनुभव से बताया है कि गांवों तक पेयजल पहुंचाने की लागत तीस फीसदी कम की जा सकती है, अगर कार्यक्रम को परियोजना के रूप में लागू किया जाए और सब काम निर्धारित समय के भीतर हो. यह काम सही ढंग से तभी हो पाएगा जब इसमें विभिन्न विशेषज्ञ मिलकर समेकित रूप से काम करें, जैसे भूविज्ञानी, जलविज्ञानी, भूभौतिकीविद्, जन-स्वास्थ्य अधिकारी, इंजीनियर, पर्यावरण विज्ञानी और समाज विज्ञानी.

समाज विज्ञानी इसलिए कि बिना सामाजिक चेतना के गांवों से जुड़ी कोई भी योजना सफल नहीं हो सकती. हमें गांव के लोगों को समझाना होगा कि पानी की कमी है और यह एक महंगी चीज है. इसके लिए उन्हें भी भुगतान करना पड़ता है. पानी संबंधी मितव्ययिता की भी उन्हें पूरी जानकारी होनी चाहिए. साथ ही पानी को साफ रखने के तरीके भी मालूम होने चाहिए. इसीलिए केरल में जल आपूर्ति कार्यक्रमों के साथ सामाजिक-आर्थिक इकाई भी जोड़ी गई है. इससे खासा लाभ हुआ है.

पेयजल मिशन ने आठवीं पंचवर्षीय योजना के कार्यक्रम बना लिए हैं. इसमें दो समितियों के गठन की व्यवस्था है. पहली समिति विभिन्न कार्यक्रमों के तहत चल रही परियोजनाओं के संचालन और देखरेख की समस्याओं पर ध्यान देगी; जबकि दूसरी समिति योजनाओं के देखरेख के मानदंड बनायेगी और उनका मूल्यांकन करेगी. आशा है इससे पेयजल की समस्या खत्म करने में भरपूर मदद मिलेगी.

भारत पेयजल आपूर्ति का इतना बड़ा कार्यक्रम चलाने वाला दुनिया का अकेला देश है. इसलिए समस्याएं भी उतनी ही बड़ी हैं. पर रास्ता भी है. पूरी उम्मीद है कि आठवीं योजना के दौरान कोई गांव प्यासा न रहेगा. अगर ऐसा हो गया तो भारत विकासशील देशों में पेयजल की समस्या को खत्म करने वाला पहला देश होगा. ❑

(पृष्ठ 3 का शेषांश)

के सिरों पर फफूंदीनाशक पेस्ट लगाना चाहिए.

पाउडरी मिल्ड्यू : मौसम में अचानक परिवर्तन से यह बीमारी लगती है. पत्तियों एवं तनों पर सफेद पाउडर जैसा फैलाव दिखाई देता है. इसकी रोकथाम के लिए 0.5 मिलीलीटर केराथेन अथवा 2 ग्राम वाविस्टीन को 1 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करने से इस बीमारी (रोग) को रोका जा सकता है.

गुलाब के रंगों के अनुसार भारत में विकसित कुछ उन्नतिशील किस्में निम्न हैं:

लाल : अन्जनी, भीम, लाल बहादुर, राजकुमारी, जन्तर मन्तर, लालिमा, सरखाब.

गुलाबी : अरूणिमा, आम्रपाली, मृणालिनी, सुचित्रा, महारानी, प्रेमा, राधारानी

पीला : गंगा, पीतमन्जारी, पीताम्बर, तानसेन, राजा राम मोहन राय, वसन्ती.

सफेद : डा० होमीभाभा, मृदुला, नवनीत, चन्द्रमा, जवाहर, सबनम, हिमांगनी.

दुरंगे व धारीदार : बनजारन, आरेन्ज स्पार्क, अभिसारिका, मदहोश, सुप्रिया.

मांव : नीलाम्बरी, आकाश सुन्दरी, ब्लू डिलाइट, भरानी, डा० वी०पी० पाल.

नारंगी व किरमिजी : अन्गारा, पन्डित नेहरु, शोला, ज्वाला, मोहनी, सूर्यकिरण.

खुशबूदार गुलाब : सुगन्धा, सुरभि, चमक, लालिमा, रोज शर्बत, काजल, सेन्टेड बाल.

कुछ भारतीय गुलाबों की किस्में 30 सेंटीमीटर आकार के गमलों में आसानी से उगाई जा सकती हैं जैसे—अरुणिमा, अन्जनी, सदाबहार, प्रेमा, चन्द्रिका, बनजारन, नीलाम्बरी. ❑


Art. No. 151
Art. No. 161
Art. No. 152
Micro ®
AN action PRODUCT

सामान्य रूप से नहीं बना सकता. इस प्रौद्योगिकी के अनेक लाभ हैं.

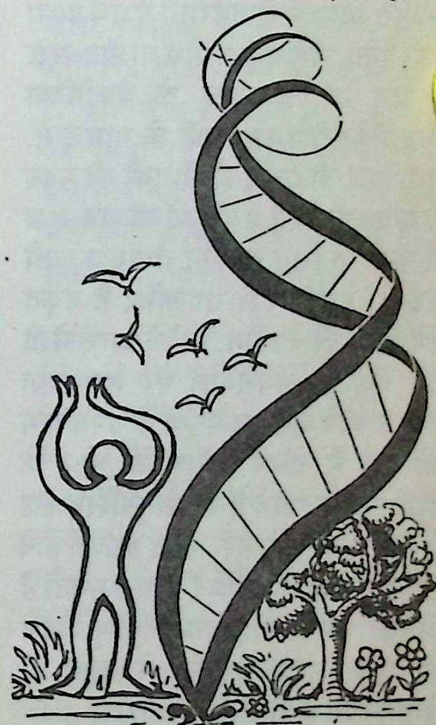
यदि बाह्य आनुवंशिक पदार्थ को ग्रहण करने वाला कोई सूक्ष्म जीव है—जैसे तेजी से बढ़ने वाला एशरीकिया कोली या यीस्ट—तो उससे ऐसे पदार्थों की बहुत बड़ी मात्रा प्राप्त की जा सकती है जो पौधों, मनुष्यों या अन्य जीवों में अत्यंत कम मात्रा में उत्पन्न होते हैं. उदाहरण के लिए मानव-निर्मित इन्सुलिन को ही लीजिए. यह औषधि औपचारिक रूप से मधुमेह के रोगियों को दी जाती है परन्तु आज लगभग अप्राप्य है. बाजार में मिलने वाली इन्सुलिन दुधारू जानवरों या सूअर से प्राप्त की जाती है. यद्यपि पशुओं से प्राप्त यह इन्सुलिन मधुमेह के प्रमुख लक्षणों को काबू करने में सक्षम हैं, परन्तु इसके हानिकारक दुःप्रभाव भी हैं, विशेषकर गुर्दे और आंख के पर्दे पर. कुछ रोगियों में इससे एलर्जी भी हो जाती है.

अधिकतर जैविक क्रियाएं किण्वों के सहयोग से होती हैं जो जैविक उत्प्रेरकों की भांति कार्य करते हैं. आजकल काम में आने वाले किण्वों में पौधों और जन्तुओं (मानव सहित) से मिलने वाले किण्वों की संख्या सर्वाधिक है. उदाहरण के रूप में, कॉलेस्टराल आक्सीडेज किण्व रक्त में कॉलेस्टराल की मात्रा मापने के काम आता है. इसी प्रकार यूरीकेज किण्व यूरिक अम्ल के स्तर को जांचने में उपयोगी है. कुछ किण्व खमीर उठाने, पकाने, मांस को मुलायम करने, डिटर्जेन्ट बनाने तथा चमड़ा कमाने के काम आते हैं. रेनिन नामक किण्व पनीर बनाने के काम आता है.

किण्वों को व्यापारिक स्तर पर उपयोग करने में सबसे बड़ी बाधा उनका अस्थिर होना रही है. परन्तु आज किण्व का निर्माण करने वाले जीन में इस प्रकार आनुवंशिक परिवर्तन करना सुलभ हो गया है जिससे वह स्थाई बन जाता है. उदाहरणार्थ, फाइब्रोब्लास्ट वृद्धिकारक अंश (फाइब्रोब्लास्ट ग्रोथ फेक्टर) प्रोटीन का स्थायीकरण संभव हो गया है और आज के व्यापारिक रूप से उपयोगी सभी एंजाइम प्रोटीन होते हैं. इसी प्रकार आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा किण्व के अधिकतम पी-एच मूल्य को या फिर उसके आधार की विशेषता या गत्यात्मक प्राचलों को बदलने में सफलता मिल चुकी है जैसे, सबटिलिसन किण्व में, जो प्रोटीनों का विखंडन करता है, यह कार्य प्रोटीन की सतह पर उपस्थित आवेश को नई विधियों द्वारा विशेष प्रकार का उत्परिवर्तन करके बदल कर किया गया है. आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा किण्वों में साधारण परिवर्तन कर उनकी औषध-प्रभावी क्षमता में विस्तार किया गया है, इसका उदाहरण है नई मोनोमेरिक इन्सुलिन जो आसानी से शरीर में रम जाती है.

कई बार किसी जीव के तन्तु में ही किसी विशेष प्रोटीन के निर्माण की आवश्यकता पड़ जाती है. हम आज इस स्थिति में हैं कि मानव इन्सुलिन के जीन को चूहे के यकृत में प्रवेश करा कर उसे सक्रिय कर सकते हैं. इस कार्य के लिए वसा-पुटिकाओं को—जिन्हें लाइप्रोसोम कहते हैं—जीन के वाहक के रूप में उपयोग करते हैं. इस प्रकार के लाइप्रोसोमों का निर्माण किया जाता है जो केवल यकृत में ही पहुंचते हैं और यकृत कोशिकाओं से जुड़ कर उनमें इस जीन का समावेश कर देते हैं. यह जीन वहां कुछ समय तक सक्रिय रहता है और फिर नष्ट हो जाता है.

अब तक पुनर्योगज (रीकोम्बीनेन्ट) डी एन ए प्रौद्योगिकी की सहायता से सूक्ष्मजीवी कोशिकाओं या प्राणियों द्वारा 80 से अधिक प्रोटीनों का निर्माण संभव हो पाया है. सामान्यतः ये जीव इन प्रोटीनों का उत्पादन नहीं करते. इन संवर्धित प्रोटीनों में से अनेक आज व्यापारिक स्तर पर उपलब्ध हैं, बाकी का विकास कार्य, उत्पादन, जांच या परीक्षण के विभिन्न चरणों से गुजर रहा है. इन प्रोटीनों के अनेक उपयोगों में सम्मितिल हैं विभिन्न औषधियां जैसे शोध-निवारक, जलने व घाव पर लगाने वाली या दुर्दमता व संक्रमण, धमनी काठिन्य, संधिशोथ, ब्रण, रक्त जमने या यांत्र संबंधी रोग, अतिरक्तदाब, गर्भ-निरोधक, मधुमेह, कैरेटाइटिस, यकृतशोथ-बी, स्वरोगावरोधी रोग, आंखों के रोग, हृदयपेशी रोधगलन, थ्रोम्बोसिस, चयापचय रोग, अग्नाशय-शोथ, जठर-स्राव तथा रक्तचाप नियंत्रक औषधियां. इन प्रोटीनों का उपयोग प्लाज़्मा विस्तारक, घावों को जोड़ने, प्रयोगशाला के प्रतिकारकों, त्वचा प्रतिरोपण, विश्लेषक प्रतिकारकों, दूध की मात्रा या मछली का वजन बढ़ाने तथा स्कन्दनरोधी के रूप में भी होता है.



आनुवंशिक अभियांत्रिकी प्रौद्योगिकी के अपरोक्ष उपयोग भी हैं. आस्ट्रेलिया में आनुवंशिक रूप से बदली अल्फाल्फा घास—जिसमें सिस्टीन अमिनो अम्ल की मात्रा बढ़ा दी गई है—भेड़ों को खिला कर उनसे 5 प्रतिशत अधिक ऊन प्राप्त की गई है जिसका मूल्य आस्ट्रेलियन मुद्रा में 3 अरब डालर प्रतिवर्ष है. यह सफलता पॉलबर्ग के-जिन्हें 1980 का रसायनशास्त्र का नॉबेल पुरस्कार मिला था—अग्रणी कार्य के 15 वर्ष बाद ही मिली.

नई वेक्सीन

जैव-प्रौद्योगिकी ने आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा निर्मित प्रतिजनों का उपयोग कर वेक्सीनों के विकास का नया रास्ता खोल दिया है. इस विधि से प्राकृतिक प्रतिजनों में मौजूद कमियों जैसे अस्थिरता तथा मिलावट की संभावना को दूर कर दिया जाता है, जैसे पूरी तरह से निष्क्रिय न होने वाले विषाणु को. साथ ही प्राकृतिक प्रतिजन के उपयोग से पर्याप्त मात्रा में रोगावरोधी पदार्थ प्राप्त नहीं होता, जैसे यकृत शोथ या पाद-मुख विषाणु या फिर कोढ़ के बैक्टीरिया **माइक्रोबेक्टीरियम लिप्री** के मामले में. पुनर्योगज डी एन ए प्रौद्योगिकी की मदद से पश्चिमी देशों में पशुओं की पाद-मुख बीमारी के लिए वेक्सीन तैयार कर ली गई है. दूसरी बड़ी उपलब्धि है यकृत शोथ-बी की वेक्सीन. अकेले फ्रान्स में ही इसे हजारों स्वयंसेवकों पर आजमाया गया है और अब वह मनुष्य के उपयोग में आ रही है. इसमें विषाणु की सतह के शुद्ध प्रतिजन होते हैं जो आनुवंशिक रूप से तैयार की गई यीस्ट द्वारा स्रावित होने पर तुरन्त ही इस प्रकार के पुंज बनाते हैं जिनकी रचना प्राकृतिक विषाणु कवच की तरह होती है और वे बहुत ही रोगावरोधी होते हैं.

ट्रान्सजीन संस्था के वैज्ञानिकों ने पेरिस स्थित पाश्चर संस्थान के वैज्ञानिकों के साथ सहयोग कर शिस्टोसोमियोसिस नामक रोग की वेक्सीन लगभग तैयार कर ली है. इस बीमारी से उष्णकटिबन्धीय क्षेत्र के लगभग 25 करोड़ व्यक्ति प्रतिवर्ष ग्रसित होते हैं. डेंगू ज्वर को वेक्सीन आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा बनाने में काफी प्रगति हुई है. यह रोग मच्छरों से फैलता है तथा एशिया, दक्षिण अफ्रीका तथा दक्षिणी और मध्य अमेरिका में व्यापक है. इस रोग को फैलाने वाली मच्छर की प्रजाति, प्लाज्मोडियम फेलसीपेरम की जो मलेरिया भी फैलाती है मुख्य सतही प्रोटीन बनाने वाली जीन का संवर्धन कर लिया गया है. इस प्रकार मलेरिया के विरुद्ध वेक्सीन बनाने का रास्ता खुल गया है. इससे मलेरिया को रोकने में बहुत मदद मिलेगी. कोलम्बिया में इस वेक्सीन की जांच की जा रही है.

लगभग 1 करोड़ 20 लाख व्यक्ति कोढ़ के शिकार हैं. अकेले भारत में ही प्रतिवर्ष इनकी संख्या 3 लाख बढ़ जाती है. यदि वर्ष 2000 तक भारत से इस रोग को मिटाना है तो हमें लाखों व्यक्तियों को टीके लगाने होंगे. संवर्धन से प्राप्त वेक्सीन से ही इतनी बड़ी मात्रा प्राप्त होना संभव है.

वैज्ञानिक इस दिशा में काफी आगे बढ़ चुके हैं. उन्होंने बेक्टीरिया की सतह पर उपस्थित प्रोटीन की पहचान कर ली है. वे अब इस जांच में लगे हैं कि इनमें से कौन सा प्रतिजन वेक्सीन बनाने के लिए सर्वोत्तम है. कोढ़ की तीन वेक्सीनों का देश में परीक्षण जारी है. इनमें से दो का विकास देश में ही हुआ है और एक विश्व स्वास्थ्य संगठन के तत्वावधान में बनी है.

डायरिया रोग के विरुद्ध तैयार की जा रही पांच में से चार वेक्सीनों के निर्माण में आशातीत प्रगति हुई है. दो वर्ष से छोटे बच्चों के इस महारोग के 40 प्रतिशत के लिए रोटावाइरस नामक विषाणु जिम्मेदार है. इस रोग से 5 लाख मौतें प्रतिवर्ष होती हैं. अमेरिका की नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ हेल्थ के वैज्ञानिक डा० अल्बर्ट कोपिकिन ने रोटावाइरस के विरुद्ध वेक्सीन का विकास किया है जो फिनलैण्ड, वेनेजुअला और पेरू आदि देशों में जांची जा रही है. किन्हीं अस्पष्ट कारणों से हैजे की वैक्सीन के निर्माण की प्रगति नहीं हो पाई है. दूसरी बीमारियों की वेक्सीन बनाने का कार्य चल रहा है तथा अलग-अलग चरणों में है. इनमें एड्स, इन्फ्लूएंजा, मस्तिष्कावरण शोथ, हर्पीज, पागल कुत्ते के काटे का रोग, कुक्कर खांसी, खसरा, पोलियोमाइलाइटिस, यक्ष्मा, रूमेटिक ज्वर, न्यूमोकोकल संक्रमण, तथा पशुओं की मुंह की बीमारी सम्मिलित हैं. वेक्सीन निर्माण के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन का एक बड़ा कार्यक्रम है.

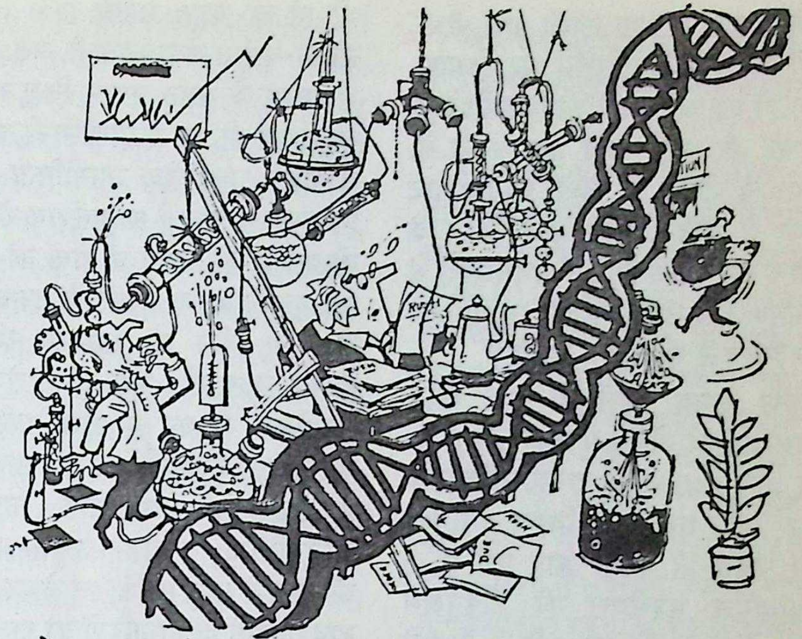
मानवीय कोरियोगोनिक गोनेडोट्रोफिन की बीटा श्रृंखला का आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा निर्माण कर गर्भ-निरोध के लिए बनाई गई वेक्सीन का आजकल परीक्षण चल रहा है. आनुवंशिकीय रूप से तैयार की गई वेक्सीन में निहित लाभों के कारण उपरोक्त वर्णित वेक्सीनों के निर्माण से पृथ्वी पर रोगों के नियंत्रण का एक नया इतिहास बन सकेगा.

रोगावरोधी प्रौद्योगिकी पर आधारित रसायन तथा नई आर एन ए प्रौद्योगिकी

जब किसी रीढ़धारी जन्तु के शरीर में कोई बाहरी पदार्थ प्रवेश कर जाता है तो प्रोटीन के एक वर्ग के अणु, जिन्हें प्रतिपिण्ड कहते हैं, बड़ी संख्या में रक्त की प्लाज्मा कोशिकाओं द्वारा निर्मित किए जाते हैं. शरीर की इस प्रक्रिया को रोगावरोधी प्रतिक्रिया कहते हैं.

प्रतिपिण्डों में प्रतिजन से जुड़ने का गुण होता है जिससे प्रक्रियाओं की एक ऐसी श्रृंखला का श्रीगणेश हो जाता है जो इस बाहरी पदार्थ के प्रभाव को नष्ट कर देती है या फिर उसे बाहर निकाल देती है. किसी विशेष प्रतिजन के विरुद्ध प्रतिपिण्ड विषमांगी होती है, अर्थात रक्त के एक प्लाज्मा कोशिका सवंर्धन से केवल एक ही प्रकार का प्रतिपिण्ड बनता है. अब चूंकि एक प्रतिजन से अनेक प्रकार की प्लाज्मा कोशिकाओं का विस्तार होता है, अतः रासायनिक रूप से विभिन्न अनेकों प्रतिपिण्ड भी उत्पन्न हो जाते हैं. जॉर्जेज कोहलर तथा सीजर मिल्सटाइन के, जिन्हें शरीरविज्ञान शास्त्र तथा भेषज का 1989 का नोबेल पुरस्कार मिला था, अग्रणी कार्य से अब प्लाज्मा कोशिकाओं को छांट कर अमर कर देना संभव हो गया है. अब किसी विशेष प्लाज्मा कोशिका को किसी अर्बुद (ट्यूमर) कोशिका से मिला कर विशिष्ट प्रतिपिण्ड बना सकते हैं. इस प्रकार हर प्लाज्मा-कोशिका-संवर्ध लम्बे समय के लिए उस अति विशिष्ट प्रतिपिण्ड की बहुत बड़ी मात्रा का स्रोत बन सकता है. अलग-अलग संकर कोशिकाएं अनन्त काल तक सुरक्षित रखी जा सकती हैं और कभी भी आवश्यकता पड़ने पर उनके बर्फ से जमे नमूनों से ये कोशिकाएं संवर्ध के रूप में पुनः विकसित की जा सकती हैं या फिर उन्हें जन्तुओं के शरीर में प्रवेश करा कर बड़ी मात्रा में 'मोनोक्लोनल प्रतिपिण्ड' के रूप में बदला जा सकता है. इस सामान्य विधि से निर्मित मोनोक्लोनल प्रतिपिण्ड जीव विज्ञान तथा भेषज विज्ञान के अनुसंधान में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुए हैं.

बहुत बड़ी मात्रा में निर्मित होने वाले मोनोक्लोनल प्रतिपिण्ड बीमारियों की शीघ्र जांच में बड़े काम की वस्तु है इनसे गर्भधारण या कितनी ही बीमारियों जैसे कैंसर आदि का समय से पूर्व पता लगाने



वाला घरेलू बक्सा तैयार किया जा सकेगा. यदि समय से पूर्व पता लग जाए तो कितने ही प्रकार के कैंसर काबू किए जा सकते हैं. संभव है आने वाले दशकों में इस प्रकार के किटों, तथा ऐसे भी जिनसे मूत्र में शर्करा का परिमाणात्मक विश्लेषण किया जा सके, का उपयोग स्कूल विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम में सम्मिलित हो जाए. गर्भ-धारण की घर में ही जांच संभवतः एक बहुज्ञात प्रौद्योगिक उपलब्धि है.

रेडियोसमस्थानिकों के साथ मोनोक्लोनल प्रतिपिण्डों को मिला कर शरीर में प्रवेश कराने से कैंसर रोग के सुधरे चित्र लिए जा सकते हैं. शारीरिक विषों जैसे रिसिन, रेडियोन्यूक्लियाइड या जलोनिन को मोनोक्लोनल प्रतिपिण्डों के साथ जोड़ कर बनाए गए अणु-पुंज अर्बुद कोशिकाओं को विशेष रूप से छांट कर उन्हें नष्ट करने की क्षमता रखते हैं. इस प्रकार के कुछ अणु-पुंज, जिन्हें रोगवरोधी विष के नाम से जाना जाता है, प्रारम्भिक परीक्षणों से गुजर रहे हैं. मोनोक्लोनल प्रतिपिण्डों को विशिष्ट कोशिका-ग्राहकों को अवरुद्ध करने के लिए भी उपयोग किया जा सकता है जिससे उनके, जैविक कार्यों को रोका जा सके, जैसे टी-कोशिकाओं के कार्य को, जो अंगप्रतिरोपण में त्वचा का बहिष्कार करने के लिए उत्तरदायी होते हैं.

हाल ही में वैज्ञानिकों ने ऐसे विचित्र प्रतिपिण्डों का निर्माण किया है जो इलाज के लिए उपयोगी मानवनिर्मित प्रतिपिण्डों का, स्थान ले सकेंगे. इनका सीधा निर्माण बहुत मुश्किल है. ये प्रतिपिण्ड आधे मनुष्य और आधे चूहे के योगदान से बने हैं और इनका उत्पादन बड़े पैमाने पर हो रहा है. अनुमान है कि अमेरिका को इस वर्ष से मोनोक्लोनल प्रतिपिण्डों के निर्माण से 20 करोड़ डॉलर प्रतिवर्ष का वित्तीय लाभ होगा.

अब तक 200 से अधिक विभिन्न रोगों के लिए रोगावरोधी जांच किट तैयार कर लिए गए हैं. हाल में ही डब्लिन की मेटलेब्ल लि० ने एक नए एलिसा जांच किट का निर्माण किया है जो रक्त में उपस्थित उस प्रोटीन का पता लगा सकती है जिससे अधिक सिगरेट पीने के खतरे का ज्ञान हो सकता है.

पिछले एक दो वर्षों में सम्भवतः जैव-प्रौद्योगिकी की सबसे रोमांचक

खोज है एशरीकिया कोली तथा पौधों, दोनों के द्वारा प्रतिपिण्डों का निर्माण. साथ ही यह जानकारी भी कि प्रतिपिण्ड किण्वों की तरह कार्य कर सकते हैं. अर्थात ये प्रोटीन को किसी भी विशिष्ट स्थान से खंडित करने वाले किण्व के समान गुण रखते हैं. इन अनुसंधानों से प्रतिपिण्डों के उत्पादन और उपयोग को एक बिल्कुल नई दिशा मिली है.

कुछ समय पहले ही एक अपूर्व अनुसंधान को नोबेल पुरस्कार मिला है. यह ज्ञात हुआ है कि राइबोन्यूक्लियक अम्ल (आर एन ए) भी किण्व के समान गुण रखता है. अतः आर एन ए के रासायनिक संश्लेषण की जीवनक्षम विधियां ज्ञात की जा रही हैं जिससे भविष्य में इसके किण्वों जैसे विशिष्ट गुणों का व्यापारिक स्तर पर लाभ उठाया जा सके.

रोग अन्वेषी (प्रोब) तथा डी एन ए फिंगर प्रिंटिंग

भेषज-आनुवंशिकीविज्ञों की धर्म-पुस्तक विक्टर मेक्यूजिक द्वारा रचित 'मेंडेलियन' इनहेरिटेन्स इन मैन' में लगभग 3500 ऐसी बीमारियों का वर्णन है जो दोष-युक्त जीन के कारण होती हैं. हीमोफीलिया, सिस्टिक फाइब्रोसिस तथा डाउन्स सिन्ड्रोम सामान्य आनुवंशिक रोगों में से हैं. इसके अलावा कई जन्मजात दोष तथा मन्दबुद्धिता भी आनुवंशिक कारणों से होती हैं. इनमें प्रौढ़ावस्था के अनेक रोग जैसे मधुमेह, साइजोफ्रीनिया तथा हृदयधमनी रोग सम्मिलित है. कई प्रकार के रक्त-न्यूनता रोग जैसे सिकिल सैल एनीमिया तथा थेलेसीमिया अफ्रीका, भूमध्य सागरीय क्षेत्र, मध्य पूर्व, भारतीय महाद्वीप तथा पूरे दक्षिण-पूर्वी एशिया के लाखों बच्चों में फैले हैं. कई प्रकार की पैतृक बीमारिया असाध्य होती हैं. उपचार यदि उपलब्ध भी हो तो बहुत महंगा होता है और जीवन-पर्यन्त लेना पड़ता है. अतः इनकी रोकथाम के बहुत प्रयत्न किए गए हैं. पुनर्योगज डी एन ए प्रौद्योगिकी की एक संभावित उत्साहिक उपयोगिता यह है कि इससे मनुष्यों के आनुवंशिक रोगों को डी एन ए की रचना के दोषों को सुधार कर दूर किया जा सकता है. इसके लिए दोषयुक्त जीन को सामान्य जीन से बदला जाता है. वंशानुगत रोगों को पुनर्योगज डी एन ए प्रौद्योगिकी द्वारा उपचारित करने के लिए यह आवश्यक है कि निश्चित और सामयिक आनुवंशिक सलाह उपलब्ध हो. सौभाग्य से आज गर्भधारण के कुछ समय बाद कितनी ही बीमारियों को पहचानना आसान हो गया है जिससे यदि भ्रूण में कोई पैतृक दोषी जीन है तो उसका गर्भपात कराया जा सके.

एरिजोना विश्वविद्यालय के अनुसंधानकर्त्ताओं ने पानी में मौजूद विषाणुओं का पता लगाने वाले अन्वेषियों की खोज की हैं. इनकी जांच इतनी संवेदनशील है कि पानी के 1000 लिटर में मौजूद 10 विषाणुओं को भी खोज निकालती है. पोलियो मेनिजाइटिस, तथा बच्चों में डायरिया के विषाणुओं का पता लगाने वाले अन्वेषियों की खोज कर ली गई है.

जैव-प्रौद्योगिकी की एक विलक्षण एवं लाभदायक देन है डी एन ए फिंगरप्रिंटिंग पद्धति का विकास. आनुवंशिक पदार्थ की पहचान पर आधारित यह तकनीक आज किसी व्यक्ति विशेष की पहचान की सबसे संवेदनशील एवं विश्वसनीय विधि है. इसमें किसी व्यक्ति के डी एन ए को चाहे वह उसकी बाल का ही क्यों न हो, रासायनिक कर्तनियों से जिन्हें 'रेस्ट्रिक्शन एन्डोन्यूक्लियेज' कहते हैं, काट कर उसके विभिन्न अंशों को वैद्युत कण-संचालन (इलेक्ट्रोफोरेसिस) द्वारा जैल माध्यम पर अलग-अलग कर लिया जाता है. अलग किए गए उचित अंशों को डी एन ए अन्वेषियों द्वारा जांच कर आनुवंशिक रूप से बड़ी मात्रा में बैक्टीरियां में संवर्धित कर लिया जाता है. अन्वेषी को आवश्यकतानुसार रेडियोधर्मिता या अन्य विधि से पहचाने जाने योग्य बना लिया जाता है. अन्वेषियों द्वारा जुड़ने पर जैल के माध्यम पर बना नमूना, जो डी एन ए अंशों के अलग होने से बनता है, किसी व्यक्ति की अपनी पहचान होती है.

इस विधि की सफलता अन्वेषियों की संवेदनशीलता पर निर्भर करती है. आज फिंगर प्रिंटिंग की दो विधियां व्यावहारिक स्तर पर प्रचलित हैं. पहली इंग्लैण्ड के एलेफ जेफ्री की, और दूसरी सेंटर फार सेलुलर एंड मौलिकुलर बायोलोजी, हैदराबाद के लालजी सिंह और उनके सहयोगियों की. इसमें कोई सन्देह नहीं कि भविष्य में मनुष्यों की पहचान करने, उनके आपसी संबंध निर्धारित करने तथा पौधों और जन्तुओं के जर्म-प्लाज्मा की पहचान और विवरण को सुचारु रखने के लिए डी एन ए फिंगरप्रिंटिंग बहुत काम आएगी. इस कार्य के लिए तथा वंशानुगत रोगों की जांच के लिए अन्वेषियों का उत्पादन एक बड़ा व्यवसाय बन जाएगा.

कोशिका संवंध के लिए रसायन

हाल ही में जिन महत्वपूर्ण तकनीकों ने आधुनिक जीवशास्त्र में क्रान्ति उत्पन्न की है तन्तु संवर्ध (क्लोरिंग) भी उनमें से एक है. इसका संबंध पौधों और जन्तुओं की कोशिकाओं को सूक्ष्मजीवियों की कोशिकाओं की भांति प्रयोगशाला में विकसित करने से है. किसी भी पौधे के किसी भी अंग की एक कोशिका से उस पूरे पौधे को विकसित किया जा सकता है. पौधे और जन्तुओं की कितनी ही कोशिकाएं तन्तुसंवर्ध में

विकसित किए जाने के समय माध्यम में कई व्यावसायिक महत्व के रसायनों का निष्कासन करती है जिसे बीच-बीच में बदल कर रसायन प्राप्त किए जा सकते हैं. इस प्रकार कितने ही महत्वपूर्ण रसायन प्राप्त किए जा चुके हैं. इनमें से कुछ हैं: एजमेलिसिन-एक उच्च तनाव कम करने वाला पदार्थ; कोडीन-एक पीड़ाहारी; डायोक्सिन-हृदय के लिए टॉनिक; डायोस्जेनिन-एक गर्भ-निरोधक; यूब्रीक्यूनोन-10 हृदयरोगों की एक औषधि; बरबेरिन-एक कीटाणुनाशक; शिकोनिन-जले तथा त्वचा रोगों की औषधि, रेशम रंगने का लाल पिगमेंट तथा जैव-लिपस्टिक बनाने के काम आने वाला पदार्थ; एन्थोसायनिन-रंग निर्माण के रसायन; स्टीवियोसाइड-एक मधुरक; तथा पाइरेथ्रम-एक कीटनाशक. मैक्सीकन वैज्ञानिकों ने पौधों के तन्तुसंवर्धों से केप्सिकम (मिर्च) के गंध वाला पदार्थ प्राप्त करने की विधि विकसित की है. और तो और, नीबू वर्ग के पौधों के फलों में पाई जाने वाली रस-ग्रन्थियां प्रयोगशाला की तश्तरियों में बना ली गई हैं.

जन्तुओं के कोशिका संवर्धों का उपयोग प्रमुख रसायनों के निर्माण में सीमित रहा है. संभवतः जन्तु कोशिका संवर्ध से प्राप्त सबसे महत्वपूर्ण रसायन विभिन्न प्रकार के (अल्फा-1, बीटा-1 तथा बीटा-2) इन्टरफेरोन हैं. रेनिन बनाने वाली कोशिकाओं को अनश्वरता मिलने के बाद आवश्यक किण्व जन्तु तन्तु-संवर्ध द्वारा व्यवसायिक स्तर पर पनीर बनाने के लिए प्राप्त हो सकेगा.

सूक्ष्मजीवियों की जैव-रासायनिक गतिविधियों का दोहन

मानव की जानकारी में सबसे प्राचीन जैव-प्रौद्योगिकी प्रक्रिया इथेनोल या सामान्य अलकोहल का किण्व द्वारा उत्पादन है. इथेनोल एक महत्वपूर्ण औद्योगिक कार्बनिक रसायन है जो ऊर्जा का एक सक्षम स्रोत है. इस घोलक, निष्कर्षक तथा बर्फ जमने से रोकने वाले पदार्थ के रूप में काम में लाया जा सकता है. साथ ही अनेक कार्बनिक रसायनों के निर्माण में यह प्रारम्भिक पदार्थ के रूप में प्रयुक्त होता है, जैसे घोलक, निर्ष्कषक, रंग, औषधियां, स्नेहक, बंधक, डिटर्जेंट, परोपजीवी नाशक, प्लास्टिसाइजर, रोगन, सौंदर्य-प्रसाधन, विस्फोटक तथा कृत्रिम रेशों के लिए रेजिन. एथेनोल के पेट्रो-रसायनों के संश्लेषण उसे या फिर शर्करा या शीरे से **सेक्रोमाइसिज सरबेसियाई** नामक यीस्ट या अन्य सूक्ष्म-जीवियों की मदद से बनाया जा सकता है.

किण्वन से प्राप्त होने वाले अन्य रसायनों में सिरका, एसीटोन, ब्यूटेनोल तथा साइट्रिक अम्ल शामिल हैं. साइट्रिक अम्ल फफूंदी द्वारा उस परिस्थिति में बनाया जाता है जब कि विभिन्न खनिजों जैसे लोहा या मैंगनीज की मात्रा को प्रतिबंधित कर पोषक पदार्थ में असंतुलन पैदा कर दिया जाए. इसके लिए किसी उचित शर्करा या शीरे का किण्वन किया जाता है. यह पदार्थ इतना आवश्यक है कि इसके अभाव में ठण्डे-पेयों का व्यवसाय चलना दूभर है.

आधुनिक जैव-प्रौद्योगिकी के आरम्भ से पूर्व सूक्ष्म जीवों द्वारा निर्मित आवश्यक व्यावसायिक उत्पादों में आते थे अन्य कार्बनिक अम्ल, प्रतिजैवी जैसे पेनिसिलिन, विटामिन तथा अन्य पदार्थ जैसे टॉक्सिन और एल्केलोयड. कवक-उत्पादित उत्पादों में तीन फाइकोकॉलाइड्स-एल्गीनेट, केरेजीनन तथा एगार आते हैं जिनके बिना आधुनिक जीवन बिताना मुश्किल है. इन्हें जैल बनाने, दुग्ध उत्पादन, बिस्कुट, टूथ पेस्ट, शेम्पू, रंग रोगन, कपड़ा और संसाधित खाद्य बनाने में काम में लिया जाता है.

आधुनिक जैव-प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में कुछ प्रमुख कार्य निम्नलिखित दिशाओं में हुए हैं :

(1) गैर-पारम्परिक स्रोतों जैसे सेल्युलोज तथा उससे संबंधित काष्ठ के अन्य बहुलकों, जो पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं तथा कम कीमती और लगातार मिलने वाले हैं, का इथेनोल के उत्पादन के लिए प्रारम्भिक पदार्थ के रूप में प्रयोग करना. पोलीप्रोपिलीन और पोलीइथिलीन जैसे प्लास्टिकों का निर्माण जो एल्कीन, आक्साइड के बहुलीकरण से प्राप्त होते हैं और जिन्हें पेट्रोरसायनों से संश्लेषित किया जाता है. यदि इथोनोल सस्ता और पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो जाए तो ये प्लास्टिक भी सस्ते हो जाएंगे. अतः ऐसे किण्वों के विकास की ओर अधिक प्रयत्न रहा है जो सेल्यूलोज का शर्करा के छोटे भागों में बांट सकें. इन्हें बाद में सूक्ष्म-जीवों द्वारा इथोनोल बनाने के काम में लिया जा सकता है.

(2) एगार जैसे पदार्थों के लिए नये व सस्ते जैविक स्रोतों की खोज करना जिनकी मांग आजकल काफी बढ़ रही है. एगार के जैल-इलेक्ट्रोफोरेसिस में अपूर्व उपयोग ने अच्छे किस्म के एगार की कीमत दस गुने से अधिक बढ़ा दी है.

(3) ऐसे सूक्ष्मजीवियों का पता लगाना जो वर्तमान उत्पादों का अधिक उत्पादन दे सकें. उदाहरण के रूप में, फलोरिडा विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने हाल में ही एक ऐसे बैक्टीरिया की खोज का दावा किया है जो वनस्पति और काष्ठ शर्कराओं की उपस्थिति के अनुसार उन्हें 90-95 प्रतिशत इथोनोल में बदल सकता है.

(4) ज्ञात रसायनों के उत्पादन के लिए नई विधियां विकसित करना. मैक्सिकन वैज्ञानिकों ने ठोस किण्वन द्वारा, जो एक अरोगाणुरहित विधि है, पेनीसिलीन

बनाने की विधि विकसित की है. यह विधि आर्थिक रूप से लाभदायक है. इस विधि द्वारा पेनिसिलीन का सामान्य विधि से बनाई गई मात्रा का 17 गुना अधिक उत्पादन किए जाने का दावा है.

(5) ज्ञात पदार्थों को सूक्ष्मजीवियों द्वारा बनाने की नई विधियों का विकास. इन पदार्थों में कैंसर-प्रतिरोधी औषधियां, फंफूदी विरोधी, हृदय धमनी रोग तथा प्रति-विषाणु औषधियां सम्मिलित हैं. इनकी प्रतिवर्ष 60 करोड़ अमेरिकी डालर तक की बिक्री हो सकती है.

(6) आनुवंशिक तथा पर्यावरण का सम्मिलित उपयोग कर प्रारम्भिक पदार्थों के अकल्पनीय परिवर्तन प्राप्त करना जिससे प्राथमिक मेटाबोलाइट आसान परिस्थितियों में प्राप्त हो सकें.

जैव प्रौद्योगिकी का प्रमुख प्रयास ऐसे असामान्य सूक्ष्मजीवियों का निर्माण या दोहन रहा है जो किसी पदार्थ की पर्याप्त मात्रा का उत्पादन कर सकें. कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

सूक्ष्मजीवियों को किण्वों के उत्पादन के लिए काम में लाया जा रहा है. **केन्डिडा रूगोसा** लाइपेज किण्व चर्बी के जल अपघटन से प्राप्त पदार्थों को अलग अलग कर सकता है. ये पदार्थ हैं वसा तथा ग्लिसरीन. यह इन्हें 20 मिनट के समय में तथा 40° सेंटीग्रेड पर दो अलग सतहों में विभक्त कर सकता है. आजकल अधिक ताप सहने वाले सूक्ष्मजीवियों का पता लग चुका है. ऐसे जीवों के जैव-रासायनिक गुणों का उपयोग करना आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण है. उदाहरण के लिए **एसिडोथरमस सेल्यूलोटिक्स** नामक बेक्टीरिया में एक किण्व का पता लगा है जो फलों के रसों को 75° सेंटीग्रेड पर भी साफ कर सकता है. **ऐसपरजिलस नाइजर** से प्राप्त एक किण्व, पेक्टीनेज, फलों से अधिक रस उपलब्ध करा सकता है. साथ ही वह रस की श्यानता में कमी, गहरा रंग तथा स्वच्छता भी ला सकता है. **बेसिलस स्टीयरोथरमोफिलस** नामक बैक्टीरिया में मौजूद लाइपेस वसाओं को छोटे-छोटे अणुओं में बांट सकता है जो मिठाई बनाने में उपयोगी हैं. यह 65° सेंटीग्रेड पर कार्य करता है जिससे उत्पाद रोगाणु-रहित होता है. साथ ही वसा इस ताप पर द्रव रहती है जिससे घोलकों की आवश्यकता नहीं रहती. इससे पैसा भी बचता है और घोलक अवशेषों से नुकसान होने की संभावना भी नहीं रहती. अन्य दूसरे काम में आने वाले किण्व जो सूक्ष्मजीवों से प्राप्त किए जा रहे हैं, वे हैं—एमाइलेज स्ट्रेप्टोकाइनेज, एसपरजिलस से प्राप्त लाइपेस जो डिटर्जेन्ट के रूप में उपयोग हो सकता है; बैक्टीरिया **थरमोनोस्पोरा फुस्का** से प्राप्त होने वाला प्रोटिवेज, जो 80° सेंटीग्रेड पर डिटर्जेन्ट का काम करता है तथा अमीनोपेप्टीडेज, जो खाद्य पदार्थों के संसाधन में काम आता है. भूमि के एक बैक्टीरिया से प्राप्त इनुलीन को नष्ट करने वाले किण्व द्वारा एक प्रसिद्ध मधुरक डाइफ्रक्टोज, का बड़ी मात्रा में उत्पादन किया जा सकता है.

भविष्य में एलकेन से प्रारम्भ कर सूक्ष्मजीवियों द्वारा प्राप्त किए जाने वाले सामान्य रसायनों में अमिनोअम्ल जैसे ग्लुटामिक अम्ल, ओरनीथीन, फिनाइलएलनीन, ट्रायोसीन, फिनाइल ग्लायसीन तथा हाइड्रोक्सीफिनाइल-ग्लायसीन; कार्बनिक अम्लों में एल्फा कीटो ग्लुटारिक, फयूमेरिक तथा लम्बी श्रृंखला के डाइकार्बोक्सिलिक अम्ल; विटामिन जैसे रिबोफ्लोविन, पाइरीडॉक्सिन हाइड्रोक्लोराइड तथा पाइरीडॉक्सल फॉसफेट, विटामिन बी, तथा अनेक और पदार्थ जैसे एरगोस्टेराल बीटा-करोटीन जिन्थोफिल तथा कई तरह के कार्बोहाइड्रेट सम्मिलित हैं. **जेन्थोमोनस कम्पोस्ट्रिस** नामक बेक्टीरिया द्वारा बनाया गया पदार्थ, जैन्थन, खाद्य स्थायीकारक तथा गाढ़ा करने वाला है. इसे अब पैट्रोलियम उद्योग भी काम में लेने लगा है.

डयूनेलियेला सेलिना नामक शैवाल को अब इस प्रकार संवर्धित किया जा सकता है कि इसके शुष्क भार के 50 प्रतिशत से ऊपर ग्लिसरॉल हो. इसी प्रकार जापान के राष्ट्रीय खाद्य अनुसंधान संस्थान ने दाख शर्करा का **ऑरियोबेसेडियम** यीस्ट द्वारा किण्वन कर 47 प्रतिशत तक ऐरिथ्रीटॉल पैदा करने की विधि विकसित की है. ऐरिथ्रीटॉल बिना शक्ति देने वाले मधुरक की भांति उपयोग किया जा सकता है क्योंकि इसका पाचन न तो मानव शरीर द्वारा होता है और न आंत्रिक बेक्टीरियाओं द्वारा. इसकी मिठास गन्ने की शर्करा के 80 प्रतिशत के बराबर है. भविष्य में उत्पन्न किए जा सकने वाले रसायनों में एथीलीन, प्रोफिलीन, ब्यूटाइलीन तथा ब्यूटाडाइन हैं. इसके अलावा वनस्पति से भी रसायन उचित मूल्यों पर प्राप्त किए जा सकते हैं. जन्तु तथा पौधों द्वारा निकाले गए व्यर्थ पदार्थों तथा मल को बैक्टीरिया तथा फफूंदी से क्रिया करा कर गैस में बदला जा सकता है जिसमें लगभग 60 प्रतिशत मीथेन होती है. मीथेन बायोगैस का उपयोग भोजन बनाने में किया जाता है. इससे मीथेनॉल (एक द्रव) भी प्राप्त किया जा सकता है. शहरों का मल पदार्थ गैस और विद्युत निर्माण में काम आता है.

प्लास्टिकों को नष्ट करने वाले दो सूक्ष्मजीवियों के बारे में आज हमें जानकारी है. जापानी वैज्ञानिकों के एक वर्ग ने हाइड्रोजन को स्थायी करने वाले बैक्टीरिया द्वारा 4-हाइड्रोक्सी

ब्यूटायरिक अम्ल को पोलीएस्टर में परिवर्तित किया है. यह पदार्थ सुनिश्चित परिस्थितियों में बैक्टीरिया के अन्दर बड़ी मात्रा में इकट्ठा हो जाता है. जीवाणुओं द्वारा विघटित हो जाने वाला दूसरा पोलीमर बायोपोल है. इसमें पोलीहाइड्रोक्सी नामक पदार्थ होता है जो एक बैक्टीरिया द्वारा किण्वन से प्राप्त होता है. इस पोलीमर को सामान्य थरमोप्लास्टिक की भांति सांचे में ढाला जा सकता है. बायोपोल में जन्तु तन्तुओं के से गुण होते हैं. अतः इसकी कई पशु तथा मानव उपचारों में उपयोगिता है.

जन्तु एवं पौधों से प्राप्त जटिल पदार्थ

शुद्धिकरण से संबंधित नई विधियों की जानकारी से प्रोटीनों जैसे रक्त का फैक्टर VIII, अलग करना सुलभ हो गया है. साथ ही अब इन्हें व्यावसायिक रूप में भी उपयोग किया जाता है. फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आनुवंशिक अभियांत्रिक विधियों द्वारा इन्हें और सस्ता बनाया जा सकता है. साथ ही ऐसे जटिल पदार्थों की खोज भी की जा रही है जिनका व्यापक उपयोग होगा. उदाहरण के रूप में, गुआयूल नामक पौधे से प्राप्त रेजिन में प्राकृतिक रबड़ के गुण मौजूद होते हैं. यह कितनी ही समुद्री तथा स्थली वनस्पतियों को नष्ट करने वाले जीवों के विरुद्ध एक सक्षम पदार्थ का कार्य कर सकेगा. इसी प्रकार तीव्र प्राकृतिक सरेस का जो **मेग्नोपोर्थ ग्रीजिया** नामक फफूंदी के मुक्त स्पोरों को धान के पौधों के अनेक भागों से जोड़ता है तथा बाद में धान की बीमारी के लिए जिम्मेदार है का व्यावसायिक उपयोग हो सकेगा.

सम्पूर्ण जीव का उपयोग

कीटों को मारने वाले विष के जनक बैक्टीरिया, **बेसिलस थुरिनजियोन्सिसक** जिसमें परोपजीवियों को नष्ट करने की क्षमता है, उपयोग इसके जीन को पौधों में प्रविष्ट कराने में किया जा सकता है. ऐसा टमाटर और तम्बाकू के पौधों में किया जा चुका है. इस बैक्टीरिया के विष-उत्पादक जीन को एक अन्य बैक्टीरिया, **क्लेविबेक्टर जाइली**, में प्रवेश कराया गया है. यह बैक्टीरिया मक्का के पौधे के साथ सहकारी रूप से रहता है और उसे कई परोपजीवियों के हमले से बचाता है.

सूडोमोनस सिरिंजियाई नामक एक अन्य बैक्टीरिया में एक ऐसा जीन होता है जो पाले के समय बर्फ बनने में सहयोगी एक प्रोटीन का निर्माण करता है. इससे संबंधित पौधा पाले से नष्ट हो जाता है. आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा निर्मित ऐसे बैक्टीरिया का विकास कर लिया गया है जिसमें यह जीन नहीं होता. इस बैक्टीरिया के साथ किए गए क्षेत्र परीक्षणों में पाया गया कि पहले के मुकाबले में केवल एक-तिहाई पौधे ही पाले से मारे गए. बायोटेकिन्का इन्टरनेशनल नामक कम्पनी ने राइजोबियम बेक्टीरिया की एक प्रजाति का निर्माण किया है जिससे पौधों की नाइट्रोजन एकत्र करने की क्षमता बढ़ी है. कई पौधों की जड़ों में प्रवेश कराए गए जीनों द्वारा निर्मित प्रोटीनों के कारण उनमें फॉसफेटों को स्थायी करने का गुण आ गया है. इससे फॉसफेट खाद प्रौद्योगिकी में क्रान्ति होने की संभावना बढ़ी है.

वैज्ञानिक तम्बाकू के पौधों में ऐसा जीन प्रविष्ट कराने में सफल हो गए हैं जो शाकनाशी सल्फोनाइल यूरिया के दुःप्रभाव से उन्हें बचाता है. इसी प्रकार मॉनसेन्टों के वैज्ञानिकों ने इस प्रकार की संवर्धित फूलगोभी विकसित की है जो सामान्य फूलगोभी से बीस गुना अधिक 5-इनोल पाइरूवाइल शिकिमेट-3 फॉसफेट नामक पदार्थ का निर्माण करती है. इससे उसे ग्लाइफोसेट नामक शाकनाशी के प्रभाव से छुटकारा मिलता है. आलू, तम्बाकू तथा टमाटर के पौधों को भी शाकनाशी, फासफिनोथ्रिसिन, के विरुद्ध अवरोधी बना दिया गया है. संसार का प्रसिद्ध तेल-उत्पादन करने वाला समिश्र पौधा, ब्रेसिका नेपस, भी मीयोट्रेक्जेट से अवरोधी हो गया है.

सूक्ष्मजीवियों में पर्यावरण का दबाव कम होने पर रसायनों के निर्माण की नई प्रक्रियाएं धीरे-धीरे विकसित होती हैं. इस सिद्धान्त और सूक्ष्मजीवियों के विभिन्न वर्गों के समिश्र द्वारा पर्यावरण पर बुरा प्रभाव डालने वाले विषों जैसे, डायोक्सिन, पोलीक्लोरीनेटेड बाइफिनाइल्स, क्लोरीनेटेड फिनोल्स तथा क्लोरीनेटेड बेन्जीन्स, का अब विघटन संभव हो गया है.

ऐसी कितनी ही विधियों के विकास के बारे में जानकारी प्राप्त हुई है जिनमें बैक्टीरिया द्वारा खनिजों जैसे सोना और चांदी को खनिजों की अवशेष मात्रा से प्राप्त किया जा सकता है. इससे संबंधित एक रिपोर्ट पेरू से प्रकाशित हुई है. थायोबेसिलस प्रजाति के बैक्टीरिया खनिजों को निकालने में, कई यौगिकों को फेरस से फेरिक अवस्था में बदल कर, सहयोग करते हैं. अमेरिका के ऊर्जा विभाग में एक परियोजना चल रही है जिसमें शैवाल से मोटर ईंधन प्राप्त किया जा रहा है. इस शैवाल में पर्यावरण को सहने का गुण, वृद्धि की ऊंची दर तथा वसा की अधिक मात्रा उपस्थित है.

एक अन्य बहुचर्चित संभावना है एक-कोशिकीय प्रोटीन के बारे में. इसमें शैवाल एक्टिनोमाइसिटिज, बेक्टीरिया, यीस्ट, फफूंदी आदि जैसे सूक्ष्मजीवों की सूखी कोशिकाओं को बड़े स्तर पर संवर्धित किया जाता है जिससे मनुष्य और जन्तुओं के लिए प्रोटीन बनाई जा सके. हो सकता है भविष्य में जन्तुओं और

पौधों की कोशिकाओं का भी उपयोग इस कार्य के लिए होने लगे.

जीन स्थानान्तरण यानि आनुवंशिक अभियांत्रिकी ने मानवों की कोशिकाओं या सम्पूर्ण जीव में आए परिवर्तनों के कारण हुए रोगों का उपचार संभव कर दिया है. यदि जेरोडर्मा पिगमेन्टोसम नामक रोग से ग्रसित रोगी की कोशिकाओं को सामान्य व्यक्ति के डी एन ए से बदल दिया जाए तो रोगी में पराकासनी विकरण के विरुद्ध अवरोध उत्पन्न हो जाता है. इसी प्रकार वेटेनबे आनुवंशिक हाइपरलिपिडिमिक रोग से ग्रसित खरगोश के रोग का इलाज हीपेटोसाइट्स नामक कोशिकाओं में उपस्थित आनुवंशिक कमी को दूर कर लिया जा सकता है. चूहों की कई किस्मों में स्नायु रोग के कारण कम्पन, उल्टियां तथा शीघ्र मौत को माइलिन प्रोटीन बनाने वाले जीन की, चूहे की भ्रूणावस्था में, 200 इकाइयां प्रविष्ट कराने से दूर किया गया है.

कई खाद्य फसलों में अमिनो अम्लों की अधिकता वाली प्रोटीनें उनमें इससे संबंधित जीनों को प्रविष्ट करा कर निर्मित की गई हैं.

प्रयोगशाला में संश्लेषण एवं हेर-फेर

छोटी पेप्टाइड और प्रोटीनों का रासायनिक संश्लेषण आज पूरी तरह प्रस्थापित हो चुका है तथा व्यवसायिक रूप से भी लाभप्रद है. व्यवसायिक स्तर पर संश्लेषित की जाने वाली पेप्टाइड और प्रोटीनों में—केल्सिटोनिन, सीक्रेटिन, सोमटोस्टेटिन, थायरोट्रोपिन-रिलीजिंग फेक्टर, वासोप्रेसिन, एल-एच-रिलीजिंग हॉमोन, ग्लूकागोन व एडिरनोकोर्टिकोट्रोपिन-जिन सब में 40 से कम अमिनो अम्ल होते हैं—तथा सेमिनल प्लाजमिन जिसमें 47 अमिनों अम्ल हैं—सम्मिलित हैं. सेमिनल प्लाजमिन हाल ही में डा० आर० नागराज ने जो हमारी प्रयोगशाला (सेंटर फार सेलुलर एंड मैलिकुलर बायोलोजी) के वैज्ञानिक हैं, संश्लेषित किया है. जापानी वैज्ञानिकों ने एक पेप्टाइड का संश्लेषण किया है जो अत्यंत न्यून मात्रा में उच्च-रक्त-चाप को कम कर देती है. एल्फा-मिलनोसाइट स्टिमूलेटिंग हॉर्मोन—जो त्वचा की गांठों (मिलेनोमा) को ठीक करने में सक्षम हैं तथा अन्य त्वचा रोगों में भी काम आ सकता है—सौन्दर्य प्रसाधन के रूप में भी उपयोग हो सकेगा. आजकल विश्व में अनेक ऐसी कम्पनियां काम कर रही हैं जो आवश्यकतानुसार जीन तैयार कर सकती हैं.

उपलब्ध सूचना के अनुसार स्टार्च पर आधारित, जीवों द्वारा नष्ट किए जा सकने वाले, वस्तुओं के पैकिंग पदार्थ की खोज कर ली गई है. यह पदार्थ लन्दन के बेटले संस्थान द्वारा निर्मित किया गया है. इसी प्रकार जापान में भी एक जैव-अपघटित, अपारदर्शक, प्लास्टिक का विकास हुआ है. इसके निर्माण में दो या तीन प्राकृतिक पदार्थों का—जो पौधों और सूक्ष्म जीवों से प्राप्त होते हैं—रासायनिक संयोग किया गया है.

आज की औषधियों के उपयोग में एक समस्या यह है कि औषधि ऐसी हो जो निर्धारित तन्तु में अवश्य पहुंचे तथा धीरे-धीरे अपना असर दिखाए. इस समस्या का निदान कृत्रिम वसा झिल्लियों में—जिन्हें लाइपोसोम कहते हैं—औषधि को बन्द करना और उन्हें निर्धारित तन्तुओं तक पहुंचाना है. जो औषधियां लाइपोसोम में बन्द कर जांची जा रही हैं या भविष्य में जांची जानी हैं उनमें हैं—कैंसर की औषधियां डोक्सोरूबिसिन, प्लेटिनम एल-एन डी टी पी, डॉनोरूबिसिन तथा मुरामिल ट्राइपेप्टाइड, ग्राम-नेगेटिव बेक्टीरिया के लिए जेन्टामाइसिन, फफूंदी की बीमारियों के लिए एम्फोटेरिसिन-बी तथा माइकोनाजॉल, मधुमेह के लिए इन्सुलिन, ट्यूमर का चित्र लेने के लिए उपयोगी इन्डियम, दमा के लिए मेटाप्रोटेरिनोल सल्फेट, तथा सिर पर लगा कर बाल बढ़ाने के लिए मिनोक्सिडिल.

भविष्य-निकट व दूर

वर्ष 1923 में ज्ञात इन्सुलिन, 1934 में थायरॉयड, 1948 में फेक्टर VIII, 1970 में केलसिटोनिन हार्मोन, सीरम, प्रोटीन व किण्व भली-भांति औषधियों के रूप में प्रतिष्ठापित हो चुके हैं. इनमें से अनेक प्रोटीनों का वर्णन ऊपर किया जा चुका है. अन्य काम की प्रोटीने हैं—पशुओं के लिए एप्रोटिनिन-जो रक्त स्राव को रोकती है तथा आघात का उपचार है; इ० कोली से मिलने वाली—एल-एस्परजिनेज—जो ल्यूक्रीमिया में काम आती है; सूक्ष्मजीवियों से प्राप्त कॉलेजिनेज-घावों को भरने में, डेक्सट्रेनेज-दांतों की बीमारी रोकने में; जोख से प्राप्त हीरूडीन जो एम्फाईसीमा व थ्रोम्बोसिस में उपयोगी है; पशुओं से प्राप्त हायलूरोनिडेज—जो त्वचा रोगों में काम आती है; सूअर से प्राप्त केलिक्रेन-जो रक्त परिभ्रमण के रोगों के लिए है; मुर्गी के अन्डों से प्राप्त लाइसोजाइम-जो बैक्टीरियां संक्रमण में काम आती है; पशुओं से प्राप्त थायरॉयड हॉर्मोन—जो पेट रोग की दवा है; सांप और मधुमक्खियों से प्राप्त विभिन्न टॉक्सिन—जो रक्त भ्रमण दोषों तथा रिह्यूमेटिज्म में उपयोगी है. इसके अलावा अनेक पाचन किण्व जैसे एमाइलेज, कार्बोक्सीपेप्टीडेज, काइमोट्रिपसिन, लाइपेज, पेप्सिन व ट्रिप्सिन—जो पशुओं, सूअरों तथा सूक्ष्म जीवियों से प्राप्त होती है तथा पेट की बीमारियों तथा घावों को भरने के काम आती है.

अन्य प्रोटीन हैं : एन्जियोटेन्सिनेज-जो प्लेसेन्टा से प्राप्त होती है तथा उच्च दाब को ठीक करने के काम आती है; फाइब्रिनोजन, थ्रोम्बिन, इम्यूनोग्लोब्यूलिन्स तथा प्लाजिमन-जो रक्त से प्राप्त होती है और रक्त न जमने की बीमारी, अपरोक्ष रोगावरोधीकरण तथा रक्त थक्का रोकने वाली औषधियां हैं. औषधियों के काम आने वाली प्रोटीन आजकल लगभग 170 कम्पनियों द्वारा कनाडा, जापान, नीदरलैंड, अमेरिका, इंग्लैण्ड, स्पेन, ब्राजील, एन्टीलीज, ऑस्ट्रेलिया, जर्मनी, कोरिया, स्वीजरलैंड, हंगरी, इटली, स्वीडन, फ्रान्स, अर्जेंटिना तथा इजराइल—यानि 18 देशों में बनाई जा रही हैं. इस श्रृंखला में अनेक नए देश आने वाले दशक में जुड़ेंगे—इनमें कोई संदेह नहीं हैं. उपरोक्त एवं अन्य दूसरे देशों जैसे भारत, आयरलैण्ड, इजराइल तथा ब्राजील में जैवप्रौद्योगिकी पर काफी व्यय किया जा रहा है. अकेले ब्राजील में ही 20 से अधिक कम्पनियां हैं.

अनुमान है कि इस शताब्दी के अन्त तक जैव-प्रौद्योगिकी पर आधारित रसायनों का मूल्य प्रतिवर्ष 100 बिलियन डॉलर तक होगा. भविष्य में जो कुछ होने वाला है उसका सम्पूर्ण विवरण संभव नहीं, अतः हम कुछ उदाहरण लेंगे. भविष्य में कृषि जैव-प्रौद्योगिकी में जिन अनुसंधानों की संभावना है उनमें ऐसे पौधों का निर्माण है जो औषधियों का उत्पादन कर सकेंगे, उदाहरणार्थ, आज मायोबेक्टीरिया बीटा-सीटोस्टेरॉल-2-एन्ड्रोस्टेडाइनेडियोन तथा 9-एल्फा हाइड्रोक्सी एन्ड्रोस्टेंनेडियोन-को परिवर्तित करने में काम आता है. ये स्टीरायड हार्मोनों के संश्लेषण में आवश्यक मध्यवर्ती पदार्थ है. उपरोक्त जैविक परिवर्तन के लिए आवश्यक किण्वों के निर्माणकारी जीनों को पौधों में प्रवेश कराया जा सकता है जिससे वे सीधे ही वांछित स्टीरॉयड का उत्पादन कर सकें.

सूक्ष्मजीवियों द्वारा अब औद्योगिक रसायनों का उत्पादन भी किया जा सकता है जो या तो वैसे ही काम में आ सकते हैं या फिर वे घोलक, स्नेहक, प्रशासक, निष्कर्षक, बंधक, प्लास्टिक, लेपन करने, विस्फोटक, ईंधन, गैसोलीन, कीटनाशक, रंग, सौन्दर्य प्रसाधन, जमने से रोकने वाला, ब्रेक द्रव, मांस को नरम करने वाला, पाचक पदार्थ, विटामिन व अन्य पदार्थों को बनाने में काम आते हैं. आजकल सूक्ष्मजीवियों द्वारा बनाए जा सकने वाले 200 से ऊपर रसायनों में से केवल कुछ का ही उद्योग में उत्पादन हो रहा है—जैसे इथेनोल, एन-ब्यूटानॉल, एसीटोन, किण्व, आदि. इनकी संख्या में और वृद्धि होगी. पैट्रोलियम व्यवसाय में ऐसे व्यर्थ पदार्थों से, जिनमें हाइड्रोकार्बन की मात्रा अधिक होती है, से कम लागत पर बनने वाले आवश्यक रसायनों का उत्पादन किया जाएगा. इनमें अमिनो अम्ल तथा अन्य अम्ल जैसे साइट्रेड (मृदु पेयों में काम आने वाले), विटामिन (रिबोफ्लोविन तथा बी-12), स्टीरॉल (एर्गोस्टीरॉल) तथा प्रति-जैविक (पेनिसिलीन) आदि सम्मिलित हैं.

मानव में उपस्थित फेरेमोनों के बारे में वैज्ञानिकों के पास काफी तथ्य मौजूद हैं. फेरोमोन वास्तव में गंध-युक्त संकेत हैं जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग-अलग होते हैं, जैसे किसी व्यक्ति की रोगावरोधी पहचान उसकी प्रमुख हिस्टोकम्पेटिबिलिटी कॉम्पेक्स नामक प्रोटीन से होती है. ये फेरोमोन शरीर की नलीविहीन ग्रन्थियों के स्रावों को नियंत्रित करते हैं. साथ ही ये संकेत एक व्यक्ति के दूसरे के प्रति व्यावहारिक संवेदनों को भी नियंत्रित करते हैं. जब इन संकेतों के रसायन और शारीरिक प्रभावों की जानकारी प्राप्त हो जाएगी तो मानवीय व्यवहार को नियंत्रित करने का साधन स्वयंमेव मनुष्य को प्राप्त हो जाएगा. सुगंध व्यवसाय को एक नया आयाम मिल जाएगा—जो न केवल औषधीय क्षेत्र में बल्कि सामरिक क्षेत्र में भी कारगर होगा. जीव की उत्कृष्ट सूचना संसाधन क्षमता को इलेक्ट्रोनिक यंत्रों में जोड़ने के प्रयत्न चल रहे हैं. इन कार्यों में सीखना, याद रखना और आकृतियों को पहचानना सम्मिलित है. इंग्लैण्ड पांच वर्ष की अवधि में लगभग 20 करोड़ पौण्ड आधुनिक इलेक्ट्रोनिकी के विकास पर खर्च करने को तत्पर है.

इसी प्रकार जब हमें यह ज्ञात हो जाएगा कि प्रोटीनों की अस्थिरता का क्या कारण है तो प्रोटीनों के निर्माण को एक नई दिशा मिल सकेगी. इससे वे न केवल सामान्य कार्य कर सकेगी बल्कि अन्य रसायनों की भांति स्थिर भी होंगी.

लाभ और निहित संदेह

जैव-प्रौद्योगिकी और उसके द्वारा विकसित पदार्थों के लाभ स्पष्ट हैं—कम कीमती व प्रदूषण-विहीन होना तथा जैविक प्रक्रियाओं की विशिष्टता. विकासशील देशों के लिए इसका श्रम-गहन होने के कारण और अधिक महत्व है. अतः इसमें कोई संदेह नहीं है की आने वाले वर्षों में जैव-प्रौद्योगिकी द्वारा अधिक से अधिक रसायनों का उत्पादन होगा, परन्तु यह सब इतना निर्विवाद नहीं है.

सामान्य प्रोटीनों या उनसे बनाए गए पदार्थों में अशुद्धता आने का खतरा लगातार बना रहेगा, यानि वे तीव्र रोगोत्पादक हो सकते हैं. अतः उन तरीकों की खोज करनी होगी जिनसे यह निश्चित हो जाए कि इक्कोली द्वारा

(शेष पृष्ठ 186 पर)

जैव प्रौद्योगिकी और हमारा जैविक भविष्य

□ डॉ० भूपेन्द्र राय तथा
□ डॉ० ब्रह्मदेव सिंह

□ हमारा देश एक कठिन समय से गुजर रहा है. वस्तुतः हमें आज एक ऐसे मसीहा की तलाश है, जो हमें मंहगाई, आर्थिक संकट, बढ़ती जनसंख्या, भूख, गरीबी और बेरोजगारी की मार से बचा सके, विकास के सीधे रास्ते पर ले चले तथा आनंद से जीवन-यापन करने का गुर बता सके. स्वाभाविक है कि ऐसी दशा में हमारी सारी आशाएं, उन अग्रिम पंक्ति की वैज्ञानिक-विधाओं तथा प्रौद्योगिकियों पर केन्द्रित हों, जिनमें इन समस्याओं को हल करने की सम्भावित क्षमता है.

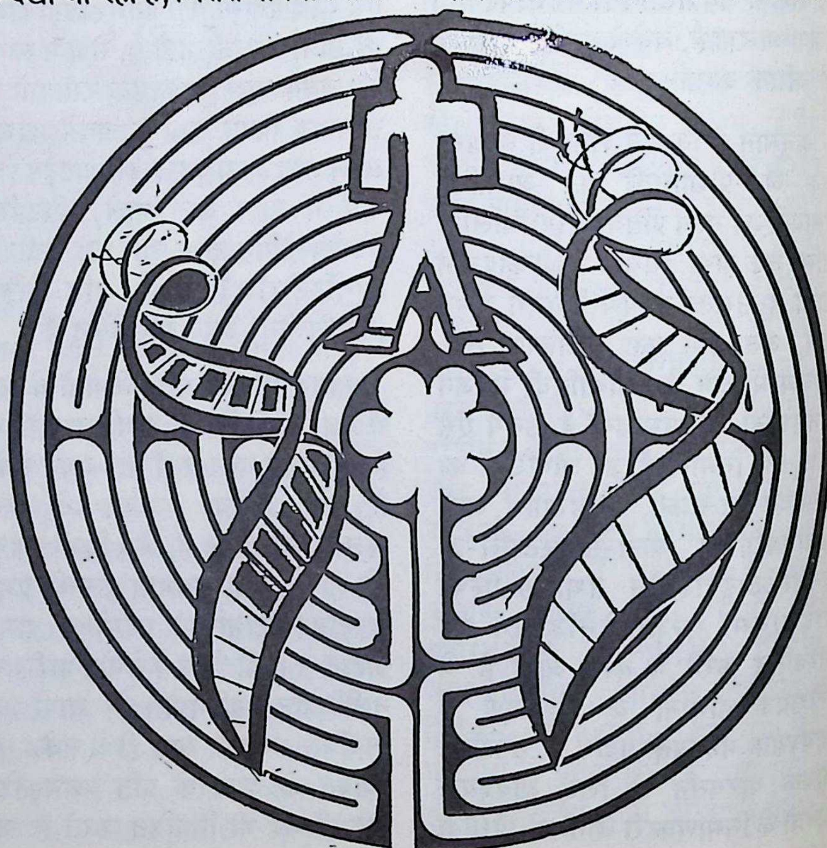
कम्प्यूटर, अंतरिक्ष, दूर-संचार तथा बायो-टेक्नोलोजी कुछ ऐसी ही प्रौद्योगिकियां हैं. चूंकि, कम्प्यूटर तथा दूरसंचार आदि के लाभकारी प्रभाव को आम आदमी की जिन्दगी में महसूस किया जाने लगा है, अतः एक सवाल अब अक्सर पूछा जा रहा है कि बायो-टेक्नोलोजी के लाभकारी उपयोग में हमारी स्थिति क्या है? यह प्रश्न काफी महत्वपूर्ण है, क्योंकि हमारी आधुनिक-टेक्नोलोजी कितनी ही विकसित क्यों न हो, हमारा जीवन मूलतः जीवन-विज्ञान के मायाजाल से ही जुटा हुआ है. जीवन-मरण की मूलभूत समस्याओं को सुलझाने में बायो-टेक्नोलोजी की भूमिका महत्वपूर्ण है.

लेकिन, वस्तुतः बायो-टेक्नोलोजी है क्या? वैसे इसे ठीक-ठीक परिभाषित करना काफी कठिन है, पर मोटे तौर पर, कोई भी तकनीक जिसके द्वारा किसी जीव या उसके किसी अंश का इस्तेमाल कर, मानव-उपयोग के लिए कोई उत्पाद या सेवा विकसित की जाए, बायो-टेक्नोलोजी के दायरे में आती है. कुछ लोग इसे विशुद्ध रूप से जीनियागिरी या 'जेनेटिक-इंजीनियरिंग' के अलावा और कुछ नहीं मानते. पर कहीं-कहीं इसे 'जैविक-लेसर' के रूप में भी देखा जा रहा है, जिससे मानवोपयोगी जैव-पदार्थों का सृजन या विकास किया जा सके. इस प्रौद्योगिकी का, हमारे जीवन के अधिकांश संवेदनशील क्षेत्रों जैसे कृषि, पशुधान-विकास, मछलीपालन, जनसंख्या-नियंत्रण, चिकित्सा-विज्ञान, उसर-भूमि तथा उजड़े क्षेत्रों को हरा-भरा करने जैसे को सुधारने, संवारने में बड़ा महत्व है.

कृषि-उत्पादन में बायो-टेक्नोलोजी

अपने देश में, आने वाले वर्षों में भोज्य-पदार्थों की आम उपलब्धता इस बात पर निर्भर करेगी कि हम अपनी फसलों की पैदावार किस हद तक बढ़ा पाते हैं.

विगत दो दशकों के 35 लाख टन प्रति वर्ष की तुलना में, मौजूदा दशक में खाद्यान्नों का उत्पादन 70 लाख टन प्रति वर्ष के हिसाब से बढ़ाना आवश्यक होगा. आगे आने वाले बीस वर्षों में, यदि चावल



की पैदावार दुगुनी नहीं की गई तो बड़े पैमाने पर निर्यात किए बिना सबको भोजन उपलब्ध कराना संभव नहीं हो सकेगा. तिलहनों, दलहनों, सब्जियों के बारे में भी, लगभग यही बात कही जा सकती है.

अभी तक कोई ऐसी क्रान्तिकारी तकनीक हाथ नहीं लग पाई है जो, इन फसलों की प्रति-हेक्टर उत्पादकता तथा कुल-उत्पादन को लम्बी उछाल के दौर में पहुंचा सके. इतना जरूर है कि यदि हम अपनी पुरानी कृषि-विधियों के लाभकारी पहलुओं के साथ, नई-प्रविधियों, खासकर बायो-टेक्नोलोजी के उपयोगी पहलुओं का तालमेल कर उत्पादन की अहम समस्याओं का समाधान ढूंढें तो कई फसलों की औसत पैदावार डेढ़ से दो गुना तो बढ़ा ही सकते हैं.

सैद्धान्तिक तौर पर, बायो-टेक्नोलोजी के माध्यम से, हम किसी भी पौधे या प्राणी का उपयोगी जीन उसमें से निकाल कर दूसरे पौधे या प्राणी में डाल सकते हैं. इस तकनीक का उपयोग करके, फसलों की किस्मों/जातियों में जैविक तथा अजैविक आपदाओं के लिए लाभकारी प्रतिरोधिता/सहिष्णुता प्रदान करने वाले जीन एकत्रित किए जा सकते हैं. इसी प्रकार, पौधों में बौनापन प्रदान करने वाले, ताप एवं प्रकाश के प्रति असंवेदनशीलता प्रदान करने वाले लाभकारी जीन भी जीनियागिरी द्वारा संयोजित किए जा सकते हैं. मसलन, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान नई दिल्ली में गेहूं में, गेरुई रोग के 'प्ररूप 77-1' के लिए 'गेहूं-राई' के संकरण से प्रतिरोधी जीन प्राप्त किए गए हैं. 'उतक-संवर्धन विधि' तथा साथ ही रोग जनकों के आविष का प्रयोगशाला में उपयोग कर, धान, आलू तथा गन्ने की रोगरोधी किस्में तैयार की गई हैं. इस विधि से केले की ऐसी किस्म तैयार की गई है जो विषाणु रोग से मुक्त है तथा केला-उत्पादन कार्यक्रम में उपयोग की जा सकती है.

हाल ही में तम्बाकू तथा आलू की जीनियागरी की तकनीक से ऐसे पौधे बनाए गए जिन पर वायरस या विषाणु रोगों का असर नहीं होता. जीनियागरी से ही ऐसे पौधे तैयार किए गए हैं जो कीड़ों को मारने वाली दवा अपने आप बनाते हैं और उन पर बाहर से दवा छिड़कने की जरूरत नहीं पड़ती. सोयाबीन, कपास, चने के **हेलियोथिस** कीट के लिए ऐसे 'ट्रान्सजीनिक' पौधे तैयार किए जा रहे हैं.

कपास तथा सोयाबीन के ऐसे पौधे भी तैयार किए गए हैं जिन पर कुछ खास खर-पतवार नाशियों का असर नहीं होता. लेकिन जीनियागिरी से प्राप्त इन नई किस्मों को अभी किसानों के खेतों में ले जाने की अनुमति नहीं मिली है. विस्तृत परीक्षण किए जा रहे हैं यह जानने के लिए कि इसके खतरे वाले ऐसे पहलू तो नहीं हैं जिनका अभी तुरंत अंदाज लगाना मुश्किल है. ये खरपतवार नाशी रसायन इन पौधों पर असर न करें लेकिन भूमि की उपजाऊ शक्ति पर यदि इनका बुरा असर पड़ा और पानी में इनकी वजह से प्रदूषण बढ़ा तो फिर इनके उपयोग को रोकना पड़ेगा.

जीनियागिरी से अब गैर-दलहनी फसलों के ऐसे पौधे बनाने की कोशिश की जा रही है जिनमें दलहनों की ही भांति हवा से प्राप्त कर नाइट्रोजन संग्रह करने वाली गांठे पैदा हो सकें. बायो-तकनीक के माध्यम से अब खेसारी-दाल की विषाक्त-पदार्थ रहित किस्मों का तथा चने एवं आलू की बेहतर पोषण वाली किस्मों का विकास किया जा रहा है. इससे आने वाले वर्षों में मानव-पोषण के लिए इनकी उपयोगिता और भी अधिक बढ़ सकेगी.

पशुधन-विकास में योगदान

बायो-टेक्नोलोजी की तकनीकें पशु सुधार में भी बहुत उपयोगी हैं. इस समय अपने देश में, पशुधन की संख्या लगभग 1800 लाख है, जिनमें अधिकांश की दूध देने की क्षमता बहुत कम है. कम दूध देने वाले पशुओं में 'भ्रूण-प्रतिरोपन विधि' से अधिक दूध देने वाले पशुओं की नस्ल आसानी से तैयार की जा सकती है जबकि, सामान्य रूप से एक गाय से उम्र भर में लगभग 10 बछड़े या बछिया ही पैदा होते हैं. इस विधि से उसकी उम्र भर में सम्भवतः 100 से 150 बच्चे प्राप्त किए जा सकते हैं.

भ्रूण-प्रतिरोपण विधि में, हारमोन के उपयोग से गायों मे पहले कई अण्ड कोशिकाएं पैदा की जाती हैं, फिर इन्हें अच्छी नस्ल के सांड से प्राप्त शुक्राणुओं से निषेचित कराया जाता है. इस प्रकार प्राप्त युग्मन या तरुण भ्रूण को बाद में देशी गायों में स्थानान्तरित किया जाता है जिनमें गर्भ-धारण की शेष प्रक्रिया पूर्ण होती है. सर्वप्रथम, पशमीना बकरियों में यह प्रक्रिया शुरू की गई.

गायों के मामले में, पहली भ्रूण-प्रतिस्थापित बछिया '**लोहरी**' भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में 13 जनवरी 1987 को पैदा हुई थी. अब इस विधि का भैंस में उपयोग करने के लिए अनुसंधान किए जा रहे हैं. डी एन ए परीक्षण द्वारा अब गर्भ में पल रहे बछड़े या बछिया के डी एन ए मानक से मिलान कर उनका लिंग-निर्धारण किया जा सकता है.

जीनियागिरी से 'बी जी एच' यानी 'बोवाइन ग्रोथ हारमोन' नामक दुग्ध वृद्धिकारी हारमोन तैयार किया गया है, जो गायों में दूध की मात्रा 10 से 30 प्रतिशत तक बढ़ा देता है. इसी प्रकार, एक दूसरा हारमोन (बोवाइन सोमेटो

क्रापिन) मांस की मात्रा बढ़ा देता है. परन्तु, अभी तक यह पता नहीं चल पाया है कि इन हारमोनों का टीका देने के बाद जो दूध या मांस उपलब्ध होगा उसे पीने या खाने से आदमी में पोषण की दृष्टि से कोई हानि तो नहीं होगी.

मछली-उत्पादन और बायो-टेक्नोलोजी

अपने देश के मौजूदा जल-संसाधनों से प्रतिवर्ष लगभग 10.3 लाख टन मछली प्राप्त की जाती है, पर मछली-पालन का यह कार्य प्रायः पारम्परिक ही हैं. बायो-टेक्नोलोजी की आधुनिक तकनीकों के उपयोग से, इनके कुल उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है. रोहू, कटला तथा अन्य व्यवसायिक किस्म की मछलियों की संख्या वृद्धि के लिए गोनैडोट्रापिक हारमोन का उपयोग अब साधारण बात हो गई है. क्रायोप्रिज़र्वेशन से अब अच्छी किस्म की मछलियों के भ्रूणों का संरक्षण, तथा एक स्थान से दूसरे स्थान तक उनका स्थानान्तरण आसानी से किया जा सकता है. आनुवंशिक रूप से प्रेरित एक ही प्रकार की या लिंगवाली मछलियों के प्रजनन से इनके मांस-उत्पादन की गुणवत्ता सुधारी जा सकती है. इसी तरह, त्रिगुणित, बांझ नर/मादा मछलियों के उपयोग से अति संख्या वृद्धि को भी काफी नियंत्रित किया जा सकता है.

देश के कई मछली-उत्पादन क्षेत्रों में, पानी के प्रदूषण से मछलियों के कई वायरस तथा जीवाणु-जनित रोग अब उभर रहे हैं. जीनियगिरी द्वारा इनके लिए नए टीकों का विकास भविष्य में मछली-उत्पादन व्यवसाय की एक बहुत बड़ी जरूरत होगी. अगर पानी के बढ़ते प्रदूषण पर अंकुश रखा जा सका तो देश के जल-स्रोतों से आगे भी कई गुना अधिक मछलियां प्राप्त हो सकेंगी.

जनसंख्या-नियंत्रण : बायो-टेक्नोलोजी से आशाएं

सन् 1951 की 36 करोड़ की तुलना में 1992 में देश की आबादी लगभग 85 करोड़ हो गई है. प्रतिवर्ष अपने देश की जनसंख्या में लगभग 1.7 करोड़ लोग जुड़ जाते हैं जो करीब-करीब पूरे आस्ट्रेलिया महाद्वीप की वर्तमान जनसंख्या के बराबर हैं. इसके लिए देश को प्रतिवर्ष 120 लाख टन अधिक खाद्यान्न-उत्पादन की, 2.5 लाख मकानों की तथा 40 लाख अतिरिक्त रोजगार की जरूरत होती है. अतः अब बढ़ती जनसंख्या पर नियंत्रण रखना एक महत्वपूर्ण सामाजिक आवश्यकता हो गई है.

सक्षमता संबंधित प्रयोग किए जा रहे हैं. अब तक जो परिणाम सामने आए हैं उनमें इसके कोई भी अन्य अहितकर प्रभाव नहीं देखे गए हैं. ये प्रयोग अपने देश में ही नहीं, बल्कि ब्राजील, चिली, फिनलैण्ड तथा स्वीडन में भी किए जा रहे हैं.

केन्द्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान, लखनऊ द्वारा विकसित सेन्ट्राक्रोमेन, जिसे परिवार नियोजन के लिए सप्ताह में केवल एक बार उपयोग करने से काम चल सकता है, अपने विकास की विश्व में पहली गर्भ-निरोधी विधि है. विश्वास किया जा रहा है कि देश में एच सी जी जैसे टीके के विकास से न केवल गर्भ-निरोध में सहायता मिलेगी, परन्तु

सन् 1951 की 36 करोड़ की तुलना में 1992 में देश की आबादी लगभग 85 करोड़ हो गई है. प्रतिवर्ष अपने देश की जनसंख्या में लगभग 1.7 करोड़ लोग जुड़ जाते हैं जो करीब-करीब पूरे आस्ट्रेलिया महाद्वीप की वर्तमान जनसंख्या के बराबर हैं. इसके लिए देश को प्रतिवर्ष 120 लाख टन अधिक खाद्यान्न-उत्पादन की, 2.5 लाख मकानों की तथा 40 लाख अतिरिक्त रोजगार की जरूरत होती है.

अभी देश में परिवार-नियोजन कार्यक्रमों में बड़े पैमाने पर कन्डोम, गोलियां, लूप, नसबंदी आदि के उपयोग को बढ़ावा दिया जा रहा है पर इनसे उतनी सफलता नहीं मिल पा रही जितनी कि अपेक्षित है. अतः इनसे बेहतर तथा कारगर तरीकों की तलाश की जा रही है. प्रयोग के तौर पर, अब स्टेरायड लेबोनोजेस्ट्राल को त्वचा के अन्दर प्रतिरोपित किया जा रहा है. इससे पांच वर्ष तक कारगर तरीके से प्रजनन को रोका जा सकता है. इसे निकाल लेने पर प्रजनन-प्रक्रिया पुनः चालू हो सकती है. राष्ट्रीय इम्यूनोलाजी संस्थान, नई दिल्ली में जीनियागिरी से, एच सी जी (ह्यूमन कोरियोनिक गोनाडोट्रापिन) टीके का विकास किया गया है और इस पर

डिप्थीरिया तथा टिटेनस जैसे रोगों से भी सुरक्षा मिलेगी.

एड्स के उपचार में जीनियागिरी

अभी तक बहुत सारी जीवन-रक्षक दवाइयां, जो आदमी या जानवरों से प्राप्त उतकों से तैयार होती थीं, अब भरपूर मात्रा में जीनियागिरी के उपयोग से प्राप्त जीवाणु (बैक्टीरिया) कोशिकाओं द्वारा पैदा की जाने लगी हैं. इन्सुलिन, ह्यूमन-इन्टरफेरान, 'मानव ग्रोथ हारमोन' आदि इसके कुछ उदाहरण हैं.

इसकी वजह ये जीवनदायिनी दवाइयां अब काफी सस्ती हो गई हैं. कहीं-कहीं ज्यादा कारगर भी हैं तथा जीवाणु कोशिकाओं में तैयार किए जाने के कारण इन्हें बनाने के दौरान जानवरों पर

जो हिंसा होती थी अब नहीं हो रहीं. एड्स जैसे जानलेवा तथा असाध्य रोग के लिए, जीनियागिरी से एजीडोथीमीडीन, जिसे जीवोव्यूडीन भी कहा जाता है, दवा तैयार की गई है. इस अब विधिवत प्रयोग चल रहे हैं. इस विधि से तैयार दवाएं इसलिए ज्यादा कारगर साबित होती हैं क्योंकि वे अपने लक्ष्य का सीधा बेधन करती है. तथा तुरंत प्रभाव दिखाती हैं.

वृक्ष बायो-टेक्नोलोजी, वानिकी तथा परती भूमि में हरियाली

अपने देश में जन-जातियों तथा वनवासियों का एक बहुत बड़ा समूह अपने जीवन-यापन के लिए वृक्षों तथा वृक्ष-उत्पादों पर निर्भर रहता है. वैसे तो वानिकी, कृषि-वानिकी में बढ़ते रेगिस्तान को रोकने तथा कृषि तथा जलवायु का संतुलन बनाए रखने में वृक्षों की अहम् भूमिका है. परन्तु अतीत में अपनी विकास-योजनाओं में इसकी ओर समुचित ध्यान नहीं दिया गया. फलस्वरूप, जितने वृक्ष लगाए गए उनसे लगभग दस गुना अधिक काट गए. नतीजा अब हम भुगत रहे हैं. इससे उबरने के लिए अब बड़े पैमाने पर वृक्ष लगाए जा रहे हैं. इस कार्य में

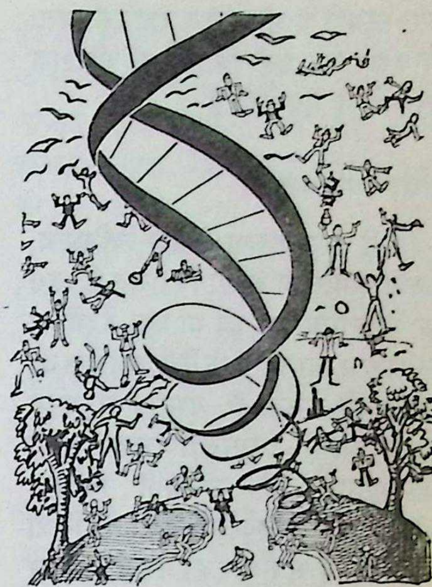


बायो-टेक्नोलोजी बड़ी उपयोगी साबित हो रही है.

ऊतक-संवर्धन विधि से किसी रोगमुक्त, उपयोगी वृक्ष के किसी भी हिस्से का एक टुकड़ा लेकर परखनली में पूरी ख़ुराक देकर नया पौधा प्राप्त किया जा सकता है और इसकी बड़े पैमाने पर पौध तैयार की जा सकती है. इस विधि का उपयोग वानिकी, कृषि-वानिकी, फ्लोरिकलचर तथा फलोत्पादन कार्यक्रमों में सफलतापूर्वक किया जा रहा है. राजस्थान, गुजरात तथा मध्य प्रदेश में इस तरह प्राप्त पौधों को बड़े पैमाने पर उगाकर इन प्रदेशों के सूखे, उजड़े, क्षेत्रों में हरियाली लाई जा सकती है.

सौभाग्य की बात है कि कुछ उपयोगी वृक्षों जैसे खेजरी (**प्रोसोपिस सिनेरेरिया**), कीकर (**एकेशिया निलोटिका**), बांस, टीक, चन्दन तथा पापलर के पौधों के दस लाख उपयोगी पौधों को पैदा करने का बीड़ा टाटा एनर्जी रिसर्च इन्स्टिट्यूट, नई दिल्ली ने उठाया है जिससे पश्चिमी भारत के इन प्रदेशों में भरपूर हरियाली लाई जा सकेगी. उपयोगी वृक्ष-प्रजनन के क्षेत्र में राष्ट्रीय रसायनिक प्रयोगशाला पूना के वैज्ञानिकों ने बांस तथा **डेन्ड्रोकैलेमस** के पौधों को परखनलियों में ऊतक संवर्धन कर उनमें फूल उत्पादन में सफलता पाई है. इससे इनकी प्रजनन-प्रक्रिया के समय को कम कर, इनकी प्रजातियों तथा जातियों के बीच आपसी संकरण को कम समय में करके, एक नए अध्याय की शुरुआत की गई है.

इसी प्रकार 'भ्रूण-रेस्क्यू' विधि का उपयोग कर '**पापुलस डेक्टाइडिस x पापुलस सिलिएटा**' का अन्तर-जातीय संकरण संभव हो सका है. कलिकाओं तथा तने से प्राप्त ऊतकों से शहतूत की कुछ चुनिन्दा विदेशी किस्मों के पौधों का



बड़े पैमाने पर प्रवर्धन किए जाने की संभावनाओं का पता लगाया गया है. इस तरह, वृक्ष बायो-टेक्नोलोजी की विधियां उपयोगी वृक्षों की पौध की संख्या की द्रुतगतीय वृद्धि में काफी उपयोगी हो सकती हैं. भविष्य में पर्यावरण को संतुलित बनाए रखने में इसके उपयोगी प्रभाव को देखा जा सकता है.

पर्यावरण-प्रदूषण तथा बायो-टेक्नोलोजी

पर्यावरण को विशुद्ध रखने में भी विज्ञान की यह विधा काफी सहायक हो सकती है. इसके उपयोग से अब ऐसे सूक्ष्म जीवाणुओं को तैयार किया जा सकता है जो जैविक रूप से बेकार पड़े पदार्थों/कचरों को तथा साथ ही विषाक्त पदार्थों को भी जल्दी नष्ट या परिवर्तित कर उनकी विषाक्तता को समाप्त कर सकते हैं. अब ऐसे जीवाणु (बैक्टीरिया) तैयार किए गए हैं, जो डी डी टी जैसे पदार्थों को नष्ट करने में सक्षम हैं, तथा खनिज तेल के पानी में फैलने के विनाशकारी प्रभाव को कम कर सकते हैं. कुछ जीवाणुओं की प्रजातियां, बर्फ जमने वाले तापक्रम के आस-पास तथा

खारे-सागरों में भी सक्रिय रहती हैं. अतः पर्यावरण को इन दशाओं में भी शुद्ध रखने में ये उपयोगी हैं.

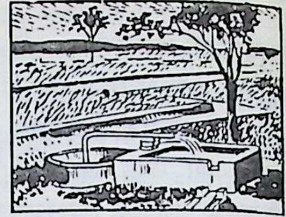
सांझी-विरासत

पृथ्वी पर उपलब्ध जैविक-विविधता, मनुष्य जाति की सांझी विरासत है. उस पर मात्र एक देश का या कुछ देशों का आधिपत्य, मानवता के लिए बड़े दुख का कारण हो सकता है. दुर्भाग्य से बहुत सारी बायो-टेक्नोलोजिकल तथा जीनियागिरी की उपयोगी विधियां औद्योगिक एवं विकसित देशों की निजी कम्पनियों द्वारा तैयार की गई हैं. इन पर इनका पेटेन्ट अधिकार है.

ये विधियां बहुत महंगी हैं तथा इन पर दीर्घ-कालीन रायल्टी भी है जिससे विकासशील देशों को इनका उपयोग बड़ा मंहगा पड़ेगा. इसके साथ ही कुछ संश्लिष्ट मधुरता-वर्धक रसायन तैयार किए गए हैं जिनके प्रचार-प्रसार से गन्ने की खेती और चीनी की कमाई पर निर्भर रहने वाले विकासशील देशों का वही हाल होगा जो किसी समय संश्लिष्ट रबड़ तथा संश्लिष्ट नील रसायन के विकास के साथ प्रमुख रबड़ तथा नील उत्पादक देशों का हुआ था.

विकासशील देश, गरीब भले ही हों, लेकिन प्राकृतिक-सम्पदा और जैविक-विविधता के माने में औद्योगिक देशों की तुलना में अत्यंत समृद्ध हैं. अतः जब तक इस जैविक-सम्पदा के उपयोग में उनकी बराबर की साझेदारी नहीं होगी आगे उनका सहयोग नहीं मिल सकता तथा पृथ्वी पर शांति भी नहीं आ सकती.

अतः समय रहते इस विवाद को हल करना होगा. विश्व खाद्य और कृषि संगठन, संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम तथा अन्य अन्तरराष्ट्रीय संस्थाएं इस विवाद को सुलझाने में काफी मदद कर सकती हैं. पूरी दुनिया को मिल-जुल कर विश्व के वानस्पतिक, पशुधन तथा अन्य प्राणी-सम्पदा का संरक्षण करना चाहिए तथा उसका समुचित उपयोग भी करना चाहिए. इसी में मानवता का कल्याण निहित है.



संक्षेप में बायो-टेक्नोलाजी उभरती हुई जीवन-विज्ञान की वह सशक्त शाखा है जिसमें हमारी कई प्रमुख समस्याओं के समाधान की असीम शक्ति है. यह हमारे मौजूदा जैविक-सम्पदा संवर्धन कार्यक्रमों को काफी बल, गति तथा प्रगति प्रदान कर सकती है. अतः न तो अनुचित रूप से इसकी आलोचना ही की जाए और न ही इसे बहुत बढ़ा-चढ़ा कर कहा जाए. इसका मात्र वहीं उपयोग किया जाए, जहां पर वह सर्वाधिक सक्षम, सस्ती तथा उपयोगी है. □

* डा० भूपेन्द्र राय, प्रोफेसर, आनुवंशिकी एवं पादप-प्रजनन विभाग, कृषि-विज्ञान संस्थान, तथा ** डा० ब्रह्मदेव सिंह, प्रोफेसर, बायो-टेक्नोलोजी, विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्व विद्यालय, वाराणसी-221005 (उत्तर प्रदेश)

(पृष्ठ 181 का शेषांश)

निर्मित प्रोटीन में कहीं बैक्टीरिया की अपनी स्वयं की प्रोटीन तो मिली हुई नहीं है. इसके लिए खाद्य पदार्थों की जांच के लिए बने, परन्तु बिल्कुल अलग नियमों वाले, नियंत्रक विभाग की आवश्यकता होगी जैसे कि खाद्य और औषधि नियंत्रण के लिए विदेशों में बने हैं. उदाहरणार्थ, हाल ही में यूरोपियन कमीशन ने पशुओं को मोटा करने वाला हॉर्मोन प्रतिबन्धित कर दिया है, यद्यपि कई वैज्ञानिकों के विचार से यह एक जल्दी में लिया गया कदम है. इसी प्रकार कृषि के क्षेत्र में भी काम आने वाले पदार्थ के बारे में निर्णय लेने होंगे. अतः पर्यावरण नियंत्रकों को भी इन्हें स्वीकार्य बनाने के लिए नए नियमों की खोज करनी होगी.

श्रम-गहन होने के कारण जैव-प्रौद्योगिक उद्योग की रचना अलग प्रकार की होगी, इसके साथ ही श्रम-प्रबंधन की भी. इससे नई जीव-रचनाओं के पेटेन्ट का प्रश्न भी जुड़ा हुआ है. वास्तव में जैव-प्रौद्योगिकी द्वारा बनाए गए उत्पादों तथा आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा निर्मित जीवों के बारे में पेटेन्ट की दीवार तोड़ ही दी जानी चाहिए.

इसमें संदेह नहीं कि हम इन समस्याओं से आज नहीं तो कल अवश्य निपट लेंगे. इस प्रकार जैव-प्रौद्योगिकी से प्राप्त पदार्थ इस प्रौद्योगिकी की सभी कमियां दूर कर मनुष्य को लाभान्वित करेंगे. आज जब कोई रासायनिक फैक्टरी लगती है तो हम उसे देखते ही पहचान जाते हैं, परन्तु भविष्य में जब कोई रासायनिक फैक्टरी लगेगी तो हम उसे बाहर से देख कर नहीं बता पाएंगे क्योंकि इसका निर्माण जैव-रसायन क्रियाओं पर निर्भर होगा जो अब से बिल्कुल भिन्न होंगी. □

रेडियो धारावाहिक

इस महीने 'मानव का विकास' में

❑ डा० जगदीप सक्सेना

❑ अब तक आप ग्रहों के बारे में काफी कुछ जान चुके हैं. आपको यह भी पता है कि कोपरनिकस ने सबसे पहले यह बताया कि सूर्य सौरमंडल का केंद्र है, न कि पृथ्वी. पर उनकी महान उपलब्धियां उनकी मृत्यु के बाद सन् 1543 में दुनिया के सामने आईं. ग्रहों और उनके पथों की जानकारी को इस महीने और आगे बढ़ाया जाएगा.

महीने के पहले रविवार यानी 3 मई को छठा सवाल-जवाब कार्यक्रम प्रसारित किया जाएगा. ठीक पहले की तरह 'भैया' और 'दीदी' द्वारा रोचक अंदाज में. इस कार्यक्रम में 15 मार्च तक प्रसारित कड़ियों पर आधारित सवालों के जवाब दिए जाएंगे. सुनना न भूलना.

दूसरे रविवार यानी 10 मई को धारावाहिक की चालीसवीं कड़ी प्रसारित की जाएगी. इसका शीर्षक है 'ग्रहों का पथ'. इसमें टाइको ब्राहे और केपलर जैसे महान खगोल विज्ञानियों के माध्यम से नाटकीय अंदाज में जानकारी प्रस्तुत की जाएगी. केपलर के मुख से जानकारी और भावनाओं से भरपूर कुछ काव्यमय पंक्तियां भी कहलाई गई हैं जैसे:

'छोडूंगा नहीं मैं भी साधना के इस
पथ को,
जूझता रहूंगा सूर्य, चांद, ग्रह और
सितारों से,
वादा किया है मेरे गुरू ने मुझसे,
करूंगा उनके अधूरे काम को पूरा मैं,
पूरा कर, स्वयं मर कर,
अमर कर जाऊंगा टाइको ब्राहे को....

तीसरे रविवार यानी 17 मई को धारावाहिक की 41वीं कड़ी प्रसारित की जाएगी. इसका शीर्षक है 'दूरबीन के जरिए'. इस कड़ी को सुनने से खगोल विज्ञान में दूरबीन की भूमिका साफ होगी. सत्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ में इतालवी भौतिक शास्त्री गैलीलियो गैलिली ने सबसे पहले दूरबीन का रुख आसमान की ओर किया था. इसमें बच्चे छत पर दूरबीन के माध्यम से जानकारी प्राप्त करते हैं. साथ ही गैलीलियो और उसके दोस्त के जरिए नाटकीय अंदाज में दूरबीन के प्रारंभिक विकास की कहानी कही गई है. गैलीलियो ने ही कोपरनिकस के सूर्य-केंद्री सिद्धांतों की पुष्टि की.

चौथे रविवार यानी 24 मई को धारावाहिक की 42वीं कड़ी प्रसारित की जाएगी. इसका शीर्षक है न्यूटन. इसमें श्रोताओं को बताया जाएगा कि 'न्यूटन' ने किस तरह गुरुत्वाकर्षण नामक बल की खोज की. इन्होंने बताया कि उपग्रह, ग्रह की और ग्रह, सूर्य की परिक्रमा क्यों करते हैं. इस कड़ी से पता लगेगा कि न्यूटन बचपन से ही हर प्राकृतिक क्रिया की तह में जाना चाहते थे. सेब के गिरने की घटना बालपन से ही उनके मन पर अंकित थी. इसमें न्यूटन की विश्व प्रसिद्ध पुस्तक 'प्रिंसिपिया मैथेमिटिका' की भी चर्चा है.

पांचवें रविवार यानी 31 मई को धारावाहिक की 43 वीं कड़ी प्रसारित की जाएगी. इसका शीर्षक है 'आइंस्टाइन और सापेक्षता का सिद्धांत'. इसमें सौरमंडल के आठवें ग्रह नेप्च्यून की खोज की जानकारी मिलेगी. साथ ही आइंस्टाइन के सापेक्षता सिद्धांत को बड़ी आसान भाषा में समझाया जाएगा. आइंस्टाइन द्वारा प्रतिपादित चार आयामों के बारे में बड़ी ही कुशलता के साथ समझाया गया है. श्रोताओं को ध्यान होगा कि आइंस्टाइन के सिद्धांतों के कारण ही 'ब्लैक होल' की खोज हुई.

आशा है इस धारावाहिक में आप की दिलचस्पी बढ़ रही होगी. कृपया अपनी जिज्ञासाओं को पत्र के रूप में आकाशवाणी और राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद तक जरूर पहुंचाए. पता हम पहले ही बता चुके हैं. ❑

शरीर एक समर भूमि

चर्चित पुस्तक : शरीर एक समर भूमि, लेखक : बाल फोंडके ; प्रकाशक : प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय (सी०एस०आई०आर०) ; डा० के० एस० कृष्णन मार्ग, नई दिल्ली-110012 ; पृष्ठ : 78, मूल्य : 9 रुपए.

❑ आज के इस उन्नत युग में विज्ञान की अपनी एक अहम भूमिका है. पर विडंबना है कि आम आदमी को आज भी विज्ञान अजूबा ही लगता है. आम लोगों में विज्ञान के प्रति एक उदासीनता का भाव है. शायद इसके पीछे एक बड़ा कारण विज्ञान को लोकप्रिय ढंग से उन तक पहुंचाने की कोशिशों का अभाव है. विज्ञान के प्रति जागरूकता और रुझान पैदा करने तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करने में सरल और जनप्रिय तरीके से विज्ञान को जन साधारण तक पहुंचाने की आवश्यकता है.

पत्र-पत्रिकाओं के अलावा इसमें इलेक्ट्रोनिक माध्यम भी महत्वपूर्ण

भूमिका निभा सकते हैं. विज्ञान को इस तरह लोकप्रिय बनाने से एक और फायदा मिल सकता है. युवाओं को अपने भविष्य के लिए विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संबंधी शैक्षणिक विषयों का चयन करने में भी इससे भरपूर मदद मिल सकेंगी. वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् ने इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए पिछले वर्ष 26 सितंबर को संपन्न अपनी पचासवीं वर्षगांठ के अवसर पर विज्ञान और प्रौद्योगिक पर जनप्रिय पुस्तकों की श्रृंखला प्रकाशित करने का स्वागत योग्य निर्णय लिया है. समीक्ष्य पुस्तक इसी श्रृंखला की पहली कड़ी है.

आम तौर पर हर व्यक्ति मित्र और शत्रु दोनों होते हैं. स्वाभाविक है कि आदमी अपने शत्रुओं से चौकन्ना रहता है. पर कुछ अदृश्य और गुप्त शत्रुओं से आदमी हर वक्त घिरा रहता है. दरअसल जीवाणु, विषाणु और कवक आदि ही मनुष्य के सूक्ष्म और अदृश्य शत्रु हैं जो आंख, नाक, मुंह और त्वचा से शरीर के भीतर घुसने के लिए बराबर प्रयत्नशील रहते हैं. लेकिन इन दुश्मनों से जुझने के लिए मानव शरीर ने भी विशेष रक्षा सैनिक तैनात कर रखें हैं. हमारे शरीर के ये जागरूक प्रहरी इन दुश्मनों को खदेड़ कर उन्हें मौत के मुंह में भेज देते हैं. लेकिन हर लड़ाई में रक्षा सैनिक दुश्मनों से जीत नहीं पाते हैं और ऐसी दशा में ही हमारा शरीर रोगग्रस्त होता है.

समीक्ष्य पुस्तक में शरीर की इस प्रतिरक्षा प्रणाली के बारे में बड़े ही सुन्दर और रोचक ढंग से समझाया गया है. पुस्तक में कुल सात अध्याय हैं. पहले अध्याय 'सेना का संगठन' में बताया गया है कि हमारे शरीर की सैन्य शक्ति भी ठीक उसी तरह से संगठित की जाती है जैसे युद्ध में भाग लेने वाली कोई वास्तविक सेना. यह भी बताया गया है कि एक खास किस्म की श्वेत रक्त कोशिकाएं, जिन्हें लिम्फोसाइट या लिम्फ कोशिका कहते हैं, हमारी शारीरिक सेना के संतरियों का काम अंजाम देते हैं. इनमें 'अपने' या 'पराए' यानी मित्र या शत्रु में 'भेद' कर पाने का स्वाभाविक गुण मौजूद होता है. ऊपर से उन्हें विशेष प्रशिक्षण भी दिया जाता है. दुश्मनों की शिनाख्त के लिए शरीर के विभिन्न हिस्सों में ये खुले रूप से विचरण करते हैं, यानी ये गश्ती सैनिकों की भूमिका भी निभाते हैं.

शरीर कें विभिन्न अंग जैसे त्वचा, आंख, नाक, मुंह से रोगाणु शरीर में घुसने का प्रयत्न करते हैं. पर हर कदम पर उन्हें बाधाओं का सामना करना पड़ता है. फिर भी इसके बावजूद भी यदि घुसपैठिए इन बाधाओं पर विजय पाने में सफल हो जाएं तो फिर शरीर की रोगावरोधी प्रणाली यानी 'इम्यून सिस्टम' इनसे डट कर मुकाबला करती है. दूसरे अध्याय 'हथियार और गोलाबारूद' में इसी का रोचक वर्णन है.

एक बार हार जाने के बाद दुश्मन रोगाणु शांत नहीं हो जाते हैं बल्कि इस फिराक में रहते हैं कि कब मौका देख कर वे दोबारा धावा बोल दें. तीसरे अध्याय 'युद्ध की तैयारी' में रोगावरोधी स्मृति नामक शरीर की एक विशिष्ट प्रतिरक्षा व्यवस्था के बारे में बताया गया है. लिम्फ कोशिकाओं में रोगाणुओं से हुई अपनी भिड़न्त की पुरानी याददाश्त बनी रहती है और जब दोबारा से रोगाणु आक्रमण करने की हीनता करते हैं तो ये कोशिकाएं सक्रिय होकर संगठित रूप से दुश्मन का मुंह तोड़ जवाब देती हैं. टीके का आधार भी यही रोगावरोधी स्मृति प्रणाली है. एडवर्ड जेनर द्वारा चेचक के टीके तथा लुई पाश्चर द्वारा पागल कुत्ते के काटे के इलाज में इस्तेमाल होने वाले रेबीज के टीके की खोज के बारे में रोचक जानकारी इस अध्याय में मिलती है.

'अतिकारी विद्रोह' शीर्षक अध्याय में 'एलर्जी' नामक बीमारी के बारे में बताया गया है. शरीर की प्रतिरक्षा व्यवस्था का जरूरत से ज्यादा उत्तेजित होने का ही परिणाम है. एलर्जी जो आजकल एक बीमारी है और जिसका सही नामकरण किया गया है– अतिसंवेदनशीलता या हाइ-परेसेन्सिटिविटी.

शरीर के रक्षा सैनिक हमेशा आक्रमणकारी रोगाणुओं आदि पर विजय प्राप्त करने में सफल नहीं हो पाते. कभी-कभी उन्हें मुंह की भी खानी पड़ती है. इसके पीछे कई कारण हो सकते हैं जैसे उनके प्रशिक्षण में ही कोई कमी रह जाना, दुश्मनों के सैन्यबल का उन पर भारी पड़ना या फिर अपने-पराए में भेद करने की उनकी अपनी ही असमर्थता. ऐसी परिस्थितियों में हमारा शरीर कई किस्म की बीमारियों का घर बन जाता है. इन बीमारियों में प्रमुख हैं स्व-रोगावरोधी यानी आटोइम्यून रोग का फिर कैंसर या एड्स सरीखे घातक और अभी लाइलाज रोग. पांचवें अध्याय 'करारी हार' में शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली की पराजय से उत्पन्न होने वाले रोगों के बारे में जानकारी दी गई है.

छठे अध्याय 'युद्ध विराम' में बताया गया है कि किस प्रकार शरीर के रक्षा

(शेष पृष्ठ 191 पर)

अंतरिक्ष यात्रियों को शून्यगुरुत्व के लिए कैसे तैयार किया जाता है ?

❑ वीरेन्द्र शर्मा

❑ अमेरिकी अंतरिक्ष एजेंसी 'नासा' के पास एक ऐसा विमान है जिसे सुविख्यात बोइंग-707 का प्रतिरक्षा संस्करण कह सकते हैं. 'नासा' इस विमान के जरिए भावी अंतरिक्ष यात्रियों को शून्य गुरुत्व के अनुरूप अपनी जैव घड़ी को ढालने का प्रशिक्षण देता है.

यह विमान अंदर से बिल्कुल खाली है परन्तु इसकी दीवारों को गद्दीदार बनाया गया है. इसे विशेष रूप से बनाए गए परवलयाकार अंतरिक्ष पथों पर उड़ाया जाता है. अंतरिक्ष का विस्तृत हिस्सा इस कार्य हेतु सुरक्षित पट्टी के रूप में रखा गया है.

विमान खड़ी ढाल पर पहले तो अविश्वसनीय रूप से सीढ़ी की तरह ऊपर उठता है. चौरस पथ पर आने के बाद इसके इंजन बंद कर दिए जाते हैं. अब विमान को स्वतंत्रता पूर्वक गिरने दिया जाता है.

मुक्त रूप से गिरने के दौरान ही प्रशिक्षण पा रहा अंतरिक्ष यात्री भारहीनता के कारण विमान के अंदर तैरने लगता है. वह कुछ क्षेत्रों के लिए भारहीनता अनुभव करता है. वास्तव में मुक्त रूप से गिरना ही भारहीनता का कारण है. यह स्पष्ट है कि मुक्त रूप से गिरने के दौरान अंतरिक्ष यात्री मात्र 20-30 सेकेंड के लिए भारहीनता का अनुभव करता है. विमान फिर खड़ी ढाल पर सीधा ऊपर उठता है. मुक्त रूप से गिरने के लिए और इस प्रकार दीर्घावधि के लिए भारहीनता पैदा करने का प्रयास किया जाता है.

पहले दौर में दस मिनट के अभ्यास के बाद ही अंतरिक्ष यात्री मितली आंने की शिकायत करता है और दस मिनट तक भारहीनता के दो चार होने के लिए उसे कम से कम तीस बार विमान के साथ ऊपर चढ़ना पड़ता है और परवलयाकार पथ पर मुक्त रूप से विचरना पड़ता है. इसीलिए इस यान को 'बॉम-इट कॉम-इट' कहा जा रहा है.

स्थान भ्रांति, दिशा भ्रांति व आत्मविस्मृति के बावजूद प्रशिक्षार्थियों को इसी अल्पकालीन शून्य गुरुत्व के दौर में सब कुछ सीखना पड़ता है. ❑

गुंधा हुआ आटा सूखने पर सख्त क्यों हो जाता है ?

❑ वीरेन्द्र शर्मा

❑ अक्सर गुंधा हुआ आटा सूखने पर अपनी सुघट्यता खोकर कठोर हो जाता है. यूं आटा मांडना भी एक कला है. पूरी-कचौड़ी बनाने के लिए अलग किस्म का तथा मुलायम तवे की रोटी बनाने के लिए अलग किस्म का आटा साना जाता है. सारा कमाल आटे में विद्यमान मांडी (स्टार्च), प्रोटीन तथा पानी के सही अनुपात का है.

आटे को सानने, गूंधने व मोड़ने के बाद एक सुसंगत, संसक्त तथा एक समान मिश्रण (लोई) तैयार हो जाता है. परन्तु इस संसक्त लोई को देर तक उघड़ा छोड़ने पर इसकी सुघट्यता समाप्त हो जाती है और यह एकदम कठोर व असंसक्त हो जाती है.

वास्तव में आटे से लोई का बनना एक ऐसी परिघटना है जिसको अभी ठीक से समझा नहीं जा सका है.

सूखे आटे व पानी के मिश्रण को गूंधने के बाद कैसे एक लसीली, विस्कास लोई तैयार हो जाती है जिसे हथेली व पोरों से वांछित शक्ल में ढाला जा सकता है? कैसे एक विशेष प्रकार की लोच इस लोई में पैदा हो जाती है जबकि प्रत्यास्यता सने हुए आटे की विशेषता नहीं है, सना हुआ आटा सुघट्य होता है जो विकृति पैदा करने वाले बलों को हटा लेने के बाद भी पूर्व स्थिति में नहीं लौट पाता. फिर पूरी व कचौड़ी के लिए तैयार लोई कैसे अपनी आकृति बनाए रखती है.

अब ऐसा समझा जाता है कि जल कि उपस्थिति में जिस कोलायडीय काम्प्लैक्स की सृष्टि होती है उसमें उन प्रोटीनों का हाथ होता है जो जल की मौजूदगी में पतली पतली तहों, झिल्लियों व पर्तों में टूट जाती है. गूंधने की प्रक्रिया में अन्ततः जो कोलायडीय काम्प्लैक्स तैयार होता है उस ग्लूटेन नेटवर्क कहा जाता है.

वास्तव में जब आटे के कण जल के संपर्क में आते हैं तब प्रोटीन की कथित पर्तें छोटे-छोटे महीन तन्तुओं में टूट जाती हैं जिन्हें तंतुक कहा जाता है.

गूंधने की प्रक्रिया में ये तंतुक एक खास प्रक्रिया से गुजरने के बाद पंक्तिबद्ध हो जाते हैं तथा अनुकूलतम केंद्रों पर कुछ नियत स्थानों पर परस्पर आबंधित हो जाते हैं. यही ग्लूटेन नेटवर्क है. यह एक अप्रतिवर्ती प्रक्रिया है. एक बार लोई के सूख जाने पर न तो इसे वांछित आकृति में ढाला जा सकता है और न ही यह पूर्ववर्ती स्थिति में लौट पाती है. इसका दरम्यानी लचीलापन भी जाता रहता है. इसकी सुघट्यता भी समाप्त हो जाती है. यह लोई सूख कर लक्कड़ हो जाती है—ग्लूटेन संजाल टूट जो जाता है. ❑

गणित के आश्चर्यजनक और रोचक परिणाम

❑ डा० पी०के० मुखर्जी

❑ गणित में कई दफा आश्चर्यजनक परिणाम प्राप्त होते हैं जिन पर सहसा यकीन नहीं होता. हालांकि ये परिणाम गणित के सभी नियमों और सिद्धांतों का पालन करते हैं. नीचे दिए गए परिणाम को देखिए:

$$क + ख = क^2 + ख^2$$

क और ख दोनों को ही पूर्णांक संख्याएं मानते हुए उक्त परिणाम का गणितीय दृष्टि से सही होना संभव प्रतीत नहीं होता. पर क और ख की भिन्नों (फ्रेक्शन) के रूप में अभिव्यक्ति करने पर यही परिणाम फिर गणित की दृष्टि से सही हो जाता है:

$$\frac{2}{6}+\frac{6}{5}=\left(\frac{2}{6}\right)^2+\left(\frac{6}{5}\right)^2$$

$$\frac{3}{5}+\frac{6}{5}=\left(\frac{3}{5}\right)^2+\left(\frac{6}{5}\right)^2$$

भिन्नों के रूप में ली गई तीन संख्याओं के जोड़ को भी उन्हीं संख्याओं के वर्गों के जोड़ के बराबर लिखा जा सकता है:

$$\frac{1}{3}+\frac{2}{3}+\frac{4}{3}=\left(\frac{1}{3}\right)^2+\left(\frac{2}{3}\right)^2+\left(\frac{4}{3}\right)^2$$

$$\frac{1}{7}+\frac{3}{7}+\frac{9}{7}=\left(\frac{3}{7}\right)^2+\left(\frac{3}{7}\right)^2+\left(\frac{9}{7}\right)^2$$

$$\frac{3}{7}+\frac{6}{7}+\frac{9}{7}=\left(\frac{3}{7}\right)^2+\left(\frac{6}{7}\right)^2+\left(\frac{9}{7}\right)^2$$

ऐसे कई और उदाहरण दिए जा सकते हैं.

कई दफा गलत तरीके के इस्तेमाल से भी सही परिणाम प्राप्त हो सकते हैं. मसलन, नीचे दिए गए परिणामों को ही देखिए:

$$\frac{19}{95}=\frac{1}{5}\ ;\ \frac{19}{95}=\frac{1}{5}$$

$$\frac{26}{65}=\frac{2}{5}\ ;\ \frac{26}{65}=\frac{1}{5}$$

$$\frac{16}{64}=\frac{1}{4}\ ;\ \frac{16}{64}=\frac{1}{4}$$

$$\frac{49}{98}=\frac{1}{2}\ ;\ \frac{49}{98}=\frac{4}{8}=\frac{1}{2}$$

$$\frac{166}{664}=\frac{1}{4}\ ;\ \frac{166}{664}=\frac{1}{4}$$

$$\frac{1666}{6664}=\frac{1}{4}\ ;\ \frac{1666}{6664}=\frac{1}{4}.$$

आप देखेंगे कि बाएं तरफ सही तरीका तथा दाएं तरफ गलत तरीका दिखाया गया है. पर गलत तरीके से भी अंततः परिणाम सही ही प्राप्त होता है.

गलत तरीके से सही परिणाम निकालने की बात से हट कर अब हम कुछ सुगम यानी 'शार्ट कट' तरीकों से कैसे परिणाम प्राप्त हो सकते हैं, पर आते हैं.

किसी भी संख्या, जिसका इकाई का अंक 5 हो, का वर्ग हम सुगमता से निकाल सकते हैं:

```
 35
×35
      3 + 1 = 4 ; 3 × 4 = 12
                  5 × 5 =   25
                          ----
                          1225
```

5 इकाई के अंक वाले तीन अंकों की संख्या का वर्ग भी इसी विधि से आप निकाल सकते हैं:

```
 125
×125
      12 + 1 = 13 ; 12 × 13 = 156
                      5 × 5 =    25
                             -----
                             15625
```

किन्हीं दो संख्याओं जिनके दहाई के अंक समान हों तथा इकाई के अंकों का जोड़ 10 हो, का गुणनफल परिणाम भी उक्त तरीके में थोड़ा परिवर्तन करके सुगमता से लिखा जा सकता है:

```
 36
×34
      3 + 1 = 4 ; 3 × 4 = 12
                  6 × 4 =   24
                          ----
                          1224
```

यानी इकाई के अंकों को गुणा करके अंत में लिखना है तथा दहाई के अंक को उसकी अगली क्रमागत संख्या से गुणा करके शुरू में लिखना है.

इस विधि को तब भी इस्तेमाल किया जा सकता है जब एक संख्या के सभी अंक समान हों तथा दूसरी संख्या के अंकों का जोड़ 10 हो:

```
 88
×37
      3 + 1 = 4 ; 4 × 8 = 32
                  8 × 7 =   56
                          ----
                          3256
```

नीचे दो तरीकों से किए गए गुणनफल क्रियाओं को ध्यान से देखिए जिनमें गुणनफल निकालने के पारंपरिक तरीके को हमने नहीं अपनाया है:

```
  77          77
 ×77          77
 ----        ---
  49     ;     7
4949         777
  49         ---------------
----         847 × 7 = 5929
5929
```

क्यों? है न आश्चर्यजनक! तीन अंकों वाली समान संख्याओं जिनके सभी अंक बराबर हों के गुणनफल को भी इसी तरह लिखा जा सकता है:

```
   777           777
  ×777          ×777
  ----          ----
    49             7
  4949     ;     777
494949         77777
  4949         -------------------
    49         86247 × 7 = 603729
------
603729
```

गुणनफल परिणाम निकालने का परंपरा से हट कर एक और तरीका हम नीचे दे रहे हैं. मान लीजिए कि हमें दो संख्याओं 41 और 13 का गुणनफल परिणाम निकालना है. इसके लिए पहले दोनों संख्याओं को साथ-साथ लिखें. फिर बाईं तरफ लिखी संख्या को 2 से भाग दें तथा दाएं तरफ संख्या को 2 से गुणा करें. 2 से भाग देने पर अगर कोई शेषफल बचता है तो उसे छोड़ दें. इस तरह कई पंक्तियां आपको प्राप्त होंगी. इस क्रिया को तब रोक दें जब अंतिम पंक्ति में बाएं तरफ संख्या 1 आ जाए.

अब उन पंक्तियों को जिनके बाएं और दाएं तरफ की दोनों संख्याएं ही सम हों आप काट दें. अंत में दाहिनी तरफ आने वाली समस्त संख्याओं को जोड़ डालें. यही जोड़ मूल संख्याओं का गुणनफल परिणाम होगा. इस तरीके को नीचे समझाया गया है:

(÷20 (×2)	26
10	52 ; 41×13 = 533
5	104
2	208
1	416
	533

❑

प्रायोजित प्रतियोगिता 6/92 के विजेता

श्री मनोज कुमार
ग्राम० व पो० बेहजम
मो० शिवपुरी
जिला : खीरी लखीमपुर
(उ०प्र०)

उत्तर

1. (घ), 2. (ख), 3. (क), 4. (ख), 5. (ख), 6. (ख), 7. (ख), 8. (ख), 9. (घ), 10. (ख), 11. (ख), 12. (ख), 13. (क), 14. (ग), 15. (ग), 16. (ख), 17. (क), 18. (क), 19. (ख), 20. (ख), 21. (ख), 22. (ग), 23. (ग), 24. (क), 25. (क), 26. (ग), 27. (क), 28. (क), 29. (ख), 30. (ख).

(पृष्ठ 188 का शेषांश)

प्रहरी प्रत्यारोपित अंग को 'बाहरी' मान कर उसका बहिष्कार कर डालते हैं. प्रत्यारोपण बहिष्कार से जुड़ी समस्या का निदान कैसे होता है तथा अंग प्रत्यारोपण किस तरह से कामयाब हो पाता है इसे बड़े ही सहज ढंग से लेखक ने समझाया है.

अंतिम अध्याय 'शांतिकालीन सेवाएं' में रक्षा सैनिकों की शांतिकालीन गतिविधियां तथा उनके अन्य उपयोगों के बारे में प्रकाश डाला गया है. लेखक ने एकक्लोनी या मोनोक्लोन नामक एक संकर कोशिका के बारे में रोचक जानकारी दी है. प्रतिपिंड (एंटीबाडी) उत्पन्न करने वाली बी-कोशिका तथा कैंसरकारी (माइलोमा) कोशिकाओं के संयोग द्वारा इसका विकास किया जाता है. ये एकक्लोनी प्रतिपिंड शांतिकालीन सेवाओं में मुख्य भूमिका निभाते हैं. लेखक के अपने विचार में शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली के बारे में इतना कुछ उजागर होने के बावजूद भी अभी बहुत कुछ अज्ञान के अंधेरे में ही है. पर साथ ही लेखक ने यह आशा भी व्यक्त की है कि भविष्य में और ज्यादा जानकारी हासिल करने में हम निश्चय ही सफल हो पाएंगे.

शरीर विज्ञान संबंधी जटिल विषय को लेखक ने बहुत सरल तरीके से समझाया है. विषय की प्रस्तुति बड़े ही रोचक ढंग से हुई है जिसने काले तथा गुलाबी रंगों के मेल से बने चित्रों ने और भी चार-चांद लगाए हैं. पुस्तक के अंत में दी गई शब्दावली में कठिन और तकनीकी वैज्ञानिक शब्दों को सरल रूप से समझाया गया है. इससे पाठक लाभान्वित होंगे तथा पुस्तक की उपयोगिता भी बढ़ेगी.

समीक्ष्य पुस्तक लेखक की अंग्रेजी में लिखी मूल पुस्तक का हिन्दी रूपांतर है. विज्ञान अनुवादक ने अपना धर्म सही तरह निभाया है तथा अनुवाद में जान डालने का भरसक प्रयास किया है. पर कहीं-कहीं बाल व किशोर पाठकों की दृष्टि से (अगर पुस्तक को उनके लिए भी उपयोगी माना जाए) भाषा थोड़ी क्लिष्ट हो गई है. प्रूफ की कहीं-कहीं छोटी-मोटी गलतियां हैं, जिन्हें अनदेखा किया जा सकता है. पर कुछ शब्दों का गलत लिखा जाना वास्तव में अखरता है. जैसे इकाईयां, आणुविक, वास्तुस्थितियां, उलंघन, तत्कालिक, व्यवहारिक आदि. निस्संदेह जिस उद्देश्य को ध्यान में रख कर पुस्तक लिखी गई है उसे पूरा करने में यह पूरी तरह से सफल होगी. ❑

प्रायोजित प्रतियोगिता–7

'आविष्कार' के इस स्तंभ को प्रायोजित प्रतियोगिता के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है. इस प्रतियोगिता के प्रायोजक हैं जूता-निर्माता 'एक्शन शूज' कंपनी. प्रतियोगिता के उस विजेता को जो सर्वाधिक सही उत्तर भेजेगा एक्शन शूज की ओर से सीधे एक जोड़ा एक्शन जूता पुरस्कार स्वरूप पार्सल से भेजा जाएगा. इस कार्यालय में पहुंचने वाले पहले ढाई हजार पत्रों को ही प्रतियोगिता में शामिल किया जाएगा.

एक से अधिक सही उत्तर प्राप्त होने पर 'ड्रा' निकाल कर निर्णय लिया जाएगा. इस संबंध में संपादक का निर्णय अंतिम व मान्य होगा और कोई पत्र व्यवहार नहीं किया जाएगा. पुरस्कार विजेता का नाम और सही हल एक अंक छोड़ कर प्रकाशित किया जाएगा. उत्तर को कागज के एक ओर हाशिया छोड़ कर साफ-साफ लिखा/टाइप किया होना चाहिए. उत्तर के साथ प्रकाशित कूपन अवश्य लगा होना चाहिए जिसमें प्रतियोगिता में भाग लेने वाले का नाम, पूरा पता तथा जूते की माप स्पष्ट लिखी होनी चाहिए. लिफाफे में ऊपर 'प्रायोजित प्रतियोगिता-4/92' अवश्य लिखें.

हमारा पता : संपादक, 'आविष्कार'
नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन
20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र, कैलाश कालोनी एक्सटेंशन
नई दिल्ली-110048

अपना वैज्ञानिक ज्ञान परखिए

❑ डा० उमेश चन्द्र पाण्डेय एवं श्याम लाल धीमान

1. निम्न में से किस वैज्ञानिक ने प्रयोगशाला में जीनों का संश्लेषण करने में सफलता पाई है:
   (क) वाटसन तथा क्रिक,
   (ख) खुराना,
   (ग) सिंह तथा अग्रवाल,
   (घ) उपरोक्त सभी.

2. पौधों में दीप्तिकालिता (फोटोपीरियड) का प्रभाव पुष्पन पर पड़ता है. यह महत्वपूर्ण जानकारी दी है:
   (क) डार्विन,
   (ख) गारनर तथा अलार्ड,
   (ग) गार्डनर,
   (घ) स्टीवर्ड तथा सेफरमैन.

3. 'सुप्रामॉलीकुलर परजीवी' का उपयोग किया जाता है:
   (क) विषाणुओं के लिए,
   (ख) माइकोप्लाज्मा के लिए,
   (ग) रोगोत्पादक कवकों के लिए,
   (घ) उपरोक्त सभी.

4. डी एन ए आनुवंशिक पदार्थ है. यह बना होता है:
   (क) पेन्टोज शर्करा, फॉस्फोरिक एसिड, पिरीमिडीन्स,
   (ख) पेन्टोज शर्करा, फॉस्फोरिक एसिड, प्यूरीन्स,
   (ग) हेक्सोज शर्करा, पिरीमिडीन्स, प्यूरीन्स,
   (घ) पेन्टोज शर्करा, फॉस्फोरिक एसिड, पिरीमिडीन्स प्यूरीन्स.

5. एन्जिओस्पर्मस में परागकणों का ट्रांसफर कई साधनों द्वारा होता है, और वह पहुंचते हैं:
   (क) अंडाशय पर,
   (ख) वर्तिका पर,
   (ग) वर्तिकाग्र पर, (घ) अंड पर.

6. जीन का मुख्य कार्य है:
   (क) कार्बन स्वांगीकरण में मदद करना,
   (ख) कोशा के लक्षण निर्धारण,
   (ग) प्रोटीन संश्लेषण,
   (घ) कोशीय श्वसन नियंत्रण.

7. श्वसन एवं ऑक्सीकरण में निम्न के द्वारा कोशिकीय ऊर्जा निकलती है:
   (क) राइबोसोम,
   (ख) क्रोमोसोम्स,
   (ग) माइटोकाण्ड्रिया,
   (घ) क्लोरोप्लास्ट.

8. कृषि उत्पादन बढ़ाने में, हड्डी की खाद का इस्तेमाल उर्वरक के रूप में किया जाता है क्योंकि इसमें पादक पोषक तत्व पाया जाता है. यह है:
   (क) नाइट्रोजन; (ख) पोटाश;
   (ग) सोडियम; (घ) फास्फोरस.

9. हमारे देश में शंकुल वनों का वितरण पाया जाता है:
   (क) असम, पश्चिमी बंगाल, गुजरात,
   (ख) मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, केरल,

(ग) हिमालय प्रदेश, जम्मू व कश्मीर तथा उत्तर प्रदेश,
(घ) त्रिपुरा, उड़ीसा व तमिलनाडु.

10. हमें शैवालों का अध्ययन करना चाहिए क्योंकि यहः
(क) हमारे पाठ्यक्रम में है,
(ख) भविष्य के खाद्य विकल्प है,
(ग) यह आसानी से उपलब्ध है,
(घ) यह हर जगह पाए जाते हैं.

11. पर्यावरण में कई प्रकार का प्रदूषण हो रहा है. प्रदूषक रासायनिक पदार्थ हैं, जो परिवर्तित करते हैं:
(क) पर्यावरण के प्राकृतिक संतुलन को,
(ख) पर्यावरण की भौतिक संरचना को,
(ग) पर्यावरण में गैसीय आदान-प्रदान को,
(घ) रासायनिक क्रियाओं को.

12. कवकों की माइसीलियम में कौन-सा भोज्य पदार्थ संग्रहित रहता है:
(क) प्रोटीन; (ख) स्टार्च;
(ग) ग्लाईकोजन; (घ) वसा.

13. राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, देश का एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय अनुसंधान संगठन है. यह है:
(क) नई दिल्ली में,
(ख) गोवा में,
(ग) रुड़की में, (घ) पुणे में.

14. 'अस्टिलैगों' एक परपोषी कवक है. इसे 'स्मट' के नाम से जाना जाता है. यह कवक आता है:
(क) फाइकोमाइसिटीज वर्ग में,
(ख) बेसीडिओमाइसिटीज वर्ग में,
(ग) एस्कोमाइसिटीज वर्ग में,
(घ) ड्यूटेरोमाइसिटीज वर्ग में.

15. पाइरुविक एसिड के अनाक्सी श्वसन में कितने ए०टी०पी० बनते हैं:
(क) 38 ए०टी०पी,
(ख) 36 ए०टी०पी,
(ग) 2 ए०टी०पी,
(घ) 30 ए०टी०पी.

16. ब्लैक होल के लिए पलायन वेग:
(क) अनंत होता है,
(ख) शून्य होता है,
(ग) प्रकाश वेग के बराबर होता है,
(घ) प्रकाश वेग से थोड़ा कम होता है.

17. यदि कमरे के ताप पर अतिचालकता प्राप्त हो जाए तो:
(क) निकाय पर ऊर्जा संरक्षण सिद्धांत लागू नहीं हो सकेगा,
(ख) ऊष्मागतिकी के अनुसार 100 प्रतिशत कार्यक्षमता संभव नहीं है. इससे संभव हो सकेगी,
(ग) निकाय की कार्यक्षमता बढ़ जाएगी,
(घ) निकाय की कार्यक्षमता अतिचालकता पर कभी भी निर्भर नहीं करती.

18. रेडियो वाल्व निम्न में से किस भौतिक परिघटना पर आधारित है:
(क) चुम्बकीय प्रेरण,
(ख) ऊष्मीय उत्सर्जन,
(ग) वैद्युत प्रेरण, (घ) स्वप्रेरण.

19. एक ही पदार्थ और एक ही लम्बाई के मोटे व पतले तारों में पतले तार को ऐंठना अधिक सरल है, क्योंकि:
(क) मोटा तार कठोर होता है,
(ख) पतले तार का दृढ़ता गुणांक कम होता है,
(ग) ऐंठन की दृढ़ता का मान मोटे तार के लिए अधिक होता है और इसमें मात्रा अधिक होने से वह अधिक कठोर होता है,
(घ) इकाई ऐंठन के लिए ऐंठन बलयुग्म का मान पतले तार के लिए कम व मोटे तार के लिए अधिक होता है.

20. निम्न में कौन लौह चुम्बकीय पदार्थ है:
(क) एल्युमिनियम,
(ख) क्वार्ट्ज,
(ग) निकिल, (घ) बिस्मिथ.

21. 'क' और 'ख' समान पदार्थ के बने दो तार हैं. यदि 'क' का व्यास 'ख' के सापेक्ष दोगुना तथा लंबाई तीन गुनी है और वे किसी विद्युत परिपथ में समांतर क्रम में लगे हैं, तो दोनों तारों से उत्पन्न ऊष्माओं में अनुपात होगा:
(क) 4:3; (ख) 16:9;
(ग) $\sqrt{4}:\sqrt{3}$; (घ) 6:1.

22. एक प्रायोगिक कक्ष जिसकी छत से सरल आवर्त्त गति करता लोलक लटका है, स्वतंत्रतापूर्वक गिरना आरंभ करती है. लोलक के लिए निम्न में से कौन कथन सत्य है:
(क) लोलक दोलन करने बंद कर देगा वह अपनी मध्यमान स्थिति में आ जाएगा,
(ख) लोलक तेजी से दोलन करेगा,
(ग) लोलक धीरे-धीरे दोलन करेगा,

(घ) लोलक दोलन करने बंद कर देगा और गिरने के दौरान यदि वह स्थिर अवस्था में था तो स्थिर रहेगा और यदि गतिमान स्थिति में था तो वह क्षैतिज दिशा में उसी वेग से गति करेगा.

23. किसी पदार्थ की विशिष्ट ऊष्मा के लिए निम्न में से कौन कथन सत्य है:
(क) विशिष्ट ऊष्मा वस्तु के पदार्थ पर निर्भर नहीं करती,
(ख) वस्तु के पदार्थ पर निर्भर करती है परन्तु बाह्य परिस्थितियों पर बिल्कुल निर्भर नहीं करती,
(ग) यह वस्तु के पदार्थ के साथ-साथ बाह्य परिस्थितियों पर भी निर्भर करती है,
(घ) वस्तु के पदार्थ के साथ उसके आकार पर भी निर्भर करती है.

24. किसी धन आवेशित चालक खोखले गोले के अंदर किसी धन आवेशित कण को अवस्थित कर दिया जाता है, आवेश:
(क) ऊपर उठेगा,
(ख) नीचे गिरेगा,
(ग) गतिहीन रहेगा,
(घ) दाएं अथवा बाएं चलेगा.

25. चालक तार के अंदर स्वतंत्र इलेक्ट्रोनों का अभिगमन वेग (ड्रिफ्ट वैलोसिटी) निम्न में से किस पर निर्भर नहीं करता:
(क) चालक तार की लंबाई,
(ख) इकाई आयतन में इलेक्ट्रोनों की संख्या,
(ग) इलेक्ट्रोन का आवेश,
(घ) धारा.

26. किसी सूक्ष्मदर्शी में कम फोकस दूरी का अभिदृश्य (आब्जैक्टिव) लैंस लगा देने से:
(क) अधिक प्रकाश किरणें एकत्र की जा सकती हैं,
(ख) इससे अभिदृश्यक और नेत्रिका के बीच की दूरी कम हो जाती है,
(ग) आवर्धन क्षमता बढ़ जाती है,
(घ) आवर्धन क्षमता घट जाती है.

27. संलग्न चित्र में एक धनावेशित चालक गोले के अंदर दूसरा चालक
(क) आवेश होगा परन्तु विभव शून्य होगा,
(ख) आवेश शून्य होगा परन्तु विभव शून्य नहीं होगा,
(ग) विभव एवं विद्युत क्षेत्र दोनों शून्य होंगे,
(घ) विभव शून्य होगा परन्तु विद्युत क्षेत्र शून्य नहीं होगा.

28. किसी बर्तन में पानी पर बर्फ का टुकड़ा तैर रहा है, बर्फ के अंदर एक कार्क का टुकड़ा है. बर्फ पिघलने पर बर्तन में पानी का तल:
(क) अपरिवर्तित रहेगा,
(ख) नीचे गिरेगा,
(ग) ऊपर उठेगा,
(घ) पहले गिरेगा फिर बढ़ेगा.

29. आटो वान गैरिक ने अपने प्रयोग में धातु के दो अर्द्ध गोलों को वायु दाब के विरुद्ध अलग-अलग करने के लिए आठ-आठ घोड़ों का उपयोग किया था. अर्द्ध गोलों से जुड़ी रस्सियों में तनाव बल था:
(क) 8 घोड़ों के बराबर,
(ख) 16 घोड़ों के बराबर,
(ग) शून्य.

30. एक प्रायोगिक कक्ष पानी में एक समान वेग से नीचे उतर रहा है. निम्न में कौन कथन गलत होगा:
(क) कक्ष का आभासी भार शून्य हो जाएगा,
(ख) कक्ष में रखी वस्तुओं के भार में कोई परिवर्तन नहीं होगा,
(ग) कक्ष में प्रतिक्रिया बल यथावत रहेगा,
(घ) कक्ष में भारहीनता की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी.

"भारत के समाचार पत्रों के पंजीयक के कार्यालय
नई दिल्ली में पंजीकृत, पंजीकरण संख्या : आर०एन० 21740/71"

DL-16014/92





नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन, नई दिल्ली के लिए श्री डी०एन० भटनागर द्वारा सम्पादित और प्रकाशित

ISSN 0970-6607

आविष्कार

जनभाषा में रुचिकर विज्ञान की सशक्त अभिव्यक्ति

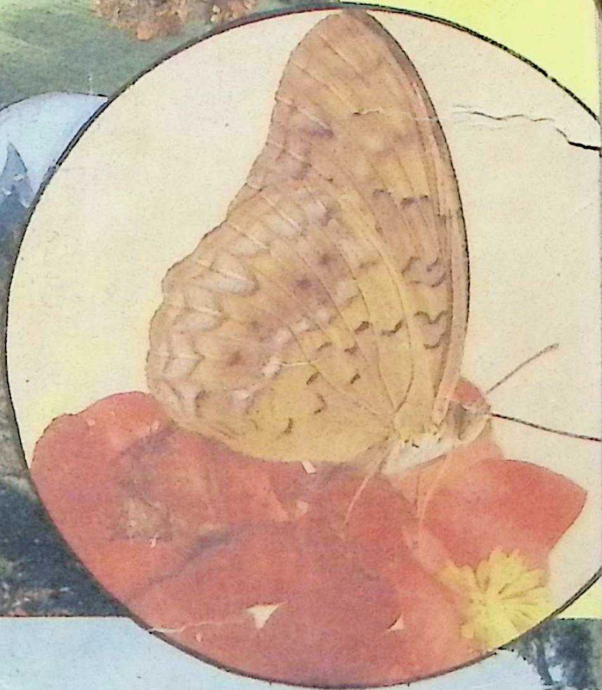
1992

8 रुपए

ग्राम शिल्प समा

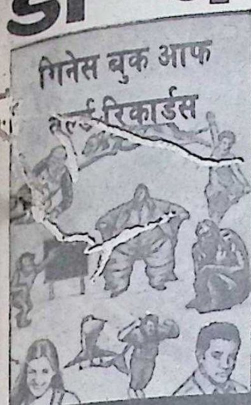
गरमाती धरती पर्यावरण को खतरा

• प्रदूषित राजनगरी में आपका स्वागत है



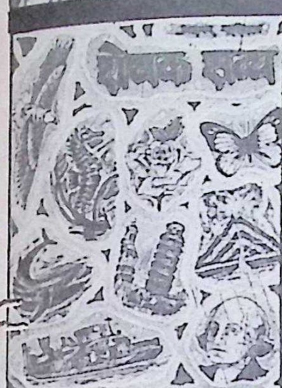
• एक और क्रांति की सूत्रधार एन्जाइम प्रौद्योगिकी

डायमण्ड कॉमिक्स



गिनेस बुक आफ वर्ल्ड रिकार्ड्स

मानव के हैरत अंगेज और चौंका देने वाले कारनामों के रोमांचक तथ्य और रिकार्ड्स से भरपूर एक अत्यन्त रोचक पुस्तक। तीन भागों में उपलब्ध। मूल्य प्रत्येक भाग 15/-



रोचक सत्य

इस रोचक पुस्तक में लेखक ने ऐसे-ऐसे रोमांचक सत्यों का उल्लेख किया है जिन पर आप मुश्किल से ही विश्वास कर पाएँगे। सामान्य ज्ञान में वृद्धि करने के लिए एक अत्यन्त उपयोगी पुस्तक मूल्य 8/-



रोचक विज्ञान

ज्ञान-विज्ञान के तथ्यों का लेखक ने बहुत ही सरल भाषा में इस पुस्तक में उल्लेख किया है। मूल्य 8/-



रोचक जादू

इस पुस्तक में लेखक ने बहुत ही रोचक ढंग से जादू के खेलों का वर्णन किया है। इस पुस्तक को पढ़कर आप भी जादू के खेल कर सकते हैं। मूल्य 8/-





चाचा चौधरी और ज्यूपिटर वासी साबू एक बार फिर आये हैं। मनोरंजन और एक्शन से भरपूर नये कामिक्स

नये डायमण्ड कामिक्स 1 जून 1992 को प्रकाशित

चाचा चौधरी-9 (डाइजेस्ट)	15.00
प्राण का—दाबू और उड़ने वाला गुब्बारा	6.00
प्राण का—अंकुर और मच्छर अभियान	6.00
महाबली शाका और जंगल के गद्दार	6.00
लम्बू मोटू और खूंखार लुटेरे	6.00
ताऊजी और राजकुमार तोम्बा	6.00
जेम्स बाण्ड-7	6.00
मोटू-छोटू-4 (डाइजेस्ट)	15.00

NEW DIAMOND COMICS (Ist June 1992)

Pran's—Daabu & Flying Baloon	6.00
Mahabali Shaka & Traitors of Jungle	6.00
Lambu Motu & Cruel Looters	6.00
Tauji & Prince Tomba	6.00
James Bond-7	6.00
Chacha Chaudhary-9 (Digest)	15.00

नये डायमण्ड कामिक्स 15 जून 1992 को प्रकाशित

प्राण का—चाचा चौधरी और चालाक गोशा	8.00
प्राण का—रमन और लिफ्ट	6.00
फौलादी सिंह और गद्दार रोबोट	6.00
चाचा भतीजा और दहकता दानव	6.00
मामा भांजा और हुनरमंद लड़का	6.00
राजन इकबाल और डेडमैन	6.00
फैण्टम-19 (डाइजेस्ट)	15.00
ताऊजी-15 (डाइजेस्ट)	15.00

नये डायमण्ड मिनी कामिक्स

मामा भांजा और गुणवान लड़की	2.50
महाबली शाका और सोना घाटी के हीरे	2.50
ताऊजी और मायावी कबूतर	2.50
चाचा भतीजा और दानव का रहस्य	2.50

NEW DIAMOND COMICS (15th June 1992)

Pran's—Chacha Chaudhary & Clever Ghosha	8.00
Pran's—Raman & Lift	6.00
Fauladi Singh & Traitor Robot	6.00
Chacha Bhatija & Blazing Demon	6.00
Phantom-19 (Digest)	15.00

डायमण्ड कॉमिक्स प्रा. लि. 2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

ग्राहक फार्म

कनिष्ठ वैज्ञानिक अधिकारी (विक्रय व विज्ञापन)
नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन
20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र,
कैलाश कालोनी एक्सटेंशन
नई दिल्ली-110048

महोदय,

कृपया मुझे आविष्कार का एक वर्ष के लिए मास 199
से ग्राहक बना लीजिए. मैं नया/पुराना ग्राहक हूं. पत्रिका का शुल्क .... रुपए
मनीआर्डर/डिमांड ड्राफ्ट द्वारा भेज रहा हूं. कृपया प्राप्ति स्वीकार करें.

नाम ....

ग्राहक संख्या (यदि कोई हो) ....

पूरा पता ....

....

....

भवदीय

....

6/92 हस्ताक्षर

- **रियायती वार्षिक शुल्क : 80 रुपए**
- **पत्रिका का शुल्क मनीआर्डर द्वारा 'नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन' को उपरोक्त पते पर भेजिए. मनीआर्डर कूपन पर पत्रिका का नाम, शुल्क की राशि, स्पष्ट लिखें. मनीआर्डर फार्म के पीछे दिए गए स्थान पर "भेजने वाले का नाम और पता" के अंतर्गत बड़े अक्षरों में पूरा नाम और पता साफ साफ लिखें.**
- **शुल्क का नवीकरण कराते समय या पत्र व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक संख्या का उल्लेख अवश्य कीजिए. नवीकरण काफी समय पहले कराइए ताकि पत्रिका मिलने में रुकावट न आए.**
- **शुल्क अदा करने के बाद पत्रिका की प्रथम प्रति प्राप्त करने के लिए कम से कम छः सप्ताह तक इंतजार कीजिए.**

एन आर डी सी
NRDC

आविष्कार

जून 1992

वर्ष 22, अंक 6

एन० के० शर्मा
प्रबंध निदेशक

प्रबंधन
एम० एन० गुप्ता

सम्पादन
डी०एन० भटनागर
वरिष्ठ सम्पादक
राघवेंद्र कुमार शर्मा
आर०के० अन्थवाल

मुद्रण कार्य
राधे श्याम
अरुण कुमार अरोड़ा

सज्जा कार्य
के०के० थपलियाल
नबनीता भौमिक

विक्रय और विज्ञापन
रमा रानी त्रिपाठी
रवि ठाकुर

■ 'आविष्कार' नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन (एन आर डी सी) द्वारा प्रकाशित विज्ञान और प्रौद्योगिकी की लोकप्रिय मासिक पत्रिका है.

एक प्रति : 8 रुपए
वार्षिक मूल्य : 80 रुपए
फोन: 6418615, 6419929, 6419945, 6419947, टेलेक्स: 031-71358
टेलीग्राम: 'अनुसंधान विकास'
फैक्स: 091-11-6449401

इस अंक में

'आविष्कार' की विज्ञापन दर

	एक विज्ञापन	छः विज्ञापन	बारह विज्ञापन
आवरण पृष्ठ	5,000 रु०	27,000 रु०	48,000 रु०
भीतरी आवरण पृष्ठ	4,500 रु०	24,300 रु०	43,200 रु०
पूरा पृष्ठ	3,500 रु०	18,900 रु०	33,600 रु०
आधा पृष्ठ	1,800 रु०	9,720 रु०	17,280 रु०
चौथाई पृष्ठ	1,000 रु०	5,400 रु०	9,600 रु०

● प्रत्येक अतिरिक्त रंग के लिए : 1000 रुपए

पूर्ण विवरण के लिए लिखें

कनिष्ठ वैज्ञानिक अधिकारी (विक्रय व विज्ञापन)

नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन

(भारत सरकार का उपक्रम)

20-22, जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र, कैलाश कालोनी एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110048

ग्राम : 'अनुसंधान विकास' **फोन : 6418615**

बिक्री एजेंटों की नियुक्ति 'आविष्कार' के लिए

नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका आविष्कार की बिक्री के लिए हर जिले में बिक्री एजेंट नियुक्त करने के लिए पत्र-पत्रिकाएं बेचने वाले एजेंटों से आवेदन पत्र आमंत्रित हैं.

एजेंटों के लिए आकर्षक कमीशन उपलब्ध है. विस्तृत जानकारी के लिए सम्पर्क करें :

कनिष्ठ वैज्ञानिक अधिकारी (विक्रय व विज्ञापन)

नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन

(भारत सरकार का उपक्रम)

20-22, जमरूदपुर सामुदायिक केन्द्र, कैलाश कालोनी एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110048

ग्राम : 'अनुसंधान विकास' **फोन : 6418615**

आपकी प्रतिक्रियाएं

□ **'आविष्कार के मूल्य में वृद्धि:** 'आविष्कार' का मार्च 1992 का अंक देखकर निराशा हुई. फरवरी 1992 का अंक तो अभी तक नहीं दिखा. मार्च अंक में 'ग्राम-शिल्प' समाहित करके तथा उसका मूल्य बढ़ाकर अच्छा नहीं किया गया.

विगत 5-6 वर्षों में जिस गति से 'आविष्कार' के स्तर में सुधार हुआ था उससे विज्ञान लेखकों तथा पाठकों को आशा बंधी थी कि हिन्दी में एक स्तरीय वैज्ञानिक पत्रिका प्रकाशित हो रही है जिसमें विविधतापूर्ण, रोचक एवं प्रामाणिक सामग्री रहती है जिससे अंग्रेजी पत्रिकाओं के पढ़ने की आवश्यकता महसूस नहीं होती.

किन्तु ... 'आविष्कार' में 'ग्राम-शिल्प' की कलमपैबन्द लगाकर आप हम पाठकों को क्या देने जा रहे हैं?

आप 'ग्राम-शिल्प' को अलग से विकसित होने दें अन्यथा 'आविष्कार' भी सूख जाएगा.

कृपया 'आविष्कार' के पूर्व वैभव को लौटाने का प्रयास करें. आपने इस पत्रिका को कहां से कहां ला दिया था तो अब यह गिरावट क्यों? **[शिव गोपाल मिश्र, 25, अशोक नगर, इलाहाबाद]**

□ एक लम्बे अन्तराल के बाद 'आविष्कार' का मार्च 1992 का अंक प्राप्त हुआ. जहां यह अंक अपने आप में एक संपूर्ण अंक था वही इसने साधारण पाठक वर्ग को गहरी ठेस पहुंचाई. आपने इस पत्रिका का सीमा से अधिक मूल्य बढ़ाकर पाठकों के प्रति अन्याय किया है. कहीं ऐसा न हो कि पत्रिका की लोकप्रियता कम होने लगे. कृपा करके 'आविष्कार' तथा 'ग्राम-शिल्प' को अलग अलग प्रकाशित करें जिससे पाठक अपनी रुचि अनुसार पत्रिका खरीद सकें. मार्च 1992 के 'आविष्कार' के अंक को खरीदने के प्रति कई पाठकों ने उदासीनता का प्रदर्शन किया जिससे मुझे दुख हुआ. कृपया जल्द से जल्द आविष्कार का मूल्य कम करें.

इस अंक के 'आविष्कार मंच' स्तम्भ में प्रकाशित 'मीडियम वेव ट्रांसमिटर' बहुत पसंद आया पर इसके परिपथ आरेख में नेगेटिव वोल्टता सप्लाई प्रदर्शित नहीं थी जिसके कारण बहुत परेशानी का सामना करना पड़ा. स्तम्भ 'व्योमविहार' के अंतर्गत सूर्य के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त हुई. यह जानकारी अत्यन्त ज्ञानवर्द्धक रही. इसकी मुझे बहुत समय पहले से प्रतीक्षा थी. 'हम सुझाएं आप बनाएं' में प्रकाशित 'आइए दूरदर्शी बनाएं' से प्रेरणा पाकर मैं भी 'अपवर्तक दूरदर्शी' बनाना चाहता हूं पर बाजार में न तो 1.2 सेंटीमीटर मोटा कांच ही उपलब्ध है और न ही कारबोरेण्डम पाउडर. कृपया समस्या का समाधान करें कि यह कहां मिलेंगे.

मेरा सुझाव है कि पत्रिका में 'हम सुझाएं आप बनाएं' स्तम्भ में प्रकाशित पुराने लेख किस वर्ष, किस माह, तथा किस पृष्ठ पर प्रकाशित हुए थे यह बताएं. प्रतिमाह कुछ लेखों की जानकारी दे दिया करें. इससे पाठकों को

25 रुपए का इनाम जीतिए

सुझाव पुरस्कार

अपना सुझाव भेजिए और दस भाग्यशाली विजेताओं में शामिल होइए

नाम .... आयु ....

पता ....

....

योग्यताएं ....

व्यवसाय ....

आपको कौन से लेख पसंद आए ....

....

सुझाव, यदि कोई हो तो ....

6/92

पाठक के हस्ताक्षर

'हम सुझाएं आप बनाएं' स्तंभ के लेखों की फोटो प्रतिलिपियां मंगाने में सहायता मिलेगी. **[शोएब-उर-रहमान रिजवी (संजू) सुपुत्र स्वर्गीय श्री हबीब-उर-रहमान रिजवी, मुहल्ला सोथा, बदांयू-243601 (उ० प्र०)]**

❑ पत्रिका के बढ़ते हुए मूल्य का क्रम इस प्रकार से हैः अगस्त 1987 मूल्य 1.50, जनवरी 1989 मूल्य 2.00, जुलाई 1991 मूल्य 3.00, जनवरी 1992 मूल्य 5.00, मार्च 1992 मूल्य 8.00.

इस कुल मूल्य में 2 रुपए ग्राम-शिल्प के हैं और 6 रुपए आविष्कार के. जबकि पृष्ठ 52 हैं. इस प्रकार पहले 2 रुपए और फिर 3 रुपए बढ़ाया गया है.

राष्ट्रीय स्तर की इतनी पुरानी तथा लोकप्रिय विज्ञान पत्रिका के साथ ऐसा होता देख निश्चित ही कष्ट का अनुभव हुआ क्योंकि आम छात्र द्वारा 8 रुपए में इसे खरीदना कितना मुश्किल है.

मैं आविष्कार की पुरानी ग्राहक हूं. अतः मूल्य की यह वृद्धि जबकि कागज की मूल्य शायद ज्यादा नहीं बढ़ा है, ठीक नहीं.

आशा है आप पत्रिका की बढ़ी हुई कीमत 8 रुपए के विषय में पत्रिका में विशेष सम्पादकीय स्तंभ के अंतर्गत मेरी इस समस्या को हल करने हेतु अपने विचारों से अवगत कराने के कृपा करेंगे **[श्रीमती सुमन शर्मा (प्रवक्ता रसायन शास्त्र), आर्य विद्यापीठ, महिला शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, भुसावर, भरतपुर]**

❑ **नाभिकीय विकिरण : कितना खतरा** : 'आविष्कार' के मार्च 1992 के अंक में 'नाभिकीय विकिरण—कितना खतरा' पढ़कर शरीर सिहर उठा. 'आविष्कार मंच' में प्रकाशित 'मीडियम वेव ट्रांसमिटर' काफी पसंद आया. मुझे इलेक्ट्रोनिक्स में काफी रुचि है **[दीपक कुमार सोनी, 49 मालवीय नगर, गोण्डा, 271 001]**

❑ 'आविष्कार' के मूल्य में मार्च 1992 से की गई वृद्धि और 'ग्राम-शिल्प' को उसमें समाहित करके प्रकाशित करने पर हमें अपने पाठकों से बराबर नाराजगी भरे पत्र मिल रहे हैं. यह अस्वाभाविक भी नहीं है.

पत्रिका के मूल्य में की गई यह वृद्धि हमारे पुराने पाठकों को, विशेषकर विद्यार्थी पाठकों को, अवश्य अधिक लग रही होगी क्योंकि वे लम्बे समय से बहुत कम मूल्य पर पत्रिका पढ़ते आ रहे हैं.

कारपोरेशन द्वारा प्रकाशित विज्ञान और प्रौद्योगिकी की हिन्दी व अंग्रेजी मासिक पत्रिकाओं 'आविष्कार' और 'इंवेन्शन इंटेलिजेंस' को अभी तक बहुत कम मूल्य पर पाठकों को उपलब्ध कराया जाता रहा है. ऐसा इसलिए संभव हो सका क्योंकि अब तक पत्रिकाओं के प्रकाशन का अधिकतर खर्च भारत सरकार द्वारा प्रदत्त अंशदान द्वारा किया जाता रहा. पत्रिकाओं के हाल के वर्षों में हुए खर्च में बढ़ोत्तरी के बावजूद मूल्य वृद्धि तब तक नहीं की गई जब तक पत्रिकाओं को सरकारी अनुदान उदारतापूर्वक मिलता रहा.

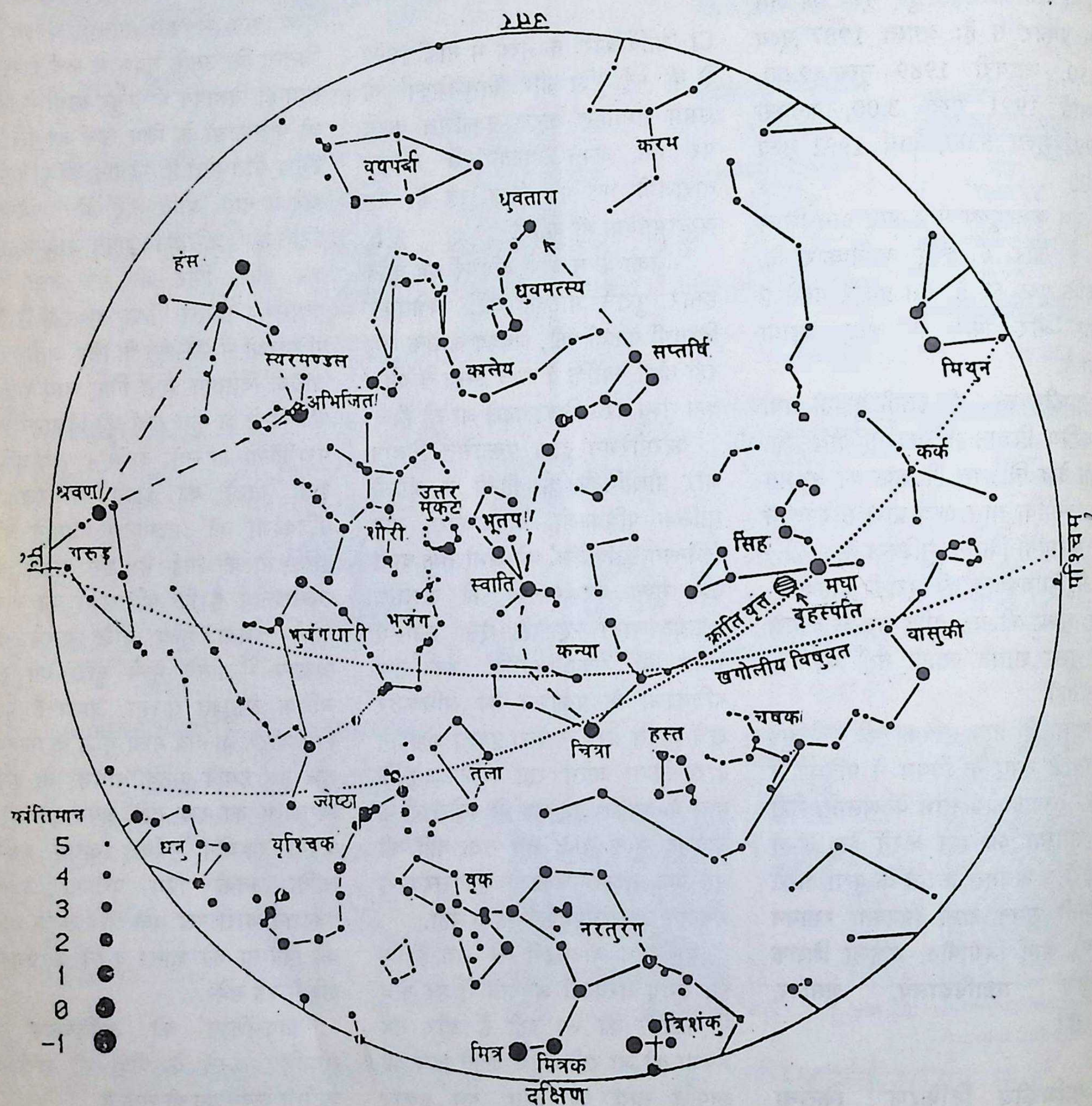
यह आम जानकारी की बात है कि इस समय सरकारी अनुदान में हर क्षेत्र में कटौती की जा रही है और यह अपेक्षा की जा रही है कि अपने खर्च की आपूर्ति स्वयं की जाए. इस प्रकार पत्रिकाओं पर खर्च की जा रही धनराशि स्वयं पत्रिकाओं को ही अर्जित करनी है. ऐसा न होने की स्थिति में धन के अभाव में पत्रिकाओं के प्रकाशन में रुकावट आ सकती है. अतः पत्रिकाओं के प्रकाशन की निरंतरता को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि पत्रिकाओं की बिक्री में बढ़ोत्तरी हो और प्रत्येक पत्रिका का मूल्य कम से कम उतना अवश्य हो जितना कि उसके मुद्रण में खर्च हुआ है. साथ ही विज्ञापन भी प्रचुर मात्रा में मिलें जो पत्रिकाओं के लिए खर्च आपूर्ति का प्रमुख स्रोत होते हैं. विज्ञान की पत्रिकाएं होने के नाते 'आविष्कार' और 'इंवेन्शन इंटेलिजेंस' अधिक विज्ञापन आकृष्ट नहीं कर पाते. फिर भी इस बात का यथासंभव प्रयत्न किया जा रहा है कि पत्रिकाओं में प्रकाशन के लिए अधिक से अधिक विज्ञापन प्राप्त किए जाएं ताकि पत्रिकाओं के कुछ खर्च को विज्ञापनों से पूरा किया जा सके. वर्तमान मूल्य वृद्धि इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर पत्रिकाओं को आत्मनिर्भर बनाने की दृष्टि से की गई है. इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि पत्रिकाओं को बन्द करने अथवा मूल्य वृद्धि करने के विकल्प में हमने मूल्य वृद्धि को ही अधिक उपयुक्त समझा. आशा है इस स्पष्टीकरण के बाद मूल्य वृद्धि के कारण रुष्ट हुए हमारे पाठक पत्रिका के प्रति विमुखता का रुख नहीं अपनाएंगे और अपना सहयोग पूर्ववत् बनाएं रखेंगे ताकि उनकी प्रिय पत्रिका अपना प्रकाशन जारी रख सके और उनके ज्ञान की पिपासा को शान्त करने के प्रयत्न करती रह सके.

'ग्राप-शिल्प' को 'आविष्कार' में समाहित करने के पीछे भी खर्च में कटौती करने का ही तर्क है.

—वरिष्ठ सम्पादक

□ पीयूष पाण्डेय

आविष्कार के 'व्योमविहार' स्तंभ में हम इस बार आपका परिचय जून 1992 माह के आकाश में उपस्थित तारामंडलों से करा रहे हैं. पहले की तरह आप निर्देशों का पालन करते जाएं और तारों, ग्रहों तथा नक्षत्रों से परिचय करते जाएं. आपकी प्रतिक्रियाओं का स्वागत है.



☐ जून 9 से मास पर्यन्त बुध ग्रह संध्याकाश में वृष से मिथुन, तथा फिर मिथुन से कर्क राशियों के सामने भ्रमण कर रहा है. शुक्र ग्रह उषाकाश में स्थित है तथा वृष और मिथुन राशियों के क्षेत्र में देखा जा सकता है.

मंगल ग्रह को उषाकाश में मीन-मेष के क्षेत्र में खोज सकते हैं. हमारे मानचित्र की परिधि के अंदर केवल एक ग्रह—बृहस्पति है जो सिंह राशि में स्थित है. शनि ग्रह भी संध्याकाश में मकर राशि में स्थित है जिसे मास मध्य में रात्रि दस बजे के बाद पूर्वी क्षितिज पर देखा जा सकता है.

जून मास में चंद्रमा की कलाएं इस प्रकार हैं:

अमावस्या दिनांक 30 जून तथा एक जून, शुक्ल पक्ष अष्टमी दिनांक 8 जून, पूर्णिमा दिनांक 15 जून तथा कृष्ण पक्ष अष्टमी दिनांक 23 जून को है.

इस मास की दूसरी अमावस्या दिनांक 30 जून को. एक पूर्ण सूर्य ग्रहण होगा जो भारत में नहीं दिखाई देगा. ☐

लेखकों से निवेदन

1. 'आविष्कार' में प्रकाशनार्थ भेजे जाने वाले लेख कागज के एक ओर हाशिया छोड़कर टाइप किए या साफ-साफ लिखे होने चाहिएं. लेख की दो प्रतियां भेजी जानी चाहिएं. साथ में लेखक का पूरा नाम, पता व व्यवसाय का उल्लेख अवश्य होना चाहिए.

2. लेख मौलिक, अप्रकाशित और अप्रसारित होना चाहिए. लेख भेजते समय इस आशय का आश्वासन लेखक के अपने पत्र में होना लेख की स्वीकृति के लिए आवश्यक है.

3. लेख का विषय विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में किसी आविष्कार/विकास/अनुसंधान या खोज कार्य के सार्वजनिक रुचि के किसी भी पहलू से संबंधित हो सकता है.

4. लेख में प्रस्तुत विषय का प्रतिपादन ऐसा होना चाहिए कि उच्चतर माध्यमिक स्तर तक शिक्षित वर्ग उसे आसानी से समझ सके. साधारणतया लेख 2500 शब्दों से अधिक बड़ा नहीं होना चाहिए.

5. लेख सरल, आम बोलचाल की भाषा में लिखा होना चाहिए. लेख में प्रस्तुत अंग्रेजी के वैज्ञानिक व तकनीकी शब्दों के पर्याय वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित शब्दावलियों के अनुसार होने चाहिएं. साथ में कोष्ठ में अंग्रेजी शब्द अवश्य दिए जाने चाहिएं.

6. लेख में जहां कहीं रासायनिक तत्वों का उल्लेख आता है वहां उनके उन्हीं नामों का उल्लेख किया जाना चाहिए जो आज रसायन विज्ञान में अंतरराष्ट्रीय हो चुके हैं जैसे तांबे के लिए कॉपर और जस्ते के लिए जिंक, सीसे के लिए लेड और आक्सीजन, नाइट्रोजन व हाइड्रोजन आदि. तांबा व सीसा शब्द कोष्ठक में दिए जा सकते हैं.

7. मापों को संक्षिप्त रूप में न लिखकर पूरे रूप में लिखें. जैसे कि० ग्रा० के लिए किलोग्राम, मि० मी० के लिए मिलीमीटर. इससे समझने में आसानी होगी. सभी माप मीट्रिक प्रणाली में दिए जाएं.

8. लेख में वर्णित विषय को बोधगम्य बनाने की दृष्टि से लेख के साथ आवश्यक चित्र/रेखाचित्र संलग्न होने चाहिएं. रेखाचित्र काली स्याही से साफ-साफ बने होने चाहिएं. रेखाचित्रों की दो प्रतियां—एक मूल तथा दूसरी फोटो प्रतिलिपि—हो तो अच्छा है.

9. लेख वरिष्ठ संपादक, 'आविष्कार', नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन, 20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र, कैलाश कालोनी एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110048 को भेजा जाना चाहिए.

10. 'आविष्कार' में प्रकाशित लेखों पर पारिश्रमिक देने की व्यवस्था है.

पानी के अन्दर देखने की युक्ति

❑ मैंने एक युक्ति तैयार की है जिसकी सहायता से हम नदी, तालाब आदि के पानी के अंदर का दृश्य देख सकते हैं.

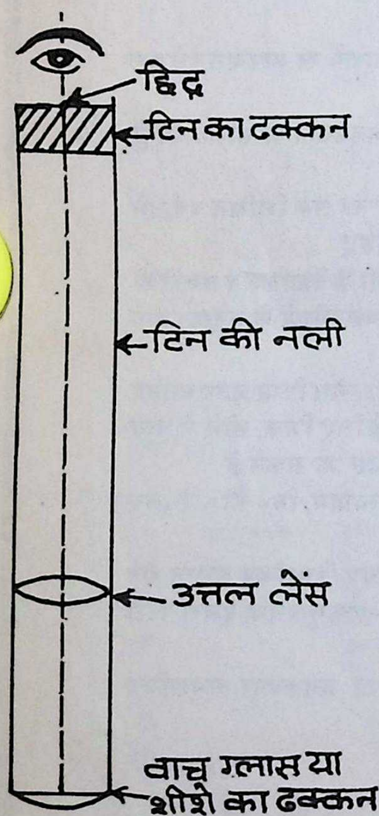
आवश्यक सामान

1. दो या तीन मीटर लंबी टिन की नली जो चूड़ी जितने व्यास की हो. नली एक ओर से बंद हो या इसमें टिन का ढक्कन लगा हो.

2. एक उत्तल लेंस, जो नली में फिट हो जाए.

3. कांच का ढक्कन या घड़ी का शीशा (वाच ग्लास).

सबसे पहले नली के बंद सिरे या ढक्कन में छेद करते हैं. अब खुले हुए सिरे से 10 सेंटीमीटर अंदर उत्तल लेंस को फिट करते हैं. इसके बाद इस खुले सिरे पर कांच का ढक्कन या घड़ी का शीशा लगाते हैं. लीजिए आपकी युक्ति तैयार हो गई है जिसे पानी की सतह से लगा कर आप पानी के नीचे के दृश्य को देख सकते हैं.



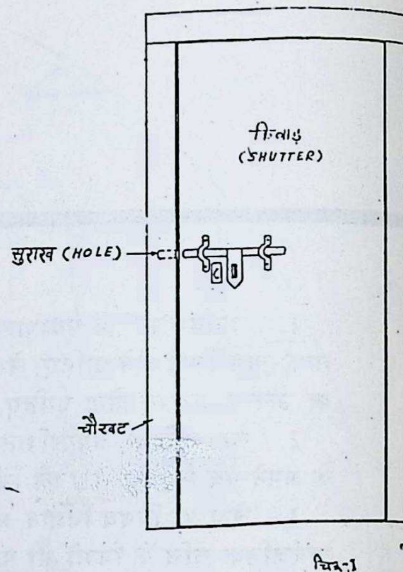
चित्र : पानी के अंदर देखने की युक्ति

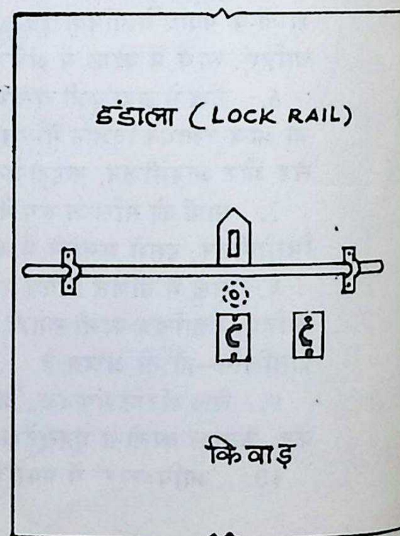
विप्लव कुमार
द्वारा श्री गुलाब चन्द्र प्रसाद 'अक्षय'
पत्राचार पाठ संस्थान,
पटना विश्वविद्यालय, पटना-800005
(बिहार)

स्वचालित विद्युत स्विच

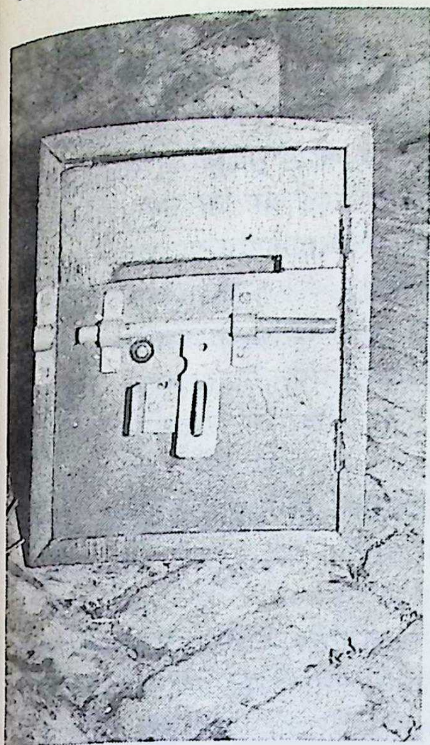
❑ कई बार देखने में आया है कि होटल, छात्रावास, अस्पताल आदि में बिजली को बड़ी लापरवाही से इस्तेमाल किया जाता है. लोग बाहर जाते समय पंखा व बल्ब बंद किए बिना उन्हें चलता या जलता छोड़कर कमरा बंद कर जाते हैं. इस समस्या के समाधान के लिए मैंने एक स्वचालित स्विच विकसित किया है जिसे दरवाजे पर फिट किया जाता है.

जिस समय व्यक्ति बाहर जाता है वह कमरे का दरवाजा बंद करके ताला अवश्य लगाता है इसके लिए उसे दरवाजे पर लगी लॉक रेल को चला कर उसे कुन्डे में लगाकर ऊपर से ताला बंद करना होता है. जैसा कि फोटो और चित्रों में भी दिखाया गया है, इसमें लॉक रेल के मूसले में जुड़ी एक पत्ती है जो कुन्डे पर फिट बैठती है जिस समय यह कुन्डे पर फिट बैठती है और ऊपर से ताला लगाया जाता है तो उस दशा में इस पत्ती के नीचे किवाड़ पर एक ऐसा स्विच लगा दिया गया है जो पत्ती के कुन्डे पर बैठने से दब कर अन्दर की विद्युत-धारा को काट देता है और ताला खोलने पर कुन्डे से पत्ती को उठाते ही यह दबकर बन्द होने वाला स्विच फिर से अन्दर विद्युत चालू कर देता है. व्यक्ति जब अन्दर होगा तो उसे बिजली चालू ही मिलेगी भले ही कमरा बंद हो या खुला हो क्योंकि इसका संबंध ताला बंद करने से रखा गया है.





चित्र-2



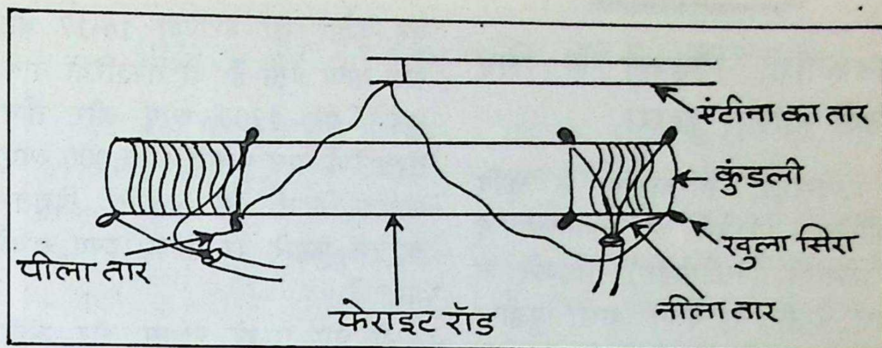
फोटो में जो दूसरा कुन्डा दिखाया गया है दरवाजा खोलने पर उसमें ताला डालने से यह लाभ है कि व्यक्ति के अन्दर रहते हुए बाहर से कमरे को बंद नहीं किया जा सकता है.

सुल्तान सिंह जैन
शांति नगर, रुड़की
(उ०प्र०)

अपने रेडियो की आवाज साफ बनाएं

❑ आप जब अपने रेडियो (ट्रांजिस्टर) पर किसी दूर के स्टेशन का प्रसारण सुन रहे होते हैं, तो आपको उसकी आवाज साफ नहीं सुनाई देती व कभी बहुत धीमी सुनाई देती है.

यहां मैं एक ऐसी विधि बता रहा हूं जिससे आपके रेडियो की आवाज साफ सुनाई देगी व सेल की भी बचत होगी. साथ ही इसमें कुछ खर्चा भी नहीं आएगा.



आपके रेडियो (ट्रांजिस्टर) में फेराइट रॉड पर दो कुंडलियां होती हैं. एक कुंडली कुछ बड़ी व दूसरी छोटी होती है. प्रत्येक कुंडली 3-4 स्थानों पर खुली होती है. फेराइट रॉड व कुंडली को आप रेडियो का ऐंटीना समझ सकते हैं. कुंडली के खुले स्थानों पर अलग-अलग रंगों के तार जुड़े होते हैं. अब आप अपने टी०वी० ऐंटीना से आने वाले दो तारों में से किसी एक तार को बड़ी कुंडली के पीले तार से व छोटी कुंडली के नीले तार से जोड़ दें. अब आप अपने रेडियो की आवाज तेज व साफ सुन सकते हैं और आपका रेडियो बहुत पुराने सेलों से भी चल सकेगा.

परंतु सावधान रहें, जिस समय आप रेडियो चलाएं, आपका टी०वी० न चल रहा हो. क्योंकि इससे रेडियो के खराब होने का डर रहता है.

दिनेश कुमार
'ट' कालोनी, पन्त नगर,
नैनीताल, (उत्तर प्रदेश)

पीड़कनाशी छिड़कने के लिए बैटरी चालित फुहारा

कोयम्बटूर, तमिलनाडु के कृषि इंजीनियरी कालेज के वैज्ञानिकों ने पीड़कनाशी (पेस्टीसाइड) छिड़कने के लिए बैटरी से चलने वाला फुहारा (स्प्रेयर) का विकास किया है जो अभी प्रचलित फुहारों के मुकाबले सस्ता और ज्यादा सक्षम बताया जाता है.

इस फुहारे में दो दिष्ट धारा, सूक्ष्म मोटर (डी सी माइक्रोमोटर), पीड़कनाशी के लिए 10 लीटर क्षमता की टंकी, पुनः आवेशित की जा सकने वाली 6 वोल्ट वाली दो बैटरियां और टंकी से जोड़ने वाली नली होती है. यह फुहारा घूमने वाली दो तश्तरियों (स्पिनिंग डिस्क) के अलावा तीन तश्तरियों के साथ भी उपलब्ध है, दो तश्तरी वाले फुहारे में दो दिष्ट धारा सूक्ष्म मोटर और तीन वाले में तीन दिष्ट धारा सूक्ष्म मोटरें होती हैं.

दो तश्तरी वाले फुहारे से एक घंटे में 0.30 एकड़ क्षेत्र और तीन तश्तरी वाले फुहारे से 0.45 एकड़ क्षेत्र का छिड़काव किया जा सकता है जबकि परंपरागत हस्तचालित नैपसैक फुहारे से 0.1 हेक्टेयर क्षेत्र का छिड़काव किया जा सकता है. नए फुहारों के उपयोग से पानी की खपत 40 प्रतिशत कम हो जाती है. और साथ ही छिड़काव की लागत भी कम हो जाती है. इससे छिड़काव करने में प्रति हेक्टेयर 15 रुपए खर्चा आता है जबकि विद्युत-चालित फुहारे में 30 रुपए और हस्तचालित फुहारे में 45 रुपए खर्चा आता है.

एक बार आवेशित कर लेने पर फुहारे की बैटरियां 16-17 घंटे तक काम देती हैं. दो तश्तरियों वाले फुहारे पर 1700 रुपए और तीन तश्तरियों वाले फुहारे पर 2,300 रुपए लागत आती है जबकि विद्युत-चालित फुहारे पर 3000 रुपए खर्चा आता है.

ये नए फुहारे मध्यम और ऊंची फसलों, जिनकी ऊंचाई पीड़कनाशी टंकी से कम हो, के लिए उपयुक्त है.

त्वचा प्रत्यारोपण में उपयोगी जोंक

चिकित्सा विज्ञान में जोंकों के इस्तेमाल की तैयारी आजकल जोर-शोर से चल रही है. प्राचीन काल के चिकित्सकों का विचार था कि रोगी के शरीर में रोग के कीटाणु रक्त में होते हैं. इसलिए पुरातन काल में ब्रिटेन में जोंक को रोगी का खून चूसने के लिए रक्त नलिकाओं से चिपका दिया था. ब्रिटेन में यह पद्धति 20वीं शताब्दी तक इस्तेमाल में लाई जाती रही. यह प्रयोग इतना प्रचलित था कि लंदन के बार्थोलोम्यू अस्पताल में सन् 1837 में पचास हजार रोगियों पर लगभग 96,000 जोंकों का प्रयोग किया गया था. इस कारण जोंकों की संख्या इतनी कम हो गई थी कि उन्हें विदेशों से आयात करना पड़ता था. बाद में बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में आधुनिक चिकित्सा पद्धति के प्रचलित होने से इसका इस्तेमाल बंद हो गया.

अब जोंकों का इस्तेमाल पुनः शुरू करने का सुझाव दिया गया है. कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि त्वचा प्रत्यारोपण यानी त्वचा की प्लास्टिक सर्जरी के मामले में इनका उपयोग लाभकारी हो सकता है. त्वचा प्रत्यारोपण में एक समस्या यह सामने आती है कि जब तक त्वचा स्वस्थ नहीं होती, तब तक रक्त संचार की प्रक्रिया त्वचा में सामान्य नहीं हो पाती. इस कारण रक्त संकुलता यानी रक्त के एक ही स्थान पर जमा होने की समस्या सामने आती है. रक्त संकुलता के कारण त्वचा में आक्सीजन की मात्रा में कमी आ जाती है. इस कारण कभी-कभी त्वचा प्रत्यारोपण असफल हो जाता है. इस समस्या से

रेशम के कीड़ों के लिए नया कृत्रिम भोजन

जापान के इंस्टिट्यूट आफ सेरिकल्चर एंड इंसेक्टोलाजी और डेयनिप्पन रॉ सिल्क फाउंडेशन ने मिल कर रेशम के कीड़ों के लिए कृत्रिम भोजन विकसित किया है जो प्राकृतिक खाने की तुलना में 30 से 40 प्रतिशत सस्ता बताया जाता है.

परंपरागत कृत्रिम भोजन सिर्फ एक से दो साल तक के कीड़ों को खिलाया जा सकता है, जबकि नया कृत्रिम भोजन तीन से चार साल तक के कीड़ों को खिलाया जा सकता है. इससे ककूनों के सालाना उत्पादन के वर्तमान 3 से 4 गुना से बढ़कर 10 तक होने की संभावना है.

सोयाबीन, मक्का, तोरिया तेल, खनिज और विटामिनों से बना यह नया कृत्रिम भोजन 20 मिलीमीटर लंबी और 10 मिलीमीटर व्यास के दानों में तैयार किया जाता है. कीड़ों को परोसने से पहले इन दानों को पानी में भिगोया जाता है.

बचने के लिए प्लास्टिक सर्जनों ने रोपित त्वचा पर जोंक का इस्तेमाल करने का सुझाव दिया है. प्रयोगों से यह पाया गया है कि जोंक के खून चूसने के बाद त्वचा से लगभग दो घंटे तक खून रिसता है. एक बार खून रिसना शुरु होने के बाद रक्त संकुलन समाप्त हो जाता है और त्वचा में खून का प्रवाह शुरु हो जाता है, जिससे त्वचा जल्दी ही सामान्य हो जाती है.

आंतरिक अंगों को देखने के लिए नई चुंबकीय पद्धति

अब तक मानव शरीर के अंदर झांकने के लिए डॉक्टर एक्स-रे, अल्ट्रासाउंड या कैट स्कैन का सहारा लिया करते थे. अब एक नई विकसित—मैगनैटिक रेजोनेन्स इमेजिंग (एम० आर० आई०) पद्धति द्वारा शरीर के सूक्ष्म से सूक्ष्म भाग को आसानी से देखा जा सकता है. यह तकनीक इस सिद्धान्त पर कार्य करती है कि शरीर की हर कोशिका में पानी होता है और चुम्बकीय क्षेत्र में हाइड्रोजन के प्रोट्रान को आसानी से देखा जा सकता है.

इस तकनीक में रोगी को एक धात्विक बॉक्स में रखा जाता है जो चुम्बकीय होता है. चुम्बकीय क्षेत्र प्रवाहित होने पर पानी में मौजूद हाइड्रोजन की स्थिति में परिवर्तन होता है, जिसे एक कम्प्यूटर की मदद से देखा जा सकता है. इस तकनीक के उपयोग से न केवल शरीर के किसी अंग विशेष बल्कि उस अंग में स्थित कोशिकाओं को भी बड़ी आसानी से देखा जा सकता है. इस तकनीक का एक अन्य फायदा यह भी है कि इसमें एक्स-रे की तरह विकिरण का खतरा नहीं रहता.

जल अपघटन के लिए प्रकाशिक उत्प्रेरक

जापान के टोकियो इंस्टिट्यूट आफ टेक्नोलॉजी और निकान ने मिल कर एक नए किस्म का प्रकाशिक उत्प्रेरक विकसित किया है जो सूर्य के प्रकाश की सहायता से पानी को हाइड्रोजन और आक्सीजन में अपघटित करता है.

यह उत्प्रेरक पोटेशियम नायोबेट का सम्मिश्रण आक्साइड है जिसमें लेड मिला होता है और परतदार संरचना इसकी विशेषता है. उत्प्रेरक को पानी में डालने और दृश्य किरणों से किरणित करने पर रेडाक्स अभिक्रिया शुरु हो जाती है. इसमें इलेक्ट्रोन परतों के बीच गति करने लगते हैं और इसके परिणामस्वरूप अलग-अलग परतों में हाइड्रोजन और आक्सीजन बनती है.

अनुसंधानकर्ताओं ने इस बात की भी पुष्टि की है कि पोटेशियम नायोबेट पानी को उस समय दक्षता से अपघटित करता है जब इसे पराबैंगनी किरणों से किरणित किया जाता है. उनका मानना है कि जब इसमें आंशिक रूप से लेड मिला होता हो तो यह दृश्य किरणों की मदद से पानी को अपघटित कर सकता है.

सांप भगाने के लिए शाकीय घोल

पुणे की एक नाशीजीव नियंत्रक इकाई ने एक ऐसा शाकीय (हर्बल) घोल विकसित किया है जो सांपों को भगाने में उपयोगी बताया जाता है. यह घोल पर्यावरण और जंतुओं को कोई नुकसान नहीं पहुंचाता है.

इस शाकीय घोल को प्याज, लहसुन और हींग से तैयार किया गया और रंगीन बनाने के लिए इसमें कापर सल्फेट मिलाया गया जिस स्थान से सांपों को दूर रखना हो वहां यह घोल छिड़क दिया जाता है.

सांप की ज्ञानेंद्रिय उसके मुंह में होती है और किसी वस्तु को जानने के लिए यह उस वस्तु को अपनी जीभ द्वारा मुंह में लाता है. इस शाकीय घोल के संपर्क में आते ही चिड़चिड़ाहट होने लगती है और वह उस स्थान से भाग जाता है.

राजस्थान के बाड़मेर के रेतीले इलाके में, जहां बहुत ही जहरीले सांप बहुतायत में पाए जाते हैं छाया के लिए सैनिकों और मजदूरों के तंबुओं में घुस आते हैं, इस शाकीय घोल को सांपों को भगाने में असरदार पाया गया है.

भूल सुधार

- 'आविष्कार' के दिसम्बर 1991 के अंक में 'आविष्कार मंच' के अंतर्गत प्रकाशित प्रलेख—'अपने आप खुलने/बंद होने वाली टोंटी' में प्रकाश उत्सर्जक डायोड (एल ई डी) के स्थान पर कृपया लाइट डिपेंडिंग रेसिस्टेंस (एल डी आर) पढ़ें.
- 'आविष्कार' के मई 1992 अंक में 'विज्ञान साहित्य चर्चा' के अंतर्गत प्रकाशित 'शरीर एक समर भूमि' पुस्तक के समीक्षक डा० पी०के० मुखर्जी हैं.

कितना स्वस्थ है कूड़े-करकट के प्रति आपका दृष्टिकोण ?

□ डा० शिवगोपाल मिश्र तथा डा० दिनेश मणि

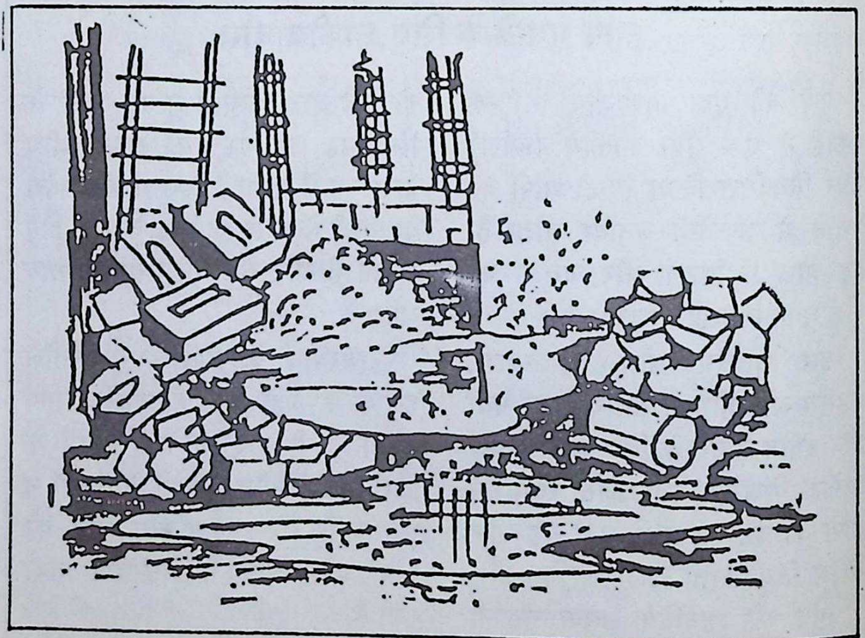
□ प्राचीन समय में जनसंख्या का घनत्व कम होने से कूड़े-करकट का निस्तारण कोई समस्या नहीं थी और पर्यावरण भी प्रदूषित नहीं था. किन्तु वर्तमान में द्रुत गति से बढ़ती जनसंख्या एवं औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप कूड़े-करकट के उत्पादन में भी वृद्धि हुई और इसके निपटान की समस्या सामने आने लगी. यद्यपि इन पदार्थों का सूक्ष्म जीवों द्वारा निश्चित मात्रा में अपघटन होता रहता है किन्तु जब कूड़ा-करकट तथा मल अत्यधिक हो जाता है तो फिर इनका अपघटन सम्भव नहीं हो पाता. ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पन्न कूड़े-करकट के अपघटन की ज्यादा समस्या नहीं रहती क्योंकि इसमें अधिकतर फसलों के अवशेष आदि शामिल होते हैं किन्तु नगरीय पर्यावरण में उत्पन्न कूड़े-करकट में कांच, प्लास्टिक के थैले, टिन, डिब्बे, बोतलें आदि प्रमुख हैं. ये सभी व्यर्थ पदार्थ मनुष्य की सभ्यता के प्रतीक माने जाते हैं.

भारत में कूड़ा-करकट उत्पादन की दर प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 0.5 किलोग्राम है. यदि देश के प्रमुख नगरों में कूड़े-करकट उत्पादन का प्रतिरूप देखा जाए तो इसमें बहुत अधिक विभिन्नता है. उदाहरण के लिए कलकत्ता महानगर में कूड़ा-करकट उत्पादन की औसत दर न्यूनतम प्रति व्यक्ति 0.35 किलोग्राम है जबकि अधिकतम उत्पादन दर प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 0.57 किलोग्राम है जबकि पूना और नागपुर शहरों में औसत उत्पादन 0.30 किलोग्राम प्रति व्यक्ति प्रतिदिन है. हमारे देश की तुलना में विकसित देशों में व्यक्तियों के रहन-सहन का स्तर ऊंचा होने के कारण प्रति व्यक्ति कूड़े-करकट उत्पादन की दर तीन से चार गुना अधिक है. उदाहरण के लिए आस्ट्रेलिया में प्रति व्यक्ति कूड़ा-करकट के उत्पादन की दर 2 किलोग्राम है जबकि अमेरिका में यह 1.20 किलोग्राम, तथा पश्चिमी जर्मनी में एक किलोग्राम है.

सन् 1984 में लगाए गए एक अनुमान के अनुसार अपने देश में प्रतिवर्ष लगभग 2,733 लाख टन वनस्पति आधारित कचरा उत्पन्न होता है. इसमें खाद्यान्न फसलों से संबंधित कचरे की मात्रा सर्वाधिक अर्थात 1968 लाख टन होती है. उपर्युक्त अनुमान के अनुसार प्रति वर्ष दालों का कचरा 144 लाख टन, तिलहनी फसलों के कचरे की मात्रा 58 लाख टन, रेशेदार फसलों का कचरा 174 लाख टन, बागानी फसलों का कचरा 344 लाख टन, फलों का कचरा 33 लाख टन, सब्जियों का कचरा 12 लाख टन आंका गया है. इसके पूर्व सन् 1978-79 में अलग-अलग फसलों के कचरे की कुल मात्रा 1852.63 लाख टन आंकी गई थी. इस मात्रा में गेहूं के पौधों के अवशेषों की मात्रा 349.82 लाख टन,

सारणी–1. भारत के प्रमुख बड़े नगरों में कूड़े-करकट का उत्पादन

नगर	कुल उत्पादन (टन प्रतिदिन)
कलकत्ता	4,000
बम्बई	3,500
दिल्ली	3,000
मद्रास	2,200
बंगलौर	1,000
कानपुर	850
लखनऊ	700
चण्डीगढ़	500
वाराणसी	366



धान के पौधों के अवशेषों की मात्रा 538.29 लाख टन, ज्वार के अवशेषों की मात्रा 115.63 लाख टन, मक्का के अवशेषों की मात्रा 62.19 लाख टन, बाजरा के अवशेषों की मात्रा 82.83 लाख टन, जौ के अवशेषों की मात्रा 31.80 लाख टन, गन्ना की खोई तथा पत्तियों की मात्रा 156.45 लाख टन, आलू के पौधों के कचरे की मात्रा 50.62 लाख टन, मूंगफली के अवशेषों की मात्रा 95.80 लाख टन शामिल है. उपर्युक्त आकलन में कई लाख टन नीम की निबौली, आम की हजारों टन गुठलियों और लाखों टन खरपतवारों से उत्पन्न कचरे की मात्रा शामिल नहीं है.

अधिकांश लोग कचरे से कम्पोस्ट खाद बनाना या बायोगैस के रूप में इस्तेमाल करना ही इसका सदुपयोग समझते हैं जबकि इसके अन्य उपयोग भी हो सकते हैं यथा-चारा उत्पादन, कागज उत्पादन, तेल, एल्कोहल उत्पादन आदि.

नगरीय कूड़े-करकट का इस्तेमाल अधिकतर निम्न भू-भाग वाले स्थानों को पाटने में किया जाता है किन्तु ऐसा करना अधिक उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि ऐसे कचरे में कुछ उपयोगी सामग्री भी हो सकती है जिसे अन्य उद्योगों के लिए कच्चे पदार्थ के रूप में भी इस्तेमाल किया जा सकता है अर्थात इस प्रकार कचरे के उपयोग से पुर्नचक्रण (रीसाइक्लिंग) नहीं हो पाता. वर्तमान समय में ऊर्जा संकट और पर्यावरण-प्रदूषण जैसी समस्याओं के निराकरण हेतु कचरे के फिर से उपयोग अर्थात पुर्नचक्रण की सम्भावनाओं पर ध्यान देने की आवश्यकता है. बड़े नगरों में कचरे से कोयले के टुकड़े, प्लास्टिक की थैलियां, कागज, टाट बोरियों आदि को बीनकर बहुत से व्यक्ति अपनी जीविका चलाते हैं. एक अनुमान के अनुसार कलकत्ते में 2,000 स्त्रीपुरूष कचरे की वस्तुएं बीनते हैं. विदेशों में कचरे की छंटाई मशीनों से की जाती है और कूड़ा-करकट जला दिया जाता है जिससे उत्पन्न उष्मा का सदुपयोग होता है. भारत के नगरों एवं महानगरों के कूड़ा-करकट से यदि विद्युत उत्पन्न की जाए तो इन नगरों का विद्युत संकट एक सीमा तक समाप्त हो सकता है. एक अनुमान के अनुसार यदि कलकत्ता, बंबई, दिल्ली, और मद्रास के शहरों के 50 प्रतिशत कूड़े-करकट से बिजली उत्पादन करें तो उसमें से 600 मेगावाट बिजली पैदा हो सकती है. इस कूड़ा-करकट की उष्मा ऊर्जा 1.200 किलो कैलोरी प्रति किलोग्राम से लेकर 2000 किलो कैलोरी प्रति किलोग्राम हो सकती है.

कूड़े के कुछ अंश का किण्वन भी किया जा सकता है जिससे एल्कोहल तैयार होता है जो वाहनों में ईंधन के रूप में उपयोग किया जा सकता है. कचरे के सदुपयोग के लिए कचरे की प्रकृति के बारे में गंभीर अध्ययन की आवश्यकता है. हमारे देश में कूड़े-करकट का अधिकांश भाग वनसपतिक अवशेष के रूप में रहता है. यह अवशेष रासायनिक दृष्टि के लिग्नोसेलुलोज होता है. इस लिग्नोसेलुलोज को सीधे आहार, ईंधन तथा चारे में बदला जा सकता है किन्तु इसके लिए सूक्ष्म जीव विज्ञान, रसायन विज्ञान, एंजाइम टेक्नोलॉजी, कृषि व रसायन इन्जीनियरी तथा सामाजिक अर्थशास्त्र को मिलजुलकर प्रयास करने होंगे. कचरे के सदुपयोग की दिशा में कचरे को रूपांतरित करने में होने वाला व्यय बहुत अधिक नहीं होना चाहिए. साथ ही यह भी ध्यान में रखना होगा कि जो प्रौद्योगिकी किसानों को दी जाए वह सरल और सुविधाजनक हो ताकि उन्हें इसे अपनाने में असुविधा न हो. ❑

उत्तराखंड में 'चिपको', कर्नाटक में 'अप्पिको'

❑ **जी॰ वेंकटरमनी**

❑ हिमालय की पर्वत श्रृंखलाओं में प्रारंभ चिपको आंदोलन का नया संस्करण उस पश्चिमी घाट श्रृंखला में अवतरित हो गया है जो दक्षिण भारत में उत्तर से दक्षिण में तीन हजार किलोमीटर तक फैली हुई है. चिपको आंदोलन के नेता सुंदरलाल बहुगुणा की कर्नाटक यात्रा के कुछ ही दिन बाद साल्कानी तथा बतलेगाड़े गांवों के कोई 150 लोगों वे वृक्ष काटने वाले ठेकेदारों को रोकने के लिए पास के जंगल के वृक्षों को अपनी बांहों में घेर लिया. इस कार्रवाई के द्वारा 600 ऐसे हरे दरख्तों के गिराए जाने से बचा लिया गया जिन्हें काटने के लिए चिन्हित किया जा चुका था. इन वृक्षों की चौकीदारी ग्रामवासियों द्वारा कई महीनों तक की गई और अंत में टिंबर कंपनी को इन्हें काटने का विचार ही त्याग देना पड़ा.

इस आंदोलन के कारण वन-विभाग को लकड़ी कटाई करने वाली कंपनियों द्वारा की जाने वाली कई अनियमितताओं का पता चला तथा सर्वेक्षण के बाद उसने भी महसूस किया कि ग्रामवासियों का आंदोलन वाजिब था. इस आंदोलन की सफलता से प्रेरित हो अन्य ऐसे इलाकों में भी कार्रवाई शुरु

की गई जहां हरे-भरे वृक्षों को काटने के लिए चिन्हित किया गया था तथा जहां उनकी जगह सागौन और यूकेलिप्टस के पेड़ लगाए जाने थे. इन लोगों ने भी कोई 12,000 वृक्षों को कटने से बचाया. इस आंदोलन ने समूचे राज्य का ध्यान आकर्षित किया तथा एक इलाके में वन-मंत्री ने अपने दौरे के दौरान सारे हरे वृक्षों की कटाई को प्रतिबंधित कर दिया. अधिकारियों ने नियम बना दिया कि जंगलों से केवल सूखी तथा सूख रही लकड़ी ही बाहर ले जाई जा सकेगी और वह भी एक निश्चित प्रक्रिया के तहत. कागज तथा प्लायवुड उद्योगों को भी स्वीकृत से ज्यादा मात्रा में कटाई करने से रोका गया.

अप्पिको आंदोलन की एक अन्य विशेषता यह है कि वह कर्नाटक की परंपरागत लोक-शैली 'यक्षगान' के माध्यम से वृक्षों के महत्व के पक्ष में नुक्कड़ नाटकों तथा गीतों के माध्यम से कई पद हैं तथा वह एक घंटे तक चलता है. अप्पिको के एक अन्य नेता पांडुरंग हेगड़े का कहना है कि उनके पारिस्थितिकी संरक्षण के धर्म युद्ध में ये गीत और नाटक बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निबाह रहे हैं. इनके अलावा "इको शिविर" तथा ग्रामवासियों के धरना आंदोलन भी काफी सफल हो रहे हैं. इस आंदोलन के द्वारा वृक्षों के अलावा ऊर्जा के अन्य स्रोतों की जानकारी दी जाती है, धुंआरहित चूल्हों का प्रचार तथा अवक्रमित वनों में वृक्षारोपण भी किया जाता है.

आंदोलन की एक प्रमुख गतिविधि गांव की गोचर भूमियों को फिर से हराभरा बनाना भी है. "सामाजिक घेराबंदी" नामक इस योजना के अंतर्गत ग्रामवासी तय कर लेते हैं कि ये इलाके वन तथा चरनोई के लिए रहेंगे. इस कार्यक्रम के द्वारा कोई 200 हेक्टेयर क्षेत्र के उजड़े वनों को ग्रामवासियों ने अपने

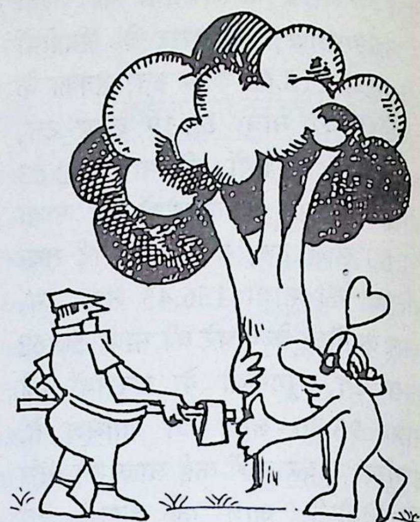
दुनिया के कई हिस्सों में गलत वन-नीतियों, खासतौर से एक ही प्रजाति के वृक्ष उगाने तथा स्थानीय लोगों को उनमें शामिल न किए जाने, से पर्यावरण की जो हानि हुई है उससे रोष फैला है. लेकिन भारत के पश्चिम घाटों में जो अप्पिको आंदोलन चला है उससे पता चलता है कि इस सिलसिले में नए तरीके खोजना संभव है.

जन-मत बना रहा है. 43 वर्षीय अप्पिको नेता महाबलेश्वर हेगड़े द्वारा रचित यह 'यक्षगान' जिला मुख्यालयों पर युवा लड़के-लड़कियों की टोलियां रोज गाती हैं:

"हे हरित वनों, अब हम तुम्हारे गुण गाते हैं, कृपया हमें क्षमा करो, हमने तुम्हारे साथ निर्दयता का बर्ताव किया, अब हम अपने कृत्यों पर पश्चाताप करते हैं. कृपया हमें क्षमा करें और अपना आशीर्वाद दें." इस गीत में

परिश्रम से हरा कर दिया है.

इन इलाकों के किसान अब जंगल में जमीन पर गिरे पत्तों को बटोरकर अपने खेतों को उर्वर बना रहे हैं तथा केवल टूटी डालियों का उपयोग चूल्हों में जलाने के लिए कर रहे हैं. अप्पिको आंदोलन के कार्यकर्ता इन वनों की सतत चौकीदारी करते हैं. ऐसे ही एक स्वयंसेवी वन-रक्षक 63 वर्षीय मारु मुकरी कहते हैं: "इस आंदोलन के इतनी तेजी से फैलने का कारण गलत



वन नीतियां ही थीं. वन-विभाग ने प्राकृति वनों को काटकर भारी मात्रा में एक जैसे वृक्ष व्यापारिक उद्देश्यों से लगाने शुरू कर दिए थे. इससे स्थानीय लोगों की सुख-सुविधाओं की कीमत पर वन-विभाग राजस्व अर्जित कर रहा था. लोगों की परेशानियां बहुत बढ़ीं. कृषि पैदावार घट गई, चारा-दाना, हरी पत्तियों का खाद तथा ईंधन मिलना बंद हो गया.

कर्नाटक के उत्तरी कनारा क्षेत्र में पिछले तीस बरसों के दौरान हरित आवरण 81 से घटकर 25 प्रतिशत रह गया है जिसका नतीजा यह हुआ है कि भूक्षरण के कारण अब उर्वरता और पैदावार घट गई है. महाबलेश्वर के अस्सी वर्षीय पिता नारायण हेगड़े बतलाते हैं कि 'जमीनों की उर्वरता नष्ट हो गई है." पहले जमाने में हम लोग प्राकृतिक खाद के द्वारा ही प्रति हेक्टेयर जो 2500 किलोग्राम धान उगाते थे उसकी बराबरी आज सुधरे तरीकों और बेहतर किस्मों के बावजूद नहीं हो पा रही है. तब जंगल इस कदर घने और



हरे थे कि जंगली जानवरों के डर से कोई दिन में भी उनमें प्रवेश करने से डरता था. अब वे अधिकांश तौर पर खत्म हो गए हैं.

''मौसम और वर्षा की स्थिति भी बदल गई है. अभी चालीस बरस पहले तक नियमित वर्षा होती थी, नदियां भरपूर रहती थीं तथा ऋतुएं स्पष्ट रूप से विभाजित थीं. अब गर्मिया लंबी हो गई हैं और जाड़ा कम हो गया है जो हमारी फसलों को विपरीत रूप से प्रभावित कर रहा है.''

वैसे इस हालत के लिए पांडुरंग हेगड़े सिर्फ वन विभाग को ही दोषी नहीं मानते. आबादी की वृद्धि तथा लोगों की गलत प्रथाओं के कारण भी वनों को नुकसान पहुंचा है. अप्पिको आंदोलन के द्वारा लोगों को वनों के प्रति उनके कर्तव्यों की याद दिलाई जा रही है. ''सरकार को वनों की व्यापारिक कटाई रोकने के पहले हमने लोगों को ही हरे वृक्षों को न काटने के लिए राजी किया है. हमें दूसरों के सामने खुद आदर्श उपस्थित करना चाहिए. हम लोगों का हृदय परिवर्तन कर उन्हें प्रकृति के साथ मित्रवत रिश्ते स्थापित करने का महत्व समझा रहे हैं.'' हेगड़े कहते हैं, ''इसके लिए हमने पश्चिम घाट के भीतरी इलाकों में ठेठ निचले स्तर से आंदोलन शुरू किया है. हमने सरकार को अपनी वन-नीति बदलने के लिए भी बाध्य किया है. वन विभाग ने भी लोगों द्वारा लघु वन उत्पादों जैसे जड़ी-बूटियां, फल तथा शहद आदि प्राप्त करने पर लगी बंदिशों को ढीला किया है. यूकेलिप्टस-रोपण पर रोक लगा दी गई है.''

''अप्पिको आंदोलन का व्यापक उद्देश्य कायम रहने योग्य जीवनशैली विकसित कर बच्चों के माध्यम से इस दर्शन को आगामी पीढ़ियों तक पहुंचाना है.'' ❑

अब लोहा घटाएगा वायुमण्डल के तापमान को

❑ **अखिलेश कुमार सिंह**

❑ वायुमण्डल में कार्बन डाइआक्साइड की बढ़ती मात्रा और उसके कारण तापमान में होने वाली वृद्धि इस समय विश्वव्यापी चिन्ता का विषय है. दुनिया भर के नीति निर्धारक और वैज्ञानिक इस समस्या का समाधान ढूंढ़ने में जुटे हैं. अगर समय रहते इसका निराकरण नहीं हुआ तो भविष्य में होने वाले जलवायवीय परिवर्तन विश्व समुदाय के सामने गंभीर संकट उपस्थित कर देंगे. इस संदर्भ में अमेरिका के जान मार्टिन ने एक रोचक सुझाव पेश किया है.

उनका कहना है कि अंटार्क्टिका के पास समुद्र में कुछ लाख टन लोहा डाल कर वायुमण्डल में कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा कम की जा सकती है. मार्टिन के अनुसार लोहे की उपस्थिति में प्लवक वनस्पतियां बहुत तेजी से पनपेंगी और प्रकाश संश्लेषण के दौरान वायुमण्डल से भारी मात्रा में कार्बन डाइआक्साइड का अवशोषण करेंगी. इससे बढ़ते हुए तापमान को कम करने में सहायता मिलेगी. यद्यपि इस सुझाव का कोई जोरदार स्वागत तो नहीं हुआ है लेकिन समस्या की गंभीरता को देखते हुए इसकी बिल्कुल उपेक्षा भी नहीं की जा सकती.

मार्टिन के सुझाव को बल प्रदान करने वाले कुछ ठोस आधार भी मौजूद हैं. वे काफी लम्बे समय से सूक्ष्म मात्रिक तत्वों के अध्ययन से जुड़े रहे हैं और इस दौरान उन्होंने समुद्र के पानी में लोहा सहित अनेक सूक्ष्म मात्रिक तत्वों की सान्द्रता का आमापन किया है. उनका विश्वास है कि अंटार्क्टिका के निकटवर्ती समुद्र में प्लवक वनस्पतियों की क्षीण वृद्धि का कारण पानी में लोहे की अतिन्यूनता है. वैसे प्लवकों के अस्तित्व के लिए लोहे की सूक्ष्म मात्रा की ही जरूरत होती है लेकिन उसका उपलब्ध होना निहायत जरूरी है क्योंकि उसके अभाव में प्लवकों का अस्तित्व बना रहना मुश्किल है. क्लोरोफिल, डी आक्सीराइबो न्यूक्लिक अम्ल तथा नाइट्रेट रिडक्टेज जैसे महत्वपूर्ण अवयवों के संश्लेषण के लिए उन्हें लोहे की सख्त जरूरत होती है.

समुद्र के पानी में सूक्ष्म मात्रिक तत्वों की सांद्रता के आमापन के दौरान मार्टिन ने पाया कि उसमें लोहा अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा में विद्यमान है, उनके ही शब्दों में कहें तो 'निराशाजनक स्तर तक न्यून मात्रा में.' ब.द में संयोगवश उनकी नजर एक ऐसे शोध निबन्ध पर पड़ी जिसमें 'वायुमंडलीय धूल' के विशेषज्ञ बाब ड्यूस ने दावा किया था कि समुद्र के पानी में विद्यमान लोहे का अधिकांश वायुमण्डल से निक्षेपित होने वाली धूल

से प्राप्त होता है. इसके आधार पर मार्टिन ने निष्कर्ष निकाला कि चूंकि समुद्र के पानी में लोहा अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा में ही पाया जाता है इसलिए प्लवकों की जरूरत का लगभग 95 प्रतिशत लोहा वायुमण्डलीय धूल से ही प्राप्त होता है.

लेकिन अगर किसी स्थान विशेष के आस-पास वायुमंडल बिल्कुल धूल रहित हो तब क्या होगा? जाहिर है कि वहां समुद्र जल में लोहा नहीं के बराबर होगा. अंटार्क्टिका के निकटवर्ती समुद्र में ऐसी ही स्थिति है. अंटार्क्टिका के ऊपर से होकर गुजरने वाली हवाएं एक ऐसे भूभाग के ऊपर से गुजरती हैं जो लगातार बर्फ से ढका रहता है. इन हवाओं में न तो धूल होती है और न ही लोहा.

छिछले तटवर्ती जल में लोहे की प्रचुर मात्रा होती है क्योंकि कम गहराई के कारण वह तली में मौजूद लौह-धनी कीचड़ के निकट सम्पर्क में रहता है. इसीलिए अंटार्क्टिका के तटीय समुद्र में ही प्लवकों की प्रचुर वृद्धि परिलक्षित होती है. तट से दूर 'खुले समुद्र' में उन्हें लोहे की उसी सूक्ष्मातिसूक्ष्म मात्रा से अपना काम चलाना पड़ता है जो पानी में होती है. इसलिए वहां उनकी वृद्धि अत्यंत क्षीण होती है.

अपने तर्क को बल प्रदान करने के लिए मार्टिन ने कुछ सीधे प्रयोग भी किए. उन्होंने अलास्का की खाड़ी में लोहे की सांद्रता का आमापन करने के बाद वहां से पानी के नमूने एकत्र किए. इन नमूनों को उन्होंने दो समूहों में बांट लिया. एक समूह के नमूनों को तो ज्यों का त्यों रहने दिया गया जबकि दूसरे समूह के नमूनों में लोहे की कुछ मात्रा मिला दी गई. साढ़े चार दिन के बाद पानी के इन नमूनों का निरीक्षण करने पर मार्टिन ने पाया कि जिन बोतलों में लोहा मिलाया गया था उनमें प्लवकों की मात्रा सामान्य नमूनों से नौ गुनी अधिक थी. इससे साफ जाहिर होता है कि अतिरिक्त लोहे ने प्लवकों की वृद्धि को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई.

पूर्ववर्ती अध्ययनों और उपरोक्त प्रयोग के परिप्रेक्ष्य में मार्टिन को पूरा विश्वास है कि अगर समुद्र में प्रचुर मात्रा में लौह उर्वरक डाला जाए तो प्लवक वनस्पतियों की वृद्धि काफी तेज हो सकेगी. उन्होंने हिसाब लगाया है कि अगर समुद्र में तीन लाख टन लोहे का छिड़काव किया जाए तो प्लवक वनस्पतियां दो अरब टन कार्बन को जैव पदार्थ में रूपान्तरित कर डालेंगी. यह कार्बन वे वायुमंडल से ही प्राप्त करेंगी इसलिए कार्बन डाइआक्साइड के कारण तापमान में होने वाली वृद्धि भी उसी अनुपात में कम होगी. वायुमंडल से खींचा गया यह कार्बन प्लवकों की मृत्यु के उपरान्त अन्ततः समुद्र की तली में पहुंच जाएगा.

बहुत से लोग मार्टिन के सुझाव से सहमत नहीं हैं. उन्हे इस उपाय के प्रभावी होने में संदेह है. ऐसे लोगों का कहना है कि समुद्र में लौह उर्वरक डालने से वायुमंडल से वस्तुतः उतनी मात्रा में कार्बन डाइआक्साइड नहीं हटाई जा सकेगी जितना मार्टिन ने हिसाब लगाया है. यह मात्रा मार्टिन के आकलन से बहुत ही कम होगी. कुछ लोगों का विचार है कि ऐसे किसी प्रयोग के प्रतिकूल परिणाम भी हो सकते हैं. ऐसे लोगों को आशंका है कि लौह उर्वरक प्लवकों की ऐसी अवांछित प्रजातियों की वृद्धि को प्रोत्साहित कर सकता है जिनसे खाद्य श्रृंखला में परिवर्तन हो सकता है.

इन तमाम आशंकाओं के बावजूद मार्टिन के सुझाव का समर्थन करने वालों की संख्या भी कम नहीं है. ऐसे लोगों की राय है कि समुद्र के सीमित क्षेत्र में लौह उर्वरक डाल कर मार्टिन के नुस्खे का परीक्षण तो किया ही जाना चाहिए. □

दुर्लभ होते वन्य प्राणियों का संरक्षण जरूरी

□ संजय कुमार घोरसे

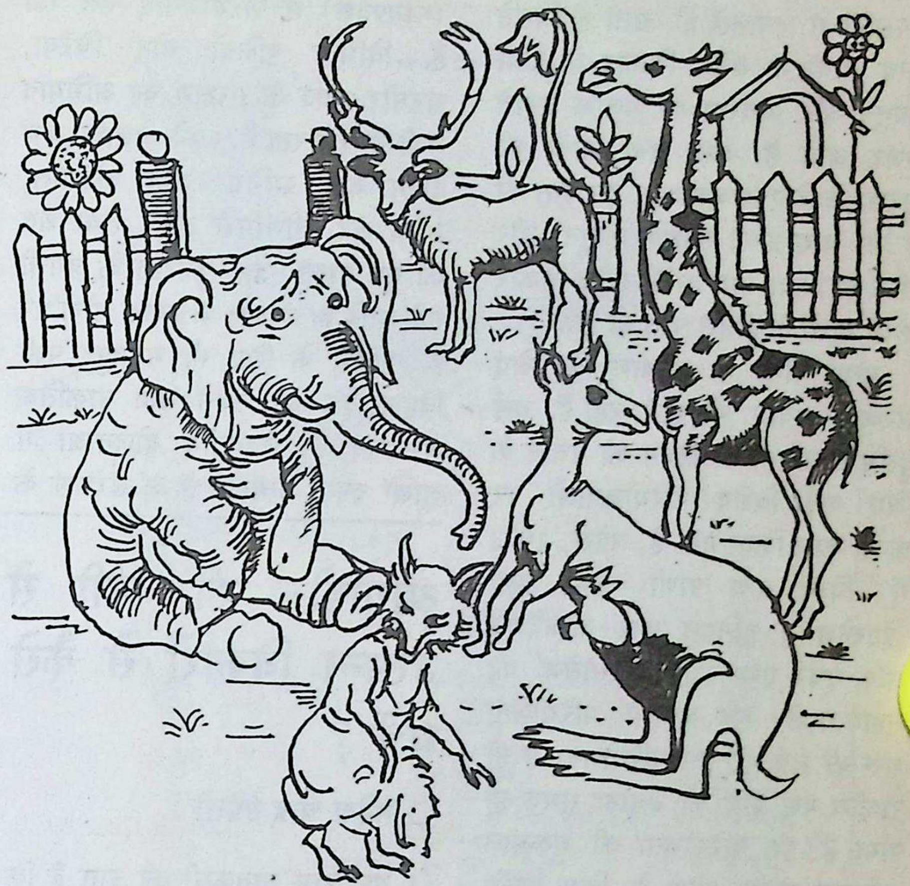
□ आज सिर्फ हमारे देश के ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व के वन्य-प्राणियों पर संकट के क्रूर बादल मौत बनकर मंडरा रहे हैं. वन्य जीवों के लगातार हो रहे विनाश के कारण बहुत-सी प्रजातियां लुप्त हो चुकी हैं. वन्य जीवों की कुछ प्रजातियां जैसे गैंडा, सिंह, हाथी, घड़ियाल, बारहसिंगा, खरमोर, सोन चिरैया—आदि जो कभी भारत में बहुतायत में पाए जाते थे आज विलुप्तता के कगार पर हैं. गुलाबी सिरवाली बत्तख, हिमालयी पहाड़ी बटेर, काला चीता और एशियाटिक चीता जैसी महत्वपूर्ण प्रजातियां तो कब की लुप्त हो चुकी हैं.

इस वक्त देश की करीब 75 हजार वन्य प्राणियों की नस्लों में से लगभग 133 प्रजातियों के मिट जाने का खतरा उत्पन्न हो गया है. लुप्त होने वाली प्रजातियों की संख्या भी निरंतर बढ़ती जा रही है. सन् 1952 में दुर्लभ प्रजातियों के प्राणियों की संख्या सिर्फ 13 थी जो सन् 1972 में बढ़कर 61 हो गई और आज जैसी परिस्थितियां आगे भी बनी रहीं तो इस सदी के अंत तक

भारत की एक चौथाई प्रजातियां हमेशा के लिए विलुप्त हो जाएंगी. दुर्भाग्यपूर्ण बात यह है कि हमारी अंधाधुंध औद्योगीकरण नीति व जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के कारण जंगलों की बेहताशा कटाई और पशु-पक्षियों का अवैध शिकार की समस्याएं एक ओर जहां हमारे पर्यावरण को नुकसान पहुंचा रही हैं वहीं दूसरी ओर वन्य प्राणियों का जीवन भी खतरे में डाल रही हैं.

वन्य जीवों का तेजी से होता लुप्तीकरण एक गंभीर चिंता का विषय है. अतः वन्य जीवों के संरक्षण व संवर्धन के उचित प्रयास किए जाने आवश्यक हैं. वास्तव में वन्य प्राणियों को सबसे अधिक खतरा मनुष्य से ही पैदा हुआ है क्योंकि उसने ही अंधाधुंध वन काटकर और वन्य पशुओं, पक्षियों के निवास स्थान की सुरक्षितता को भंग कर अपना बसेरा कर लिया है. इसके अलावा औद्योगिक प्रदूषण भरे जहरीले माहौल में वन्य जीवों को वह वातावरण हासिल नहीं हो पाता जो उन्हें पूर्व में प्रकृति से प्राप्त था. आजकल के शोर भरे प्रदूषणयुक्त माहौल में स्वयं मनुष्य का जीवन दूभर है तो फिर पशु-पक्षी भला ऐसे में किस तरह जीवित रह सकते हैं. पर्यावरण के अलावा वन्य प्राणियों के जीवन को एक खतरा यह भी है कि मनुष्य अपने मनोरंजन एवं वन्य जीवों से प्राप्त अवशेषों (सींग, दांत, खाल) इत्यादि के व्यवसाय के लिए वन्य जीवों का अवैध शिकार करता है जो कि दुर्भाग्यपूर्ण है.

आजकल जंगली जीवों के शिकार का मुख्य उद्देश्य व्यवसायिक स्वरूप धारण कर चुका है. पशु-पक्षियों के शिकार के पीछे यह सोच रहता है कि पकड़े या मारे गए जीवों से चमड़ा, सींग, दांत इत्यादि के रूप में जो अवशेष प्राप्त होंगे उनके व्यापार से मोटी रकम हासिल की जा सकती है. यह क्रूर व्यापार अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर हो रहा है. अन्तरराष्ट्रीय बाजारों में वन्य-जीवों के अवशेषों की कीमतों का जायजा लिया जाए तो हम आसानी से वन्य-जीवों के महत्व का अंदाजा लगा सकते हैं. इन बाजारों में एक शेर के चमड़े की कीमत डेढ़ से दो लाख रुपए तक होती है. कस्तूरी पांच लाख रुपए किलोग्राम तथा हाथी दांत दस से पंद्रह हजार रुपए किलोग्राम बेचा जाता है. इतना ही नहीं यहां पर दुर्लभ जीवों की खालें मुंहमांगी कीमत पर खरीदी बेची जाती हैं. पशुओं का अवैध शिकार करके ही इन बाजारों तक माल पहुंचाया जाता है. जब तक बाजारों में पशु-पक्षियों की जान के सौदागर मौजूद हैं तब तक वन्य-जीवों की सुरक्षा के विषय में क्या सोचा जा सकता है.



'वन्य जीव संरक्षण अधिनियम' के माध्यम से वन्य जीवों की रक्षा तो संभव हुई मगर कई सुधारों के बावजूद भी इस अधिनियम में कुछ खामियां मौजूद हैं जिसके कारण आज भी वन्य जीवों से संबंधित उत्पादों का अवैध व्यवसाय फल-फूल रहा है. आज भी देश के वनकर्मियों को वन्य-जीवों की सुरक्षा के लिए बंदूक का उपयोग करने की अनुमति नहीं है. साथ ही अवैध शिकारियों के लिए दिया जाने वाला

दण्ड भी बहुत कम है. अपराधियों की आसानी से जमानतें हो जाती हैं जिससे वन्य जीवों के अवैध शिकार के दोषी कानून और व्यवस्था का मजाक उड़ाते नजर आते हैं. अतः वन्य जीवों की सुरक्षा के लिए आवश्यकता इस बात की है कि 'वन्य प्राणी संरक्षण कानून' और भी कड़ा किया जाए ताकि अवैध शिकार करने वालों के हौंसले पस्त हो सकें.

वन्य जीवों के संरक्षण के लिए सरकारी प्रयास भी होते रहे हैं. कई दुर्लभ प्रजातियों के जीवन को बचाने के लिए कई विशेष परियोजनाओं पर काफी काम किया गया है. अप्रैल, 1972 में 'विश्व वन्य प्राणी कोष' तथा 'इंटरनेशनल यूनियन फार कन्जर्वेशन ऑफ नेचर एण्ड नेचुरल रिसोर्सेज' की सहायता से 'बाघ बचाओ' परियोजना शुरू की गई थी. इस परियोजना से ही राष्ट्रीय पशु बाघ को बचाना संभव हो पाया है. इस परियोजना की शुरूआत सर्वप्रथम उत्तर प्रदेश के जिम कार्बेट नेशनल पार्क से हुई थी. इसके बाद 1973 में मध्यप्रदेश के कान्हा-किसली राष्ट्रीय पार्क में दूसरी 'बाघ परियोजना' शुरू की गई और आज लगभग ऐसी 19 परियोजनाएं चल रही हैं. गैंडों को बचाने के असम के कांजीरंगा नेशनल पार्क व सिंहों को बचाने के लिए गुजरात के गिर नेशनल पार्क में विशेष परियोजनाओं पर काम किया गया तथा वैज्ञानिक विधियों से इन प्राणियों को बचाने के उचित प्रयास किए गए.

हाथियों को बचाने के लिए भी 'एशियन एलीफेंट ग्रुप प्रोजेक्ट' (परियोजना) पेरियार, मदुमलाई, व बांदीपुर अभयारण्यों में प्रारंभ की गई है. दुर्लभ भोमिन हिरण और कृष्ण मृग को बचाने के लिए क्रमशः कीबुल लीड़जो नेशनल पार्क (मणिपुर) एवं बगदरा (मध्यप्रदेश) में परियोजनाएं चल रही हैं. विभिन्न पक्षियों सोन चिरैया, खरमोर आदि के संरक्षण का अभियान तेजी से चल रहा है. इसके अलावा अन्य दुर्लभ वन्य प्राणियों तथा घड़ियाल, सफेद शेर, नीलगिरी तौहर तथा शेष की पूंछ वाला बंदर, गुजरात के जंगली गधे आदि के संरक्षण के प्रयास जोरों पर है. पक्षियों के लिए भी भरतपुर पक्षी विहार देश का सबसे बड़ा प्राकृतिक अभयवन है. पंचवर्षीय योजनाओं में लाखों रुपया वन्य जीवों के संरक्षण के लिए खर्च किया जाता है.

वन्य प्राणियों के प्रति जागरुकता और सामाजिक चेतना उत्पन्न करना आज अति आवश्यक हो गया है. देश के नासमझ शौकीनों द्वारा अपने घृणित शौकों की खातिर शिकार आदि के द्वारा वन्य जीव संपदा के दोहन का सिलसिला भी अब थम जाना चाहिए और प्रत्येक व्यक्ति को अपने नैतिक उत्तरदायित्व का बोध होना चाहिए. यदि वन्य प्राणियों के संरक्षण के उचित प्रयास किए जाएं तो यह धरती फिर से अपनी प्राकृतिक धरोहर से परिपूर्ण हो सकती है. ❑

आयोडीन की कमी से उत्पन्न विकारों से कैसे बचें ?

❑ **महेश चन्द्र उप्रेती**

❑ यह आम जानकारी की बात है कि हमारे भोजन में कई प्रकार के खनिज एवं तत्व जैसे कैल्शियम, लोहा, फास्फोरस आदि का होना अच्छे स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य है. ऐसा ही एक महत्वपूर्ण तत्व है आयोडीन जिसकी बहुत ही थोड़ी मात्रा (एक ग्राम का दस हजारवां भाग, सुई की नोक के बराबर) हमें प्रतिदिन मिलती रहनी चाहिए. हमारे गले में थाइराइड नामक गल-ग्रंथि को थाइराइड हॉरमोन बनाने के लिए आयोडीन की आवश्यकता होती है. थाइराइड हॉरमोन शरीर की उपापचय क्रिया को नियंत्रित करते हैं. इसी पर हमारा शारीरिक व मानसिक विकास निर्भर करता है. पर्याप्त मात्रा में आयोडीन न मिलने पर शारीरिक व मानसिक विकास ठीक से नहीं हो पाता जिससे कई प्रकार के विकार उत्पन्न हो जाते हैं.

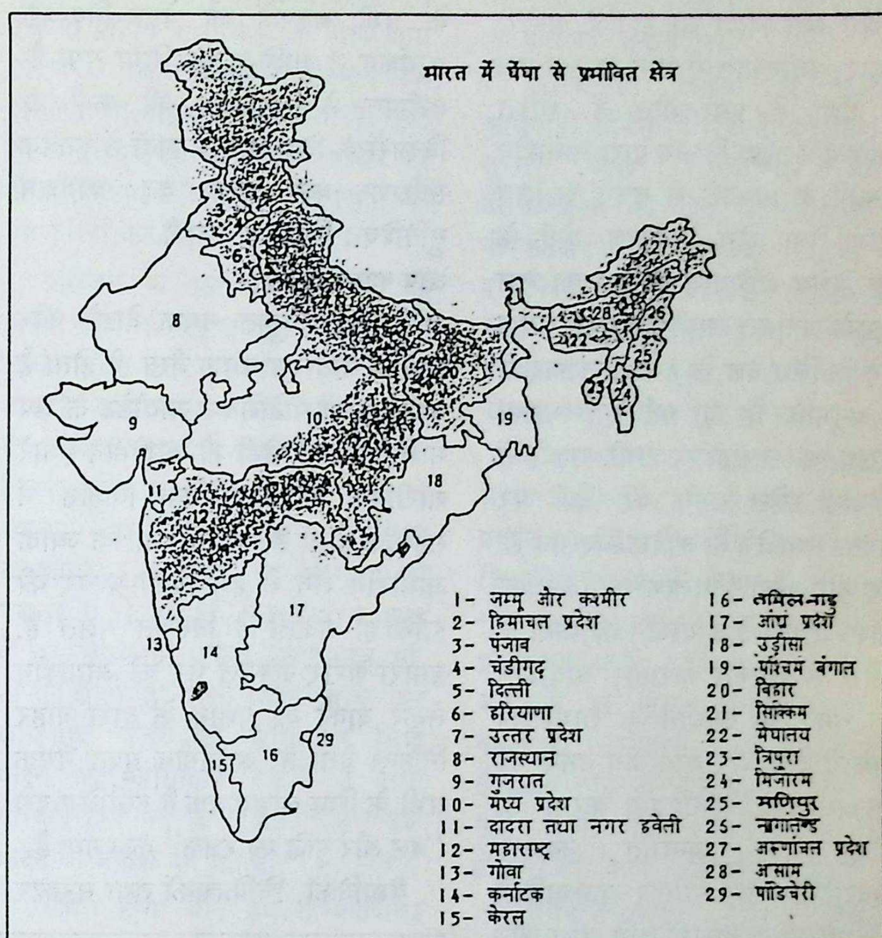
घेंघा रोग व अन्य विकार

आयोडीन की कमी का स्पष्ट परिणाम घेंघा रोग या गलगण्ड है जिसमें गलग्रन्थि के फूल जाने से गले में सूजन आ जाती है. लेकिन घेंघा रोग आयोडीन की कमी के विकारों में से सबसे कम खतरनाक है. यह एक पुराना विश्वव्यापी रोग है. इस रोग का उल्लेख प्राचीन भारतीय और चीनी साहित्य में भी मिलता है. किन्तु इस विषय पर



अधिक और विस्तृत जानकारी के लिए शोध कार्य 19वीं सदी में शुरू किया गया. कई देशों ने इस पर काफी हद तक नियन्त्रण पा लिया है. हमारे देश के पर्वतीय, तराई एवं पूर्वांचल के क्षेत्र तथा उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश, गुजरात और महाराष्ट्र इससे अधिक प्रभावित हैं. इन क्षेत्रों में आयोडीन की कमी और इस रोग संबंधी पर्याप्त चिकित्सा सुविधाएं न होने के कारण कई परिवारों में यह रोग वंशानुगत बन गया है और लोग इसे दैवी अभिशाप मानते हैं.

आयोडीन की कमी के कारण बौनापन, गूंगापन, बहरापन, मंदबुद्धि आदि लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं. संतुलित विकास के लिए छोटे बच्चों, तरूणों और गर्भवती महिलाओं को आयोडीन की उचित मात्रा का मिलना अति आवश्यक है. गर्भवती महिलाओं को अधिक आयोडीन की आवश्यकता होती है. गर्भावस्था में आयोडीन की कमी होने से मानसिक और शारीरिक रूप से विकृत, गूंगे और बहरे बच्चे पैदा हो सकते हैं. बड़ों में भी आयोडीन की कमी से मंदबुद्धि और सुस्ती के लक्षण पैदा हो जाते हैं. आरम्भिक अवस्था में यदि इस पर ध्यान न दिया गया तो ये स्थाई जानलेवा रोग बन जाते हैं.



कारण और बचाव

साधारणतया आयोडीन की दैनिक आवश्यकता हमारे खाने-पीने की वस्तुओं से पूरी हो जाती है. हमारे भोज्य पदार्थ इस आयोडीन को जमीन से ग्रहण करते हैं. अधिक वर्षा, बाढ़ और भू-क्षरण के कारण जमीन में आयोडीन की मात्रा घट जाती है. ऐसी भूमि में उगने वाली फसलों, फल-फूल और साग-सब्जी में आयोडीन की मात्रा कम हो जाती है. समुचित आयोडीन न मिलने के कारण इन स्थानों में अनेक लोग आयोडीन की कमी से होने वाले विकारों के शिकार हो जाते हैं.

आयोडीन की कमी के विकारों से बचने के लिए भोजन में आयोडीन की उचित मात्रा का समावेश करना अति आवश्यक है. इसके लिए कई उपाय काम में लाए गए हैं. टिकिया, इन्जेक्शन या आयोडीन युक्त तेल के रूप में आयोडीन का उपयोग करने के प्रयास किए गए. पीने के पानी में या खाने की वस्तुओं में आयोडीन के लवणों को मिलाकर भी दिया गया. संयुक्त राष्ट्र बाल विकास संगठन (यूनीसैफ) द्वारा विश्व भर में आयोडीन की कमी वाले क्षेत्रों में इस प्रकार के प्रयोग किए जा रहे हैं. इन सब में आयोडीन युक्त नमक के उपयोग को ही सबसे सुविधाजनक और सफल उपाय पाया गया है. प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन भोजन में निश्चित मात्रा में नमक लेता ही है. यदि नमक में उचित मात्रा में आयोडीन मिला दी जाए तो हर व्यक्ति को अपने आप आवश्यकतानुसार आयोडीन मिल जाएगी.

घेंघा रोग नियन्त्रण कार्यक्रम

आयोडीन की कमी से होने वाले रोगों के विषय में पढ़कर आप यह

अवश्य जानना चाहेंगे कि इसके निवारण के लिए क्या किया जा रहा है. हमारी सरकार, प्रयोगशालाएं तथा स्वास्थ्य केंद्र इस दिशा में प्रयत्नशील हैं. भारत सरकार के स्वास्थ्य विभाग द्वारा आयोडीन की कमी के विकारों से बचने के लिए राष्ट्रीय घेंघा रोग नियन्त्रण बोर्ड के तहत विशेष अभियान चलाया जा रहा है. इसके अन्तर्गत आयोडीन युक्त नमक बनाने के लिए देश के हजारों उत्पादकों को अनुमति दे दी गई है. स्वास्थ्य मंत्रालय की सलाह पर सभी राज्यों में आयोडीन रहित नमक की बिक्री पर प्रतिबन्ध लगा देने के आदेश दिए गए हैं.

राष्ट्रीय घेंघा नियन्त्रण कार्यक्रम का उद्देश्य लोगों को आयोडीन की कमी के विकारों से अवगत कराना, आयोडीन युक्त नमक के उपयोग के लाभों की जानकारी देना और आयोडीन नमक की उपलब्धता को सुनिश्चित करना है. कार्यक्रम के अन्तर्गत स्वास्थ्य अधिकारियों और स्वास्थ्य कर्मचारियों को विषय की जानकारी तथा जांच और उपचार करने की विधियों का प्रशिक्षण दिया जा रहा है. गर्भवती महिलाओं तथा शिशुओं को आयोडीन की पर्याप्त मात्रा मिलती रहे इसके प्रयत्न किए जा रहे हैं. नवजात शिशुओं के शारीरिक, मानसिक विकास में आयोडीन की कमी के कारण बाधा न पहुंचे इसके लिए नवजात शिशु के नाल के रक्त की तुरन्त जांच करने के लिए अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा विशेष विधि विकसित की गई है.

उत्तर प्रदेश में 1966 में पर्वतीय एवं तराई क्षेत्र के कुछ जनपदों में घेंघा नियन्त्रण का कार्यक्रम आरम्भ किया गया. उत्तर प्रदेश स्वास्थ्य संस्थान की स्थापना के उपरान्त 1987-88 से प्रदेश के सभी जनपदों को घेंघा नियन्त्रण कार्यक्रम में शामिल कर लिया गया है. वर्तमान में आयोडीन की कमी के विकारों के लिए सभी जनपदों में व्यापक सर्वेक्षण कर आगे का कार्यक्रम सुनिश्चित किया जा रहा है.

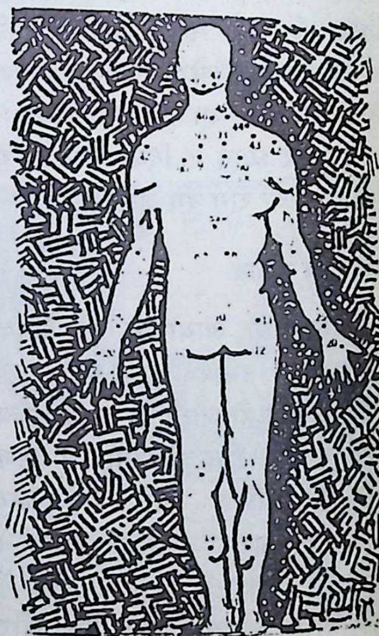
आप क्या करें ?

आयोडीन युक्त नमक देखने और खाने में साधारण नमक जैसा ही होता है परन्तु उसमें पोटेशियम आयोडेट के रूप में मिलाई गई थोड़ी सी आयोडीन हमारे शारीरिक और मानसिक विकास में सहायक होती है. यह धारणा कि ज्यादा आयोडीन लेने से हमें किसी प्रकार की हानि हो सकती है बिल्कुल गलत है. हमारा शरीर जरूरत भर की आयोडीन लेकर बाकी को पेशाब के द्वारा बाहर निकाल देता है. आयोडीन युक्त नमक सभी के लिए लाभदायक है इसीलिए इसे "बल और बुद्धि का रक्षक" कहा गया है.

वैज्ञानिकों, चिकित्सकों तथा सरकार के घेंघा रोग नियन्त्रण के प्रयासों को सफल बनाने के लिए सबका सहयोग चाहिए. यह अपेक्षा की जाती है कि लोग आयोडीन की कमी से उत्पन्न विकारों के लक्षण दिखाई देने पर चिकित्सालय या स्वास्थ्य केंद्र में चिकित्सक से तुरन्त संपर्क करें. गर्भवती महिलाओं तथा छोटे बच्चों को समुचित आयोडीन मिलती रहे इसका विशेष ध्यान रखें. सदा आयोडीन युक्त नमक का ही सेवन करें. आयोडीन युक्त नमक को धूप और नमी में खुला न रखें. उपयोग में लाने से पहले नमक को धोएं नहीं. अधिक धूप, नमी और धोने के कारण नमक से आयोडीन निकल जाएगी. जो नमक आप उपयोग में ला रहे हैं उसमें आयोडीन है या नहीं यह सुनिश्चित कर लें. उपर्युक्त सारी जानकारी को अधिक लोगों तक पहुंचाने का प्रयास करें. जन साधारण के संतुलित शारीरिक और मानसिक विकास के लिए आपका यह योगदान बहुत महत्वपूर्ण है. ☐

कैसी है हमारे शरीर की सुरक्षा व्यवस्था

☐ **चन्द्रभान शर्मा**



☐ हमारी सुरक्षा व्यवस्था का आधार है अस्थि-मज्जा. इससे मूलभूत सुरक्षा कोशिकाओं तथा लाल रक्त कोशिकाओं की उत्पत्ति होती है. सुरक्षा कोशिकाओं में कोई रंग नहीं होता. अस्थि-मज्जा से निकलने के बाद इनमें से कुछ कोशिकाएं लिम्फ ग्रन्थियों में पहुंच कर सुरक्षा कार्यों के लिए परिपक्व होती हैं. लिम्फ ग्रन्थियों में तिल्ली और टॉन्सिल प्रमुख हैं. जो कोशिकाएं (हृदय के पास अवस्थित एक श्वेत ग्रन्थि—थाइमस) में परिपक्व होती

हैं उन्हें टी-कोशिका कहते हैं. अस्थि-मज्जा में उत्पन्न होने वाली दूसरी श्वेत सुरक्षा कोशिकाएं हैं—बी कोशिकाए तथा मेक्रोफेज या वृहद्भक्षी.

टी और बी-कोशिकाओं की दो विशेषताएं हैं. पहली, इनमें स्मरण रखने की क्षमता है. यदि एक बार भी इन्होंने किसी बाहरी घुसपैठिए अणु की पहचान कर ली है तो चाहे कितने ही समय बाद इनका मुकाबला उससे हो तो ये उसे फौरन पहचान कर नष्ट कर देती हैं. साथ ही बाहरी दुश्मन के विरुद्ध अपनी संख्या में काफी वृद्धि कर सकती हैं. इनका दूसरा गुण है इनकी विशिष्टता, अर्थात ये 'अपने' और 'पराए' की पहचान बखूबी कर सकती हैं.

शरीर में रोगाणुओं के प्रवेश और उन्हें समय पर नष्ट कर देने वाले इन सुरक्षा सैनिकों का यह संघर्ष अत्यंत रोचक है. ज्योंही कोई रोगाणु या अन्य पदार्थ, जिसे वैज्ञानिक भाषा में प्रतिजन (एन्टीजन) कहते हैं, किसी प्रकार रक्त धारा में प्रवेश करता है वहां विचरती कोई भी बी-कोशिका उसे निगल लेती है. निगलने के बाद प्रतिजन बी-कोशिका के अम्लीय कक्ष में जाता है जहां उसका रासायनिक विखण्डन होता है. इस क्रिया में प्रतिजन-प्रोटीन छोटी-छोटी इकाईयों में बंट जाती है. इन विखण्डित भागों में से एक छोटा सा भाग अम्लीय कक्ष से बाहर आकर बी-कोशिका के बाहरी आवरण पर पहुंच जाता है. यहां बी-कोशिका की अपनी पहचान वाली प्रोटीन उसे अपने अन्दर लपेट लेती है और इन दोनों का ''सम्मिश्र'' संकेत के रूप में आवरण पर स्थापित हो जाता है. वैज्ञानिक भाषा में बी-कोशिका की अपनी पहचान वाले प्रोटीन को एम एच सी (मेजर हिस्टो कम्पेटेबिलिटी कॉम्प्लेक्स) कहते हैं. प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि यदि किसी प्रतिजन को बी-कोशिका के अलावा किसी दूसरी एम एच सी प्रोटीन के साथ मिला दिया जाए तो शरीर का रोगावरोधी संस्थान उस प्रतिजन का बहिष्कार कर देता है. ऐसा त्वचा प्रत्यारोपण में होता है. शरीर की टी-कोशिकाएं 'असमान' त्वचा को ग्रहण नहीं करतीं.

प्रतिजन के इस छोटे से अंश को अपनी स्वयं की पहचान वाली प्रोटीन में लपेटे और इस 'सम्मिश्र' को अपने बाहरी आवरण पर प्रदर्शित करती, बी-कोशिका रक्त में तैरती नजदीक की लिम्फ ग्रन्थि में जाती है. इस कार्य में उसका अभिप्राय वहां उपस्थित टी-कोशिका के सामने उस 'सामान' को रखना है जो उसे प्रतिजन से प्राप्त हुआ है तथा साथ ही अपना प्रमाण-पत्र भी. टी-कोशिका ही भली-भांति जांच कर लाए हुए 'बन्दी' को 'अभियुक्त' सिद्ध करने का अधिकार रखती है तथा बी-कोशिका को उसे 'बांध' कर नष्ट करने के आदेश देने का भी.

उचित होगा यदि हम टी-कोशिका के बारे में कुछ जानकारी प्राप्त कर लें. हमारे शरीर में लाखों प्रकार की टी-कोशिकाएं होती हैं परन्तु उनमें से केवल एक प्रकार की टी-कोशिका ही प्रतिजन के विरुद्ध कार्य कर सकती है. ऐसा इसलिए है क्योंकि प्रत्येक टी-कोशिका की ऊपरी सतह पर एक विशेष रासायनिक संरचना वाले ग्राहक-अंग होते हैं जो केवल वैसी ही संरचना वाले प्रतिजन से जुड़ सकते हैं. इसे यूं समझिए जैसे किसी ताले का खोलना केवल उसी के लिए बनी कुंजी से संभव है. अतः एक-के-बाद एक अनेक टी-कोशिकाएं पहचान के लिए प्रस्तुत सामग्री का निरीक्षण करती रहती हैं जब तक कि सही ताले वाले कोशिका में 'प्रतिजन-एम एच सी सम्मिश्र' की कुंजी फिट न हो जाए. लीजिए, सही ताला और कुंजी मिल गए. एक ने दूसरे को कस कर जकड़ लिया.

'आलिंगन' कसते ही अगली कार्यवाही आरंभ हो गई. टी-कोशिका ने तुरन्त कुछ रासायनिक संकेत बी-कोशिका को दिए. संकेत पाते ही बी-कोशिका ने क्रमबद्ध तरीके से प्रतिपिण्डों (एन्टी बॉडीज) का निर्माण आरम्भ कर उन्हें रक्त में प्रवाहित करना प्रारंभ कर दिया. दूसरे शब्दों में शरीर में रोगावरोधी प्रक्रिया शुरू हो गई.

ये रासायनिक संदेश केवल एक दिशा में ही नहीं होते. बी-कोशिका भी इसी प्रकार का संदेश टी-कोशिका को देती है जिससे वे भी अपनी संख्या में वृद्धि कर सकें तथा अन्य बी-कोशिकाओं को प्रतिपिण्ड बनाने के काम में प्रोत्साहित कर सकें. अतः सुरक्षा व्यवस्था को सचेत करने की जिम्मेदारी टी-कोशिकाओं की है. जब तक टी-कोशिका के ताले में सही चाबी नहीं लगती रोगावरोधी प्रक्रिया की 'कार' स्टार्ट ही नहीं होती.

बी-कोशिकाओं द्वारा निर्मित प्रतिपिण्ड ही वास्तव में वे अस्त्र हैं जिनके द्वारा शरीर के घुसपैठियों को नष्ट कर उसे रोगमुक्त रखा जाता है. प्रतिपिण्ड प्रोटीन के लम्बी श्रृंखला वाले अणु होते हैं. इस अणु की रचना अंग्रेजी के अक्षर Y की तरह होती है. इसकी दोनों भुजाओं के ऊपरी सिरे शत्रु प्रतिजन को मजबूती से अपने बाहुपाश में जकड़ कर पीस डालते हैं. चूंकि प्रतिजनों की रचना में अन्तर बहुत बड़ी संख्या में हो सकता है, अतः प्रतिपिण्डों की भी उतनी ही प्रकार की रचनाएं होती हैं. एक प्रतिजन के लिए एक ही प्रकार का प्रतिपिण्ड बनेगा.

तो क्या प्रतिजनों को नष्ट करने वाले प्रतिपिण्ड ही हमें स्वस्थ रखने के लिए पर्याप्त हैं? जी नहीं, कितने ही शत्रु जीवाणु ऐसे होते हैं जो इन सजग

प्रहरियों को चकमा दे कर शरीर में घुस जाते हैं और किसी कोशिका में छिप कर बैठ जाते हैं. यह कोशिका अब उनके कवच का काम करती है. इसके अन्दर का भोजन शत्रु जीवाणु अपने लिए उपयोग करता है. इस प्रकार के धूर्त जीवाणुओं में हैं विषाणु, जिनसे न केवल इन्फ्लुऐंजा, चेचक, खसरा आदि रोग फैलते हैं बल्कि कैंसर और एड्स जैसी घातक बीमारियां भी होती हैं.

पर शरीर की सुरक्षा प्रणाली इनके धोखे में आने वाली नहीं. विषाणु के कब्जे में आई कोशिका को प्रकृति ने एक अनूठा वरदान दिया है. यह कोशिका अपनी बाहरी सतह पर अन्दर छिपे विषाणु की पहचान प्रदर्शित करती रहती है. साथ ही इसे प्रामाणिक बनाने के लिए अपने एम एच सी प्रोटीन को भी. टी-कोशिकाओं की एम किस्म, जिन्हें सहायक टी-कोशिका कहते हैं, इन्हें देख कर सक्रिय हो जाती है. सूचना पाते ही मारक टी-कोशिकाएं इन्हें समाप्त करने के लिए दौड़ पड़ती हैं. वास्तव में इन छिपे दस्युओं को नष्ट करने में प्रतिपिण्ड अपने को सक्षम नहीं कर पाते.

एक तीसरे प्रकार की टी-कोशिका और होती हैं जिन्हें निरोधक टी-कोशिकाओं के नाम से जाना जाता है. इन कोशिकाओं का काम बी-कोशिकाओं और मारक टी-कोशिकाओं के कार्यकलापों पर नियंत्रण रखना है कि कहीं वे आपे से बाहर न हो जाएं. एड्स में विषाणु सहायक टी-कोशिकाओं पर आक्रमण कर उन्हें नष्ट कर देते हैं. ये कोशिकाएं ही बी और मारक टी-कोशिकाओं को नियंत्रित करती हैं. निरोधक टी-कोशिकाएं इस परिस्थिति से अनभिज्ञ—होने के कारण बी और मारक टी-कोशिकाओं पर अंकुश बनाए रखती हैं. नतीजा यह होता है कि धीरे-धीरे विषाणु शरीर की पूरी रोगावरोधी सुरक्षा को क्षत-विक्षत कर रोगी को मौत के घाट सुला देते हैं.

कभी-कभी सहायक टी-कोशिकाओं को छिपे दुश्मन को नष्ट करने के लिए एक और नया तरीका अपनाना पड़ता है. वे दुश्मन के 'छिपे' होने का परिचय देने वाली कोशिकाओं को पहचान कर एक विशेष रासायनिक द्रव शरीर में छोड़ती हैं. वैज्ञानिक भाषा में यह द्रव लिम्फोकाइन कहलाता है. इसके रक्त में आते ही एक अन्य प्रकार के सुरक्षा सैनिक जिन्हें वृहद-भक्षी कहते हैं दुश्मन की तलाश में दौड़ पड़ते हैं और उसे पाते ही निगल कर समाप्त कर देते हैं. दुर्भाग्य से वृहद-भक्षियों को मारक टी-कोशिकाओं की तरह 'अपने' और 'पराए' का ज्ञान नहीं होता. वे केवल उन्हीं कोशिकाओं पर प्रहार करते हैं जिन्हें सहायक टी-कोशिकाओं ने पहले से 'दुश्मन' के रूप में पहचान रखा हो.

जहां फूलों में सुगन्ध होती है वहीं उनमें छोटे-छोटे कीट भी छिपे रहते हैं. शीतल, सुखद चांदनी बिखेरने वाला पूर्णिमा का चांद भी कलंकित होता है. तात्पर्य यह कि हर अच्छी वस्तु के साथ कुछ न कुछ बुराई भी जुड़ी रहती है. यही बात रोगावरोधी सुरक्षा पर लागू होती है. कभी-कभी शरीर के 'रक्षक' कहे जाने वाले ये प्रहरी स्वयं ही शरीर तन्तुओं के 'भक्षक' बन जाते हैं. 'अपने' और 'पराए' की पहचान में व्यवधान आ जाता है. आज हम इस कारण हुई अनेकों बीमारियों से परिचित हैं. उदाहरण के लिए मल्टिपल स्क्लेरोसिस जिसमें नाड़ियों को ढकने वाली मायलिन झिल्ली पर दुःप्रभाव पड़ता है; मायस्थेनिभा ग्रेविस (पेशी दुर्बलता)—जिससे नाड़ियों को संचालित करने वाली एसिटाइलकोलीन के अणु प्रभावित हो जाते हैं; रूमेटाएड आथ्राइटिस—जिसमें शरीर के जोड़ों पर असर होता है; तथा बच्चों का



मधुमेह—जिसमें इन्सुलिन पैदा करने वाली कोशिकाएं ही नष्ट हो जाती हैं.

वैज्ञानिकों की मान्यता है कि 'अपने ही' तन्तु या कोशिकाओं को नष्ट करने वाली टी-कोशिकाएं (या यू कहिए जो पूरी तरह परिपक्व नहीं हो पाती) रक्त में भेजने से पहले ही थाइमस द्वारा नष्ट कर दी जाती है. परन्तु कभी-कभी 'अपने' और 'पराए' का भेद न समझने वाली ये अपरिपक्व टी-कोशिकाएं भी किसी प्रकार बच कर थाइमस से बाहर आ जाती हैं और अनुकूल समय पर शरीर के विशेष अंगों को अपना शिकार बना लेती हैं. कुछ जीव-शास्त्रियों का मत है कि कई प्रतिजन इस प्रकार की छद्म संरचना ग्रहण कर लेते हैं जिससे बी और टी-कोशिकाएं उन्हें 'अपना' ही समझ कर अभयदान दे देती हैं.

शरीर सुरक्षा के ये सजग प्रहरी अहर्निश 'अवांछनीय' तत्वों से हमारी रक्षा में लगे हैं. इनकी बदौलत हम बीमारियों की ओर से आश्वस्त रहते हैं. हां, कभी-कभी कुछ समय के लिए संक्रमण अवश्य इन प्रहरियों को किंकर्तव्यविमूढ़ कर देता है, पर सामान्यतः विजय इनकी ही होती है. □

एक और क्रांति की सूत्रधार बनेगी एन्जाइम प्रौद्योगिकी

❑ राजेन्द्र कुमार राय



❑ एन्जाइम प्रौद्योगिकी के विकास के प्रभाव काफी क्रांतिकारी सिद्ध हुए हैं. रासायनिक और जैविक क्रियाओं में एन्जाइम की विशेष भूमिका के कारण दुनिया भर के वैज्ञानिकों के लिए एन्जाइम खोज का विशेष विषय बने हुए हैं. वैज्ञानिकों को विश्वास है कि विकासशील देशों की ऊर्जा संरक्षण और पर्यावरण प्रदूषण की उत्तरोत्तर गंभीर होती जा रहीं समस्याओं का हल 'एन्जाइम' के चमत्कारी उपयोगों द्वारा ढूंढा जा सकेगा.

आज यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि हम इसलिए जीते हैं कि हमारे शरीर में एन्जाइम हैं. हम जो कुछ भी करते हैं—चलना, सोचना, इन पंक्तियों का पढ़ना—वह किसी न किसी एन्जाइम प्रक्रिया की सहायता से करते हैं.

एन्जाइम के संदर्भ में जीवन की परिभाषा कुछ इस प्रकार की जा सकती है कि एकीकृत एवं सहकारी एन्जाइम प्रतिक्रियाओं का तंत्र ही जीवन है. एन्जाइम से परिचय प्राप्त करने का सर्वोत्तम तरीका है कि उसे तब देखा जाए जब वह क्रियाशील हो. वास्तव में एन्जाइमों की सबसे बड़ी विशेषता ही उनकी अत्यधिक क्रियाशीलता है.

सन् 1820 तक हमें यह नहीं मालूम था कि हमारे शरीर के रहस्यपूर्ण भीतरी भागों में भोजन का क्या होता है? उससे पहले बहुत से अनुमान लगाए जाते थे. उनमें से काफी कल्पनापूर्ण एक अनुमान यह भी था कि हमारे आमाशयों में सूक्ष्म दानवों का एक दल बहुत सक्रिय है और वह भोजन को मसलता रहता है.

सर्वप्रथम अठारहवीं शताब्दी के अंतिम चरण में, फ्रांस में रीमर व इटली में स्पैलैन्जनी नामक वैज्ञानिकों ने जानवरों के आमाशयों के अध्ययन का प्रयास किया. उन्होंने तार के पिंजड़े व छिद्रवाली टोपी में भोजन रखकर उसे जानवरों को खिलाया और विभिन्न समयान्तरों पर जुड़े हुए धागों की सहायता से पिंजड़े या टोपी को बाहर निकाला. उन्होंने पाया कि भोजन विघटित हो गया है लेकिन वे उन पदार्थों की प्रकृति के बारे में कोई अनुमान नहीं लगा सके जिनके कारण ये परिवर्तन हुए थे. बहुत से स्पष्टीकरण सामने आए लेकिन उन्हें सार्वभौम स्वीकृति नहीं मिली.

सन् 1822 में एक आकस्मिक घटना ने अक्षरशः उस पर्दे को उठा लिया जिसने मानवी आमाशय तथा उसकी विवादास्पद क्रियाओं को ढक रखा था. 6 जून 1822 को एक अमेरिकी फर कम्पनी के व्यापारिक अड्डे पर काफी भीड़-भाड़ थी. उसमें अलेक्सिस सेंट मार्टिन नामक एक फ्रांसीसी—कनैडियन समुद्रयात्री भी था. अचानक किसी की बंदूक से गोलियां छूट गईं और वे थोड़ी दूर खड़े सेंट मार्टिन के पेट में जा लगीं. एक नवयुवक सर्जन विलियम ब्यूमांट सहायता के लिए दौड़ कर आगे आया. गोलियों ने एक बड़ा घाव कर दिया था जिनमें से फेफड़ों के बड़े-बड़े टुकड़े और आमाशय के कटे हुए टुकड़ों-सी प्रतीत होने वाली वस्तुएं बाहर निकली दिखाई दे रही थीं. बाहर निकले हुए लोथड़े का कुछ भाग चाकू से काट कर, ब्यूमांट ने घाव यथासंभव उपयुक्त रीति से बांध दिया और मरीज को उस कुटीर में ले गया जो अस्पताल का काम दे रहा था.

ब्यूमांट के लिए सेंट मार्टिन में निरीक्षण करने योग्य कुछ ऐसी वस्तु थी जिसे निस्संदेह मानव दृष्टि ने पहले कभी नहीं देखा था. वह वस्तु थी—सामान्य रूप से काम करते हुए मानव आमाशय को देखने के लिए एक खुली खिड़की. आमाशय में जो खुला घाव था वह कभी बंद नहीं हुआ. उसके किनारे ठीक हो गए किन्तु आमाशय के ऊपरी भाग में एक बड़ा छिद्र सेंट मार्टिन के जीवन-पर्यन्त खुला रहा. ब्यूमांट ने इस अवसर को पहचाना क्योंकि वह आमाशय में सीधे झांक सकता था और पाचन-क्रिया को लगभग देख सकता था. ब्यूमांट ने देखा कि भीतर जाने वाले भोजन की उत्तेजना से कुछ रस

आमाशय में प्रविष्ट होते थे और इन रसों के प्रभाव से भोजन विघटित होता था. उसने साइफन की मदद से कुछ द्रव बाहर निकाला और मालूम किया कि वह द्रव आमाशय के बाहर भी भोजन को विघटित कर सकता है.

ब्यूमांट के इस अवलोकन ने कि आमाशय वाले रसों में भोजन को विघटित करने की क्षमता होती है, भले ही भोजन शरीर के बाहर हो, पाचन प्रक्रिया संबंधी सभी पूर्ववर्ती धारणाओं को मिथ्या सिद्ध कर दिया. कई साल बाद इस रस का प्रथम संघटक पहचाना गया और उसे 'पेप्सिन' कहा गया. यह एक एन्जाइम है जो प्रोटीनों को उनके संघटक एमिनो अम्लों में विघटित करता है.

यदि हम सभी जीवित वस्तुओं के लिए ऊर्जा स्रोत पर विचार करें तो हमें पता चलेगा कि जीवन के लिए एन्जाइम कितने आधारभूत हैं. सभी जीवित वस्तुएं सूर्य-ऊर्जा का उपयोग, केवल एन्जाइमों के माध्यम से करती हैं. निम्नलिखित प्रतिक्रिया वह पीठिका है



एन्जाइम से जुड़ी है जीवन पद्धति

मानव शरीर एक ऐसा यंत्र है जो बहुत से रासायनिक पदार्थों, उनकी क्रियाओं तथा जैविक अनुक्रिया के आधार पर चलता है. उसकी अधिकतर क्रियाएं एन्जाइम पर ही आधारित हैं. यही नहीं एन्जाइम की उत्प्रेरक क्रियाएं जीवन की सामान्य क्रियाओं तक के लिए परम आवश्यक हैं. मसलन मांसपेशियों का सिकुड़ना, कमजोरी आना, रक्त के थक्कों का बनना तथा अनुपयुक्त पदार्थों का शरीर से बाहर निकलना आदि ऐसी क्रियाएं हैं जो सामान्यतः एन्जाइम क्रिया पर आधारित हैं. पौधों में प्रकाश संश्लेषण, नवोदित पौध का विकास, फूल का खिलना तथा फल का बनना आदि क्रियाएं भी एन्जाइम द्वारा ही उत्प्रेरित हैं. हमारे शरीर में ऐसे भी एन्जाइम हैं जो चर्बी को विघटित करते हैं. कुछ एन्जाइम तंत्रिका संवेगों को भेजने के लिए अनिवार्य हैं और कुछ अन्य एन्जाइमों का काम है शरीर के ऊतकों को बनाना. वास्तव में शरीर के प्रत्येक कार्य में एन्जाइम भाग लेते हैं.

एन्जाइम रसायन में अब तक जो सफलता मिल चुकी है, उसी पर हमारा ध्यान ज्यादा केंद्रित रहा है. भावी नवीन विश्व के एन्जाइम रसायन की झांकी क्या होगी? कुछ शोधकर्त्ताओं को विश्वास है कि भविष्य में एन्जाइम-निरोधक सहायता से त्वचा का रंग भी बदला जा सकेगा. शरीर की रंजकता का अनुपात एन्जाइमों द्वारा निर्धारित होता है. टिरोसीन जो एक ऐमिनो अम्ल है जब आक्सीजन से युक्त होता है तब वह काले रंग वाली वस्तुओं की रचना करता है. मेलैनिन बाल, आंखों और त्वचा के रंग का निर्माण करते हैं. वास्तव में त्वचा के काले-गोरे रंग का निर्धारण मेलैनिन की मात्रा में परिवर्तन के कारण होता है, अर्थात मेलैनिन उत्पन्न करने वाले एन्जाइमों की अत्यधिक सक्रियता के कारण.

जीव-रासायनिक दृष्टि से यह बात बिल्कुल सम्भव दिखती है कि एक दिन ऐसा विशिष्ट निरोधक बनाने में सफलता मिल जाएगी, जिसकी सहायता से उन एन्जाइमों की गति को कम किया जा सकेगा जो मेलैनिन रंजक उत्पन्न करते हैं. तब हम त्वचा की रंजकता को इच्छानुसार कम करने में समर्थ हो जाएंगे, या इसके विपरीत हम किसी ऐसे एन्जाइम त्वरक को भी प्राप्त कर सकते हैं जो सफेद त्वचा को काला कर देगा.

हालांकि जैव-प्रौद्योगिकी विज्ञान की एक नई शाखा है, आज के युग में इसमें व्यापक संभावनाएं व्यक्त की जा रही हैं. वास्तव में हमारी जीवन पद्धति एन्जाइम के साथ जुड़ी हुई है और एन्जाइम एक किस्म के व्यापक परिवर्तन को जन्म देते हैं.

—राजेन्द्र कुमार राय

जिस पर संपूर्ण जीवन का निर्माण हुआ:

$$\text{कार्बन डाइआक्साइड} + \text{पानी} + \text{ऊर्जा} \xrightarrow[\text{पौधों के}]{\text{एन्जाइम}} \text{शर्करा} + \text{आक्सीजन}$$

इस प्रतिक्रिया की विलोम प्रतिक्रिया एक ऐसी बैटरी है जो प्रत्येक जीवित वस्तु के प्रत्येक सेल को सक्रिय रहने के लिए ऊर्जा देती है:

$$\text{शर्करा} + \text{आक्सीजन} \xrightarrow{\text{सेलों के एन्जाइम}} \text{कार्बन डाइआक्साइड} + \text{पानी} + \text{ऊर्जा}.$$

वास्तव में शरीर के प्रत्येक कार्य में एन्जाइम भाग लेते हैं. यह बात कि कोशिका के बाहर भी एन्जाइम कार्य कर सकता है केवल नब्बे वर्ष पूर्व सिद्ध हो पाई. यह उपलब्धि बुखनर बन्धुओं के नाम है. बुखनर वन्धुओं ने यह प्रमाणित किया कि जीवित यीस्ट की पूर्ण अनुपस्थिति में, यीस्ट कोशिकाओं द्वारा ही नहीं बल्कि विघटित कोशिकाओं के जलीय घोलों द्वारा भी शर्करा में खमीर उठाकर अलकोहल और कार्बन डाइआक्साइड को प्राप्त कर सकते हैं. इस आविष्कार के साथ ही एन्जाइम शब्द अस्तित्व में आया. इसका शाब्दिक अर्थ है वह वस्तु जो जाइय (यीस्ट) में (एन) हो.

बुखनर बन्धुओं के बाद जीव-रसायन-शास्त्रियों ने भिन्न प्रकार की कोशिकाओं से भिन्न प्रकार के सैकड़ों एन्जाइमों प्राप्त किए. ऐसे प्रत्येक एन्जाइम के घोल में प्रोटीन होते हैं. सन् 1926 के पूर्व रसायनज्ञों के बीच इस बारे में मतभेद था कि एन्जाइम घोलों में पाए जाने वाले प्रोटीन वास्तव में एन्जाइम हैं कि नहीं. उसी वर्ष जेम्स बी० सम्नर एक एन्जाइम को शुद्ध रूप में पृथक करने में सफल हुए. वह एन्जाइम एक प्रोटीन था. सम्नरं को इस अनुसंधान के लिए नोबल पुरस्कार भी मिला था.

एन्जाइमों का नामकरण सरल और एक आसान प्रक्रिया रहा है. जिस पदार्थ पर एन्जाइम कार्य करता है उसके नाम के आगे एक प्रत्यय लगा देते हैं. आज एन्जाइम के बारे में हमारी जानकारी इतनी अधिक है कि उसके व्यावसायिक उपयोग की तैयारी काफी बड़े पैमाने पर चल रही है. वास्तव में विज्ञान में एन्जाइम तकनीक का विकास काफी क्रांतिकारी प्रभावों वाला सिद्ध हुआ है.

नए अनुसन्धान

रासायनिक और जैविक क्रियाओं के मध्य एन्जाइम की विशेष भूमिका के कारण दुनिया भर के वैज्ञानिकों में एन्जाइम पर अनुसन्धान करने की होड़ सी लगी है. पिछले पांच वर्षों के दौरान यह होड़ और तेज हुई है. पांच वर्ष पूर्व मात्र एक दर्जन से कुछ अधिक वैज्ञानिक संस्थाएं एन्जाइम पर कार्य कर रहीं थीं लेकिन इस समय इनकी संख्या 200 से ऊपर हो गई है.

आज वैज्ञानिकों का विचार है कि ऊर्जा संरक्षण और पर्यावरण प्रदूषण की उत्तरोत्तर गंभीर होती जा रही समस्या का हल 'एंजाइम' के चमत्कारी प्रभावों द्वारा ढूंढा जा सकता है. बायोगैस संयंत्र, वाहितमल अभिक्रिया संयंत्र में एन्जाइम का इस्तेमाल काफी महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है, जिससे ऊर्जा संकट के समाधान की आशा की किरण दिखती है. इसके अलावा एन्जाइम के उपयोग से अनेक कीटनाशक एवं शाकनाशक औषधियों का निर्माण भी संभव है. असाध्य रोगों के निदान के लिए विशेष कार्बनिक पदार्थों के निर्माण, कृत्रिम तथा अकृत्रिम पदार्थों के संश्लेषण में भी एन्जाइम की भूमिका महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई है.

वास्तव में एन्जाइम विशेष क्रियाओं में एक विशेष तापमान पर तथा अन्य सह-एन्जाइम की उपस्थिति में कार्य करते हैं. इनका अणुभार काफी अधिक होता है. एन्जाइम एक या एक से

एन्जाइम पर अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन भारत में

जनवरी 1992 में एन्जाइम पर एक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन हमारे देश में नई दिल्ली में किया गया. अपनी तरह का यह दूसरा अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन था, पहला अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन 1985 में नीदरलैंड में आयोजित किया गया था. चार दिन के इस विश्व सम्मेलन को दिल्ली विश्वविद्यालय ने ब्रिटेन की इंटरनेशनल यूनियन ऑफ प्योर एंड एप्लायड कैमिस्ट्री (यूपैक) एवं नेशनल आरगेनिक सिम्पोजियम ट्रस्ट (नास्ट) के सहयोग से आयोजित किया था.

इस सम्मेलन में विश्व के 45 देशों के लगभग 500 वैज्ञानिकों ने एन्जाइम के अद्भुत प्रयोगों से होने वाले आश्चर्यजनक परिणामों का ब्यौरा प्रस्तुत किया. नई दिल्ली सम्मेलन का विषय था—'कार्बनिक पदार्थों के संश्लेषण में एन्जाइम'. सम्मेलन में आए वैज्ञानिकों ने एक स्वर में इस बात की आवश्यकता प्रकट की कि दुनिया के औद्योगिक देशों को एन्जाइम के अनुसंधान के लिए एक सुगठित ढांचा तैयार करना चाहिए क्योंकि वर्तमान समय में उद्योगों में एन्जाइम का इस्तेमाल उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाएगा.

दिल्ली विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो० उपेन्द्र बख्शी ने सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए वैज्ञानिकों का आह्वान किया कि वे एन्जाइम प्रौद्योगिकी द्वारा समूची पारिस्थितिकी (इको सिस्टम) में इस तरह के बदलाव को जन्म दें जिनसे मानव का जीवन उज्जवल हो सके. विज्ञान के इस युग में एन्जाइम ही एक ऐसा यंत्र है, जिससे हम अपना भविष्य बेहतर बना सकते हैं.

—राजेन्द्र कुमार राय

अधिक अणुओं को मिलाकर एक नए पदार्थ का निर्माण करते हैं. इनकी उपस्थिति में रासायनिक क्रियाओं का वेग काफी अधिक हो जाता है, जो सामान्य रासायनिक क्रियाओं से भिन्न होता है. अधिकतर एन्जाइम रासायनिक क्रिया को विशिष्ट रूप से घटित होने देने में सहायक होते हैं.

आज के वैज्ञानिक युग में बहुत से एन्जाइम व्यावसायिक तौर पर संवर्धित सूक्ष्म जीवों से निकाले जाते हैं. इस समय एन्जाइम औषधि-शैल रसायन पदार्थ, खाद, कृषि रसायन पदार्थ, अपमार्जक पदार्थ, वस्तु ऊर्जा और चर्म वस्तुओं के उद्योग में प्रयोग में लाए जा रहे हैं. खाद्य पदार्थों के संसाधन में भी रूपांतरक एवं परिरक्षक पदार्थों का स्थान अब सूक्ष्म जीवों से निकाले जाने वाले एन्जाइम ने ले लिया है. वैज्ञानिकों का मत है कि पृथ्वी पर लगभग सात हजार श्रेणियों के एन्जाइम विद्यमान हैं. इनमें से लगभग दो तिहाई पहचाने जा चुके हैं. जबकि सन् 1930 तक केवल 80 प्रकार के एन्जाइम ही पहचाने जा सके थे.

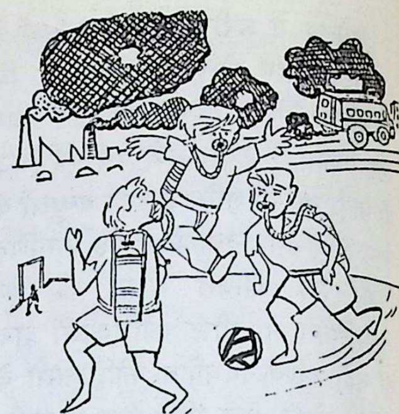
जटिल औषधीय एवं औद्योगिक कार्बनिक पदार्थों के संश्लेषण में भी एन्जाइम एक विशेष महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं. मानव शरीर में विभिन्न प्रकार की औषधियों से उत्पन्न होने वाली रासायनिक क्रियाओं में एन्जाइम विभिन्न प्रकार के प्रभाव उत्पन्न करते हैं. सामान्यतः एक औषधि जो किसी रोग के लिए अमृत का कार्य करती है, उसका समावयवी जहर का काम भी कर सकता है. यह क्रिया पदार्थों में पाई जाने वाली ध्रुवण-घूर्णकता (अप्टिकल एक्टीविटी) पर निर्भर करती है. ऐसे शुद्ध कार्बनिक पदार्थों को बड़ी मात्रा में बनाना कठिन कार्य है. यह पदार्थ सामान्य विधियों द्वारा नहीं बनाए जा सकते वैज्ञानिक ध्रुवण पदार्थ बनाने में एन्जाइम की सहायता लेते हैं. विशेष प्रकार की औषधियों को एन्जाइम की सहायता से आजकल बहुत बड़ी मात्रा में शीघ्रता से बनाया जा सकता है. इसके लिए एन्जाइम भी काफी कम मात्रा में प्रयुक्त करने पड़ते हैं. पैनसिलिन का निर्माण इसका विशेष उदाहरण है.

एन्जाइम के उपयोग की एक मुख्य विशेष बात यह है कि यह अपना कार्य जल विलयन में विशेष तापमान पर करते हैं. इस अपने खास गुण के कारण बहुत से कठिन रासायनिक पदार्थ एक-दूसरे से सामान्य अवस्था में क्रिया करते हैं जिससे ऊर्जा की भारी बचत होती है. असाध्य रोगों के उपचार में इस्तेमाल की जाने वाली विशेष औषधियों जैसे 'स्ट्रेप्टोमाइसिन' पैनिसिलीन आदि के अलावा मधुमेह में उपयोग में लाई जाने वाली इन्सुलिन और कैंसर जैसे जानलेवा रोगों के निदान के लिए एन्जाइम के उपयोग से विभिन्न रासायनिक पदार्थ बनाए जाते हैं.

भारत में एन्जाइम प्रौद्योगिकी का भविष्य

वैज्ञानिकों का मत है कि भारत में एन्जाइम प्रौद्योगिकी का भविष्य काफी उज्जवल है और कार्बनिक पदार्थों का संश्लेषण सफलतापूर्वक किया जा रहा है. कई वैज्ञानिकों का विचार है देश की औद्योगिक प्रगति के उज्जवल भविष्य के लिए 'स्वदेशी एन्जाइम प्रौद्योगिकी' का विकास बेहद आवश्यक है.

गौरतलब है कि विकसित देशों में खाद्य पदार्थों के संसाधन, संचयन तथा उन्हें शुद्धता से उपयोग करने के लिए विभिन्न नवीन वैज्ञानिक विधियों का उपयोग होता है किन्तु भारत जैसे विकासशील देशों के लिए इन अत्याधुनिक वैज्ञानिक विधियों को उपयोग में ला पाना अभी संभव नहीं हो सका है. भारत में आज भी प्राकृतिक



पदार्थों का उपयोग अधिक किया जाता है. एन्जाइम का इस्तेमाल इन प्राकृतिक पदार्थों के संश्लेषण में आवश्यक होता है. हालांकि इनका इस्तेमाल काफी कम मात्रा में किया जाता है, फिर भी संश्लेषित पदार्थ बड़ी मात्रा में प्राप्त होते हैं. इसलिए भारत जैसे देशों के लिए एन्जाइम तकनीक खास मायने रखती है.

आधुनिक तौर-तरीकों से अनाज तथा फलों की खेती, उनके कार्यिक संकरण, रोग नियंत्रण तथा खाद्य पदार्थों के संचयन के लिए संबंधित एन्जाइम और उनकी क्रिया, विशेष भूमिका अदा करती है.

आज दुनिया भर में तीव्र राजनीतिक-आर्थिक परिवर्तनों का चक्र जारी है और दूसरी तरफ उद्योग और कृषि का निरंतर विस्तार हो रहा है. ऐसे समय में एन्जाइम अनुसंधान की भूमिका काफी महत्वपूर्ण हो गई है. एन्जाइम अनुसंधानकर्त्ता यह आशा कर रहे हैं कि ऊर्जा संरक्षण एवं पर्यावरण प्रदूषण की बढ़ती समस्या का कोई न कोई हल जरूर निकाल लेंगे शायद आने वाले अगले कुछ वर्षों में एन्जाइम दुनिया भर के लोगों के जीवन में बदलाव ला दें. भारत जैसे विकासशील देशों को अपने औद्योगिक और उज्जवल भविष्य के लिए स्वदेशी एन्जाइम प्रौद्योगिकी के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता देनी होगी. □

प्रदूषित ताजनगरी में आपका स्वागत है

❑ डा॰ गोपाल भारद्वाज

❑ ताजनगरी यानि आगरा विश्वप्रसिद्ध है, क्योंकि दुनिया के आठ आश्चर्यों में से एक—ताजमहल—यहां स्थित है. किंतु यदि समय रहते इस शहर के प्रदूषण और गंदगी की समस्याओं की ओर ध्यान नहीं दिया गया तो वह दिन दूर नहीं जब यह शहर अत्यधिक प्रदूषित नगर के रूप में भी प्रसिद्धि पा जाएगा.

आगरा उद्योगों का शहर भी है. औद्योगिक कार्यकलापों में वृद्धि के साथ दिन प्रतिदिन वाहनों की संख्या में बढ़ोत्तरी होती जा रही है. किंतु ट्रैफिक की उचित व्यवस्था न होने और मल-जल एवं गंदगी के प्रभावी निस्तारण की उपयुक्त व्यवस्था न होने के कारण वर्तमान में यह शहर पर्यावरण प्रदूषण और गंदगी के गंभीर दौर से गुजर रहा है.

आगरा यमुना नदी के किनारे उत्तर प्रदेश के दक्षिण-पश्चिम भाग में 27° अक्षांश उत्तर एवं 78° देशान्तर पूर्व में स्थित है.

रोगों की खान है यमुना का प्रदूषित जल

यमुना नदी अपनी 1400 किलोमीटर की यात्रा में शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों से मानवीय सभ्यता के विकास की देन के रूप में ग्यारह हजार क्विंटल कचरा लेकर संगम पहुंचती है. दिल्ली की सीमा छू लेने के बाद यमुना का जल बिना साफ किए पीने लायक नहीं रह जाता. यह स्थिति ओखला तक और खराब हो जाती है क्योंकि दिल्ली से ओखला के बीच 11 छोटे-बड़े नाले यमुना में लगातार गंदा पानी उड़ेलते रहते हैं. केवल दिल्ली में ही यमुना में प्रतिदिन 2461 क्विंटल कचरा गिराया जाता है जबकि दिल्ली से पहले पूरे 450 किलोमीटर के क्षेत्र में 3069 क्विंटल कचरा गिराया जाता है. इस बढ़ते प्रदूषण के कारण यमुना का जल मनुष्य तो क्या जानवरों तक के पीने योग्य नहीं रहता.

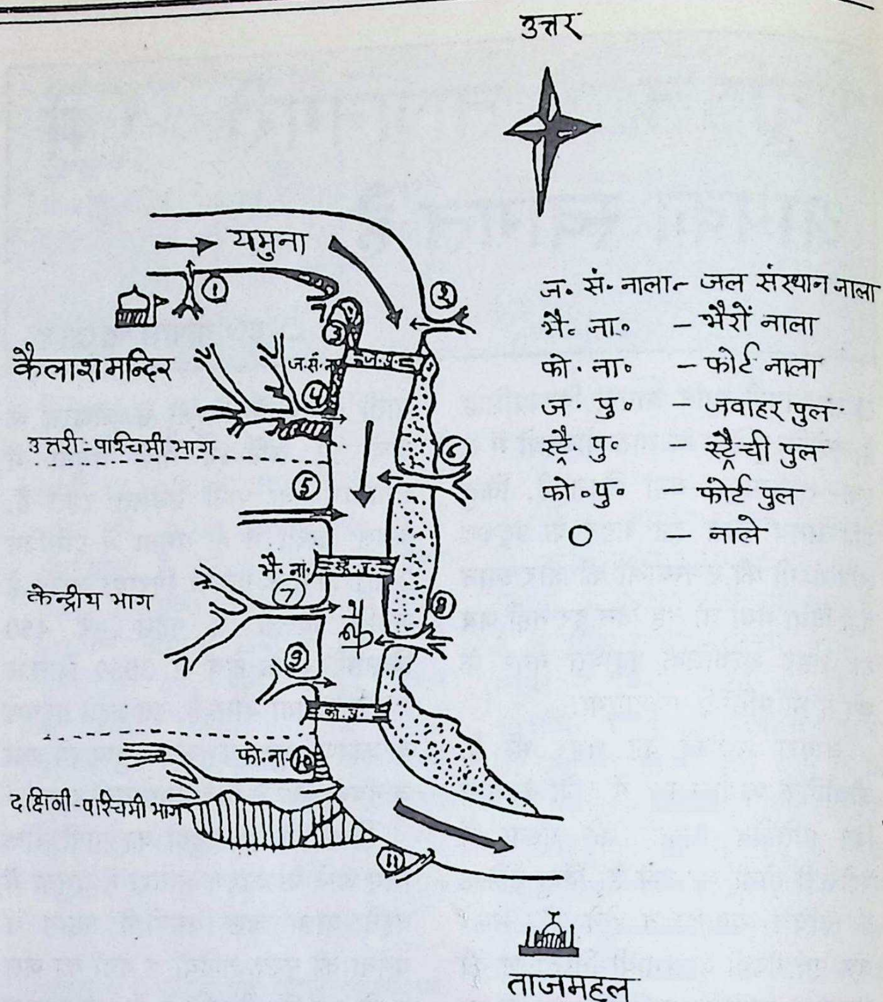
दिल्ली में ही यमुना का पानी रोक लिए जाने के कारण आगरा में यमुना में बहने वाला जल यमनोत्री पहाड़ व यमुना की पूरक नदियों व वर्षा का जल न हो कर दिल्लीवासियों के मल-मूत्र व अन्य गंदगी से युक्त जल होता है. उसमें भी मथुरा में वहां के प्रसिद्ध साड़ी उद्योग की साड़ियों के यमुना में धोए जाने के कारण तथा साड़ी धोए जाने के बाद उसे गंदे धोवन के पानी के प्रदूषण का उपचार न किए जाने के कारण गंदा पानी यमुना जल में समाहित हो जाता है. यमुना के पहले से ही प्रदूषित जल को और अधिक प्रदूषित करने में आगरा के नालों, यमुना नदी पर कपड़ों की व्यावसायिक धुलाई एवं सड़े-गले जीवों के उपस्थित होने का महत्वपूर्ण योगदान है.

आगरा में यमुना नदी में गिरने वाले हानिकारक पदार्थों में मुख्य हैं—सीवेज, औद्योगिक निस्राव, वस्त्र, कागज, लुग्दी, चीनी, वनसपति तेल, कोयला एवं धुलाई कारखानों के अपशिष्ट. कैलाश से लेकर ताजमहल तक यमुना नदी में ग्यारह छोटे-बड़े नाले शहर की गंदगी को लेकर सीधे खुलते हैं (चित्र-1). अतः यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि ये गंदे नाले यमुना के जल को अत्यधिक प्रदूषित करते हैं. इन 11 नालों में तीन नाले पहला जल संस्थान नाला (जो कि शहर के उत्तरी-पश्चिमी भाग से गंदगी लाता है), दूसरा भैरों नाला (जो कि शहर के केंद्र एवं पुराने शहर की गंदगी लाता है) एवं तीसरा फोर्ट का नाला (जो कि शहर के दक्षिणी-पश्चिमी भाग से गंदगी लाता है) प्रमुख हैं.

सीवेज में अमोनीकल नाइट्रोजन, कार्बनिक नाइट्रोजन, क्लोराइड्स,



सल्फेट्स, फॉस्फेट्स, कैल्शियम, मैग्नीशियम, लोहा, जिंक तथा कॉपर आदि कार्बनिक एवं अकार्बनिक पदार्थ प्रमुखता से पाए जाते हैं. इसके अतिरिक्त सीवेज में अनेक प्रकार के हानिकारक जीवाणु भी उपस्थित रहते हैं. सीवेज में घुलनशील ऑक्सीजन निम्न मात्रा में होती है. इन सभी कारणों से यमुना जल अत्यधिक प्रदूषित होकर अनेक रोगों का कारण बनता है और जब आगरा का जल संस्थान यमुना जल के शोधन में लापरवाही कर बैठता है तो आगरा के चिकित्सकों का भगवान की कृपा से भला हो ही जाता है. ताजमहल को देखने आने वाले ताज को देखकर तो मंत्रमुग्ध हो जाते हैं, मगर आगरा का प्रदूषित यमुना जल पीकर अस्वस्थ हो जाते हैं. यह आगरा वासियों की विवशता है कि वह अभी तक पेय जल हेतु यमुना जल पर ही निर्भर हैं. यमुना जल के हानिकारक प्रभावों को देखते हुए अब स्वच्छ जल के लिए मध्यम आय वर्गीय परिवारों में हैंड पम्पों एवं जैट पम्पों का प्रचलन बढ़ता जा रहा है.



चित्र-1. आगरा मे यमुना का प्रवाह

शहर को प्रदूषित करने में उद्योगों का योगदान

आगरा के प्रमुख उद्योगों में हैं चर्म उद्योग, आयरन फाउन्ड्री एवं संगमरमर उद्योग. आगरा देश में चर्म उद्योग का मुख्य केंद्र है. महाजन टैनर्स, पार्क लैदर टैनरी, साहनी टैनरी, ताज टैनरी, वासन एवं कंपनी आदि प्रमुख टैनरी कारखाने हैं. चमड़े के शोधन की लम्बी प्रक्रिया में कई रसायनों का उपयोग होता है. टैनरी उद्योग से जो अपशिष्ट पदार्थ निकलते हैं उनसे सतही एवं भूमिगत दोनों ही प्रकार के जल जिनका उपयोग पीने एवं सिंचाई के लिए किया जाता है, प्रदूषित हो जाते हैं.

दूषित वायुमण्डल

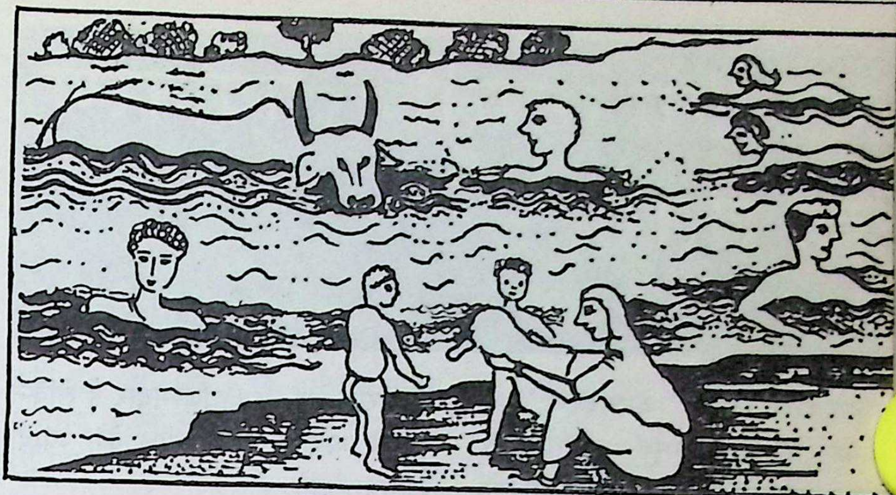
आगरा लोहे की ढलाई का देश का दूसरा बड़ा केंद्र है. यहां डीजल इंजन एवं जेनेरेटर आदि बनते हैं. नगर में लगभग 200 आयरन फॉउन्ड्रियां हैं जो वायु को प्रदूषित करने के साथ-साथ कुछ हद तक नगर का तापमान भी बढ़ाती हैं. अक्तूबर 1991 तक आगरा में रजिस्टर्ड एवं मार्ग पर चलने वाले भारी व हल्के वाहनों की संख्या छह लाख से ऊपर थी. वायु को प्रदूषित करने में वाहनों की प्रमुख भूमिका होती है. आगरा से होकर तीन राष्ट्रीय राजमार्ग निकलते हैं. पर्यावरण मंत्रालय के एक पुराने अध्ययन के अनुसार ताजमहल के तीन किलोमीटर परिधि के क्षेत्र से निकलने वाले आटोमोबाइल वाहनों के कारण प्रतिदिन 65 किलोग्राम सल्फर डाइआक्साइड पैदा होती है. विभिन्न राष्ट्रीय राजमार्गों को आगरा शहर से बाहर जोड़ने वाला कोई मार्ग न होने के कारण ये तीनों मार्ग नगर में होकर ही एक दूसरे से जुड़ते हैं. जिसके कारण सभी वाहन शहर के अंदर होकर गुजरते हैं. आगरा नगर की आबादी एवं बाजारीय क्षेत्रों से निकलने वाली इन संकरी सड़कों पर भीड़-भाड़ के कारण चालित अवस्था में यह वाहन काफी देर तक रास्ता साफ होने की बाट जोहते रहते हैं. कभी-कभी तो वाहनों की

अधिकता से यह जाम घंटों तक लगा रहता है जिसके कारण वाहनों के धुएं से अनावश्यक रूप से प्रदूषण फैलता है. इससे डीजल व पेट्रोल की क्षति के साथ-साथ राष्ट्रीय क्षति भी होती है. ताजमहल व अन्य ऐतिहासिक स्थलों को देखने आने वाले लाखों देशी व विदेशी पर्यटकों को भी भारी परेशानी होती है. इस समस्या का निराकरण एक रिंगरोड बनाकर इन तीनों राष्ट्रीय राजमार्गों को जोड़कर किया जा सकता है. इससे परिवाहनीय कारणों से पैदा होने वाले पर्यावरणीय प्रदूषण की मात्रा भी कम हो जाएगी.

संगमरमर से बनने वाली वस्तुओं के लिए संगमरमर की कटाई एवं घिसाई से उत्पन्न होने वाले संगमरमर के कण वायुमंडल में मिल जाते हैं. सांस द्वारा ये कण फेफड़ों में चले जाते हैं और कई प्रकार की बीमारियों का कारण बनते हैं.

आगरा से लगभग 50 किलोमीटर की दूरी पर उत्तर-पश्चिमी दिशा में मथुरा रिफाइनरी स्थित है. प्रत्येक रिफाइनरी गैसीय एवं द्रवीय दोनों ही प्रकार के प्रदूषकों को उत्पन्न करती हैं. तेल शोधन संयंत्र से उत्पन्न होने वाले प्रमुख गैसीय प्रदूषक हैं, नाइट्रोजन के ऑक्साइड, सल्फर डाइआक्साइड, हाइड्रोकार्बन, अमोनिया एवं कार्बन मोनोऑक्साइड. तेल शोधन संयंत्र से निकले अपशिष्ट जल में मुख्यतया तेल, फीनोल, घुले हुए सल्फाइड्स, अमोनिया, हाइड्रोजन सल्फाइड, हाइड्रोकार्बन एवं साइनाइड होते हैं. मथुरा रिफाइनरी से उत्पन्न होने वाले गैसीय प्रदूषकों का भी आगरा के वातावरण पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है.

नेशनल एनवायर्नमेंटल इंजीनियरी रिसर्च इंस्टीट्यूट (नीरी) द्वारा आगरा में



विभिन्न स्थानों पर किए गए वायु-प्रदूषण के सर्वेक्षण की रिपोर्ट के अनुसार ताजमहल पर सल्फर डाइआक्साइड की औसत मात्रा सर्वाधिक 107 माइक्रोग्राम प्रति क्यूबिक मीटर पाई गई, जबकि आगरा फोर्ट पर 38 माइक्रोग्राम प्रति क्यूबिक मीटर एवं सिकंदरा और फतेहपुरी सीकरी पर 35 माइक्रोग्राम प्रति क्यूबिक मीटर या उससे कम पाई गई.

कचरे की समस्या

जब हम प्राणदायक वायु तथा पानी को स्वच्छ नहीं रख पा रहे हैं, तो फिर कचरे जैसी अनावश्यक चीज पर हमारा ध्यान क्यों जाएगा. मोटे तौर पर आगरा शहर और उसके आस-पास के क्षेत्रों को मिलाकर यहां प्रतिदिन 200 टन कचरा उत्पन्न होता है. इसका बहुत थोड़ा-सा अंश भी 'सैनेट्री लैंड फिलिंग' यानि गड्ढों में कचरे को भरकर जमीन समतल करने में काम आता है, शेष यहां-वहां ढेर लगाकर जला दिया जाता है या फिर जगह-जगह सड़ता हुआ बीमारियों को निमंत्रण देता रहता है.

कचरे में सबसे ज्यादा भाग (लगभग 60 प्रतिशत) वनसपति का है, फिर कागज, रबर, चमड़ा, प्लास्टिक, पुराने कपड़े, लकड़ी और धातुओं का नम्बर आता है. यदि इस कचरे को ठीक से ठिकाने लगाने की कोई योजना बनाई जाए तो उससे खेती के लिए भी लाभदायक पदार्थ उपलब्ध होंगे.

नगर का अत्यधिक विस्तार

सभी बड़े शहरों का चरित्र होता है. अपने आस-पास की उपजाऊ जमीन एवं हरियाली को समाप्त कर नई-नई आवासीय कालोनियां एवं व्यावसायिक केंद्र बनाने का और आगरा भी इसमें पीछे नहीं है. अभी जहां कुछ ही वर्ष पूर्व तक खेती होती थी वहां आज नई-नई आवासीय कालोनियां खड़ी होती जा रही हैं. आवासीय कालोनियां बनाने के लिए जितने वृक्षों को यहां समाप्त किया जा रहा है, क्या उतने ही वृक्ष अन्यत्र कहीं लग रहे हैं, शायद नहीं. तो फिर स्वच्छ वायु की बात कैसे की जाए. यदि स्वच्छ पर्यावरण चाहिए तो मनुष्यों एवं वृक्षों का संतुलन बनाए रखना होगा.

और तो और गरमी के मौसम में आगरा की हवा में काफी धूल उड़ती रहती है और यह धूल हमें अपने पड़ौसी राज्य राजस्थान से भेंट स्वरूप प्राप्त होती है. राष्ट्रीय राजमार्ग नम्बर दो को

(शेष पृष्ठ 229 पर)

गरमाती धरती : पर्यावरण को खतरा

□ अनिल प्रताप सिंह 'वैभव'

□ पर्यावरण हमारे वातावरण एवं परिवेश की वह समूची भौतिक व जैविक व्यवस्था है, जिसमें जीवधारियों का स्वाभाविक विकास होता है. पिछले कुछ वर्षों में हमारे पर्यावरण को मानवीय कार्यकलापों से अत्यधिक क्षति पहुंची है और यदि यही हाल रहा तो वह दिन दूर नहीं जब पृथ्वी पर जीवधारियों का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा. पर्यावरण किसी देश की सीमाओं से आबद्ध नहीं है, यह संपूर्ण विश्व हेतु एक इकाई है. अतः पर्यावरण-असंतुलन से उत्पन्न समस्याएं संसार के समस्त देशों के लिए विचारणीय है.

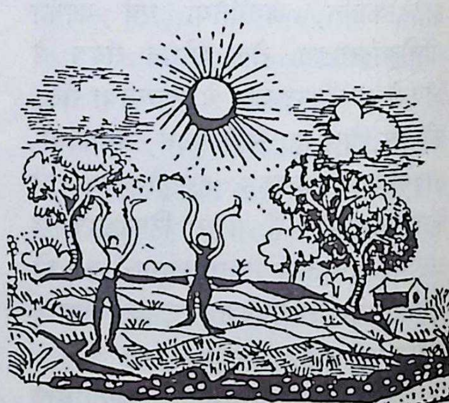
पिछले कुछ वर्षों में मनुष्य द्वारा पर्यावरण में हो रही दखलन्दाजियों के फलस्वरूप हमारी धरती के औसत तापमान में वृद्धि हुई है जिसका निदान पर्यावरणशास्त्रियों के लिए चुनौती बन गया है. तापमान में यह परिवर्तन पृथ्वी की जलवायु की सामान्य क्रिया हेतु गम्भीर समस्या बन सकता है तथा इसके भयंकर परिणाम हमें विविध रूपों में भुगतने पड़ सकते हैं.

पिछले कुछ दशकों में वातावरण में कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा में अत्यधिक वृद्धि हुई है इसका मुख्य कारण है कोयला, तेल आदि जैसे जीवाष्म ईंधन के जलने से तथा निकली कार्बन डाइआक्साइड है. इसके लिए विकसित देश ज्यादा जिम्मेदार हैं लेकिन इसकी भार से विकासशील देश ज्यादा प्रभावित होंगे.

जब किसी ग्रह के वायुमंडल में कार्बन डाइआक्साइड गैस की मात्रा अधिक हो जाती है, तो यह सूर्य की किरणों को अवशोषित करता है किंतु विकरित नहीं करता, परिणामस्वरूप वायुमंडल का तापमान बढ़ जाता है. धरती के वातावरण में कार्बन डाइआक्साइड की इस वृद्धि के कारण पृथ्वी पहले की अपेक्षा अधिक गरम होती जा रही है. कार्बन डाइआक्साइड गैस में पृथ्वी से वापस लौटने वाली अवरक्त (इन्फ्रारेड) किरणों को ग्रहण करने का भी विशेष गुण निहित होता है. जब यह अवरक्त किरणें अवशोषित होंगी तो विश्व-भर का तापमान भी बढ़ेगा. फलतः मौसम में भी परिवर्तन होगा. पृथ्वी के तापमान में वृद्धि की इस संपूर्ण प्रक्रिया को 'ग्रीन हाउस प्रभाव' नाम दिया गया है. इसको सर्वप्रथम सन् 1986 में स्वीडन के रसायनविज्ञानी आर्थोनियस ने बताया था.

सन् 1860 और 1960 के बीच जीवाश्म ईंधन ने वायुमंडल की कार्बन डाइआसाइड की मात्रा में 14 प्रतिशत की वृद्धि कर दी है. वनों की कटाई से भी कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा में लगातार बढ़ोत्तरी हो रही है, जिससे वातावरण में प्राणवायु यानी आक्सीजन की सामान्य प्रतिशतता (लगभग 20.93 प्रतिशत) में निरंतर कमी होती जा रही है. इन सभी कारणों से पिछली एक शताब्दी में पृथ्वी के तापमान में 0.50 डिग्री सेल्सियस से 0.75 डिग्री सेल्सियस तक की वृद्धि हुई है तथा अनुमान है कि अगली सदी के मध्य तक पृथ्वी का तापमान 5 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ जाएगा. उल्लेखनीय है कि वनस्पतियुक्त वन क्षेत्र वायुमंडल में नमी बनाने तथा तापमान कम रखने में अत्यंत सहायक होते हैं.

तापमान वृद्धि का एक अन्य खतरा समतापमंडल की ओजोन के क्षय से भी है. पृथ्वी की सतह से लगभग 15 किलोमीटर ऊपर और लगभग 25 किलोमीटर मोटी यह ओजोन छतरी सूर्य की गर्म पराबैंगनी किरणों को अवशोषित कर पृथ्वी को गर्म होने से बचाने के अलावा इस खतरनाक पराबैंगनी विकिरण से तमाम जीवधारियों की रक्षा भी करती है. अंटार्क्टिक क्षेत्र में पाए गए ओजोन छेद के अलावा यह परत और जगह भी क्षतिग्रस्त हो गई हैं. इससे मनुष्य की त्वचा के कैंसर और मोतियाबिंद जैसी आंखों की बीमारियों का खतरा और बढ़ गया है.



ओजोन परत के विनाश के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार क्लोरोफ्लोरो कार्बन यौगिक दूसरी ओर धरती का तापमान बढ़ाने में भी सहायक हैं और इस मामले में यह कार्बन डाइआक्साइड से भी ज्यादा खतरनाक है. इनके अलावा नाइट्रोजन के आक्साइड, मीथेन, बेंजीन, ओजोन आदि भी ऐसी गैसें हैं जो धरती का तापमान बढ़ाने में सहायक हैं. समतापमंडल की ओजोन तो हमारे लिए रक्षा कवच का काम करती है लेकिन पृथ्वी की सतह पर इसका जमाव हानिकारक है.

आजकल विश्व के कुछ देशों के वैज्ञानिक धरती के तापक्रम में इस वृद्धि का अध्ययन महासागरों के माध्यम से करने का प्रयत्न कर रहे हैं. दो भारतीय संस्थानों, राष्ट्रीय सामुद्रिक संस्थान, गोवा तथा राष्ट्रीय भौतिक एवं सामुद्रिक प्रयोगशाला, कोचीन सहित आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, फ्रांस, कनाडा, दक्षिणी अफ्रीका तथा ब्राजील आदि देश संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के नेतृत्व में इस बढ़ती हुई गर्मी का अध्ययन महासागरों में ध्वनि प्रसार के आधार पर आरंभ कर रहे हैं. ध्वनि की जल में गति सामान्यतया 1.609 किलोमीटर प्रति सेकेंड है, किंतु यह ताप क्षारता आदि द्वारा बदल भी सकती है. वैसे ध्वनि की जल में लंबी दूरी की गति ताप द्वारा अत्यधिक प्रभावित होती है. ज्यों-ज्यों ताप बढ़ता है, ध्वनि की जल में गति तीव्र होती जाती है.

स्क्रिप्स सामुद्रिक संस्थान, ला जोला, कैलीफोर्निया (संयुक्त राज्य अमेरिका) के डा० वाल्टर मुन्क, जो महासागरों में ध्वनि की गति के प्रयोग के प्रणेता हैं, ने इसके लिए आस्ट्रेलिया के निकट हियर्ड द्वीप का चयन किया है. उनके अनुसार इस द्वीप का चयन इसके संसार के पांच महासागरों में फैले सीधे पथ के कारण किया गया है. यहां पैदा की गई ध्वनि हजारों किलोमीटर दूर भी ध्वनि संवेदी उपकरणों द्वारा सुनी जा सकती है. डा० वाल्टर मुन्क का कहना है कि यदि धरती पर गर्मी वास्तव में बढ़ रही है तो इस हियर्ड द्वीप से सैन फ्रांसिस्को के बीच की 17,920 किलोमीटर की दूरी को ध्वनि हर दूसरे वर्ष अपने वर्तमान गति के समय से एक चौथाई कम समय में ही पूर्ण कर लेगी.

इधर संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम तथा विश्व मौसम विज्ञान संगठन के वैज्ञानिकों ने एक चेतावनी दी है कि पृथ्वी के तापमान में वृद्धि के फलस्वरूप ध्रुवों के हिमाच्छादित क्षेत्रों की बर्फ पिघलने से महासागरों का जल स्तर ऊंचा हो जाएगा और संसार के कुछ नगर जलमग्न हो जाएंगे. अकेले अंटार्कटिका ध्रुव का हिमाच्छादन संपूर्ण पृथ्वी के हिमाच्छादन का 91 प्रतिशत है तथा हाल के वर्षों में उसकी काफी बर्फ पिघली है. वैज्ञानिकों के अनुसार विगत 1,25,000 वर्षों में अंटार्क्टिका का बर्फ पिघलने से महासागरों का जल स्तर कम से कम 20 फुट बढ़ गया है.

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के अनुसार यदि हम शीघ्र ही कोई सकारात्मक कदम नहीं उठाते, तो तापमान में बढ़ोत्तरी के परिणामस्वरूप महासागरों के जल स्तर में और वृद्धि से मालद्वीप जैसे देश तो पूरे ही जलमग्न हो जाएंगे और संयुक्त राज्य अमेरिका, बांगलादेश, भारत, चीन, मिश्र तथा इन्डोनेशिया आदि देशों के समुद्र तटीय प्रदेश डूब जाएंगे इसके अलावा इन देशों में बाढ़ आने की संभावना प्रबल होती जाएगी और साथ ही विश्व भर के वर्षाक्रम में भी परिवर्तन होगा. जिससे वर्षा की कमी, उपजाऊ मिट्टी के क्षरण जैसी स्थितियां जन्म लेंगी तथा फसलों के उत्पादन में भी भारी कमी आएगी.

स्थिति की गंभीरता समझते हुए हमें पर्यावरण का सन्तुलन बनाए रखने हेतु जागरूक रहना होगा तथा एकजुट होकर पर्यावरण असन्तुलन को चुनौती के रूप में स्वीकारते हुए उसके निदान हेतु कुछ सकारात्मक सोचना व करना होगा, तभी धरती पर जीवधारियों का अस्तित्व सुरक्षित रह सकेगा. □

(पृष्ठ 227 का शेषांश)

आगरा से दिल्ली के बीच चार लाइनों का बनाने के लिए जो योजना चल रही है, उसके अंतर्गत आगरा की सीमा में अभी हाल में ही अनेक वृक्षों को अपनी आहुति देनी पड़ी. फिर भी शायद अभी तक संपूर्ण जिले में उनकी संख्या के एक चौथाई भी नए पौधे लगाए गए हैं. वृक्षों की संख्या में इसी तरह कमी होती रही तो आगरा निवासियों एवं पर्यटकों को आगामी वर्षों में और भी ज्यादा धूल भरी तेज हवाओं के लिए तैयार रहना होगा.

ताजमहल के कारण आगरा को प्रदूषण से बचाने के लिए किए जा रहे उपायों की लोकसभा में घोषणा करते हुए केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री श्री अर्जुन सिंह ने बताया कि सरकार ने आगरा के दो ताप बिजलीघरों को बंद कर दिया है तथा आगरा के स्टेशनों पर कोयले के इंजनों के उपयोग पर पाबंदी लगा दी है. यह बात दूसरी है कि स्टेशनों पर अभी भी कोयले के इंजनों को कार्य करते हुए देखा जा सकता है. केंद्रीय और राज्य सरकार के साथ-साथ आगरा के निवासियों को भी समय रहते इस शहर की समस्याओं को हल करना होगा, अन्यथा ताजमहल की सुन्दरता के साथ प्रदूषित एवं गंदा आगरा हम सभी के लिए एक धब्बा साबित होगा. □

इन्वेंशन्स दैट मेड हिस्ट्री

❑ डा० पी० के० मुखर्जी

चर्चित पुस्तक : इन्वेंशन्स दैट मेड हिस्ट्री ; लेखक : दिलीप एम० साल्वी; प्रकाशक : प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001; पृष्ठ : 80; मूल्य : 20 रुपए.

चर्चित पुस्तक : ग्रेट डिस्कवरीज ; लेखक : दिलीप एम० साल्वी; प्रकाशक : फ्रैंक एजुकेशनल एड्स प्रा० लि०, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, पृष्ठ : 63, मूल्य : 20 रुपए.

चर्चित पुस्तक : सुपर कंडक्टिविटी ; लेखक : दिलीप एम० साल्वी; प्रकाशक : चिल्ड्रेन्स बुक ट्रस्ट, नेहरू हाउस, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002, पृष्ठ : 24, मूल्य : 6 रुपए.

❑ मानव जाति के जीवन को उन्नत और सुखमय बनाने में तथा मानव सभ्यता को विकास और प्रगति के पथ पर अग्रसर करने में वैज्ञानिक आविष्कारों का अपना अहम् योगदान है. चाहे रेलगाड़ी हो या मोटर कार का आविष्कार या चाहे ट्रांजिस्टर, टेलीविजन, राकेट या कम्प्यूटर का आविष्कार हो, हर आविष्कार के पीछे वैज्ञानिकों की कड़ी मेहनत, इच्छाशक्ति और घोर संघर्ष की कहानी अंतर्हित है. लेखक दिलीप साल्वी की पुस्तक 'इन्वेंशन्स दैट मेड हिस्ट्री' में सोलह आविष्कारकों के जीवन वृत्तांत और उनके आविष्कारों के बारे में विवरण दिया गया है. पुस्तक में कुल सोलह अध्याय हैं. लेखक ने हर अध्याय में एक अलग आविष्कार की कहानी दी है. पुस्तक में दिए गए कुछ प्रमुख आविष्कारकों के नाम हैं: जार्ज स्टीफेन्सन, जोहनिस गुटनबर्ग, बान बियार्ड, हेनरी फोर्ड, एडिसन, चार्ल्स बैबेज, विलियम शाकले, आदि.

कई आविष्कारकों को प्रारंभिक दौर में अनेक विफलताओं का सामना करना पड़ा. पर हिम्मत न हार कर निरंतर आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा और अपनी इच्छा शक्ति द्वारा वे अंततः सफलता की सीढ़ियां चढ़ने में कामयाब हुए. पुस्तक में आविष्कारकों के संघर्ष की कथा को बड़े रोचक ढंग से वर्णित किया गया है, जो विशेषकर किशोर उम्र के पाठकों के लिए प्रेरणादायक साबित होंगी. आविष्कारकों तथा उनके आविष्कारों के चित्र पुस्तक में शामिल किए गए हैं. पर चित्रों को एक साथ न देकर हर अध्याय के साथ अलग-अलग दिया होता तो बेहतर होता. सरल भाषा और मंजी हुई शैली में लिखी गई पुस्तक उद्देश्यपूर्ण और प्रेरणादायक है. यह हर वर्ग के पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी.

दूसरी पुस्तक 'ग्रेट डिस्कवरीज' में बारह महत्वपूर्ण खोजों और आविष्कारों की रोचक और प्रेरक कहानियां हैं. पुस्तक में उन मूलभूत आविष्कारों के बारे में लिखा गया है जिन्होंने हमारे जीवन की दिशा ही परिवर्तित कर दी.

पुस्तक में वर्णित कुछ आविष्कारों और खोजों का विवरण तो पाठ्य पुस्तकों तक में पढ़ने को मिलता है. मसलन न्यूटन द्वारा गुरुत्वाकर्षण के नियम की खोज, राबर्ट बायल द्वारा गैस नियम की खोज, एडवर्ड जीनर द्वारा चेचक के टीके की खोज, आदि. राजन द्वारा एक्स किरणों का आविष्कार, मदाम क्यूरी द्वारा रेडियम की खोज तथा एलेक्जेंडर फ्लेमिंग द्वारा पेनिसिलिन की खोज चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में एक नया आयाम जोड़ने में सफल हुए. इन खोजों का चिकित्सा विज्ञान में बड़ा ही अहम् योगदान है. विलियम हार्वे, गैलीलियो, आर्किमिडीज, वोल्टा, बेंजामिन फैंकलिन तथा लुई पाश्चर की खोजों और आविष्कारों का भी विज्ञान जगत में महत्वपूर्ण स्थान है.

पुस्तक के अंत में परिशिष्ट रूप में उल्लिखित 12 वैज्ञानिकों का संक्षिप्त जीवन परिचय भी दिया गया है. पुस्तक में दिए गए सभी विवरणों में सरल भाषा और मंजी हुई शैली का इस्तेमाल लेखक ने किया है. सभी वर्ग के पाठकों के लिए पुस्तक निस्संदेह उपयोगी, रोचक और ज्ञानवर्धक साबित होगी.

तीसरी पुस्तक 'सुपर कंडक्टिविटी' में लेखक ने सुपर कंडक्टिविटी यानी अतिचालकता के बारे में जानकारी दी है. सुपरकंडक्टर शून्य प्रतिरोधकता वाले उन पदार्थों को कहा जाता है जिनसे होकर बिजली बिना किसी ऊर्जा की कमी के प्रवाहित होती है. तांबा और एलुमीनियम जैसे बिजली के सुचालकों से होकर बिजली प्रवाहित करने पर इन पदार्थों के प्रतिरोध के कारण ऊर्जा यूं ही नाहक बरबाद होती है. अतिचालक की खोज सबसे पहले केमरलिंग ओन्स नाम के वैज्ञानिक ने 1911 में की थी. लेकिन यह अति न्यूनतम तापमान (4 डिग्री केल्विन यानी −269 डिग्री सेल्सियस) वाला सुपरकंडक्टर था जिसके लिए तरल हीलियम का इस्तेमाल किया गया

(शेष पृष्ठ 236 पर)

आइए दूरदर्शी बनाएं—4

☐ आशुतोष मिश्र

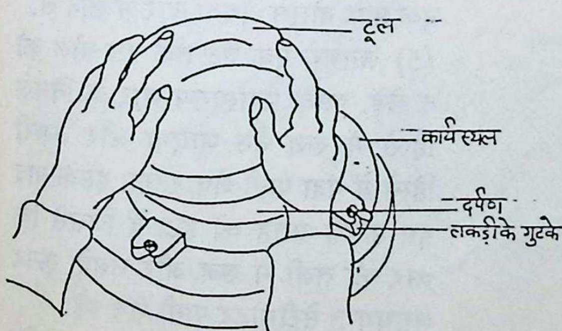
आइए दूरदर्शी बनाएं' की जनवरी 1992 अंक में प्रकाशित पहली कड़ी में आपका दूरदर्शी के विभिन्न भागों से परिचय कराया गया. मार्च 1992 अंक में प्रकाशित दूसरी कड़ी में आपने अवतल दर्पण की घिसाई के विषय में पढ़ा. इसके बाद हमने आपको अप्रैल 1992 के अंक में सीधे निर्माण कार्य संबंधी शेष बता दी जबकि अवतल दर्पण की घिसाई संबंधी बात अभी पूरी नहीं हुई थी और दर्पण की पॉलिश और एलुमिनीकरण की चर्चा भी बाकी थी. इसके बाद ही निर्माण संबंधी बाकी बात कही जानी थी—अब हम इस अंक और अगले अंक में प्रकाशित करेंगे—यही अधूरी रह गई बात अर्थात दर्पण की पॉलिश की और एलुमिनीकरण की.

☐ मार्च 1992 के अंक में आपने दूरदर्शी में प्रयुक्त होने वाले अवतल दर्पण के निर्माण के प्रथम चरण के संबंध में पढ़ा. यदि आपने यह दर्पण बनाना प्रारंभ कर दिया है, तो अब तक आपने घिसाई का कार्य पूर्ण कर लिया होगा. घिसाई की प्रक्रिया में संभव है आपको कुछ परेशानियों का सामना करना पड़ा हो. ये समस्याएं किस प्रकार की हो सकती हैं, और इनका निदान किस प्रकार किया जा सकता है, यहां इस बारे में बताया जा रहा है:

(1) ऐसा अक्सर देखा गया है कि घिसाई के दौरान, दर्पण का बाहरी छोर ठीक से नहीं घिस पाता है. यदि ऐसा हो रहा है और साथ ही आपको 3/4 गहराई (सैगिट्टा) भी प्राप्त हो चुकी है, तो आप तुरंत दर्पण को टूल के मध्य में रखकर (जिससे कि दर्पण और टूल के केंद्र एक दूसरे के ऊपर बैठ जाएं) घिसाई जारी रखें, साथ ही ध्यान रखें कि दर्पण का केंद्र टूल के केंद्र से 1/3D (=5 सेंटीमीटर) से अधिक गति न करे (देखें चित्र-1).

(2) कभी कभी ऐसा भी होता है कि दर्पण की गहराई, आप द्वारा निर्धारित गहराई से अधिक हो जाती है (यानी सैगिट्टा 1.17 मिलीमीटर से अधिक हो जाता है). यदि यह अंतर बहुत अधिक नहीं है, तो आप इसकी ओर ध्यान न दें, परंतु गहराई के बहुत अधिक हो जाने से समस्या उत्पन्न हो सकती है. इसलिए बेहतर यही है कि समय-समय पर आप गहराई की जांच करते रहें. गहराई अधिक होने पर आप दर्पण और टूल के स्थानों को आपस में बदल दें (यानी दर्पण को नीचे रखें) और घिसाई जारी रखें.

(3) कभी भी दर्पण और टूल को एक दूसरे के ऊपर अधिक समय तक न रहने दें. ऐसा हो सकता है कि आप दर्पण और टूल को छोड़कर किसी और कार्य में व्यस्त हो जाएं. इसके फलस्वरूप दोनों आपस में इस तरह चिपक जाएंगे कि उन्हें अलग कर सकना अत्यंत कठिन हो जाएगा. यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है तो जल्दबाजी न करें. पानी से भरी बाल्टी में दर्पण और टूल को डाल दें और लकड़ी के गुटके की सहायता से उन्हें ठोंककर अलग करें.



चित्र-1 : 1/3 D स्ट्रोक लगाने की विधि

दर्पण की पॉलिश

कारबोरंडम पाउडर से घिसाई करने के पश्चात, दर्पण को पॉलिश की आवश्यकता होती है. यूं तो बहुत महीन कारबो पाउडर की घिसाई ही दर्पण की सतह को बहुत चिकना बना देती है, परंतु याद रखिए आपको दर्पण अपने दूरदर्शी में लगाना है. इसके लिए यह आवश्यक है कि उसकी परावर्तक सतह उच्च गुणवत्ता की हो. आपने शायद सुनारों को जेवरातों की पॉलिश करते देखा होगा. उसके लिए वे रूज़ इस्तेमाल में लाते हैं. अपने दर्पण को भी हम रूज़ की सहायता से चिकना बनाएंगे.

पॉलिश प्रारंभ करने से पूर्व आप सुनिश्चित कर लें कि आपके पास निम्न सामान उपलब्ध है या अभी इन्हें जुटाने का काम बाकी है:

(1) डामर—लगभग 500 ग्राम

(2) रोज़िन—लगभग 100 ग्राम
(3) बीज़वैक्स (मोम)—लगभग 40 ग्राम
(4) रूज़ आवश्यकतानुसार—लगभग 100 ग्राम. (रूज़ सीरियम ऑक्साइड का पाउडर होता है)
(5) स्टोव या हीटर
(6) गरम करने के लिए पात्र
(7) लकड़ी, कीलें, आदि

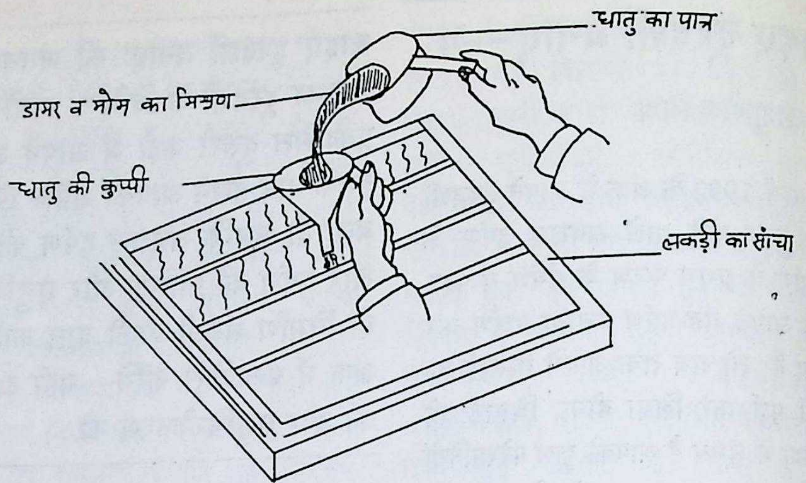
पॉलिश की प्रक्रिया को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं:

(अ) रूज की सफाई: अधिकतर ऐसा होता है कि बाज़ार में मिलने वाला रूज गंदा होता है. उसमें उपस्थित अशुद्धियां आपके दर्पण की सतह को खराब कर सकती हैं. इसके लिए आवश्यक है कि इस्तेमाल से पूर्व आप रूज को छानकर साफ कर लें. यह इस प्रकार से किया जा सकता है:

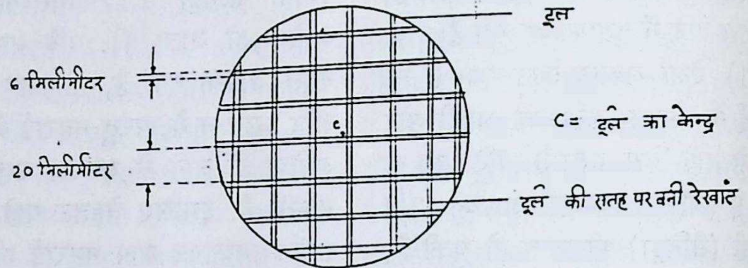
(1) लगभग 20 ग्राम रूज लें और उसे एक लीटर पानी में घोल दें.

(2) इस घोल को तब तक गर्म करें, जब तक कि वह उबलने न लगे.

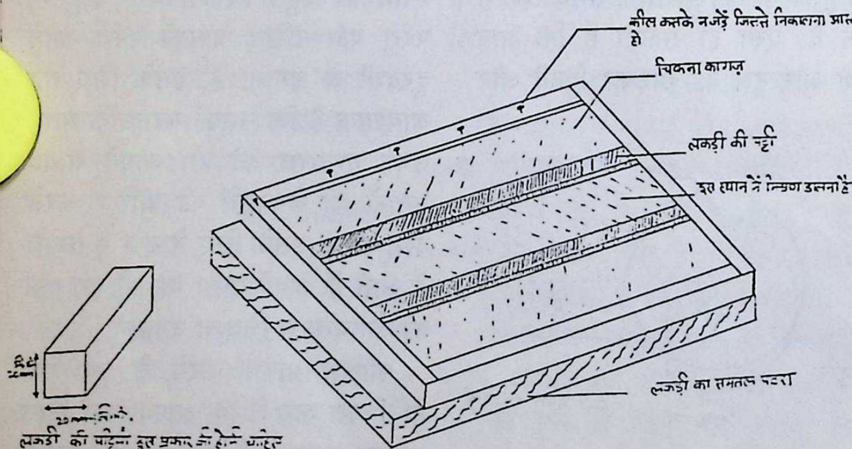
(3) जब घोल में उबाल आएगा तो आप देखेंगे कि उसकी सतह पर झाग



चित्र 3: डामर, मोम व रोज़िन के पिघले मिश्रण को सांचे में डालने की प्रक्रिया



चित्र-4: टूल की सतह पर रेखाएं खींचने की विधि



चित्र:2 : सांचे का निर्माण जिसमें डामर व मोम का मिश्रण, पट्टियों का आकार लेगा

बनता है जिसमें गंदगी भी घुली रहती है. चम्मच की सहायता से इस ऊपरी झाग को निकाल दें.

(4) किसी महीन कपड़े (जैसे धोती के टुकड़े) की दो परतें बनाकर इस घोल को एक साफ बोतल अथवा जार में छान लें.

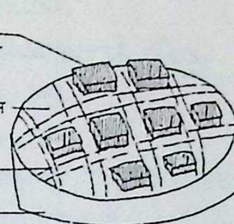
(5) लगभग एक घंटे तक इस घोल को न छेड़ें. इसके फलस्वरूप जार के निचले हिस्से में रूज बैठ जाएगा और ऊपरी हिस्से में गंदा पानी शेष रहेगा. इसके बाद इस ऊपरी सतह को हटा दें जिससे कि जार की तली में रूज और उसके ऊपर लगभग 3 सेंटीमीटर पानी शेष रहे.

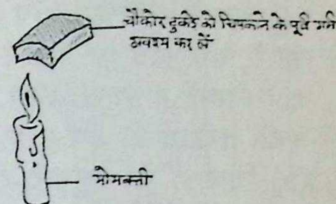
(6) जार को ठीक से हिला दें ताकि रूज का गाढ़ा घोल शेष रहे. इस घोल

को महीन कपड़े से छानकर एक गिलास में पलट लें जिससे कि लगभग एक चौथाई गिलास घोल से भर जाए. अब इस गिलास के बचे तीन चौथाई भाग को पानी से भर दें, और अच्छी तरह से हिलाकर मिला दें. उसके बाद लगभग एक मिनट तक उस गिलास में घोल को बैठने दें. इसके फलस्वरूप जो कुछ गंदगी बची होगी वह गिलास की तली में बैठ जाएगी.

(7) इस गिलास से ऊपर का आधा घोल साइफ़न के द्वारा एक अन्य जार में पलट लें. यह शुद्ध किया हुआ रूज है जिसे आप पॉलिश के लिए इस्तेमाल में लाएंगे.

(8) जब भी आपको रूज इस्तेमाल में लाना हो, उसे पहले इस प्रक्रिया से शुद्ध कर लें, तत्पश्चात पॉलिश के लिए इस्तेमाल करें.





चित्र-6 : मिश्रण के चौकोर टुकड़ों को टूल की सतह पर अंकित खानों में चिपकाने की प्रक्रिया

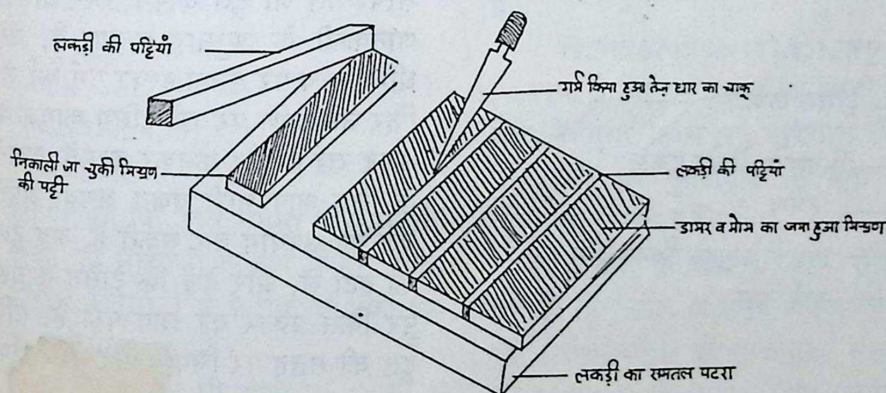
(आ) डामर व मोम को मिश्रित करना: जिस प्रकार का डामर आपको इस्तेमाल में लाना है, वह कुछ इस प्रकार का होना चाहिए कि न ही वह बहुत कठोर हो और न ही बहुत मुलायम. बहुत कठोर होने पर वह टूट सकता है और बहुत मुलायम होने से पॉलिश की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न कर सकता है. आप के द्वारा बनाया डामर और मोम का मिश्रण इस प्रकार का होना चाहिए कि उसे आसानी से चाकू से काटा जा सके. मोम डामर को मुलायम बनाती है, और रोज़िन डामर को मजबूती प्रदान करता है. ऐसा देखा गया है कि 400 ग्राम डामर में 15 ग्राम मोम और 70 ग्राम रोज़िन का मिश्रण पॉलिश के काम के लिए उपयुक्त रहता है. लगभग 400 ग्राम मिश्रण से आप पॉलिश का कार्य पूरा कर सकते हैं.

(इ) पॉलिश के टूल का निर्माण: आप यह सोच रहे होंगे कि डामर, मोम और रोज़िन का जो मिश्रण ऊपर बताया गया है, उसका उपयोग किस प्रकार करना है. आपका उद्देश्य है रूज के घोल से दर्पण की सतह की पॉलिश करना. पॉलिश करने के लिए आपको ऐसा टूल चाहिए जो रूज के घोल को समान रूप से दर्पण की सतह पर फैला सके और साथ साथ दबाव डालकर सतह को चिकना कर सके. इस कार्य के लिए आप उस टूल का ही उपयोग करेंगे जो आपने घिसाई के लिए किया था—बस उसमें एक छोटा सा परिवर्तन इस प्रकार से करना है:

(1) लकड़ी का सांचा इस विधि से बनाएं—22 सेंटीमीटर×32 सेंटीमीटर का लकड़ी का एक समतल पटरा लें. इस पटरे पर 10 मिलीमीटर×10 मिलीमीटर की लकड़ी की पट्टियां चित्र-2 के अनुसार जड़ दें. इन पट्टियों के बीच की दूरी लगभग 20 मिलीमीटर होनी चाहिए. पट्टियों को जड़ने के पूर्व लकड़ी के पटरे व पट्टियों पर चिकना कागज़ चिपका दें. यह भी ध्यान रखें कि पट्टियां बहुत मज़बूती से नहीं जड़ी गई हैं क्योंकि बाद में उन्हें आपको निकालना भी है.

(2) 400 ग्राम डामर, 15 ग्राम मोम और 70 ग्राम रोज़िन के मिश्रण को धातु के पात्र में गर्म करें जब तक कि वह पिघल न जाए. पिघलने के उपरांत उसे किसी लकड़ी की सहायता से खूब मिलाते रहें, पर मिश्रण को उबलने न दें.

(3) पिघले मिश्रण को ऊपर दिए सांचे में बनी नालियों में ध्यान से उड़ेल दें. इन नालियों की ऊंचाई लगभग



चित्र-5 : सांचे से जमे हुए मिश्रण की पट्टियां बाहर निकालने की विधि

7 मिलीमीटर होनी चाहिए. मिश्रण को ठंडा होने के लिए छोड़ दें. देखें (चित्र-3).

(4) जब तक मिश्रण सांचे में ठंडा हो रहा है, और सांचे का आकार ले रहा है, आप घिसाई में प्रयुक्त शीशे के टूल को अच्छी तरह धो लें और सुखा लें.

(5) चित्र 4 के अनुसार टूल की सतह पर गाढ़ी पेंसिल की सहायता से रेखाएं खींचकर 20 मिलीमीटरx20 मिलीमीटर के खाने तैयार कर लें. जैसा कि चित्र में स्पष्ट है, इन खानों के बीच जो नालियां हैं, उनकी चौड़ाई लगभग 6 मिलीमीटर है. टूल की सतह पर रेखाएं खींचते समय यह ध्यान अवश्य रखें कि टूल के केंद्र को किसी खाने के केंद्र में और खानों के बीच की नालियों में नहीं होना चाहिए. यदि आप चित्र-4 के अनुसार कार्य करेंगे तो आपको सुविधा रहेगी.

(6) लगभग 50 ग्राम मोम को अलग से पिघला लें.

(7) किसी ब्रश अथवा कपड़े की सहायता से इस पिघली मोम की एक पतली-सी परत टूल की सतह पर चढ़ा दें, जिससे कि परत के नीचे से रेखाएं स्पष्ट दिखाई देती रहें.

(8) जिस सांचे में मिश्रण ठंडा हो रहा है, उसे लगभग 3-5 घंटे तक न छेड़ें. संभव हो तो फ्रिज में रखकर सांचे को ठंडा करें.

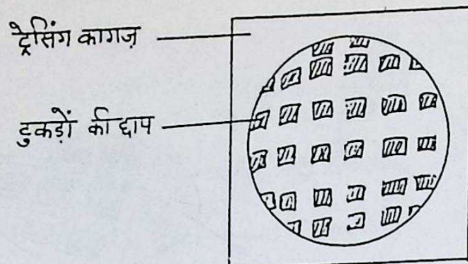
(9) जब आप देख लें कि मिश्रण जम चुका है तो सावधानी से लकड़ी की पट्टियों को अलग कर दें, और नीचे लगे चिकने कागज़ को भी निकाल दें. चिकना कागज़ इसलिए लगाया गया था कि मिश्रण लकड़ी से चिपके नहीं. पट्टियां निकाल देने से आपको जमे हुए मिश्रण की 20 मिलीमीटर चौड़ी और 7 मिलीमीटर ऊंची पट्टियां मिल जाएंगी.

(10) अब इन पट्टियों से 20 मिलीमीटरx20 मिलीमीटर के चौकोर टुकड़े काट लीजिए. पट्टियों को आसानी से काटने के लिए आप तेज धार के चाकू को गर्म करके इस्तेमाल में ला सकते हैं. (देखिए चित्र-5).

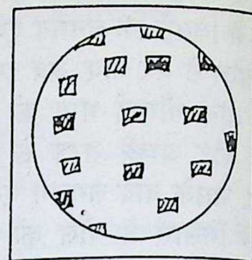
(11) चित्र-6 के अनुसार इन चौकोर टुकड़ों को टूल की सतह पर पेंसिल से खींचे खानों में उनके स्थानों पर लगा दीजिए. टुकड़ों को टूल पर चिपकाने के लिए उन्हें आप पहले मोमबत्ती की लौ पर गर्म कर लें (पर इतना गर्म न करें कि वे पिघलने लगें). चूंकि टूल की सतह पर आप पहले ही मोम की पतली पतर चढ़ा चुके हैं इसलिए ये टुकड़े आसानी से चिपक जाने चाहिएं. टुकड़ों को गर्म करते समय ध्यान रखें कि उनकी निचली सतह ही हल्की सी पिघली है, फिर टुकड़े को उसके स्थान पर रखकर दबा दें जिससे कि वह टूल पर चिपक जाए.

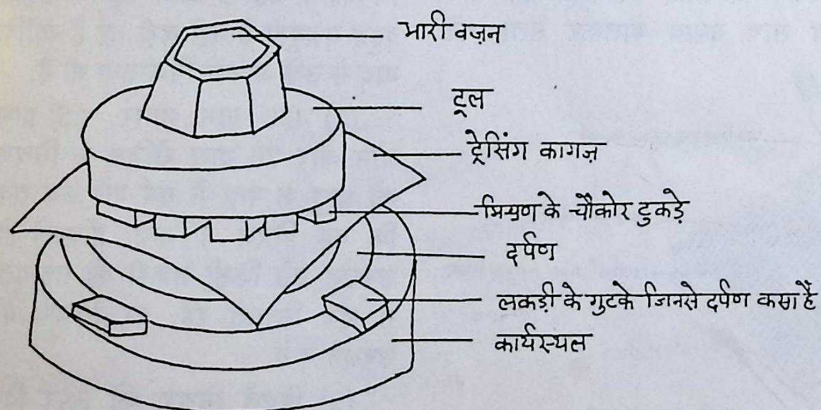
(12) अब आप अपना दर्पण लें जिसकी आपने घिसाई लेख के भाग–2 के अनुसार की थी. उस दर्पण को किसी समतल पर रखें और उसकी अवतल सतह पर ट्रेसिंग कागज़ बिछा दें. तत्पश्चात् जो टूल आपने ऊपर दी गई जानकारी के अनुसार बनाया है, उसे धीमी आंच पर हल्का हल्का गर्म कर लें. फिर उसे दर्पण पर रखे ट्रेसिंग कागज़ के ऊपर रख दें और कसकर दबा दें. दबाने के लिए आप भारी वज़न अथवा अपने बल का उपयोग कर सकते हैं. अब टूल को हटा लें, और देखें कि ट्रेसिंग कागज़ पर किस प्रकार की छाप पड़ी है. यदि टूल की सतह पर चिपके सारे टुकड़े एक

(शेष पृष्ठ 239 पर)



चित्र-7 (अ) सभी टुकड़ों की छाप बराबर पड़ी है


चित्र-7 (ब) टुकड़ों की छाप बराबर नहीं पड़ी है



चित्र-8 : ट्रेसिंग पेपर पर टूल की छाप लेने की विधि

संख्याओं का तिलस्मी संसार

❑ डा० पी०के० मुखर्जी

❑ कुछ संख्याएं सचमुच अपने अंदर मनोरंजक गुण छिपाए होती हैं. इन विशिष्टताओं के बारे में जानकर कई बार दांतों तले अंगुली दबानी पड़ती है. अतः यह कहना अत्युक्तिपूर्ण नहीं होगा कि संख्याओं का भी अपना एक अलग तिलस्मी संसार होता है. निम्न संख्याओं को ही लें:

क = 123,456,789

ख = 987,654,321

ये दोनों संख्याएं (उसी क्रम में) 1 से लेकर 9 तक के अंकों से बनी सबसे छोटी एवं सबसे बड़ी संख्याएं हैं. इन संख्याओं का अंतर लें:

987,654,321 – 123,456,789
= 864,197,532

आप देखेंगे कि परिणाम में भी 1 से 9 तक के ही अंक मौजूद हैं.

संख्या क को 8 से गुणा करके अगर आप परिणाम में 9 जोड़ें तो आपको संख्या ख प्राप्त होगी:

123,456,789x8+9 = 987,654,321

अब संख्या क को अंकों 2,4,5,7 तथा 8 से बारी-बारी गुणा करें:

कx2=246,913,578

कx4=493,827,156

कx5=617,283,945

कx7=864,197,523

कx8=987,654,312

आप देखेंगे कि उक्त समस्त परिणाम नौ अंकों की संख्याओं के रूप में हमें प्राप्त होते हैं जिनमें 1 से 9 तक के अंकों का ही इस्तेमाल हुआ है.

संख्या ख को भी अंकों 2, 4, 5, 7 तथा 8 से गुणा करने पर हमें मनोरंजक परिणाम प्राप्त होते हैं:

खx2=1,975,308,642

खx4=3,950,617,284

खx5=4,938,271,605

खx5=6,913,580,247

खx8=7,901,234,568

उक्त सभी परिणामों में 0 से लेकर 9 तक के दसों अंक शामिल हैं.

अब संख्या 123,456,789 से 8 का अंक निकाल दें. इस तरह हमें एक नई संख्या 12,345,679 प्राप्त होती है जो अपने अंदर विलक्षण गुण छिपाए है. इस संख्या को किसी भी अंक से गुणा करने के बाद अगर हम प्राप्त परिणाम को 9 से गुणा करें तो हमें नौ अंकों की संख्या प्राप्त होती है जिसमें उसी अंक की ही पुनरावृत्ति होती है:

12,345,679x3 = 37,037,037

37,037,037x9 = 333,333,333

12,345,679x5 = 61,728,395

61,728,395x9 = 555,555,555

12,345,679x7 = 86,419,753

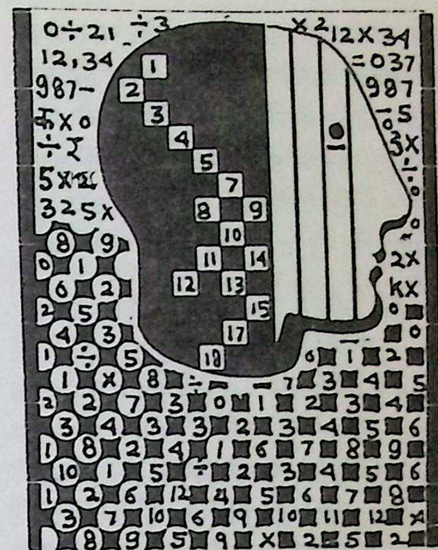
86,419,753x9 = 777,777,777

क्यों है न 12,345,679 एक मजेदार संख्या! दरअसल इस संख्या के इस विचित्र गुण का रहस्य यह है कि इसे 9 से गुणा करने पर हमें नौ अंकों की संख्या प्राप्त होती है जिसका हर अंक 1 है:

12,345,679x9 = 111,111,111

स्पष्ट है कि इस संख्या को किसी भी अंक से गुणा करने पर परिणाम फिर उसी अंक की पुनरावृत्ति से बना नौ अंकों की ही संख्या होगा.

इस संख्या के और भी कई रोचक गुण हैं. तीन-तीन के समूह में कुछ चुनी हुई संख्याओं को लेकर अगर 12,345,679 के साथ हम उनका गुणनफल निकालें तो परिणाम के रूप में सुन्दर संख्याओं के पैटर्न हमें प्राप्त होते हैं:



1. 12,345,679x3 = 037,037,037
   12,345,679x30 = 370,370,370
   12,345,679x57 = 703,703,703
2. 12,345,679x6 = 074,074,074
   12,345,679x33 = 407,407,407
   12,345,679x60 = 740,740,740
3. 12,345,679x12 = 148,148,148
   12,345,679x39 = 481,481,481
   12,345,679x66 = 814,814,814
4. 12,345,679x15 = 185,185,185
   12,345,679x42 = 518,518,518
   12,345,679x69 = 851,851,851
5. 12,345,679x21 = 259,259,259
   12,345,679x48 = 592,592,592
   12,345,679x75 = 925,925,925
6. 12,345,679x24 = 296,296,296
   12,345,679x51 = 629,629,629
   12,345,679x78 = 962,962,962

संख्या 12,345,679 को हम एक तिलस्मी संख्या भी कह सकते हैं. दरअसल तिलस्मी संख्याओं का अपना

एक अलग ही माया संसार है. चार अंकों की संख्या 8547 भी इसी तरह की एक संख्या है. इस संख्या को किसी भी अंक से गुणा करके प्राप्त परिणाम को अगर हम 13 से गुणा करें तो उसी अंक की पुनरावृत्ति से बनी छह अंकों की संख्या हमें प्राप्त होती हैं:

8547x2 = 17094
17094x13 = 222,222
8547x8 = 68376
68376x13 = 888,888

चार अंकों की ही एक और तिलस्मी संख्या है 5291. इस संख्या को किसी भी अंक से गुणा करके प्राप्त नतीजे को 21 से गुणा करने पर हमें पूर्ववत् ही छह अंकों की संख्या प्राप्त होती है जिसमें एक ही अंक अपने आप को दोहराता है:

5291x3 = 15873
15873x21 = 333333
5291x7 = 37037
37037x21 = 777777

दो अंकों की भी एक संख्या है जिससे कई पाठक परिचित होंगे. वह संख्या है 37 जिसमें तिलस्मी संख्या के उल्लिखित गुण मौजूद हैं:

37x2 = 74
74x3 = 222
37x5 = 185
185x3 = 555

पांच तथा चौदह अंकों से बनी दो और तिलस्मी संख्याएं हैं 15873 तथा 65,359,477,124,183:

1. 15873x(7x2) = 222 222
   15873x(7x8) = 888 888

2. 65,359,477,124,183x(17x2) = 2,222,222,222,222,222
   65,359,477,124,183x(17x8) = 8,888,888,888,888,888

सोलह अंकों की एक और मजेदार तिलस्मी संख्या है 1,122,334,455,667,789. यह संख्या नौ अंकों की सबसे छोटी संख्या 123,456,789 से, 1 से लेकर 7 तक के हर अंक को दो-दो बार लिखने से प्राप्त होती है. इस तिलस्मी संख्या को किसी भी अंक से गुणा करके प्राप्त परिणाम को 99 से गुणा करने पर जो संख्या बनती है उसमें लिए गए अंक की ही पुनरावृत्ति होती है:

1,122,334,455,667,789x(99x2)
= 222,222,222,222,222,222
1,122,334,455,667,789x(99x9)
= 999,999,999,999,999,999

यह आवश्यक नहीं कि हर तिलस्मी संख्या एक पूर्णांक संख्या ही हो. अब संख्या 1.375 एक पूर्णांक संख्या नहीं है पर इसमें तिलस्मी संख्याओं के गुण मौजूद हैं:

1.375x(8x2) = 22.000
1.375x(8x4) = 44.000
1.375x(8x7) = 77.000
1.375x(8x9) = 99.000

आप देखेंगे कि परिणामों में एक ही अंक की पुनरावृत्ति होती है बशर्ते दशमलव बिंदु के दाएं तरफ आने वाले शून्य अंकों को हम छोड़ दें. तिलस्मी संख्याओं के परिवार के और भी कई सदस्य हो सकते हैं जिन्हें पाठक कोशिश करके स्वयं ढूंढ सकते हैं. ☐

(पृष्ठ 230 का शेषांश)

था. उच्च तापमान वाले सुपरकंडक्टर बना पाने की दिशा में तभी से ही वैज्ञानिक प्रयत्नशील हुए. 1973 में वैज्ञानिक 23.2 डिग्री केल्विन वाले एक ऐसे सुपरकंडक्टर की खोज करने में सफल रहे जो नियोनियम और जर्मेनियम के मिश्रण से बना था. उसके बाद प्रयोग चलते रहे और 1987 में संयुक्त राज्य अमेरिका स्थित हाउसटन विश्वविद्यालय से जुड़े वैज्ञानिक पाल चू और उनके साथियों को 92 डिग्री केल्विन तापमान वाले अतिचालक का विकास करने में कामयाबी मिली. यह इट्रियम, बेरियम और कापर आक्साइड से बना 'सिरेमिक अतिचालक' था.

अतिचालकता को समझाने के लिए कई सिद्धांत भी वैज्ञानिकों ने दिए. इनमें से सबसे प्रसिद्ध है बारडीन, कूपर और आईफर नामक तीन वैज्ञानिकों का सिद्धांत. जिसे 'बी सी एस' सिद्धांत कहा जाता है.

अतिचालकता तथा उसकी खोज संबंधी सिलसिलेवार जानकारी समीक्ष्य पुस्तक में दी गई है. अतिचालक के विभिन्न उपयोगों के बारे में भी पुस्तक में विशद विवरण दिया गया है. जापान में अतिचालक चुंबकों की सहायता से 'मेरालेव' रेलों के चलाए जाने की संभावना के बारे में प्रयोग चल रहे हैं. अतिचालक स्विचों के माध्यम से और भी तेज गति के कम्प्यूटर भविष्य में बनाए जा सकेंगे. मस्तिष्क के ट्यूमर और कैंसर आदि की जानकारी के लिए भी विशेष उपकरणों का विकास अतिचालक के माध्यमों से किया जा रहा है. इन उपयोगों की संभावनाएं असीम हैं. आजकल आम आदमी भी अतिचालकों के बारे में जानना चाहता है. लेखक ने सरल भाषा में अतिचालकता के बारे में सारी जानकारी पुस्तक में समेटने का सार्थक प्रयास किया है. सुंदर और आकर्षक चित्रों ने पुस्तक की सजावट और उसकी उपयोगिता में चार चांद लगा दिए हैं. ☐

क्या पृथ्वी के घूर्णन द्वारा यात्रा संभव है ?

❑ श्याम लाल धीमान

❑ हमारी पृथ्वी 24 घंटे में अपनी धुरी का एक चक्कर लगा लेती है. ध्रुवों को छोड़कर पृथ्वी पर स्थित प्रत्येक बिंदु पश्चिम से पूर्व को गति करता है. बिंदुओं की गति भूमध्य रेखा पर सबसे अधिक व ध्रुवों की ओर क्रमशः कम होती जाती है. ध्रुवों पर यह गति शून्य हो जाती है.

अब यदि हम किसी गुब्बारे में बैठकर ऊपर की ओर उड़ चलें और कुछ समय तक वहीं स्थिर रहें; और पृथ्वी को घूर्णन करते हुए जाने दें, तो बाद में हम उस वांछित स्थान पर उतर सकते हैं जहां हम चाहते हैं. ये विचार थे 17वीं शती के एक फ्रांसीसी लेखक सिरानो दे बेर्जेराक के. क्या फ्रांसीसी लेखक के कथनानुसार पृथ्वी की घूर्णन गति द्वारा यात्रा की जा सकती है. यदि नहीं, तो क्यों नहीं? आइए इस पर विचार करें.

'चंद्रमा के राज्य का इतिहास' नामक एक कृति में बेर्जेराक लिखते हैं कि एक बार वे भौतिक विज्ञान से संबंधित प्रयोग करते हुए ऊपर उठ गए. कुछ समय तक वे हवा में ही रहे, और बाद में वे पृथ्वी पर उतर आए. उतरने के बाद उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वे फ्रांस से बहुत दूर बसे कनाडा देश में उतर आए थे. घटना को उन्होंने समझाते हुए लिखा कि जब तक वे हवा में थे तब तक पृथ्वी तीव्र गति से पश्चिम से पूर्व की ओर खिसकती चली गई इसलिए उनका अटलांटिक सागर पार कर कनाडा में उतरना स्वाभाविक था.

पृथ्वी की घूर्णन गति द्वारा यात्रा करना यदि संभव हो जाता तो हमारे अनेक अभाव यों ही दूर हो जाते. ईंधन की तो बचत ही बचत होती. उक्त लेखक ने जिस घटना का वर्णन किया है, भले ही वह रोचक हो पर है बिल्कुल अस्वाभाविक. वास्तव में हमारी पृथ्वी तमाम वायुमंडल को साथ लेकर घूमती है. अर्थात उसमें सापेक्ष गति नहीं है. इसका मतलब हुआ कि वायुमंडल में लटकी कोई भी वस्तु पृथ्वी की घूर्णन गति के साथ-साथ गति करती रहती है और पुनः उसी स्थान पर उतर आती है, जिस स्थान से उसे छोड़ा गया था. चाहे वह वस्तु महीनों, सालों तक ही क्यों न आकाश में लटकती रहे. हां, यदि वायु प्रवाह हो तो निश्चय ही वस्तु कहीं और जाकर उतरेगी.

परंतु यदि हम वायुमंडल की उपस्थिति के बिना भी विचार करें तो भी हम उसी स्थान पर उतरेंगे, जहां से ऊपर उड़ चले थे. इसका कारण, सीधा-सा है. जब हम किसी गतिमान वाहन से किसी वस्तु को ऊपर की ओर फेंके तो वह पुनः अपने पूर्व स्थान पर ही गिरेगी जैसे यदि हम किसी चलती रेलगाड़ी में किसी गेंद को ऊपर उछालें तो वह पीछे न गिरकर उसी स्थान पर गिरती है जहां से उसे ऊपर की ओर फेंका गया था. तथ्य यह है कि चलती गाड़ी में वस्तु को फेंकने पर वह ऊपर उठते व गिरते समय भी गाड़ी की गति से आगे की ओर गतिमान रहती है.

भले ही हम यात्रा में पृथ्वी की घूर्णन गति का उपयोग न कर पाएं परंतु वायुमंडल की उपस्थिति को अवश्य इस काम में लाया जा सकता है. वायुमंडल में तिर विमानों की सहायता से यात्रा की जा सकती है. तिर विमान ऐसे उपकरण थे जिनकी सहायता से लोग सर्वप्रथम हवा में लटके थे. इन तिर विमानों को स्ट्रैटोस्फियर गुब्बारे कहते हैं. ये गुब्बारे 20 किलोमीटर की ऊंचाई तक उठ सकते हैं. जब इन विमानों को यात्रा पर भेजना होता है तो उनकी ऊंचाई 20 से 30 किलोमीटर रखी जाती है. इस ऊंचाई पर वायु का प्रवाह स्थिर रहता है और इसीलिए इन विमानों के पथ का पहले ही निर्धारण किया जा सकता है. पहले हवाई उड़ानों के लिए ऐसे ही तिर विमानों को उपयोग में लाया जाता था. इन्हें अनियंत्रित विमान कहते हैं. इनकी दिशा वायु प्रवाह पर निर्भर करती थी. बाद में प्रोपेलर लगाकर इन्हें नियंत्रित बनाया गया. अनियंत्रित विमानों को आज भी माल परिवहन के क्षेत्र में उपयोग में लाया जा सकता है. वैसे अभी इनका उपयोग, ऊंचाईयों पर वायु की आर्द्रता, तापमान तथा दाब को ज्ञात करने में किया जाता है. ऐसा इन विमानों में रेडियो ट्रांसमिटर की सहायता से पृथ्वी पर रेडियो संकेत भेजकर किया जाता है. मौसम की भविष्यवाणी करने से पहले इन्हीं तिर विमानों की सहायता ली जाती थी. ❑

पहाड़ों में यात्रा करने के दौरान चक्कर क्यों आते हैं?

❑ श्याम लाल धीमान

❑ आम तौर पर पहाड़ों में मोटर वाहनों से यात्रा करने के दौरान यात्रियों को जी मिचलाने तथा वमन होने की शिकायत रहती है. उन्हें चक्कर आते हैं. इसी कारण, प्रायः लोग पहाड़ी यात्रा करने से पूर्व वमन की औषधि ले लेते हैं. फिर भी यात्रियों को जी मिचलाने अथवा वमन होने की आशंका बनी रहती है.

पहाड़ों पर यात्रा करने से जी मिचलाना या चक्कर आना कोई गंभीर रोग तो नहीं है, फिर भी इससे काफी परेशानी होती है. साथ के यात्री भी इसके शिकार होने लगते हैं. इस रोग का मुख्य कारण पहाड़ी मार्गों का टेढ़ा-मेढ़ा, एवं ऊंचा-नीचा होना है. कभी यात्री ऊंचे ढाल पर चढ़ता है तो कभी

तीव्र मोड़ पर यात्रा करने लगता है. कभी नीचे ढलान पर चलने लगता है तो कभी सीधी सड़क पर चलने लगता है.

यदि तीव्र मोड़ों पर वाहन की गति कम भी हो तो भी यात्रियों पर मोड़ के झुकाव के दूसरी ओर एक बल कार्य करने लगता है जिसे अपकेंद्र बल कहते हैं. यह बल यात्रियों को बाहर की ओर फेंकता है और यात्री एक ओर को लुढ़क जाते हैं. सड़क के टेढ़ा-मेढ़ा होने के कारण आगे यदि सड़क का दूसरा मोड़ आता है और यदि उसका घुमाव दूसरी ओर होता है, तो यात्री पर अपकेंद्र बल दूसरी ओर लगता है और वह उसी ओर लुढ़क जाता है. जितना तीव्र झुकाव होता है, लुढ़कने की प्रक्रिया उतनी ही शक्तिशाली होती है. पहाड़ों में यात्रा के दौरान कभी शरीर इधर लुढ़कता है तो कभी उधर. यदि कहीं वाहन की गति भी अधिक हुई तो उक्त प्रक्रिया इतनी तीव्र हो जाती है कि वाहन के अंदर यात्रियों को व्यवस्थित होने के लिए काफी जोर लगाना पड़ता है. कभी-कभी तो वे असावधानीवश गिरने की सी हालत में हो जाते हैं. तीव्र ढलानों के कारण भी यात्रियों को असुविधा होती है.

अब प्रश्न है कि उपरोक्त हिलने-डुलने की प्रक्रिया से भला चक्कर आने का क्या संबंध हो सकता है. वैज्ञानिकों ने इस संबंध में अनुसंधान किया है. उनके अनुसार, चक्कर आने और शरीर के हिलने-डुलने की प्रक्रियाओं में गहरा संबंध होता है. यही कारण जानने के लिए सोवियत संघ (अब, भूतपूर्व) के अंतरिक्ष स्टेशन यैल्यूत-7 में 'ओप्टोकिनेज' एवं 'आन्केता' नामक प्रयोग किए गए थे. 'ओप्टोकिनेज' नामक प्रयोग, प्रघाण एवं चक्षु तंत्रों संबंधित था. प्रयोगों से पता लगा कि प्रधाण तंत्र के दो भागों में एक भाग गुरुत्व बल तथा दूसरा शरीर के हिलने-डुलने की प्रक्रिया पर निर्भर करता है. पहाड़ों में यात्रा करते समय हिलने-डुलने की प्रक्रिया के साथ गुरुत्व बल भी प्रभावित होता है क्योंकि अपकेंद्र बल की उपस्थिति में परिणामी गुरुत्व बल बदल जाता है. इस प्रकार, दोनों भाग सुचारू रूप से कार्य नहीं कर पाते और मस्तिष्क को विकृत संदेश यानि कि असामान्य सूचनाएं मिलती हैं. प्रघाण तंत्र के दोनों भागों से प्राप्त सूचनाएं असंगत भी होती हैं. सूचनाओं में असंगतता के कारण मस्तिष्क कोई सही निर्णय लेने की स्थिति में नहीं होता और इस कारण चक्कर आने लगते हैं. अधिक चक्कर आने पर वमन भी होने लगता है. चक्कर आने का एक कारण यह भी है कि यात्रा में मस्तिष्क को शरीर की स्थिति का ज्ञान नहीं रहता. क्योंकि यात्री अपने आस पास की स्थिति को तेजी से बदलते हुए देखता है. कभी कोई पहाड़ी उसके आगे होती है तो कभी दाएं और कभी बाएं. ऐसी स्थिति में मस्तिष्क को सामान्य सूचना नहीं मिल पाती. इसके विपरीत मैदानों में यात्रा करते समय आस-पास के वातावरण के सापेक्ष मस्तिष्क को शरीर की स्थिति का सही ज्ञान रहता है और यात्री को चक्कर नहीं आता.

झूला झूलते अथवा गोलाई में घूमते समय भी उक्त कारणों से चक्कर आ सकते हैं. तिलिस्मी गोला, जो अपने अक्ष के परितः घूम सकता है, के अंदर चक्कर आने का भी यही कारण होता है.

अब आपका प्रश्न यह हो सकता है कि बस में यात्रा करते समय चक्कर से बचने के लिए कौन सा स्थान अधिक उपयुक्त होता है. तो हम आपको बता दें कि ऐसा स्थान, जहां हमें अपनी स्थिति का अपेक्षाकृत अधिक सही पता रहता है, उपयुक्त रहता है. इस प्रकार, बस में यात्रा करते समय आगे की सीटें अधिक उपयुक्त रहती हैं और पीछे की सीटें अनुपयुक्त. ऐसा इसलिए है कि पीछे बैठे यात्री को बाहर के सापेक्ष अपनी स्थिति का तो निर्धारण करना ही पड़ता है, बल्कि बस के आगे के भाग के सापेक्ष भी अपनी स्थिति निर्धारित करनी पड़ती है. इन सबके बावजूद यदि बस की गति को कम रखा जाए तो चक्कर आने की अनुभूति पर नियंत्रण पाया जा सकता है. परंतु तब क्या हमारी यात्रा लंबी एवं उबाऊ नहीं हो जाएगी. □

गुस्से में मनुष्य की ध्वनि का तारत्व क्यों बढ़ जाता है ?

□ वीरेन्द्र शर्मा

□ मनुष्य की आवाज का तारत्व वाक्तन्तु (वोकॅल कार्ड) के कसाव व तनाव, वाकतंत्री के आयाम (लंबाई, मोटाई) तथा इकाई लम्बाई में विद्यमान द्रव्यमान पर निर्भर करता है. क्रोध की स्थिति में अंतःस्रावी संतुलन ही नहीं गड़बड़ाता बल्कि स्वरतंत्री भी तन जाती है, चेहरा सुर्ख हो जाता है तथा रक्तचाप बढ़ जाता है. परंतु स्वरतंत्री की इकाई लंबाई में मौजूद द्रव्यमान गुस्से की स्थिति में भी अप्रभावित रहता है.

लेकिन स्वरतंत्री में कसाव के बढ़ने से ही उत्पन्न ध्वनि की आवृत्ति बढ़ जाती है, या साथ ही कम्पन्नों का आयाम भी बढ़ जाता है. गुस्से में आवाज के ऊंची हो जाने व तारत्व के बढ़ जाने



की वजह, स्वरतंत्री से उत्पादित ध्वनि तरंगों की आवृत्ति का बढ़ जाना ही है. तारत्व व ध्वनि की आवृत्ति में परस्पर घनिष्ट संबंध हैं. उच्चतारत्व की ध्वनि स्वरतंत्री की उच्च आवृत्ति कंपन्नों का ही परिणाम है. प्रसिद्ध गायिका लता मंगेशकर की आवाज उच्च आवृत्ति व उच्चतारत्व की आवाज है. यह सब उनकी विशिष्ट वाकतंत्री में पैदा होने वाले कंपन्नों व उनके भावजगत में पैदा होने वाले आलोड़न का ही परिणाम है. गुस्से की स्थिति में उनकी आवाज का तारत्व और भी बढ़ जाएगा. कई विज्ञानी लताजी की वाक्तंत्री की पड़ताल करना चाहते हैं. उनकी स्वरतंत्री व कंठ का बीमा हो चुका है. ❑

(पृष्ठ 234 का शेष)

ही ऊंचाई के होंगे, तो छाप चित्र-7 (अ) के अनुसार पड़ेगी, यदि वे बराबर ऊंचाई के नहीं हुए तो छाप चित्र-7 (आ) जैसी दिखेगी. यदि आप देखते हैं कि सभी टुकड़े बराबर की ऊंचाई के नहीं हैं, तो कम/अधिक ऊंचाई के टुकड़ों को सही चौकोर टुकड़ों से बदल दें. साथ ही साथ यह भी ध्यान रखें कि दबाने की प्रक्रिया में ये टुकड़े अपने स्थानों से हिलें नहीं. यदि ये अपने स्थान से हिल जाते हैं तो इसके फलस्वरूप उनके बीच की नालियां बंद हो जाती हैं, तो चाकू की सहायता से उन्हें पुनः उनके स्थान पर वापस लगा दीजिए. याद रखिए, इन चौखटों के बीच की नालियां बंद नहीं होनी चाहिएं क्योंकि पॉलिश की प्रक्रिया में रूज का घोल इन नालियों के बीच ही चलेगा और पॉलिश करेगा. यह प्रक्रिया तब तक दुहराइए, जब तक आपको संतोष न हो जाए कि टूल की सतह पर चिपके सभी टुकड़े समान ऊंचाई के हैं. (अगले अंक में पढ़िए पॉलिश की प्रक्रिया और दर्पण का एलुमिनिकरण) ❑

कैरियर सूचना

कैरियर में भूगर्भ विज्ञान का महत्व

❑ अशोक सिंह

❑ प्रायः छात्रों में यह धारणा पाई जाती है कि विज्ञान विषयों की पढ़ाई का मतलब है इंजीनियर या डॉक्टर बनना. इसी कारणवश वे इंजीनियरी या मेडिकल कॉलेज में दाखिला पाना मात्र लक्ष्य बना लेते हैं. लेकिन यह कतई संभव नहीं है कि विज्ञान विषय की शिक्षा प्राप्त करने वाले प्रत्येक छात्र-छात्रा को इंजीनियरी या मेडिकल में दाखिला मिल जाए. इन कालेजों में सीटें सीमित संख्या में होती हैं और वह भी काफी कम. ऐसे में अधिकांश विद्यार्थियों को इन पाठ्यक्रमों में प्रवेश नहीं मिलता और वे हताश होते हैं. कुछ इस हताशा के आलम में भविष्य की पढ़ाई कला विषयों को लेकर तो कुछ वाणिज्य विषयों को लेकर करते हैं. विज्ञान में अभिरुचि रखने वाले अन्य बी०एस-सी० के विभिन्न वर्गों में दाखिला ले लेते हैं.

पर इतना हताश होने की आवश्यकता नहीं है. विज्ञान की सिर्फ यही दो शाखाएं नहीं हैं. अन्य पाठ्यक्रम भी हैं और उनसे भी बखूबी अपना कैरियर संवारा जा सकता है. ऐसी ही एक महत्वपूर्ण शाखा भूगर्भ विज्ञान (जियोलॉजी) है. इस क्षेत्र के बारे में अभी लोगों को काफी कम जानकारी है. लेकिन एक विशिष्टता हासिल करने की दृष्टि से इस पाठ्यक्रम की खासी उपयोगिता है. इस क्षेत्र के विशेषज्ञों की आवश्यकता खनिज एवं धातु के भंडारों का पता लगाने से संबंधित विभिन्न संगठनों को होती है. इनमें न सिर्फ सार्वजनिक क्षेत्र के कई उपक्रमों का नाम लिया जा सकता है बल्कि निजी क्षेत्र की कंपनियां भी शामिल हैं. उदाहरण के रूप में खनिज एवं धातु व्यापार निगम (मिनरल एंड मेटल ट्रेडिंग कारपोरेशन), इंडियन ऑयल, हिन्दुस्तान पैट्रोलियम, तेल और प्राकृतिक गैस आयोग जैसी कुछ भारी-भरकम कंपनियों के नाम गिनाए जा सकते हैं. इनके अतिरिक्त विभिन्न राज्यों में खनिज एवं धातुओं के भूगर्भ में छिपे भंडारों का पता लगाने एवं उनकी प्राप्ति हेतु कई उपक्रम कार्यरत हैं. जाहिर है इन उपक्रमों में भी भूगर्भ शास्त्रियों के लिए जगह होती है.

भूगर्भ-विज्ञान की पृष्ठभूमि वाले छात्रों में संघ लोकसेवा आयोग की परीक्षाओं में शामिल होने की होड़ भी काफी पाई गई है और प्रतिवर्ष इस पृष्ठभूमि वाले छात्रों को सफल होते हुए भी देखा जा सकता है. तो भूगर्भ विज्ञान की शिक्षा से न सिर्फ सीधे नौकरी प्राप्त करने में अन्य विषयों की पृष्ठभूमि की तुलना में आसानी होती है बल्कि प्रतियोगी परीक्षा में भी यह ज्ञान उपयोगी सिद्ध होता है.

जो लोग विश्वविद्यालयों एवं कालेजों में अध्यापन करने के इच्छुक हैं, उनके लिए भी अवसरों की कमी नहीं है. वे स्नातक स्तर पर भूगर्भ-विज्ञान का पाठ्यक्रम समाप्त करने के उपरांत एम०एस-सी० (भूगर्भ विज्ञान) एवं बाद में पी-एच०डी० तक कर सकते हैं. आगे शोध के लिए विदेश भी जा सकते हैं. हमारे देश के तमाम विश्वविद्यालयों में भूगर्भ-विज्ञान के विभिन्न स्तर के पाठ्यक्रम उपलब्ध हैं.

बी०एस-सी० (भूगर्भ विज्ञान) का पाठ्यक्रम कुल 4 वर्ष की अवधि का है. प्रायः इसमें दाखिला बारहवीं या इंटर के प्राप्तांकों के आधार पर दिया जाता है. हां, इस स्तर पर विज्ञान विषयों की पृष्ठभूमि वाले विद्यार्थियों को ही इसमें प्रवेश पाने के लिए आवेदन करने की अनुमति दी जाती है. कुछ शिक्षण संस्थानों में प्रवेश परीक्षा के आधार पर भी देने दाखिला देने की शुरूआत हो चुकी है. जैसे-जैसे इस विषय के महत्त्व से छात्र समुदाय परिचित होता जाएगा इसी अनुपात में सीमित सीटों के लिए आवेदनों की संख्या में भी बढ़ोत्तरी होती चली जाएगी. प्रायः जून-जुलाई माह से ही प्रवेश संबंधी प्रक्रिया आरंभ हो जाती है. इसलिए तमाम सूचना स्रोतों पर इस दौरान नजर रखनी चाहिए. अंतिम तिथि का इंतजार नहीं करना चाहिए अन्यथा 'पहले आओ-पहले पाओ' के आधार पर दाखिला देने की प्रथा का मेधावी छात्र भी नुकसान भुगत सकता है.

विश्वविद्यालयों एवं संबंद्ध संस्थानों द्वारा इस पाठ्यक्रम का समुचित प्रचार-प्रसार न किए जाने के कारण सर्वसाधारण को इसकी उपयोगिता का ज्ञान नहीं है. यह कम आश्चर्य नहीं कि जहां बी०एस-सी० के ही पाठ्यक्रमों में दाखिला 85-90 प्रतिशत के बीच होता है, वहीं भूगर्भ विज्ञान में 70-80 प्रतिशत के प्राप्तांक वाले छात्र भी दाखिला पा जाते हैं. विश्वविद्यालयों को इस पक्ष की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है.

देश में खनिज भण्डारों की कमी नहीं है. चाहे आप कोयले के भंडारों की बात करें या अन्य जैसे कच्चा तेल, बाक्साइड, कापर इत्यादि और भविष्य में नए भण्डार मिलने की भी पूरी आशाएं हैं. भूगर्भ शास्त्रियों की मदद के बिना नए भण्डारों का पता लगाना संभव नहीं है. देश की वर्तमान परिस्थितियों और निर्यातोन्मुख अर्थव्यवस्था की मांग को देखते हुए भी खनिज एवं धातु भण्डारों की खोज महत्वपूर्ण हो गई है. भारत जैसे विकासशील राष्ट्र से खनिज पदार्थों एवं अपरिष्कृत धातु की मांगें विकसित राष्ट्रों में हमेशा बनी रहती हैं. ❑

प्रायोजित प्रतियोगिता—8

'आविष्कार' के इस स्तंभ को प्रायोजित प्रतियोगिता के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है. इस प्रतियोगिता के प्रायोजक हैं जूता-निर्माता 'एक्शन शूज' कंपनी. प्रतियोगिता के उस विजेता को जो सर्वाधिक सही उत्तर भेजेगा एक्शन शूज की ओर से सीधे एक जोड़ा एक्शन जूता पुरस्कार स्वरूप पार्सल से भेजा जाएगा. इस कार्यालय में पहुंचने वाले पहले ढाई हजार पत्रों को ही प्रतियोगिता में शामिल किया जाएगा.

एक से अधिक सही उत्तर प्राप्त होने पर 'ड्रा' निकाल कर निर्णय लिया जाएगा. इस संबंध में संपादक का निर्णय अंतिम व मान्य होगा और कोई पत्र व्यवहार नहीं किया जाएगा. पुरस्कार विजेता का नाम और सही हल एक अंक छोड़ कर प्रकाशित किया जाएगा. उत्तर को कागज के एक ओर हाशिया छोड़ कर साफ-साफ लिखा/टाइप किया होना चाहिए. उत्तर के साथ प्रकाशित कूपन अवश्य लगा होना चाहिए जिसमें प्रतियोगिता में भाग लेने वाले का नाम, पूरा पता तथा जूते की माप स्पष्ट लिखी होनी चाहिए. लिफाफे में ऊपर 'प्रायोजित प्रतियोगिता-6/92' अवश्य लिखें.

हमारा पता : **संपादक, 'आविष्कार'**
नेशनल रिसर्च डिवेलपमेंट कारपोरेशन
20-22 जमरूदपुर सामुदायिक केंद्र, कैलाश कालोनी एक्सटेंशन
नई दिल्ली-110048

अपना वैज्ञानिक ज्ञान परखिए

❑ **डा॰ उमेश चन्द्र पाण्डेय एवं श्याम लाल धीमान**

1. वर्तमान समय में पैट्रोलियम आधारित उर्वरकों के विकल्प के रूप में किसके इस्तेमाल किए जाने की चर्चा है?
(क) जीवाणु,
(ख) नील-हरित शैवाल,
(ग) कवक, (घ) उपरोक्त सभी.

2. जब दूध या अन्य पदार्थों को लगभग 62° सेल्सियस पर आधे घंटे तक गर्म करने के बाद ठंडा किया जाता है, तो क्रिया को कहते हैं:
(क) जीवद्रव्यकुंचन (प्लाज्मोलिसिस),
(ख) पाश्चरीकरण,
(ग) जल-अपघटन,
(घ) निर्जर्मीकरण.

3. **फ्यूनेरिया** में बीजाणुओं के विकिरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है:
(क) कैप्स्यूल; (ख) ओपरकुलम;
(ग) स्पोरोगोनियम;
(घ) पेरीस्टोम व एनुलस.

4. फर्न के पौधे होते हैं:
(क) औषधि महत्व के,
(ख़) सजावटी,
(ग) खाद्य महत्व के,
(घ) किसी विशेष महत्व के नहीं.

5. कुछ शैवालों में फाइकोसायनिन तथा फाइकोइरीथ्रिन वर्णक (पिग्मेंटस) पाए जाते हैं जो निम्न तरंग दैर्घ्य अवशोषित करते हैं:
(क) 450—560 नैनोमीटर,
(ख) 570—600 नैनोमीटर,
(ग) 670—700 नैनोमीटर,
(घ) उपरोक्त सभी.

6. आई॰ ई॰ टी॰ —8585 है:
(क) एक अंतरिक्ष यान,
(ख) एक सरकारी योजना,
(ग) धान की नवीनतम प्रजाति,
(घ) गेहूं की जल्दी पकने वाली प्रजाति.

7. निम्नलिखित वैज्ञानिकों में से कौन सा प्रत्यक्ष रूप से पृथ्वी पर जीवन के विकास संबंधी कार्य से जुड़ा हुआ नहीं है:
(क) चार्ल्स डार्विन, (ख) वैलेस,
(ग) मारगन, (घ) लेमार्क.

8. निम्न में से किस पौधे में जनन बीजों द्वारा नहीं होता है:
(क) मटर, (ख) टमाटर,
(ग) गोभी, (घ) आलू.

9. कुकुरमुत्ते कवकों के किस वर्ग में आते हैं:
(क) फाइकोमाइसिटीज,
(ख) एस्कोमाइसिटीज,
(ग) बेसिडिओमाइसिटीज,
(घ) डयूटेरोमाइसिटीज.

10. एंजाइम क्रिया को समझाने के लिए 'इन्ड्यूसड फिट थ्योरी' दी गई है:
(क) खोसलैंड द्वारा,
(ख) हारडेड तथा यंग द्वारा,
(ग) कुन्हे द्वारा,
(घ) मेयरबैक द्वारा.

11. लगभग सभी जीवों में डी०एन०ए० आनुवंशिक पदार्थ की तरह पाया जाता है लेकिन कुछ विषाणुओं में आनुवंशिक पदार्थ आर०एन०ए० होता है. यह है:
(क) पादप विषाणु,
(ख) जन्तु विषाणु,
(ग) सायनोफेज़,
(घ) बैक्टीरियोफेज़.

12. कार्बोहाइड्रेट कार्बनिक यौगिक है जिनमें कार्बन, हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन का कौन सा निश्चित अनुपात होता है:
(क) 1:1:1, (ख) 1:2:1,
(ग) 2:1:2, (घ) 1:1:2.

13. प्रोटीन संश्लेषण को नियंत्रित करने के लिए 'ओपरॉन मॉडल' दिया गया है:
(क) जैकब द्वारा,
(ख) जैकब तथा मोनड द्वारा,
(ग) मोनड द्वारा,
(घ) स्टीवर्ड द्वारा.

14. डी०एन०ए० से एम–आर० एन०ए० तक 'आनुवंशिक पदार्थ' का हस्तांतरण कहलाता है:
(क) ट्रॉसफारमेसन,
(ख) ट्रॉसडक्सन,
(ग) ट्रॉसक्रिप्सन,
(घ) उपरोक्त सभी.

15. भिंडी का फल, बहुअंडपी, युक्तांडपी तथा उत्तरवर्ती अंडाशय से विकसित होता है. यह फल है:
(क) कैप्सूल,
(ख) सिलिकुआ,
(ग) लिग्यूम,
(घ) सिपसेला.

16. दो बर्तनों में दो अक्रियाशील गैसें अलग-अलग भरी हैं. यदि बर्तनों का आयतन व उनमें दाब व ताप क्रमशः V_1, P_1, T_1, तथा V_2, P_2, T_2 हैं तो गैसों को V आयतन के बर्तन में T ताप पर भरने पर दाब होगा:
(क) $\frac{(P_1T_1 + P_2T_2)\,V}{(V_1 + V_2)(T_1 + T_2)}$
(ख) $\frac{(P_1V_1 + P_2V_2)\,T}{(T_1 + T_2)\,V}$
(ग) $\frac{T^2}{V}\left(\frac{P_1V_1 + P_2V_2}{T_1T_2}\right)$
(घ) $\frac{T}{V}\left(\frac{P_1V_1}{T_1} + \frac{P_2V_2}{T_2}\right)$

17. किसी विद्युत परिपथ के लिए प्रत्यावर्ती धारा एवं वोल्टता इस प्रकार हैं:

$$i = 2\sin\left(50t + \frac{2\pi}{3}\right)$$

$$E = 3\cos\left(50t + \frac{\pi}{6}\right)$$

परिपथ में क्षय शक्ति होगी:
(क) 6 वाट, (ख) $3\sqrt{3}$ वाट,
(ग) 3 वाट, (घ) शून्य.

18. एक स्प्रिंग तुला पर 3 किलोग्राम का भार लटका है. यदि इस पर 2 किलोग्राम भार और लटका दिया जाए तो तुला का पाठ्यांक 2 सेंटीमीटर और बढ़ जाता है. स्प्रिंग की स्थितिज ऊर्जा में वृद्धि होगी:
(क) 0.5 जूल,
(ख) 0.8 जूल,
(ग) 1.25 जूल,
(घ) 2.5 जूल.

19. पानी पर तैरती वस्तु को थोड़ा नीचे दबाकर छोड़ देने पर वह दोलन करने लगती है. इसका कारण है:
(क) पृष्ठ तनाव और गुरुत्व बल,
(ख) उत्पलावन बल और पृष्ठ तनाव;
(ग) गुरुत्व बल और उत्पलावन बल,
(घ) श्यान बल और पृष्ठ तनाव.

20. सूर्य से आने वाला विकिरण निम्न में किस रूप में अधिक समाहित होता है:
(क) गामा किरणें,
(ख) पराबैंगनी किरणें,
(ग) एक्स किरणें,
(घ) अवरक्त किरणें.

21. यदि द्रव की एक बूंद की त्रिज्या R एवं पृष्ठ तनाव T है, तो बूंद को 1000 छोटी समान बूंदों में विभाजित करने में किया गया कार्य होगा:
(क) शून्य, (ख) 36 πR^2T,
(ग) 40 πR^2T, (घ) 4 πR^2T.

22. प्रकाश किरणें जब एक माध्यम से दूसरे माध्यम में प्रवेश करती हैं तो:
(क) प्रकाश का वेग नहीं बदलता,
(ख) वेग और आवृत्ति बदल जाती है,
(ग) फोटोनों की आवृत्ति नहीं बदलती,
(घ) वेग और आवृत्ति समान रहती है.

23. वर्षा की बूंदें u वेग से ऊर्ध्वाधरतः नीचे गिर रही हैं. एक लड़का v वेग से सड़क पर दौड़ रहा है. लड़के को बूंदों का वेग प्रतीत होगा:
(क) $\sqrt{(v^2 + u^2)}$,

(ख) $\sqrt{(v^2 - u^2)}$,
(ग) $v + u$, (घ) $v - u$.

24. किसी तैरती हुई स्थिर नाव में एक लड़का आगे की ओर गति करता है. निकाय का गुरुत्व केंद्र खिसकेगाः
(क) आगे की ओर,
(ख) पीछे की ओर,
(ग) दाएं या बाएं,
(घ) स्थिर रहेगा.

25. यदि धातु की 10 मीटर त्रिज्या वाली गेंद में ऊर्ध्वाधरतः व्यास के अनुदिश छिद्र कर दिया जाए और उसमें कोई कण डाला जाए तोः
(क) कण गेंद के केंद्र पर जाकर रुक जाएगा,
(ख) कण छिद्र के दूसरे सिरे पर रुक जाएगा,
(ग) कण गेंद के केंद्र के इधर-उधर सरल आवर्त्त गति करेगा,
(घ) कण गेंद के छिद्र को पार कर पृथ्वी पर गिर पड़ेगा.

26. प्रकाश कांच की वस्तु से तो पार हो जाता है जब कि वह लोहे की वस्तुओं से नहीं गुजर पाता इसका कारण हैः
(क) कांच के लिए ऊर्जा स्तरों में बहुत कम अंतराल होता है और प्रकाश कम अवशोषित हो पाता है,
(ख) लोहे की अपेक्षा कांच में ऊर्जा स्तरों में अत्यधिक अंतराल होता है जिससे प्रकाश पारगमित हो जाता है,
(ग) लोहे में ऊर्जा अंतराल अधिक होता है,
(घ) लोहे की अपेक्षा कांच में प्रकाश अवशोषण की क्षमता अधिक होती है जिससे प्रकाश पुनः उत्सर्जन द्वारा हमारी आंखों में पहुंच जाता है.

27. CR की विमा होगीः
(क) $[M L T^{-1} A^{-1}]$,
(ख) $[L T^{-1} A^{-1}]$,
(ग) $[M^0 L^0 T]$,
(घ) $[M^0 L^0 T^{-1} A^{-1}]$.

28. दो चालक गोले अचालक आधार से लटकाए गए हैं. इनमें से एक गोले को जैसे ही आवेशित किया जाता है, दोनों गोलों के बीच आकर्षण बल लगने लगता है और वे थोड़ा अपनी पूर्व स्थितियों से विस्थापित हो जाते हैं. बाद की स्थिति में विस्थापन से पूर्व की स्थिति के सापेक्ष स्थितिज ऊर्जाः
(क) अधिक होगी,
(ख) कम होगी,
(ग) बराबर होगी,
(घ) बिना आंकड़ों के निश्चितता से नहीं कहा जा सकता.

29. ट्रांजिस्टर सैट में रेडियो तरंगों को प्राप्त करने के लिए परिपथ प्रयुक्त किया जाता हैः
(क) श्रेणीक्रम L–C–R परिपथ,
(ख) समांतर क्रम L–C–R परिपथ,
(ग) L–C श्रेणीक्रम परिपथ,
(घ) L–C समांतरक्रम परिपथ.

30. एक बैटरी जिस पर 12 वोल्ट, 60 एम्पियर-घंटा लिखा है, में ऊर्जा संरक्षित होगीः
(क) 720 कैलोरी, (ख) 720 जूल,
(ग) 60×3600 जूल,
(घ) 2.59×10^6 जूल.

जून 1992
2 रुपए
ग्राम शिल्प

सोयाबीन का औषधिक महत्व

□ रवीन्द्र नाथ त्रिखा

□ सोयाबीन हमारे देश में अपेक्षाकृत एक नई फसल है. इस की गिनती दलहन, तिलहन एवं खाद्यान्न में की जाती है. इसमें विद्यमान गुणों के आधार पर इसे एक अद्भुत फसल भी कहा जाता है. सोयाबीन पर हाल के कुछ वर्षों में हुए अनुसंधानों के परिणामस्वरूप इसकी नवीन किस्मों का विकास हुआ है. साथ-साथ इसकी अधिक उपज कैसे ली जाए, इसके नए उपयोगों आदि की जानकारी भी संभव हो पाई है.

शरीर रक्षा के लिए तीन तत्वों, प्रोटीन, विटामिन और वसा, की विशेष आवश्यकता होती है. यह तीनों ही तत्व सोयाबीन में उचित मात्रा में पाए जाते हैं. इसके नियमित सेवन से शरीर की मांसपेशियों का अच्छा विकास होता है. यह शरीर का पोषण करने, वृद्धि करने, उसे निरोग और पुष्ट रखने और प्रजनन को सहारा देने के लिए पर्याप्त है.

सोयाबीन पौष्टिक एवं आदर्श खाद्य पदार्थ होने के साथ-साथ रोगों की अव्यर्थ औषधि भी है. सोयाबीन में प्राप्त 40 प्रतिशत प्रोटीन उच्चकोटि का तो होता ही है, साथ-साथ सुपाच्य भी होता है. इसका 90 प्रतिशत शरीर द्वारा आत्मसात कर लिया जाता है. यह एक क्षार धर्मी खाद्य है. इससे शरीर में यूरिक एसिड उत्पन्न नहीं होता जैसा कि पशु प्रोटीन से होता है. अतः इसे पशु प्रोटीन से उत्तम कहा जा सकता है. सोयाबीन का तेल सभी वनस्पति तेलों से उत्तम होता है क्योंकि इसके तेल में लेसिथिन और विटामिन ए तथा डी की बड़ी मात्रा रहती है.

सोयाबीन के प्रमुख औषधिक महत्व निम्न हैं:

दूध के प्रति एलर्जी का समाधानः गाय के दूध के प्रति एलर्जी का एक मात्र सस्ता समाधान सोयाबीन का दूध है. सोयाबीन से दूध घर पर आसानी से बनाया जा सकता है.

कब्जी का समाधानः सोयाबीन के नियमित सेवन से कब्जी का समाधान होता है क्योंकि इस से लैक्टोबैसिलस एसीडोफीलस जीवाणु लैक्टो एसिड उत्पन्न करके पेट में स्थित विभिन्न रोगों के जीवाणुओं को नष्ट कर देते हैं. इसके लिए सोया दही के उपयोग की संस्तुति की जाती है. अंकुरित सोयाबीन अधिक सुपाच्य होती है. शरीर के लिए आवश्यक लौह तत्व भी सोयाबीन से पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है.

अम्लता की कमीः अनाजों में 60-80 प्रतिशत तक अम्ल पाया जाता है. सोयाबीन में 20-25 प्रतिशत तक ही अम्ल होता है. शरीर में अम्लता बढ़ाने से जिन-जिन रोगों की उत्पत्ति होती है उनसे यह शरीर की रक्षा करता है. सोयाबीन रक्त, उस की लाली और गति तीनो को ठीक रखता है. इस के उपयोग से त्वचा में निखार आ जाता है तथा हृदय और फेफड़े शक्तिशाली बनते हैं शरीर का वजन बढ़ता है, ऊंचाई बढ़ती है, स्नायु मजबूत होते हैं.

तपेदिक एवं मानसिक रोगों का इलाजः सोयाबीन में फास्फोरस काफी मात्रा में रहता है. इस का उपयोग मस्तिष्क तथा ज्ञान तन्तुओं की बीमारियों, जैसे मिर्गी हिस्टीरिया, स्मरण-शक्ति की कमी में उत्तम पथ्य का काम करता है. सोयाबीन में विद्यमान लेसिथिन तपेदिक और ज्ञान तन्तुओं की बीमारियों से लाभ पहुंचता है.

गठिया रोग का उपचारः सोयाबीन की प्रोटीन में न्यूक्लियोप्रोटीन नहीं होता. न्यूक्लियोप्रोटीन से यूरिक एसिड बनता है जो शरीर से सब जोड़ों में जमा होकर गठिया की बीमारी पैदा करता है. मांस

(शेष पृष्ठ 7 पर)

अरहर की पहली संकर किस्म

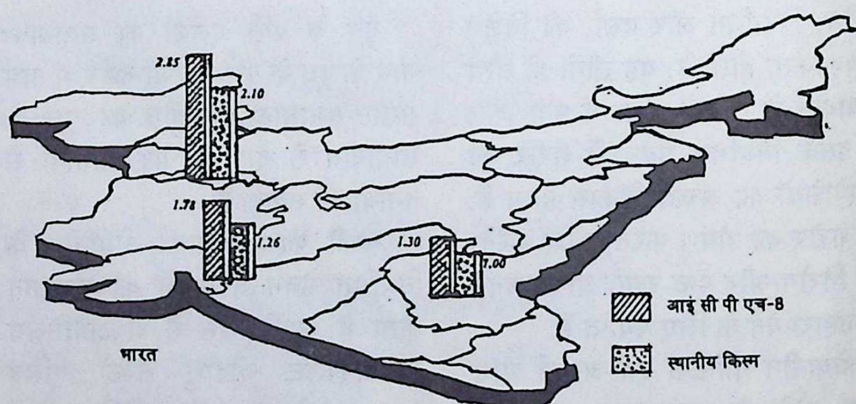
❑ अखिलेश कुमार सिंह

❑ अनाज, फल और सब्जियों की संकर किस्मों का विकास अब कोई नई बात नहीं रह गई है. हम संकर किस्मों के इतने आदी हो गए हैं कि किसी फसल की नई किस्म का विकास अब कोई कौतूहल नहीं जगाता. लेकिन दलहनी फसलों की स्थिति बिल्कुल अलग है. उनके फूलों की विशिष्ट संरचना के कारण दलहनी फसलों की संकर किस्मों का विकास बहुत टेढ़ा काम है. इसकी पेचीदगी का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि पिछले कुछ वर्षों में अन्य फसलों की जहां अनेकानेक संकर किस्में जारी की गईं वहीं हाल तक भारत में उगाई जाने वाली 15 दलहनी फसलों में से किसी एक की भी कोई संकर किस्म जारी नहीं की जा सकी थी.

भारतीय कृषि वैज्ञानिकों के एक दल ने 18 वर्षों के अथक परिश्रम के बाद इस दुरुह काम को संभव कर दिखाया है और दुनिया में पहली बार अरहर की संकर किस्म विकसित करने का गौरव हासिल किया है. श्री कुलभूषण सक्सेना के नेतृत्व में इस वैज्ञानिक दल द्वारा विकसित अरहर की एक संकर किस्म 'आई सी पी एच–8' किसानों के उपयोग के लिए जारी की जा चुकी है. हैदराबाद स्थित 'इंटरनेशनल क्राप रिसर्च इंस्टिट्यूट फार दे सेमी एरिड ट्रापिक्स' में कार्यरत यह वैज्ञानिक दल अरहर की कई अन्य संकर किस्मों पर भी परीक्षण कर रहा है. 'आई सी पी एच–8' किस्म मध्य भारत के लिए सर्वाधिक उपयुक्त पाई गई है और इसे उसी क्षेत्र के लिए जारी किया गया है.

'आई सी पी एच–8' के विकास के लिए अरहर के दो प्रभेदों—'आई सी पी एल–161' और 'एम एस प्रभात (डी टी)' के बीच संकरण की क्रिया संपन्न करायी गई. इसमें पहले प्रभेद ने नर और दूसरे ने मादा की भूमिका निभाई. संकरण के पश्चात उत्पन्न संतति में दोनों जनक प्रभेदों के उत्कृष्ट गुण समाहित होने के कारण इसकी उत्पादकता तो अधिक है ही, यह कीटों और व्याधियों के प्रति अपेक्षाकृत अधिक प्रतिरोधी भी है. तकनीकी शब्दावली में इसे 'हाइब्रिड विगर' या 'हेटरोसिस' कहा जाता है. 'आई सी पी एच–8' की एक प्रमुख विशेषता इसका बहुत कम समय में तैयार हो जाना है. फसल को तैयार होने में 100 से 150 दिन तक लगते हैं. सामान्य किस्मों की तुलना में यह समय 50 से 33 प्रतिशत तक कम है. नई किस्म की उत्पादकता सामान्य किस्मों की तुलना में 30 से 40 प्रतिशत तक अधिक है. विभिन्न स्थानों पर इसकी उपज का औसत 1.30 टन से 2.85 टन प्रति हेक्टेयर पाया गया है. संकर किस्म में अरहर की फसल में सामान्य रूप से लगने वाले रोगों के प्रति प्रतिरोध भी परिलक्षित हुआ है. इसके अलावा यह सूखा और अधिक नमी, दोनों ही स्थितियों में अच्छी पैदावार देने में सक्षम है.

भारत जैसे शाकाहार प्रधान देश में प्रोटीन के स्रोत के रूप में दालों का विशेष महत्व है और दलहनी फसलों में अरहर का महत्वपूर्ण स्थान है. इसलिए भारतीय वैज्ञानिकों की यह उपलब्धि न केवल कृषि अनुसंधान बल्कि व्यावहारिक दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण है. दुनिया में पहली बार अरहर की संकर किस्म का विकास कर भारतीय कृषि वैज्ञानिकों ने अनुसंधान के क्षेत्र में अपनी क्षमता तो साबित की ही है उनकी यह उपलब्धि देश के लिए बहुमूल्य विदेशी मुद्रा बचाने में भी सहायक होगी. देश में हर साल लगभग



स्थानीय किस्म की तुलना में अरहर की संकर किस्म आइ सी पी एच-8 का भारत के तीन क्षेत्रों में प्रदर्शन

एक करोड़ टन दलहन का उत्पादन होता है जबकि मांग लगभग एक करोड़ चालीस लाख टन की है. मांग और आपूर्ति के इस अंतर को पूरा करने के लिए विदेशों से दालों का आयात करना पड़ता है जिस पर काफी विदेशी मुद्रा खर्च करनी पड़ती है. देश के कुल दलहन उत्पादन का लगभग 45 प्रतिशत अरहर की फसल से प्राप्त होता है. इसलिए संकर किस्म का व्यापक पैमाने पर उपयोग किए जाने पर उपज में बढ़ोत्तरी होने से आयात पर निर्भरता घटाने और विदेशी मुद्रा की बचत करने में बहुत सहायता मिलेगी.

अरहर के पौधों से हमें केवल दाल ही नहीं प्राप्त होती. इनकी पत्तियों और डंठलों का भी विभिन्न कामों के लिए व्यापक पैमाने पर उपयोग किया जाता है. अरहर की पत्तियां प्रोटीन समृद्ध चारे के रूप में उपयोग में लाई जाती हैं. इसके डंठलों से मजबूत टोकरे बनाए जाते हैं और फूस के छप्पर तैयार करने में भी उनका उपयोग किया जाता है. इनसे ईंधन का काम भी लिया जाता है. अरहर की कुछ किस्में बहुवर्षी प्रकृति की होती हैं. इनके बढ़ने की तेज रफ्तार के कारण सामाजिक वानिकी में इन किस्मों का व्यापक पैमाने पर उपयोग हो रहा है. नाइट्रोजन स्थिरीकरण की क्षमता के कारण अरहर मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ाने में भी सहायक है.

एक संकर किस्म के उपयोग हेतु जारी किए जाने के बाद इस बात की उम्मीद की जा सकती है कि निकट भविष्य में और भी कई किस्में सामने आएंगी और किसान उनसे भरपूर लाभ उठा सकेंगे. ❑

जायद की सब्जियां और फल

❑ दर्शना नन्द

❑ बसंत ऋतु का आगमन जायद की सब्जियां बोने का कार्यक्रम चलाने का सर्वोपयुक्त समय होता है. जायद की सब्जियां ऋतु परिवर्तन के साथ भोजन को अधिक स्वादिष्ट व रुचिकर बनाती हैं. इनमें अधिकांश सब्जियां विभिन्न विटामिन और लवण जैसे पौष्टिक पदार्थ प्रदान करने के अतिरिक्त शरीर में स्फूर्ति, तरावट और नवीनता प्रदान करती हैं. भिण्डी, तुरई, करेला, लौकी, कद्दू, टिण्डा, लोबिया आदि जायद याने गर्मी के मौसम की प्रमुख सब्जियां हैं.

जायद की सब्जियों के लिए दुमट, खाद युक्त (जैविक खाद सहित) मिट्टी उपयुक्त होती है. इन्हें बोने के पूर्व मिट्टी में पर्याप्त नमी का होना अनिवार्य है. मिट्टी अच्छी तरह जुती हुई और भुरभुरी होनी चाहिए. सिंचाई की समुचित व्यवस्था का होना अनिवार्य है. जहां पानी की समुचित व्यवस्था न हो वहां लोबिया और ग्वार जैसी दलहरी सब्जियों का उगाना अधिक उपयुक्त होता है.

जायद की अधिकांश सब्जियों विशेषकर, भिण्डी, टिण्डा, करेला, लौकी आदि के बीज बोने के पूर्व 10-12 घण्टे तक पानी में भिगा लेना अंकुरण के लिए अच्छा होता है. कद्दू वर्गीय सब्जियों और खरबूजा, तरबूज, ककड़ी आदि की लताओं को भूमि पर फैलने देना चाहिए क्योंकि जायद में इनकी लताओं को चढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं होती. जायद की विभिन्न सब्जियों को निम्न प्रकार उगाएंः

भिण्डी : भिण्डी की सब्जी की संतोषजनक उपज प्राप्त करने हेतु पूसा सावनी प्रजाति का चयन करें. भूमि की कम से कम 255 जुताई अवश्य करें. अंतिम जुताई के पूर्व प्रति हेक्टेयर 250-500 क्विंटल गोबर की पुरानी खाद भूमि में फैला दें. मिट्टी खूब भरभुरी और समतल हो जाने पर बीज की बोवाई करें. बोने के पूर्व प्रति हेक्टेयर 80 किलोग्राम नाइट्रोजन (160 किलोग्राम यूरिया), 50 किलोग्राम फास्फेट (312 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट) और 60 किलोग्राम पोटाश (120 किलोग्राम पोटेशियम सल्फेट) पंक्तियों में छोड़ते और भूमि में मिलाए जाएं.

जायद की भिण्डी के पौधे बौने होते हैं. अतएव बीज बोने के लिए 30 सेंटीमीटर की दूरी पर पंक्तियां बनाए तथा इन पंक्तियों में बीज को 20-50



सेंटीमीटर की दूरी पर 2 सेंटीमीटर की गहराई में बोएं. एक हेक्टेयर भूमि में बोने के लिए कम से कम 20-25 किलोग्राम बीज की व्यवस्था करें. बोने के 4-5 दिन के भीतर बीज अंकुरित होने लगते हैं.

भिण्डी की खड़ी फसल में बीज जमने के एक मास बाद प्रति हेक्टेयर 60 किलोग्राम नाइट्रोजन (120 किलोग्राम यूरिया) का भुरकाव करें. इसके अलावा 5-6 दिन पर सिंचाई तथा समय समय पर निराई गुड़ाई करते रहें.

भिण्डी के पौधे 2-2-1/2 मास में फूलने और फलने लगते हैं. फूल खिलने के एक सप्ताह के भीतर फलियों को कोमल दशा में ही तोड़ लें. साथ ही साथ जैसिड्स, तना छेदक, लाल बग और मोजेक जैसे कीट-व्याधियों का समग्रेस उपचार अवश्य करें. इस प्रकार प्रति हेक्टेयर जायद की फसल से लगभग 50 क्विंटल भिण्डी की हरी फलियों की उपज प्राप्त की जा सकती है.

लोबिया : लोबिया एक ऐसी सब्जी है जिसमें दलहरी होने के कारण अपेक्षाकृत कम सिंचाई की आवश्यकता होती है. अतः जहां पानी की कमी हो वहां के लिए लोबिया की सब्जी उगाना उपयुक्त होगा.

लोबिया की पूसा फागुनी प्रजाति जायद के लिए अच्छी प्रजाति है. फलियां गहरे रंग की 10-12 सेंटीमीटर लम्बी होती हैं और 60 दिन में तैयार होती हैं. इसके अलावा पूसा दो फसली जायद व वर्षा दोनों ऋतुओं के लिए ठीक होता है. इसकी फलियां 18 सेंटीमीटर लम्बी और पूसा फागुनी से भी अच्छी होती हैं. प्रति हेक्टेयर बोने के लिए 15-20 किलोग्राम बीज की जरूरत होती है. बोने के पहले भूमि की 2-5 जुताई कर के प्रति हेक्टेयर 150-200 क्विंटल गोबर की पुरानी खाद भूमि में मिलाएं. इसके अलावा प्रति हेक्टेयर 25 किलोग्राम नाइट्रोजन, 50 किलोग्राम यूरिया, 50 किलोग्राम फास्फेट, 312.5 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट और 50 किलोग्राम पोटाश, 100 किलोग्राम पोटैशियम सल्फेट, का भी प्रयोग करें. बीज को 3-4 सेंटीमीटर गहराई में 45x15 सेंटीमीटर की दूरी पर बोएं. आवश्यकतानुसार 10-15 दिन पर सिंचाई करें. प्रति हेक्टेयर हरी फलियों की उपज 50-60 क्विंटल हो जाती है.



ग्वार : जायद में ग्वार की सब्जी उन स्थानों पर उगाने के लिए विशेष उपयुक्त होती है जहां पानी की कमी हो. इसकी पूसा सदा बहार और पूसा नव बहार दो ऐसी उन्नतिशील प्रजातियां हैं जो जायद के लिए उपयुक्त हैं. इनकी फलियां बड़ी बड़ी होती हैं. पूसा सदा बहार की फलियां गाढ़े हरे रंग की 10-12 सेंटीमीटर लम्बी होती हैं. पूसा नव बहार की फलियां चिकनी, हरे रंग की चमकदार और 15 सेंटीमीटर लम्बी होती हैं.

बुवाई के लिए भूमि की 2-3 जुताई कर के प्रति हेक्टेयर 150 क्विंटल गोबर की खाद मिलाकर भूमि तैयार करें. इनके अलावा प्रति हेक्टेयर 20 किलोग्राम नाइट्रोजन, 50 किलोग्राम फास्फेट और 30 किलोग्राम पोटाश का भी प्रयोग करें.

फरवरी-मार्च में बीज 3-4 सेंटीमीटर की गहराई में 60 सेंटीमीटर पर बनाई गई पंक्तियों में 30-30 सेंटीमीटर की दूरी पर बोएं. प्रति हेक्टेयर 15 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होती है.

सिंचाई आवश्यकतानुसार 10-15 दिन पर करें और आवश्यकतानुसार समय समय पर निराई-गुड़ाई करते रहें. एक या दो मास में फलियां मिलने लगती हैं. कुल चार मास की फसल होती है. फलियां गुच्छों में लगती हैं और प्रायः भार से पौधे झुक जाते हैं. ऐसी स्थिति में पौधों पर मिट्टी चढ़ा दें. प्रति हेक्टेयर हरी फलियों की उपज 80 से 100 क्विंटल तक पैदा हो जाती है.

घुइयां : घुइयां बोने के लिए प्रति हेक्टेयर 12-15 क्विंटल बीज कंदों की आवश्यकता होती है. भूमि की 3-4 गहरी जुताई कर के प्रति हेक्टेयर 200 क्विंटल गोबर की खाद मिलाएं. इसके बाद अंकुरित बीज कंदों को बोएं. बीज की बोवाई 45 सेंटीमीटर की दूरी पर 10 सेंटीमीटर गहरी बनाई गई कूडों में 25 से 30 सेंटीमीटर की दूरी पर करें. बोने के पूर्व कूडों में प्रति हेक्टेयर 20 किलोग्राम फास्फेट, 125 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट और 70 किलोग्राम पोटाश (140 किलोग्राम पोटैशियम सल्फेट) छोड़ते और मिट्टी में इस प्रकार ढंकते जाएं कि कुडों की गहराई 7 सेंटीमीटर रह जाए. बोने के एक मास पर खड़ी फसल में प्रति हेक्टेयर 25 किलोग्राम नाइट्रोजन, 50 किलोग्राम

यूरिया का भुरकाव करें और पौधे पर मिट्टी चढ़ाएं. पुनः एक मास पर 25 किलोग्राम नाइट्रोजन भुरका कर मिट्टी चढ़ाएं. प्रति पौधा केवल 3-4 कल्ले वृद्धि करने दें तथा शेष को निकाल दें. पत्तों पर घुइयां के झुलसा रोग से बचाव के लिए ताम्रयुक्त रसायनों का छिड़काव करें. इस प्रकार घुइयां के कंदों की उपज प्रति हेक्टेयर 150 क्विंटल प्राप्त की जा सकती है.

प्याज : प्याज जायद की एक उपयोगी फसल है यद्यपि इसकी पौध आदि उगाने की तैयारियां ऋतु आरंभ के काफी पहले ही आरंभ हो जाती है. फिर भी पौधों का प्रतिरोपण रबी से लेकर जायद तक चलता रहता है.

उत्तम जल निकास वाली जीवांशयुक्त दुमट मिट्टी प्याज के लिए उपयुक्त होती है. बलुई मिट्टी में प्याज की रोपाई न करें. भूमि की 4-5 जुताई कर के प्रति हेक्टेयर 200 से 250 क्विंटल गोबर की पुरानी खाद मिलाएं. साथ ही 40 किलोग्राम नाइट्रोजन, 80 किलोग्राम यूरिया, 50 किलोग्राम फास्फेट, 312.5 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट, और 50 किलोग्राम पोटाश, (100 किलोग्राम पोटैशियम सल्फेट) भी प्रयोग करें. दिसम्बर से लेकर जनवरी-फरवरी तक पौधों की रोपाई 15 से 20x10x15 सेंटीमीटर की दूरी पर करें. रोपाई के पूर्व पौधों की शिखा का 1/4 भाग काट दें. प्रति हेक्टेयर 7-10 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होती है. रोपाई के बाद या तो तुरन्त हल्की सिंचाई या 3-4 दिन बाद पूरी सिंचाई करें जिसके बाद आवश्यकतानुसार 7-10 दिन पर सिंचाई करें. रोपाई के एक मास पर प्रति हेक्टेयर 30 किलोग्राम नाइट्रोजन (60 किलोग्राम यूरिया) का खड़ी फसल में पहला भुरकाव करें. पुनः 1-1/2 मास पर 30 किलोग्राम नाइट्रोजन का दूसरा भुरकाव करें. 3-4 मास बाद प्याज की कंद खोदने लायक हो जाती है. सावधानी के साथ खेती करने पर प्रति हेक्टेयर 200 से 250 क्विंटल प्याज कंदों की उपज प्राप्त की जा सकती है.

कुल्फा, चौलाई : कुल्फा और चौलाई बोने के लिए मिट्टी खूब महीन करें. महीन होने के कारण बीज को राख में मिला कर बोवाई करें. बलुई मिट्टी में न बोएं. प्रति हेक्टेयर कुल्फा के एक से 1-1/2 किलोग्राम और चौलाई के 2 से 2-1/2 किलोग्राम बीज बोने की आवश्यकता होती है. बोने के पूर्व जुताई के समय प्रति हेक्टेयर 200 से 250 क्विंटल गोबर की खाद भी मिलाएं. प्रति हेक्टेयर कुल्फा व चौलाई में 20-20 किलोग्राम नाइट्रोजन 3 बार में (बीज बोने के एक मास पर तथा प्रथम दो कटाइयां करने के बाद) खड़ी फसल में भुरकाएं. पूसा चौलाई और तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय से विकसित ''सीओ-1'' और ''सीओ-2'' चौलाई की उन्नतशील प्रजातियां हैं. पत्तों के परिमाण के अनुसार बड़ी चौलाई और छोटी चौलाई भी चौलाई की प्रजातियां हैं. बड़ी चौलाई के पौधे क्यारियों में 30x20 सेंटीमीटर तथा छोटी चौलाई के 20x15 सेंटीमीटर तथा कुल्फा के 15x10 सेंटीमीटर की दूरी पर रखें. सिंचाई का समुचित प्रवन्ध करें. पत्तियों को मुलायम दशा में बीज निर्माण के पूर्व काटते रहें. प्रति हेक्टेयर कुल्फा की 70 से 90 तथा चौलाई की 75 से 100 क्विंटल उपज होती है.

पोई : पोई भी कुल्फा और चौलाई की भांति पत्ती उपयोग की जाने वाली



सब्जी है. इसके पौधे भी लतानुमा होते हैं जिसकी मांसल पत्तियां और मुलायम टहनियां साग बनाने, दाल में डालकर पकाने और पकौड़ी बनाने में उपयोग करते हैं. पौधों का प्रसारण बीज से या डंठलों की कृन्तों से होता है. प्रसारण फरवरी-मार्च में करते हैं. पोई की हरी और लालिमायुक्त दो प्रजातियां होती हैं जिनकी पत्तियां अण्डाकार बड़ी-बड़ी मांसल होती हैं. एक पौधे के लिए 5-6 किलोग्राम गोबर की खाद और 15-20 ग्राम नाइट्रोजन (30-40 ग्राम यूरिया) काफी होता है. यह नाइट्रोजन आधे आधे दो हिस्से में बांट कर भुरकाएं. पहला भुरकाव पौध रोपण के एक मास पर और दूसरा भुरकाव सितम्बर में करें. पोई की एक दो लता रसोई उद्यानों में बड़ी सफलतापूर्वक लगाई जा सकती है. बड़े पैमाने पर पोई की खेती करने के लिए प्रति हेक्टेयर 100-150 क्विंटल गोबर की खाद भूमि में मिलाएं. इसके पश्चात 1.5x1.5 मीटर की दूरी पर 30 सेंटीमीटर चौड़ा और 15-20 सेंटीमीटर गहरा गड्ढा बनाकर खाद मिट्टी के साथ भर कर उसमें पौधे लगाएं या बीज बोएं. गर्मियों में 8-10 दिन पर और सर्दियों में 15-20 दिन पर सिंचाई करें. दिसम्बर में पौधों में गुलाबी रंग के फूल

आते हैं और जनवरी फरवरी में मटर बराबर काले काले गोल फल और बीज बनते हैं. अप्रैल-मई से अक्तूबर-नवम्बर तक पोई के पत्ते उपलब्ध होने लगते हैं जिनकी कटाई समय-समय पर आवश्यकतानुसार करते रहना चाहिए.

कद्दू, लौकी, तुरई, करेला, टिण्डा : कद्दू वर्गीय सब्जियों में ये सब्जियां जायद की प्रमुख सब्जियां हैं. कद्दू वर्गीय विभिन्न सब्जियों की मुख्य एवं नवीन प्रजातियां निम्न प्रकार हैं: कद्दू की 'अरका चन्दन' और 'अरका सूर्यमुखी' (बंगलौर की) दो नवीन उन्नतशील प्रजातियां हैं. अरका चन्दन प्रजाति का एक फूल 2-5 किलोग्राम होता है तथा इसकी उपज प्रति हेक्टेयर 325 क्विंटल होती है. अरका सूर्यमुखी का फल छोटा, चपटा, एक किलोग्राम भारी और फल-मक्खी रोधक होता है. प्रति हेक्टेयर इस प्रजाति की उपज 360 क्विंटल तक हो जाती है. 'अलीगंज गोल' और 'अर्ली प्रालीपिक'' भी कद्दू की प्रचलित प्रजातियां हैं.

लौकी की प्रजातियों में 'पूसा समर प्रालिपिक लांग', पूसा समर प्रालिपिक राउन्ड, पूसा मेघदूत (लम्बी), पूसा मन्जरी (गोल), 'कल्यानपुर हरी लम्बी' तथा धोली सफेद (राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, बिहार की) प्रमुख उन्नतशील प्रजातियां हैं.

तुरई की प्रजातियों में 'पूसा चिकनी', 'पूसा नसदार', कल्यानपुर चिकनी' और 'कल्यानपुर नसदार' प्रमुख हैं. इनके अलावा तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय से विकसित 'सीओ-1' तुरई की नवीन उन्नत प्रजाति है. इसकी फलियां लम्बी, धारीदार और फल मक्खी रोधक होती है. लताएं कम वृद्धि करती हैं तथा उपज अधिक होती है.

करेला की प्रजातियों में 'पूसा दो मौसमी', 'कल्यानपुर बारामासी', 'जौनपुरी', दक्षिणी भारत की 'अरका हरित' (तकुए के आकार के फल) तथा 'सीओ लांग' प्रमुख हैं. 'सीओ लांग' तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय से विकसित करेले की प्रजाति है. इसकी लताएं कम फैलती हैं तथा उपज अधिक होती है.

टिण्डे की प्रमुख नवीन प्रजाति 'अरका टिण्डा' और 'सासनीधानी' हैं. रंग के दृष्टिकोण से गहरे हरे और हल्के हरे रंग के टिण्डे भी प्रचलित हैं.

भूमि की तैयारी व खाद

भूमि की 3-4 जुताई करें. अंतिम जुताई के पूर्व प्रति हेक्टेयर तुरई, करेला, और टिण्डा के लिए 250 से 300 क्विंटल तथा लौकी और कद्दू के लिए 350-400 क्विंटल गोबर की खाद पूरी भूमि पर फैला दें. करेले और टिण्डे में एक या दो जुताई तथा 50-60 क्विंटल खाद की मात्रा कम की जा सकती है. साधारणतः कुष्माण्ड कुल की सभी सब्जियां नालियों में बोते हैं. परन्तु कद्दू के लिए दोनों ओर से 150 सेंटीमीटर की दूरी पर 30 सेंटीमीटर चौड़े और 20 सेंटीमीटर गहरे गड्ढे भी बना सकते हैं. प्रत्येक गड्ढे को ऊपरी सतह की मिट्टी और 5 किलोग्राम गोबर की खाद मिला कर भूमि धरातल से 15 सेंटीमीटर ऊपर तक कस के भर दें.

बुवाई तथा उर्वरक उपयोग

कद्दू को 150x150 सेंटीमीटर की दूरी पर बोएं. लौकी और तुरई को 250x100 सेंटीमीटर की दूरी पर तथा करेला और टिण्डा को 150x30 सेंटीमीटर की दूरी पर बोएं. नालियां बनाते समय प्रति हेक्टेयर लौकी और तुरई में 25 किलोग्राम नाइट्रोजन, 50 किलोग्राम यूरिया, और 60 किलोग्राम फास्फेट, 375 किलोग्राम सुपर फास्फेट, तथा करेला और टिण्डा में 15 किलोग्राम नाइट्रोजन, 30 किलोग्राम यूरिया और 25 किलोग्राम फास्फेट, 156.25 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट दें. एक स्थान पर 3-4 बीज 2-5 सेंटीमीटर की गहराई में बोएं. बोने के बाद पानी दे दें. प्रति हेक्टेयर बोने के लिए 5-7 किलोग्राम कद्दू और 4-5 किलोग्राम लौकी, तुरई, करेला और टिण्डा के बीज की व्यवस्था करें. बीज जमने पर एक स्थान पर केवल एक लता बढ़ने दें तथा शेष को निकाल दें. करेले की एक स्थान पर 2-3 लताएं छोड़ सकते हैं.

उर्वरक भुरकाव

कद्दू में फल लगते समय प्रति हेक्टेयर 20-30 किलोग्राम नाइट्रोजन, 40-60 किलोग्राम यूरिया का भुरकाव करें. इसके अतिरिक्त 20-25 किलोग्राम फास्फेट, 125-156.25 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट का उपयोग अधिक प्रभावशाली सिद्ध होगा. लौकी की लताएं जब भूमि पर फैलने लगे तो प्रति हेक्टेयर 25 किलोग्राम नाइट्रोजन, 50 किलोग्राम यूरिया भुरकाएं. करेले और टिण्डा में फल लगने पर प्रति हेक्टेयर 20 किलोग्राम नाइट्रोजन, 40 किलोग्राम यूरिया का भुरकाव करें.

फसल की कटाई और उपज

बोवाई के 2-2-1/2 माह के भीतर लताएं फूलने लगती हैं. कद्दू के फल दो माह में पक जाते हैं. गर्मी में इन्हें हरी दशा में ही तोड़ लें. लौकी, तुरई, टिण्डा भी कोमल दशा में ही तोड़ें. करेले के

फलों को भी कोमल दशा में बीज कड़े होने तथा पकने के पूर्व तोड़ें.

प्रति हेक्टेयर कद्दू की 100-150 क्विंटल, लौकी की 150-200, तुरई की 100 से 150 तथा करेला और टिण्डा की 70 से 100 क्विंटल उपज होती है.

तरबूज, खरबूजा, खीरा, ककड़ी : गर्मी के मौसम में तरबूज, खरबूजा, खीरा और ककड़ी प्रमुख फल पैदा होते हैं जो कद्दू वर्ग के फल होते हैं. गर्मी के मौसम में प्यास बुझाने तथा शरीर में तरावट लाने में ये फल विशेष रूप से उपयोगी होते हैं.

तरबूज की मुख्य प्रजातियां ''शुगर बेबी'', ''आसाही या मेटो'', ''पूसा बेदाना'' और ''अरका ज्योति'' हैं. खरबूजे की प्रजातियों में ''पूसा शर्बती'', ''पूसा मधुरस'', ''हरा मधु'', ''पंजाब सुनहरी'', ''अरका राजवंश'', ''अरका जीत'', ''लखनऊ सफेदा'', और ''दुर्गापुर मधु'' हैं.

खीरे की प्रजातियों में कल्यानपुर हरा लम्बा, पूसा संयोग, जापानी लांग और बालम खीरा हैं तथा ककड़ी की प्रजातियों में लखनऊ-लेडी-लव, बरेली ग्लोरी, पंजाब-1 तथा फैजाबादी प्रमुख हैं.

तरबूज को 300x100 सेंटीमीटर और खरबूजे, ककड़ी और खीरा को 150 से 200x60 से 90 सेंटीमीटर की दूरी पर बोएं. प्रति हेक्टेयर बीज की मात्रा तरबूज के लिए 2-2.5 किलोग्राम तथा खरबूजे, खीरा और ककड़ी के लिए 1.5 से 2.0 किलोग्राम की व्यवस्था करें. खीरे और ककड़ी को विशेष रूप से कोमल दशा में ही तोड़ लें.

कीट-व्याधियों का उपचार कद्दू वर्ग की सब्जियों की भांति करते रहें. इस प्रकार प्रति हेक्टेयर तरबूज की 250 से 300 क्विंटल, खरबूजे की 100 से 120 क्विंटल, खीरे की 90 से 100 क्विंटल और ककड़ी की 70 से 80 क्विंटल उपज प्राप्त की जा सकती है.

जायद के अन्य फल

मौसमी उगाए जाने वाले फलों के अतिरिक्त कुछ और फल भी हैं जो पानी की समुचित व्यवस्था रहने पर फरवरी-मार्च में आसानी के साथ लगाए जा सकते हैं. इनमें अमरूद, नींबू, पपीता प्रमुख हैं. ये पौधे अधिक स्थान भी नहीं घेरते और कम दूरी पर लगाए जा सकते हैं.

अमरूद और नींबू को 20 फुट पर लगा कर एक एकड़ में 108 पौधे लगा सकते हैं. अमरूद के लिए इलाहाबादी सफेदा और लखनई-49 सेब या सुर्ख तथा नवीनतम लाल गुदिया सेबी (इलाहाबाद सुर्ख) किस्मों का तथा नींबू में कागजी नींबू और यूरेका प्रजाति का बाग लगा सकते हैं.

पपीता को 6X6 फुट पर लगाकर प्रति एकड़ 1210 पौधे लगा सकते हैं. यह एक वर्ष के भीतर फल देते हैं. नर व मादा पौधों की समस्या के समाधान हेतु एक स्थान पर तीन पौधे लगाएं.

केला विशेषकर बसराई ड्वारक (भुखावली) प्रजाति के जून के मास में रोपण करने पर परिणाम अच्छे प्राप्त होते हैं. केले की पत्तियां 6X6 फुट पर लगाएं, जिसके लिए मई में ही गड्ढे खोद कर खाद से भर कर रोपण की तैयारी करें.

इनके अतिरिक्त वर्षा ऋतु में आम, कटहल, आंवला, शरीफा, संतरा, मुसम्बी, ग्रेपफूट, चकोतरा, अमरूद, पपीता, केला आदि जैसे अधिकांश फलों के बाग लगाने की तैयारियां जायद में ही करें. इस ऋतु में उचित दूरी पर रेखांकन, गड्ढों की खुदाई, खाद-मिट्टी से भराई आदि का कार्यक्रम विशेष रूप से करने के लिए उपयुक्त समय है.

इस प्रकार जायद में भिण्डी, लोबिया, ग्वार, कद्दू, लौकी, करेला, टिण्डा, घुइयां, प्याज, कुल्फा, चौलाई, पोई, तरबूज, खरबूजा, खीरा, ककड़ी, चिचिण्डा, हल्दी जैसी सब्जियों की खेती कर तथा नीबू, अमरूद, पपीता और विभिन्न फलों के बाग लगाने की तैयारियां कर व बाग लगा कर सब्जी और फल के उत्पादन में वृद्धि करें और औद्योगिक कार्यक्रमों को सफल बनाएं. ❑

(पृष्ठ 1 का शेषांश)

के प्रोटीन में न्यूक्लियोप्रोटीन होता है जो गठिया रोग का मूल कारण होता है. मांस की जगह सोयाबीन खाने से प्रोटीन तो मिलता है मगर यूरिक एसिड पैदा नहीं होता और मनुष्य गठिया तथा गुर्दे की बीमारियों से सुरक्षित रहता है.

मधुमेह के रोगियों के लिए उत्तम पथ्य: मधुमेह रोग में सोयाबीन एक उत्तम पथ्य है. सोयाबीन में कार्बोहाइड्रेट कम होते हैं अतएव लाभप्रद रहता है. इसी प्रकार हृदय रोगियों को सोयाबीन का 'रिफाइन्ड' तेल कोलेस्ट्राल की कमी के कारण खाने की सिफारिश की जाती है.

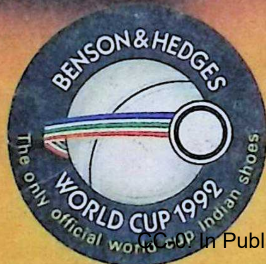
एन्टीबायोटि औषधियां: एन्टीबायोटिक दवाओं के निर्माण में सोयाबीन का एक महत्वपूर्ण स्थान है. देश में अब कई संयंत्र इस पर आधारित दवाइयां बनाते हैं.

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मात्र सोयाबीन, सोयाबीन के तेल, दूध, दही, बड़ियां, दालमोठ, और आटे के सेवन से हम रक्तहीनता, स्नायुदौर्बल्य, हृदय रोग, जिगर की खराबी, तपेदिक, मधुमेह वात, गठिया आदि रोगों से आश्चर्यजनक ढंग से छुटकारा पा सकते हैं. ❑

"भारत के समाचार पत्रों के पंजीयक के कार्यालय
नई दिल्ली में पंजीकृत, पंजीकरण संख्या आर०एन० .../40/71"

DL-16014/92






Compiled
1999-2006